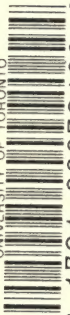


UNIVERSITY OF TORONTO



3 1761 00076130 4



UNIVERSITY OF TORONTO  
LIBRARY

WILLIAM H. DONNER  
COLLECTION

*purchased from  
a gift by*

THE DONNER CANADIAN  
FOUNDATION









2120 I 29  
BIBLIOTHECA INDICA :

▲  
COLLECTION OF ORIENTAL WORKS

PUBLISHED BY

THE ASIATIC SOCIETY OF BENGAL

THE TATTVA-CHINTĀMANI

BY

GANGESĀ UPADHYAYĀ.

PART II.

ANUMĀNA KHANḌĀ

FROM ANUMITI TO BĀDHA

FROM THE COMMENTARIES OF

MATHURĀNĀTHA TĀRKAVAGĪŚĀ

EDITED BY

PĀNDIT KĀMAKHYĀ NĀTHA TĀRKAVAGĪŚĀ

PROFESSOR, SANSKRIT COLLEGE, CALCUTTA.



~~~~~  
CALCUTTA:

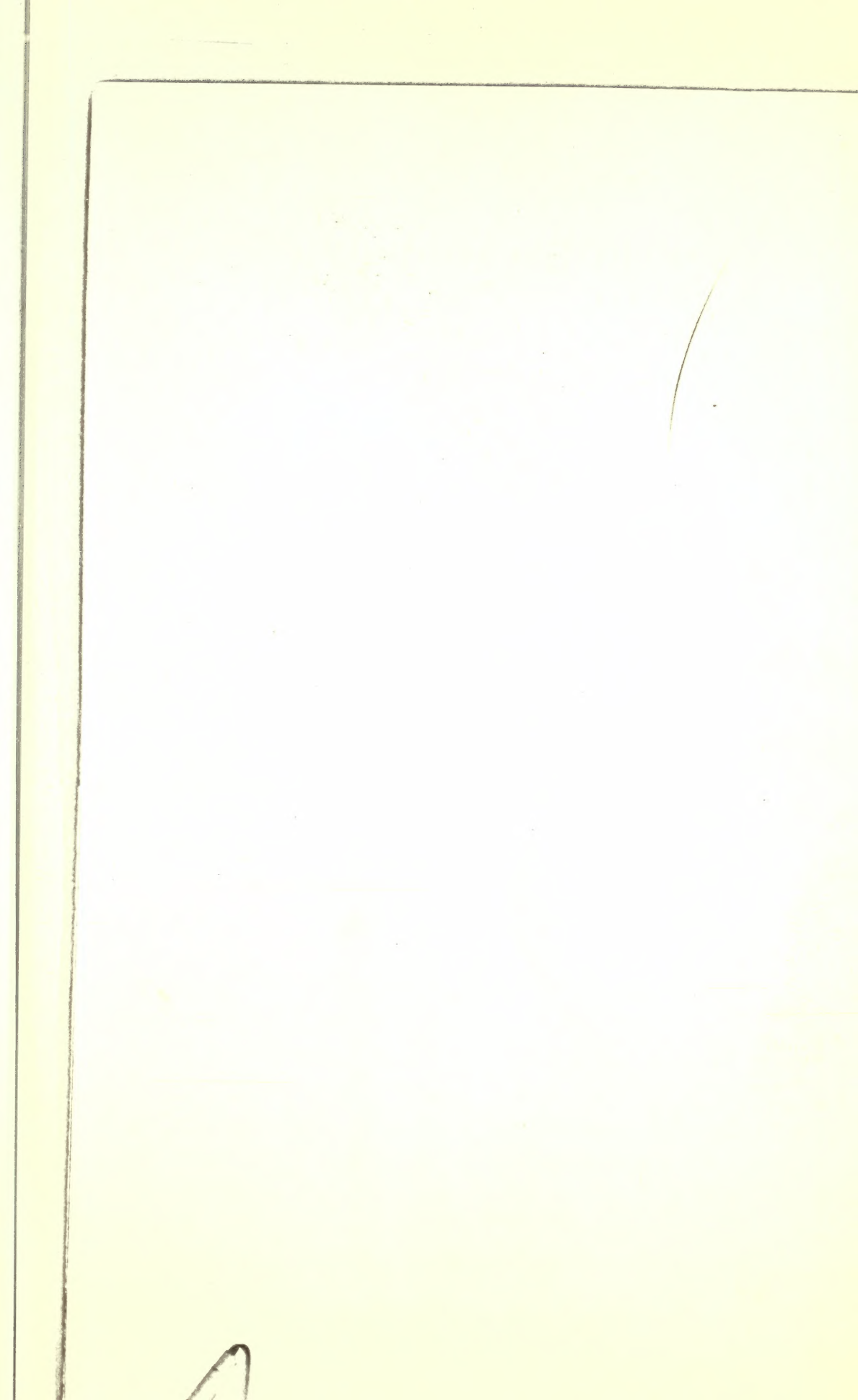
PRINTED AT THE BAPTIST MISSION PRESS.

1892.

B  
132  
N8 G3  
1857  
pt. 2.  
v. 1







# तत्त्वचिन्तामणौ

अनुमानखण्डं

अनुमित्यादिबाधान्तं ।

श्रीमद्गङ्गेशोपाध्यायविरचितं ।

श्रीमयुरानाथ-तर्कवागीशविरचित-रहस्यनामकटौकासहितं ।

आसियाटौक-सोसाइटी-समाजानुमत्या

संस्कृतविद्यालयाध्यापक-

श्रीकामाख्यानाथतर्कवागीशेन

परिशोधितम् ।

कलिकाताराजधान्यां

व्याप्तिल-मिशनयन्त्रे मुद्रितं ।

शकाब्दाः १८१४ । इ १८६२ ।



## शुद्धिपत्रं ।

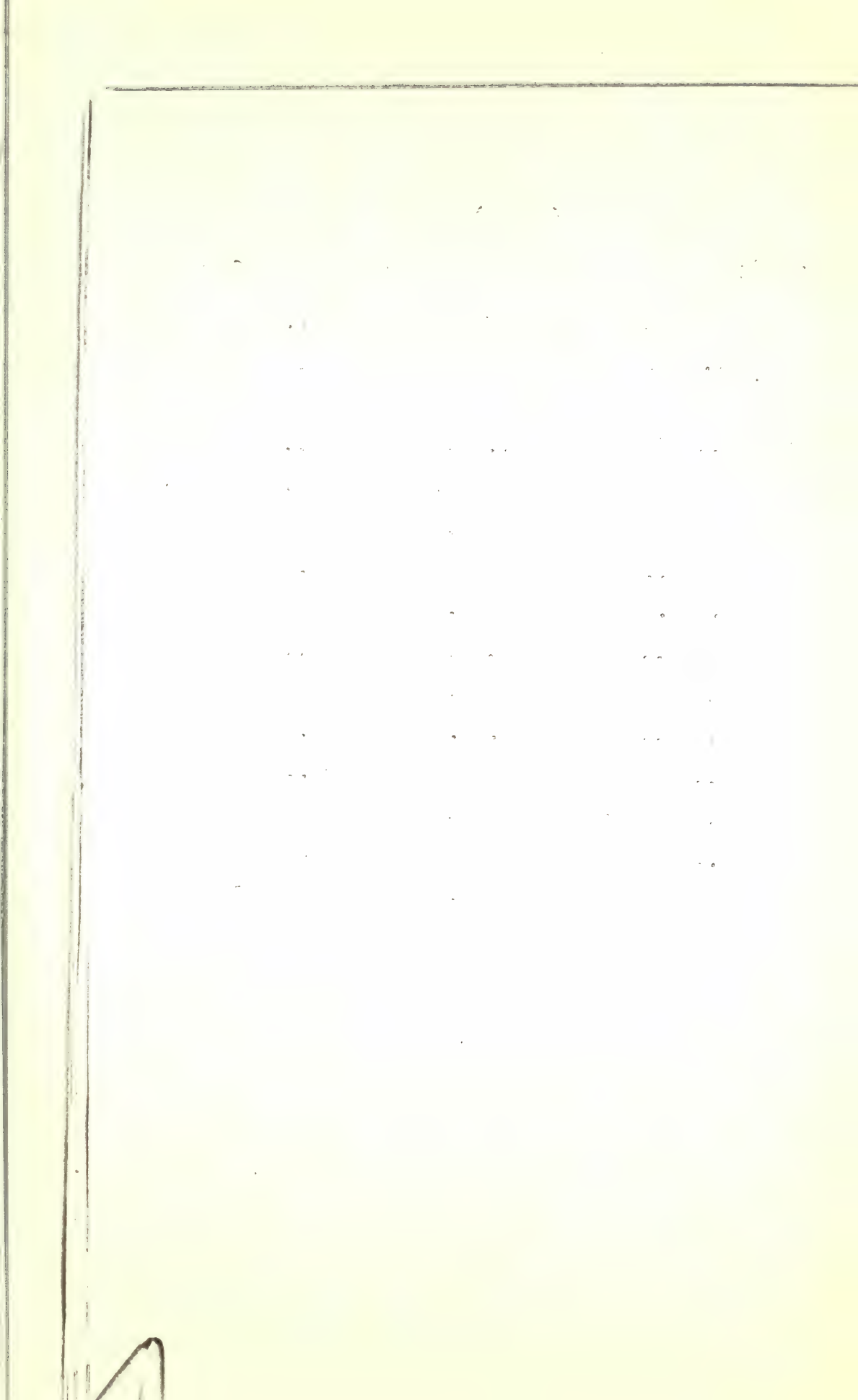


| अशुद्धं ।             | शुद्धं ।             | पृष्ठं । | पङ्क्तिः । |
|-----------------------|----------------------|----------|------------|
| परामर्शौ .. ..        | परामर्शो.. ..        | २ ..     | २          |
| निश्चयो .. ..         | निश्चये .. ..        | २१ ..    | २          |
| साध्यभाव .. ..        | साध्याभाव .. ..      | ३१ ..    | २          |
| साध्यासामान्यीय .. .. | साध्यसामान्यीय.. ..  | ३१ ..    | ८          |
| तददृत्तित्व .. ..     | तद्ददृत्तित्व .. ..  | ४० ..    | २          |
| भेदेना .. ..          | भेदेना .. ..         | ४८ ..    | १०         |
| घटाद्यभावत्वेव .. ..  | घटाद्यभावस्यैव.. ..  | ५६ ..    | २          |
| करणेत्यन्ता .. ..     | करणेत्यत्यन्ता .. .. | १०५ ..   | १          |
| रहस्य .. ..           | रहस्ये .. ..         | १२३ ..   | ३          |
| योजनाभावे .. ..       | योजनाभावे .. ..      | १६२ ..   | २०         |
| सान .. ..             | साधन .. ..           | १६२ ..   | २०         |
| च .. ..               | च- .. ..             | १६७ ..   | १          |
| च कास्तीति.. ..       | चकास्तीति .. ..      | १७० ..   | १४         |
| तद्वा .. ..           | तद्वा .. ..          | १७३ ..   | ७          |
| माभूत् .. ..          | मा भूत् .. ..        | १८८ ..   | ८          |
| उपधी.. ..             | उपाधी .. ..          | १९६ ..   | ६          |
| विद्यमान .. ..        | विद्यमानः .. ..      | १९९ ..   | ६          |
| संसर्गाग्रहो.. ..     | संसर्गाग्रहो .. ..   | २०० ..   | १२         |
| पाकशाकजत्व .. ..      | शाकपाकजत्व .. ..     | २०४ ..   | ११         |
| द्याशङ्कते," .. ..    | द्याशङ्कते .. ..     | २३१ ..   | १          |

| अशुद्धं ।            | शुद्धं ।             | पृष्ठं । | पङ्क्तिः । |
|----------------------|----------------------|----------|------------|
| व्याशङ्कतेचेति ..    | व्याशङ्कते च," इति   | २३२      | ३          |
| व्याघातनिवृत्त्या .. | व्याघातनिवृत्त्या .. | २३१      | १६         |
| प्रथिवी .. ..        | पृथिवी .. ..         | २३७      | १०         |
| स्ततदुभाभ्यां ..     | स्तदुभाभ्यां ..      | २४०      | १२         |
| सत्त्येर्थः .. ..    | सत्त्येथर्थः ..      | २५३      | ७          |
| तत्पुरुषीय .. ..     | तत्पुरुषीय ..        | २५५      | १६         |
| घटकतयैव .. ..        | घटकतयैव ..           | २६६      | २१         |
| मध्यत्वञ्च .. ..     | साध्यत्वञ्च ..       | २७८      | १७         |
| भगवज् .. ..          | भगवज् ... ..         | २८६      | १४         |
| भावत्वेन .. ..       | भावत्वेन .. ..       | ३३३      | ६          |
| रहस्य .. ..          | रहस्ये .. ..         | ३३५      | १४         |
| भिचारस्य .. ..       | व्यभिचारस्य ..       | ३५०      | १३         |
| पाधित्वा .. ..       | उपाधित्वा ..         | ३५६      | १६         |
| न्येषा .. ..         | न्येषा .. ..         | ३५८      | १          |
| यदेत्यर्थकः' .. ..   | यदेत्यर्थकः, ..      | ३६०      | ६          |
| वच्चे .. ..          | वच्चे- .. ..         | ३७१      | १          |
| गुणाप्यत्वे .. ..    | गुणाव्याप्यत्वे ..   | ४०४      | ४          |
| निरूपयितुं .. ..     | निरूप्य .. ..        | ४०८      | १६         |
| प्रमानानु .. ..      | प्रमानु ... ..       | ४६३      | ६          |
| व्याप्तिस्मरणा ..    | व्याप्तिस्मरणा ..    | ४७२      | १२         |
| तदानी .. ..          | तदानी .. ..          | ४७०      | १          |
| असाधारणं .. ..       | असाधारणं ..          | ४७६      | १२         |
| कथ .. ..             | कथं .. ..            | ५१४      | १८         |
| वानुमि .. ..         | वानुमि .. ..         | ५२०      | १७         |
| केवलान्वयि .. ..     | केवलान्वयि ..        | ५६२      | ४          |

## ( ३ )

| अशुद्धं ।         | शुद्धं ।              | पृष्ठं ।  | पङ्क्तिः । |
|-------------------|-----------------------|-----------|------------|
| क्षाशान्ता .. ..  | क्षाशात्यन्ता .. ..   | ५६३ .. .. | १          |
| प्रतित्वात् .. .. | प्रतिथोगित्वात् .. .. | ५७६ .. .. | ६          |
| वङ्गादि .. ..     | वङ्गादि .. ..         | ५८६ .. .. | ४          |
| श्रीद्र .. ..     | श्रीमद्र .. ..        | ६०३ .. .. | ३          |
| प्रनाण्यक .. ..   | प्रामाण्यक .. ..      | ६०३ .. .. | ११         |
| परमान्व .. ..     | परमाण्व .. ..         | ६०५ .. .. | ६          |
| परमानु .. ..      | परमाणु .. ..          | ६०५ .. .. | १६         |
| तद्भूत .. ..      | उद्भूत .. ..          | ६०७ .. .. | २०         |
| पराणु .. ..       | परमाणु .. ..          | ६०८ .. .. | १२         |
| विशेष .. ..       | विशेष .. ..           | ६२६ .. .. | ५          |
| व्यवृत्ता .. ..   | व्यावृत्ता .. ..      | ६३७ .. .. | ६          |
| नागत्या .. ..     | नायत्या .. ..         | ६४७ .. .. | १२         |
| प्रमाणति .. ..    | प्रमाणेति .. ..       | ६६० .. .. | १६         |
| मापाद्य .. ..     | सुपपाद्य .. ..        | ६७५ .. .. | १२         |
| मर्धापत्तिः .. .. | मर्थापत्तिः .. ..     | ६७७ .. .. | १७         |



तत्त्वचिन्तामणौ अनुमानखण्डे अनुमित्यादि-  
वाधान्तभागस्य सूचीपत्रं ।

२५७

| विषयः ।                            | पृष्ठं । |
|------------------------------------|----------|
| अनुमित्यनुमानलक्षणं .. .. .        | २        |
| अनुमानप्रामाण्यं .. .. .           | २१       |
| व्याप्तिपञ्चकं .. .. .             | ३०       |
| सिंह-व्याघ्रव्याप्तिलक्षणं .. .. . | ४६       |
| व्यधिकरणधर्मावच्छिन्नाभावः .. .. . | ५३       |
| व्याप्तिपूर्वपक्षः .. .. .         | ६६       |
| व्याप्तिसिद्धान्तलक्षणं .. .. .    | १००      |
| सामान्याभावः .. .. .               | १२४      |
| विशेषव्याप्तिः .. .. .             | १३०      |
| अतएव चतुष्टयं .. .. .              | १६५      |
| व्याप्तियहोपायपूर्वपक्षः .. .. .   | १७४      |
| व्याप्तियहोपायसिद्धान्तः .. .. .   | २१०      |
| तर्करूपं .. .. .                   | २१६      |
| व्याप्त्यनुगमः .. .. .             | २४३      |
| सामान्यलक्षणापूर्वपक्षः .. .. .    | २५३      |
| सामान्यलक्षणासिद्धान्तः .. .. .    | २८३      |
| उपाधिवादपूर्वपक्षः .. .. .         | २६४      |
| उपाधिवादसिद्धान्तः .. .. .         | ३३६      |
| उपाधिविभागः .. .. .                | ३७८      |



| विषयः ।                               | पृष्ठ । |
|---------------------------------------|---------|
| उपाधिदूषकतावीजपूर्वपक्षः .. .. .      | ३८३     |
| उपाधिदूषकतावीजसिद्धान्तः .. .. .      | ३८३     |
| उपाध्याभासनिरूपणं .. .. .             | ३८८     |
| पक्षतापूर्वपक्षः .. .. .              | ४०७     |
| पक्षतासिद्धान्तः .. .. .              | ४३२     |
| पक्षमर्णपूर्वपक्षः .. .. .            | ४४२     |
| परामर्णसिद्धान्तः .. .. .             | ४८३     |
| केवलान्वय्यनुमानपूर्वपक्षः .. .. .    | ५५२     |
| केवलान्वय्यनुमानसिद्धान्तः .. .. .    | ५७२     |
| केवलव्यतिरेक्यनुमानपूर्वपक्षः .. .. . | ५८२     |
| केवलव्यतिरेक्यनुमानसिद्धान्तः .. .. . | ६०४     |
| संशयकरणाकार्यापत्तिपूर्वपक्षः .. .. . | ६४५     |
| संशयकरणाकार्यापत्तिसिद्धान्तः .. .. . | ६५६     |
| अनुपपत्तिकरणाकार्यापत्तिः .. .. .     | ६७३     |
| अवयवविभागः .. .. .                    | ६८६     |
| न्यायलक्षणां .. .. .                  | ६९१     |
| अवयवलक्षणां .. .. .                   | ६९८     |
| प्रतिज्ञालक्षणां .. .. .              | ७०३     |
| हेतुलक्षणां .. .. .                   | ७२५     |
| अन्वयिहेतुलक्षणां .. .. .             | ७३५     |
| व्यतिरेकिहेतुलक्षणां .. .. .          | ७३७     |
| उदाहरणसामान्यलक्षणां .. .. .          | ७४०     |
| उदाहरणविशेषलक्षणां .. .. .            | ७४१     |
| उपनयसामान्यविशेषलक्षणानि .. .. .      | ७४६     |
| निगमनलक्षणां .. .. .                  | ७५२     |

| विषयः ।                        | पृष्ठं । |
|--------------------------------|----------|
| हेत्वाभाससामान्यलक्षणं .. .. . | ७६२      |
| सत्यभिचारपूर्वपक्षः .. .. .    | ७८४      |
| सत्यभिचारसिद्धान्तः .. .. .    | ८१६      |
| साधारणपूर्वपक्षः .. .. .       | ८१६      |
| साधारणसिद्धान्तः .. .. .       | ८२३      |
| असाधारणपूर्वपक्षः .. .. .      | ८२५      |
| असाधारणसिद्धान्तः .. .. .      | ८२६      |
| अनुपसंहारिपूर्वपक्षः .. .. .   | ८३२      |
| अनुपसंहारिसिद्धान्तः .. .. .   | ८३८      |
| विरुद्धपूर्वपक्षः .. .. .      | ८४२      |
| विरुद्धसिद्धान्तः .. .. .      | ८५५      |
| सत्यतिपक्षपूर्वपक्षः .. .. .   | ८६५      |
| सत्यतिपक्षसिद्धान्तः .. .. .   | ८७१      |
| असिद्धिपूर्वपक्षः .. .. .      | ८८७      |
| असिद्धिसिद्धान्तः .. .. .      | ९१६      |
| बाधपूर्व पक्षः .. .. .         | ९३८      |
| बाधसिद्धान्तः .. .. .          | ९६०      |

|    |    |    |    |     |
|----|----|----|----|-----|
| 1  | 2  | 3  | 4  | 5   |
| 6  | 7  | 8  | 9  | 10  |
| 11 | 12 | 13 | 14 | 15  |
| 16 | 17 | 18 | 19 | 20  |
| 21 | 22 | 23 | 24 | 25  |
| 26 | 27 | 28 | 29 | 30  |
| 31 | 32 | 33 | 34 | 35  |
| 36 | 37 | 38 | 39 | 40  |
| 41 | 42 | 43 | 44 | 45  |
| 46 | 47 | 48 | 49 | 50  |
| 51 | 52 | 53 | 54 | 55  |
| 56 | 57 | 58 | 59 | 60  |
| 61 | 62 | 63 | 64 | 65  |
| 66 | 67 | 68 | 69 | 70  |
| 71 | 72 | 73 | 74 | 75  |
| 76 | 77 | 78 | 79 | 80  |
| 81 | 82 | 83 | 84 | 85  |
| 86 | 87 | 88 | 89 | 90  |
| 91 | 92 | 93 | 94 | 95  |
| 96 | 97 | 98 | 99 | 100 |

48

ॐ नमः शिवाय ।

## तत्त्वचिन्तामणौ

अनुमानाख्यद्वितीयखण्डम् ।

प्रत्यक्षोपपीवकात्वात् प्रत्यक्षानन्तरं बहुवाद्दिसम्प्र-  
तत्वाद्दुपमानात् प्रागनुमानं निरूप्यते ।

अनुमानाख्यद्वितीयखण्डरहस्यम् ।

न्याचाख्यधितसेतुं हेतुं श्रीराममखिलसम्पत्तेः ।

तातं त्रिभुवनगीतं तर्कालङ्कारमादरान्नुवा ॥

श्रीमता मथुरानाथ-तर्कवागीशधीमता ।

विश्वदीप्त्य दर्शन्ते द्वितीयमणिफल्गुकाः ॥

आन्विचिकीपण्डितमण्डलीषु

सत्ताण्डवैरध्ययनं विनापि ।

मदुक्तमेतत् परिचिन्त्य धीराः

निःशङ्कमध्यापनमातनुध्वम् ॥

यद्यपीदं बद्धभिर्बद्धेषु बद्धधा चर्चितं ज्ञायते च कैश्चित् सामा-  
न्यतो हेत्वाभासान्तं, तथापि तन्मानाख्यानविततमशेषाप्रकाशकं बद्ध-

तत्र व्याप्तिविशिष्ट-पक्षधर्माज्ञानजन्यं ज्ञानमनु-  
मितिस्तत्कारणमनुमानं तच्च लिङ्गपरामर्शं न तु परा-  
मृष्यमाणं लिङ्गमिति वक्ष्यते ।

तरकुतर्कसम्बलितमसाम्प्रदायिकञ्चातो व्यामोहाद्यैव केवलं सर्वेषां  
भवतीति सर्वार्थजिष्टतया सत्तर्कमामूलव्याख्याय वैशद्याय च  
ममात्र परं निर्व्वन्धः । प्रत्यक्षं निरूपितमिदानीं अनुमानं निरूप-  
णीयमतः शिष्यावधानाय<sup>(१)</sup> प्रतिजानीते<sup>(२)</sup>, 'प्रत्यक्षानन्तरमित्या-  
दिना, अन्यथा<sup>(३)</sup> अरण्यरुदितं स्यादिति भावः<sup>(४)</sup> । 'प्रत्यक्षानन्तरं'  
प्रत्यक्षनिरूपणानन्तरं, 'उपमानात् प्राक्' उपमाननिरूपणात् प्राक्,  
'अनुमानं निरूप्यते' इत्यन्वयः, 'निरूप्यते' लक्षण-स्वरूप-प्रामाण्या-  
दिभिर्ज्ञायते, लक्षण-स्वरूप-प्रामाण्यादिप्रकारकज्ञानानुकूलव्यापा-  
रविषयोऽनुमानमित्यर्थः । व्यापारः शब्दप्रयोग एव, तद्विष-  
यता व्यापारानुबन्धिन्येव । प्रत्यक्षग्रन्थानुमानग्रन्थयोरेकवाक्यताप्रति-

(१) शिष्यशुश्रूषायै इत्यर्थः ।

(२) प्रतिज्ञा च अथवहितोत्तरकालकतयत्वप्रकारकबोधानुकूलव्या-  
पारः, तादृशव्यापारश्च प्रत्यक्षानन्तरमित्यादि निरूप्यते इत्यन्तं वाक्यं,  
वर्तमानसामोप्यविहितसटा निष्पन्नेन निरूप्यते इति वाक्येन प्रयोगाधि-  
करणकालाव्यवहितोत्तरकालीनत्वेन निरूपणबोधनात् ।

(३) निरूपणस्य प्रतिज्ञापूव्वकत्वाभावे ।

(४) अरण्यरोदनं यथा निष्फलं तथा तादृशनिरूपणं स्यात् ।

पत्तये प्रत्यक्षानुमानयोः सङ्गतित्वरूपेण सङ्गतिमपि दर्शयति, 'प्रत्य-  
क्षोपजीवकत्वादिति अनुमानस्य प्रत्यक्षकार्यत्वादित्यर्थः । भवति हि  
व्याप्तिज्ञानात्मकमनुमानमिन्द्रियात्मकप्रत्यक्षफलमिति भावः । अत्र  
ज्ञानजन्यजिज्ञासाप्रयोज्यत्वं पञ्चमर्थः, अन्वयश्चास्य प्रत्यक्षानन्तर-  
निरूपणे, तथाच प्रत्यक्षोपजीवकत्वज्ञानजन्यजिज्ञासाप्रयोज्यप्रत्य-  
क्षानन्तरनिरूपणविषयोऽनुमानमित्यर्थः । एतेन सङ्गतित्वरूपेण  
सङ्गतिर्दर्शिता, अनन्तराभिधानप्रयोजकजिज्ञासाजनकज्ञानविषयत्वं  
हि सङ्गतित्वं, तथाचानन्तराभिधाने प्रत्यक्षकार्यत्वज्ञानजन्यजिज्ञासा-  
प्रयोज्यत्वग्रहे प्रत्यक्षकार्यत्वेऽपि अनन्तराभिधानप्रयोजकजिज्ञासा-  
जनकज्ञानविषयत्वग्रहात् तुल्यवित्तिवेद्यत्वेन उत्तरकालं मानसबोध-  
सम्भवात् । एकवाक्यत्वञ्च एकप्रयोजनप्रयोजनकप्रतिपत्तिविषयार्थकत्वं,  
पूर्वग्रन्थार्थप्रतिपत्तिप्रयोजनप्रयोजनकप्रतिपत्तिविषयार्थकत्वमिति  
यावत् प्रयोजनन्तु परम्परया सुक्तिरेव । एकवाक्यताप्रतिपत्तौ च  
सङ्गतिप्रदर्शनं लिङ्गज्ञानविधया हेतुः, यत् यत्सङ्गतिमत्प्रतिपादक-  
वाक्यं भवति तत्तत्प्रतिपादकग्रन्थेनैकवाक्यं भवति यथा सन्निकर्षादि-  
ग्रन्थ एव प्रत्यक्षकार्यत्वैककार्यकारित्वादिसङ्गतिमत्प्रतिपादकवाक्यं  
भवति प्रत्यक्षप्रतिपादकग्रन्थेनैकवाक्यमपि भवतीति व्याप्तेः । न चैता-  
दृशैकवाक्यताप्रतिपत्तिर्न प्रकृतोपयोगिनीति वाच्यम् । तत्प्रतिपत्तेः  
प्रत्यक्षग्रन्थप्रयोज्यफलेच्छावतोऽनुमानग्रन्थप्रवृत्तावुपयोगित्वात् । नन्व-  
नुमाने प्रत्यक्षोपजीवकत्ववच्चचुराद्यात्मके प्रत्यक्षेऽप्यनुमानोपजीवकत्व-  
स्याविशिष्टतया अनुमाननिरूपणानन्तरं प्रत्यक्षनिरूपणापत्तिः ।  
भवति हि कार्यमात्रेऽदृष्टस्य हेतुतया चचुरादावप्यदृष्टं हेतुः तच्चादृष्टं

दीपदानादौ प्रवृत्त्या, तत्प्रवृत्तिश्च दीपदानादौ खेष्टसाधनताद्यनुमा-  
नादित्यदृष्टद्वारा चक्षुरादिकमनुमानोपजीवकं। न चादृष्टाद्वारकोप-  
जीवकत्वमेव सङ्गतिरिति वाच्यम्। खेष्टसाधनतानुमितिहेतुकप्र-  
वृत्त्यादिक्रमेण घर्षणादिजनितायां खण्डचक्षुरादिव्यक्तावदृष्टद्वारापि  
परम्परयानुमानोपजीवकत्वसत्त्वात्। न च प्रवृत्त्यद्वारकं जन्यत्वरूपं वा<sup>(१)</sup>  
उपजीवकत्वमेव सङ्गतिरिति वाच्यम्। मनसोऽनुमानत्वनये आत्म-  
मनःसंयोगस्य निर्विकल्पादिद्वारा प्रत्यक्षप्रमितिकरणत्वेन प्रत्यक्ष-  
प्रमाणरूपस्य साक्षात्मानोरूपानुमानजन्यत्वेन तादृशानुमानोपजी-  
वकत्वस्यापि प्रत्यक्षे सत्त्वात्। एतेन यत्किञ्चिदप्रमितिविभाजको-  
पाधवच्छिन्ननिरूपितफलोपधानात्मककरणत्वावच्छेदेन उपजीवकत्व-  
मेव सङ्गतिः तच्चानुमान एवास्ति न तु इन्द्रियात्मकप्रत्यक्षप्रमाणे  
मनः-श्रवणयोरजन्यत्वात् फलोपधानात्मकत्वविवक्षणादौश्वरीयव्याप्ति-  
ज्ञानसाक्षादाद्यनुमितिसवरूपयोग्यकरणत्वेऽपि<sup>(२)</sup> अनुमाननिष्ठप्रत्य-  
क्षोपजीवकत्वस्य न सङ्गतित्वहानिरित्यपि प्रत्युक्तम्। मनसोऽनुमिति-  
करणत्ववशेऽनुमितिकरणत्वावच्छेदेनापि प्रत्यक्षोपजीवकत्वाभावात्  
तादृशोपजीवकत्वस्यैव सङ्गतित्वे शब्दे उपमानोपजीवकत्वस्याप्यसङ्गति-  
त्वापाताच्च व्यवहारादितोऽपि शक्तिग्रहात् शाब्दधीकरणत्वावच्छेदे-  
नोपमानोपजीवकत्वाभावादिति चेत्। न। प्रत्यक्षानुमानयोः परस्परं  
उपजीवकत्वाविशेषेऽपि यत् यदुपजीवकं तत् तन्निरूपणानन्तरनिरूप्य-  
मिति नियमाभावादेव अनुमाननिरूपणानन्तरं प्रत्यक्षनिरूपण-

(१) परम्परयोपजीवकत्वं न साक्षाज्जन्यत्वमपि तु प्रयोज्यत्वमेव।

(२) स्वरूपयोग्यत्वेपीति ख०।

प्रसङ्गविरहात् प्रत्यक्षानन्तरमेव अनुमानं निरूपितं, न त्वनुमानानन्तरं प्रत्यक्षमिति अत्र स्वतन्त्रेच्छस्येति न्यायेन<sup>(१)</sup> इच्छाया-  
एव बीजत्वादिति दिक् ।

अनुमानग्रन्थोपमानग्रन्थयोरेकवाक्यताप्रतिपत्तयेऽनुमानोपमान-  
योरपि सङ्गतिमत्रैव दर्शयति, 'वज्जवादीति । न चैतत्प्रदर्शनमनुमान-  
निरूपणावसर एवोचितमिति वाच्यम् । स्वतन्त्रेच्छस्य नियन्तु-  
मग्रव्यत्वात् । न च तथाप्यनुमानस्य वज्जवादिसम्मतत्वोत्कीर्तनात्  
कथयुपमाने सङ्गतिस्त्वाभ इति वाच्यम् । 'वज्जवादिसम्मतत्वादित्य-  
स्योपमाने वज्जवादिसम्मतानुमानोपजीवकत्वादित्यर्थात् । भवति च  
गोसदृशो गवयपदवाच्य इत्यतिदेशवाक्यार्थज्ञानात्मकोपमाने गवा-  
दिपदशक्तिग्राहकानुमानोपजीवकत्वमिति भावः । अत्रापि ज्ञान-  
जन्यजिज्ञासाप्रयोज्यत्वं पञ्चमर्थः, अन्वयस्तस्य 'उपमानादित्यत्र उप-  
माणपदार्थं उपमाननिरूपणे ।

दौधितिज्ञतस्तु वज्जवादिसम्मतत्वोत्कीर्तनेनावसरस्य सङ्गतिवं  
सूचते, तथा हि अनुमानस्य वज्जवादिसम्मतत्वेन निरसनीयाल्प-  
वादिविप्रतिपत्तिकतया वज्जतरदुःखाजनकप्रतिपत्तिकत्वाद्त्रैव प्रथमं  
युत्पित्त्वोर्जिज्ञासा न तु उपमाने तस्याल्पवादिसम्मतत्वेन निरसनी-  
यवज्जवादिविप्रतिपत्तिकतया वज्जतरदुःखानुबन्धिप्रतिपत्तिकत्वात्,  
तथाच अनुमाने प्रथमं प्रतिबन्धकीभूतश्लिष्यजिज्ञासोत्पत्तौ<sup>(२)</sup> तन्नि-

(१) स्वतन्त्रेच्छस्य पर्यनुयोगानर्हत्वमिति न्यायेनेत्यर्थः ।

(२) उपमाननिरूपणप्रतिबन्धकीभूतश्लिष्यजिज्ञासोत्पत्तौ इत्यर्थः ।



रूपे च<sup>(१)</sup> तन्नितृत्त्यैवावसरसङ्गत्या उपमाननिरूपणमिति भावः  
इत्याहुः<sup>(२)</sup> तन्नये ज्ञानप्रयोज्यप्राथमिकजिज्ञासाप्रयोज्यत्वमत्र पञ्च-  
मर्थः, अन्वयश्चास्य उपमानात् प्राङ्गिरूपे एवञ्च बद्धवादिमन्म-  
तत्वज्ञानप्रयोज्यप्राथमिकजिज्ञासाप्रयोज्योपमानप्राङ्गिरूपणविषयोऽ-  
नुमानमित्यन्वय इति धेयम् ।

मिश्रास्तु 'प्रत्यक्षोपजीवकत्वादित्यादिः 'निरूप्यत इत्यन्तगन्थोऽत्र  
कस्यचित् कल्पितो न तु वास्तविकः पाठः । 'अथानुमानं निरू-  
प्यते' इत्येव पाठोवास्तविकः, तावतैव सिद्ध-साध्यसमभिव्याहार-  
बल्लभस्य हेतु-हेतुसङ्गावस्य प्रतिबन्धकीभूत जिज्ञासानिवर्त्तक-  
सिद्धत्वकथनेनावसरस्य च सङ्गतित्वलाभसम्भवात्, अन्यथा शब्दखण्डे-  
षुपमानोपजीवकत्वात् उपमानानन्तरं शब्दो निरूप्यते इत्यस्य वक्तव्य-  
त्वापातादित्याहुः ।

अनुमितेः प्रत्यक्षादिप्रमितिभिन्नत्वज्ञानं विना अनुमितिकरण-  
त्वेन अनुमानस्य इतरभिन्नत्वज्ञानं न सम्भवति अनुमिति-प्रत्यक्ष-  
योरभेदग्रहात् प्रत्यक्षादिप्रमितिकरणे व्यभिचारज्ञानापत्तेः, अतः  
प्रथमतोऽनुमितेरितरभेदानुमापकमाह, 'तत्रेति, अतो नार्थान्त-  
रावकाशः ।

केचित्तु अनुमितिकरणत्वमनुमानलक्षणं करणीयं, तज्ज्ञा-  
नञ्च नानुमितिज्ञानं विना सम्भवति तस्य तद्वटितमूर्त्तिकत्वा-

(१) अनुमाननिरूपणे इत्यर्थः, तन्निर्वचने इति ख० ।

(२) इति वदन्तीति ख० ग० ।

दतः प्रथमतोऽनुमितिं ज्ञापयति, 'तत्रेति, अतो नार्थान्तरावकाश-  
इत्याहुः ।

'तत्र' कर्त्तव्ये लक्षणादिप्रकारकानुमाननिरूपणे, सप्तम्यर्था-  
विशेषणता, अन्वयस्यास्यानुमितिरित्यनेन, तथाच कर्त्तव्यलक्षणा-  
दिप्रकारकानुमाननिरूपणविशेषणीभूता अनुमितिरीदृशं ज्ञान-  
मित्यन्वयः । 'व्याप्तिविशिष्टेति व्याप्तिविशिष्टञ्च तत् पक्षधर्मताज्ञा-  
नञ्चेति कर्मधारयः समासः, तथाच 'व्याप्तिविशिष्टं' व्याप्तिप्रकारकं,  
यत् 'पक्षधर्मताज्ञानं' हेतोः पक्षे सम्बन्धज्ञानं, तच्चन्यज्ञानमनुमिति-  
रित्यर्थः । भवति च पर्वतोवद्भिस्मान् इत्याद्यनुमितिर्वद्भिर्व्याप्यधूम-  
वान् पर्वत इत्यादिव्याप्तिप्रकारक-पक्षनिष्ठहेतुसम्बन्धज्ञानजन्येति  
लक्षणसम्बन्धः । अत्र धूमवान् पर्वत इत्यादिकेवलपक्षधर्मताज्ञानजन्ये  
तदनुव्यवसाये धूमवत्पर्वतवान् देश इत्यादिविशिष्टवैशिष्ट्यबोधादौ  
चातिव्याप्तिवारणाय 'व्याप्तिप्रकारकेति । न च पक्षविशेष्यकहेतुसम्बन्ध-  
ज्ञानत्वेन हेतुत्वविवक्षणेऽप्येतद्दोषवारणसम्भव इति वाच्यम् । असम्भ-  
वापत्तेः अनुमितावपि तेन रूपेणाहेतुत्वात् । वद्भिर्व्याप्यधूम इत्यादि-  
केवलव्याप्तिप्रकारकज्ञानजन्ये वद्भिर्व्याप्यधूमवान् पर्वत इत्यादिज्ञाने-  
ऽतिव्याप्तिवारणाय 'पक्षधर्मतेति । वद्भिर्व्याप्यधूमवान् पर्वत इत्यादि-  
परामर्शजन्ये संस्कारेऽतिव्याप्तिवारणाय चरमज्ञानपदं । ननु तथापि  
वद्भिर्व्याप्यधूमवन्महानसमदृशः पर्वतपदवाच्य इत्यतिदेशवाक्यार्थ-  
ज्ञानजन्यायामयं पर्वतपदवाच्य इत्युपमितावतिव्याप्तिः तच्चनकी-  
भूतस्यातिदेशवाक्यार्थज्ञानस्यायं वद्भिर्व्याप्यधूमवन्महानसमदृशः इति  
सादृश्यप्रत्यक्षस्य च व्याप्तिप्रकारकपक्षधर्मताज्ञानत्वात् । ईश्वरीय-

तादृशज्ञानमादाय घटादिशब्दबोधोधादौ चातिव्याप्तिः । न च व्याप्तिप्रकारक-पक्षधर्मताज्ञानजन्यत्वमत्र तादृशनिश्चयत्वावच्छिन्नजनकताप्रतियोगिकजन्यत्वमिति नोपमित्यादावतिव्याप्तिः तत्र तादृशनिश्चयत्वेनाहेतुत्वादिति वाच्यम् । असम्भवापत्तेः वङ्गिव्याप्योधूमः आलोकवान् पर्वतः वङ्गिव्याप्योधूमः धूमवान् पर्वत इत्यादि ज्ञानादप्यनुमितिप्रसङ्गादनुमितावपि तेन रूपेणाहेतुत्वात् । न च व्याप्तिप्रकारकपक्षधर्मताज्ञानजन्यत्वं पक्षविशेष्यकसम्बन्धावगाहितांशे व्याप्तिप्रकारकनिश्चयत्वावच्छिन्नजन्यत्वं, पक्षविशेष्यकसम्बन्धावगाहितांशे व्याप्तिप्रकारकत्वञ्च विशिष्टवैशिष्ट्यावगाहित्वपर्यवसन्नमिति नासम्भवः, वङ्गिव्याप्योधूम आलोकवान् पर्वत इत्यादिज्ञानस्य व्याप्तिविशिष्टवैशिष्ट्यावगाहित्वाभावादनुमितौ तेन रूपेण हेतुत्वे बाधकभावादिति वाच्यं । व्याप्तेः सामानाधिकरण्यानतिरेकितया वङ्गिसमानाधिकरणधूमवान् पर्वत इत्यादिज्ञानादप्यनुमितिप्रसङ्गादनुमितौ तेन रूपेणाहेतुत्वादिति चेत् । न । हेतुरधिकरणे प्रकारः, अधिकरणं वृत्तित्वे, वृत्तित्वमभावे, अभावः प्रतियोगितायां, प्रतियोगित्वमवच्छेदके, अवच्छेदकमन्योन्याभावे, अन्योन्यभावश्च साध्यतावच्छेदके, तच्च साध्ये, साध्यमधिकरणे, अधिकरणं वृत्तित्वे, वृत्तित्वं हेतौ, हेतुः पक्षे इत्याकारकविलक्षणविषयताकनिश्चयत्वावच्छिन्नजनकताप्रतियोगिकजन्यताया विवक्षितत्वात् । अत एव प्रथमज्ञानपदमपि सार्थकं संशयान्यतादृशविलक्षणविषयताकत्वेन हेतुत्वप्रवेशे असम्भवापत्तेः इत्यादितोऽपि अनुमित्युत्पादप्रज्ञात्<sup>(१)</sup> अनुमितावपि

(१) अनुमित्यनुत्पादादिति क०, ख० ।

तेन रूपेणाहेतुत्वात् । न चानुमितावगृहीताप्रामाण्यकतादृग्निश्च-  
यत्वेनैव हेतुत्वाद्सम्भव इति वाच्यम् । विशेषण-विशेष्यभावे विनि-  
गमकाभावेनाप्रामाण्यग्रहाभावस्य पृथगेव हेतुतया कारणतावच्छेदके  
तस्याप्रवेशात् तस्य प्रवेशेऽपि अधिकन्विति न्यायेन तादृग्निश्चयत्वस्य  
कारणतावच्छेदकत्वानपायाच्च । अथ तथापि वह्निय्याप्यधूमवत्पर्वतवान्  
देश इत्यादिविशिष्ट-वैशिष्ट्यप्रत्यये तादृग्विशिष्ट-वैशिष्ट्यशब्दबोधे  
चातिशयिः दण्डोरक्तो न वेति संग्रहे रक्तदण्डवानिति ज्ञानानुदयात्  
तत्तद्विशिष्टवैशिष्ट्यज्ञानं प्रति तत्तद्विशेषणतावच्छेदकप्रकारक-तत्तद्वि-  
शेषणनिश्चयत्वेनैव कारणतया तत्रापि यथोक्तनिश्चयत्वेन हेतुत्वादिति  
चेत् । न । अभावाविषयकत्वेन प्रतियोगित्वाविषयकत्वेन वा चरम-  
ज्ञानविशेषणात् यथोक्तविशिष्ट-वैशिष्ट्यप्रत्ययादेश्च<sup>(१)</sup> व्याप्तिघटकतया  
अभावादिविषयकत्वात् । न चैवं पक्षधर्मातापदवैयर्थ्यं तादृग्विच्छ-  
न्नव्याप्तिप्रकारताकनिश्चयत्वावच्छिन्नकारणताप्रतियोगिककार्यता-  
शास्त्रभावाविषयकज्ञानत्वस्यैव सम्यक्त्वात् वह्निय्याप्यधूम इत्या-  
दिकेवलव्याप्तिप्रकारकज्ञानजन्यस्य वह्निय्याप्यधूमवान् पर्वत इत्या-  
दिज्ञानस्य व्याप्तिघटकतया<sup>(२)</sup> अभावादिविषयकत्वेनैव वारणा-  
दिति वाच्यं । असम्भवापत्तेः अनुमितिं प्रत्यपि तेन रूपेणाहेतु-  
त्वात् तादृग्व्याप्तिप्रकारिताकनिश्चयत्वमपेक्ष्य लाघवेन ज्ञानत्वेन  
मनस्त्वेन वानुमितिं प्रति करणत्वात् परामर्शहेतुतयेवातिप्रसङ्गभ-

(१) यथोक्तविशिष्ट-वैशिष्ट्यबोधादेरिति ख० ।

(२) व्याप्तिज्ञानात्मकतयेति क० ।

ज्ञात् । अतएव स्थानुर्न वेति संग्रयोत्तरं जायमानेऽयं स्थानुरिति  
 प्रत्यचे इदं न रजतमिति भ्रमोत्तरं जायमाने इदं रजतमि-  
 त्यादिप्रत्यचे च स्वातन्त्र्येण विशेषणज्ञानविधया वा स्थानुत्व-  
 व्याप्यवक्रकोटरादिमान् रजतत्वव्याप्यचाकचक्रविशेषवानित्यादिवि-  
 शेषदर्शनस्य व्याप्तिप्रकारक-पक्षधर्षतानिश्चयात्मकस्य जनकत्वेऽपि  
 नातिव्याप्तिः विशेषदर्शनस्य विपरीतविश्वयविरोधित्वेन विशेषणज्ञा-  
 नत्वेन वा हेतुतया एतादृशनिश्चयत्वेनाकारणत्वात् तत्र व्याप्तेरूप-  
 नीतभानवामग्रीसत्त्वेन व्याप्तिघटकतया अभावादिविषयकत्वाच्च, न  
 वा तमानयेत्यादौ तच्छब्देन व्याप्यादिविशिष्टोपस्थितिद्वारा जनिते  
 वद्विव्याप्यधूमदत्पर्वतमानयेत्यादिशाब्दबोधे महावाक्यार्थज्ञानस्य  
 पदार्थापस्थितिविधया अवान्तरवाक्यार्थज्ञानजन्यतयोपनर्यार्थज्ञान-  
 जन्ये न्यायार्थज्ञाने वातिव्याप्तिः पदार्थापस्थितेः कारणतावच्छेदके-  
 ऽतिरिक्तस्य पदज्ञानजन्यत्वस्य प्रविष्टतया निश्चयत्वस्याप्रविष्टतया  
 च तत्रापि तादृशनिश्चयत्वेनाकारणत्वात् व्याप्तिघटकतया अभावा-  
 दिविषयकत्वाच्च । नापि परामर्शानुव्यवसाये वद्विव्याप्यधूमः धूमवान्  
 पर्वतः वद्विव्याप्यधूमः आलोकवान् पर्वत इत्यादिज्ञानानुव्यवसाये  
 वा विषयविधया परामर्शस्य तादृशज्ञानस्य च हेतुत्वेऽप्यतिव्याप्तिः  
 अनुव्यवसायं प्रति परामर्शादेर्विषयत्वेन तत्तद्भक्तित्वेन वा हेतुतया  
 तत्रापि यथोक्तनिश्चयत्वेनाकारणत्वात् व्याप्तिघटकतया अभावादि-  
 विषयकत्वाच्च । एवमनुमितिवदापत्तावपि परामर्शस्य हेतुत्वेऽप्या-  
 पत्तौ नातिव्याप्तिः तत्राप्रामाण्यज्ञानास्कन्दितयथोक्तनिश्चयत्वेन  
 हेतुतया कारणतावच्छेदकेऽतिरिक्तस्याप्रामाण्यज्ञानास्कन्दितत्वस्य

प्रवेष्टात् व्याप्तेरुपनीतभानसामग्रीसत्त्वेन व्याप्तिघटकतया तस्याप्यभा-  
वादिविषयकत्वाच्च । न वा वङ्गित्याप्यधूमवान् पर्वत इत्यादिविशिष्ट-  
स्मरणे तादृशविशिष्टानुभवस्य हेतुत्वेऽपि अतिव्याप्तिः, तस्य व्याप्तिघट-  
कतया अभावादिविषयकत्वात् तत्र तादृशविलक्षणविषयताकज्ञानत्वेन  
ज्ञानत्वेन<sup>(१)</sup> वा तादृशविशिष्टानुभवस्य हेतुतया तादृशविलक्षणविषय-  
ताकनिश्चयत्वेनाजनकत्वाच्च । न चैवं तादृशसंग्रहात् सृष्ट्यापत्तिः, संस्का-  
राभावादेव ततः स्मरणानुत्पत्तेः संस्कारं प्रति तादृशनिश्चयत्वेनैव  
हेतुत्वात् । न च विनिगमकाभावः, संग्रहस्यत्वे संस्कारादिकल्पना-  
गौरवस्यैव विनिगमकत्वादिति द्रष्टव्यं<sup>(२)</sup> न चाभावाद्यविषयकत्वेन  
चरमज्ञानविशेषेऽभावादिविषयकानुमितौ अव्याप्तिः साध्य-हेत्वा-  
देरनुगमात् एकोपादानेऽन्यानुमितावव्याप्तिः व्यतिरेक्यनुमितौ  
चाव्याप्तिः तत्र यथोक्तविलक्षणविषयताकनिश्चयत्वेनाहेतुत्वादिति  
वाच्यम् । तादृशकार्यतावद्भावाद्यविषयकज्ञानवृत्तिप्रत्यक्षासम्भवेत-  
धर्मसम्भवाचित्तस्य विवक्षितत्वात्, इत्यञ्च पर्वतो वङ्गिमान् घटः  
सत्तावानित्याद्यन्वयव्याप्तिज्ञानजन्याभावाद्यविषयकानुमितिव्यक्तिमा-  
दायैवाभावादिविषयकानुमितौ अन्यसाध्यकानुमितौ व्यतिरेक्य-  
नुमितौ च लक्षणसम्बन्धः तद्वृत्तित्वात् तादृशधर्मस्थानुमितित्वस्य सर्वत्र  
सत्त्वात् । अत्र सत्ता-गुणत्व-ज्ञानत्वानुभवत्वतादायातिव्याप्तिवारणाय

(१) स्मरणं प्रति विलक्षणसंस्कारस्य हेतुतयैवातिप्रसङ्गवारणं सम्भ-  
वतीति भावः ।

(२) संस्कारं प्रति ज्ञानत्वेन हेतुत्वे संग्रहोत्तरं संस्कारापत्तिरिति भावः ।

प्रत्यक्षासमवेतेति, कालिकसम्बन्धेनानुमितिलक्षापि प्रत्यक्षवृत्ति-  
 त्वादित्याग्निवारणाय समवायित्वमिति । न चैवं चरमज्ञानपदं व्यर्थं  
 परामर्शजन्यसंस्कारस्य व्याप्तिघटकतया अभावादिविषयकत्वेनैव वार-  
 णादिति वाच्यम् । समवायेन तादृशकार्यतावद्भावाविषयकज्ञान-  
 वृत्तितालाभाय तदुपादानादन्यथा जन्यमात्रस्य कालोपाधितया  
 कालिकसम्बन्धेन संस्कारत्व-घटत्वादेरप्यनुमितिवृत्तितया अतिव्या-  
 प्तापत्तेः । वस्तुतस्तु तादृशकार्यताश्रयज्ञानसमवेत-प्रत्यक्षासमवेतधर्म-  
 समवायित्वमेव वक्तव्यं न त्वभावाद्यविषयकत्वेन तज्ज्ञानं विशेषणीयम् ।  
 दण्डोरक्तो न वेति संशयोत्तरमपि रक्तत्व-तदभाववद्दण्डवानिति  
 रक्तत्वांग्रे संशयाकारस्य रक्तत्व-तदभावविशिष्टवैशिष्ट्यविषयताकज्ञान-  
 स्थानुभवसिद्धतया लाघवात् तत्तद्विशेषणतावच्छेदकप्रकारकतत्तद्वि-  
 शेषणज्ञानत्वेनैव विशिष्टवैशिष्ट्यबोधं प्रति हेतुतया वक्ष्मिव्याप्यधूमवत्-  
 पर्वतदान्देश इत्यादिविशिष्ट-वैशिष्ट्यशब्दबोधे अतिव्याप्तिविरहात्  
 तस्य कारणतावच्छेदके निश्चयत्वस्याप्रवेशात् हेतुतावच्छेदकादिरूपेण  
 हेत्वादिभिन्नविषयकभ्रमरूपपरामर्शादप्यनुमित्युत्पत्त्या अनुमितेः  
 कारणावच्छेदके हेत्वादेर्न प्रवेशः, विशिष्टवैशिष्ट्यबोधस्य कारणता-  
 वच्छेदके च हेत्वादेरवश्यं प्रवेशः हेतुतावच्छेदकादिरूपेण हेत्वा-  
 दिभिन्नविषयकनिश्चयात् हेतुतावच्छेदकरूपेण हेत्वादिविषयक-  
 विशिष्टवैशिष्ट्यबोधानुत्पत्तेरतोनिश्चयत्वस्य तत्कारणतावच्छेदके प्रवे-  
 शेऽप्यतिव्याप्तिविरहाच्च अनुमितिं प्रति येन रूपेण परामर्शस्य  
 कारणता तदवच्छिन्नकारणताया एव लक्षणघटकत्वात्, आपत्तेश्च  
 कारणतावच्छेदकेऽप्रामाण्यज्ञानास्कन्दितलस्याधिकस्य प्रवेशादेव वार-

णात् प्रत्यक्षासमवेतत्वेनैव वारणाच्च, इत्यञ्च परामर्शजन्यसंस्कार-  
वारणायैव चरमज्ञानपदं । न चाभावाद्यविषयकत्वविशेषणानुपा-  
दाने यत्र विषयविशेषे नियमतोवह्निव्याप्यधूमवत्पर्वतनिश्चय एवो-  
द्बोधकविधया हेतुः तादृशविषयविशेषे स्यतित्वमादाय स्यतिमात्रे  
ऽतिव्याप्तिः तत्र ताघवात् सामान्यतोवह्निव्याप्यधूमवत्पर्वतनिश्चय-  
त्वेनैव उद्बोधकविधया हेतुत्वादिति वाच्यं । चरमज्ञानपदस्यानु-  
भवपरत्वात् तथाच तादृशविरक्षणविषयताकनिश्चयत्वावच्छिन्नकार-  
णताप्रतियोगिकाकार्यताप्रधानुभवसमवेतप्रत्यक्षासमवेतधर्मसमवायि-  
त्वमिति लक्षणं फलितमतो न कोऽपि दोष इति सम्प्रदायविदः ।  
तदसत् अनुमिति-परामर्शचोक्तज्ञात्वित्वेन हेतु-हेतुमद्भावनये अ-  
नुमितावपि<sup>(१)</sup> तादृशनिश्चयत्वेनाहेतुत्वादसम्भवापत्तेः<sup>(२)</sup> ।

(१) हेतु-हेतुमद्भावादानुमितावपीति क० ।

(२) एतदनन्तरं ख-चिह्नितपुस्तके अधिकः पाठो वर्तते यथा,  
हेतुभेदेन हेतुतावच्छेदकसम्बन्धभेदेन वानन्तकार्य-कारणभावापत्त्या परा-  
मर्शानुमितिहेतुः, किन्तु यद्यल्लिङ्गकपरामर्शानन्तरं तत्तत्पक्षक-  
तत्त्वसाध्यकानुमितिरनुभवसिद्ध तत्तल्लिङ्गकपरामर्शाभावकूटविशिष्टात्म-  
त्वमेव तत्तत्पक्षक-तत्त्वसाध्यकानुमितौ समवायसम्बन्धेन प्रतिबन्धकं प्रति-  
बन्धकता च सामान्यतल्लिङ्गकपरामर्शाभावकूटविशिष्टत्वेन न तु विशि-  
ष्टात्मत्वादेः प्रवेशः गौरवात् तेन सत्तादिमादाय न विनिगमनाविरहः ।  
न च तथापि परामर्शाभावकूटानां परस्परं विशेषण-विशेष्यभावे विनिग-  
मकाभावेन गुह्यतरानन्तकार्य-कारणभावापत्तेर्दुर्वारत्वादिति वाच्यं । परा-  
मर्शाभावानां परस्परं विशेष्यस्याभावदिशि विशेष्यताघटिततया आत्मत्वे



नव्यास्तु येन परापर्मणाव्यवहितोत्तरमनुमितिरेव जनिता न  
द्वपमित्यादि तादृशपरामर्शविशेषपरं व्याप्तिप्रकारक-पक्षधर्मता-  
ज्ञानपदमिति न क्वाप्यतिव्याप्तिः । जन्यत्वञ्च एकात्मावच्छेदेनाव्यवहि-  
तोत्तरवर्तित्वम् । अन्यथा तादृशनिश्चयत्वावच्छिन्नकारणत्वनिरू-  
पितजन्यत्वप्रवेशे उक्तरीत्या असम्भवापत्तेः, जन्यतासामान्यनिवेशे  
ज्ञानत्वेन कार्यत्वेन विशेषणज्ञानत्वेन विशिष्टबुद्धित्वेनेत्यादिरूपेण  
कार्य-कारणभावसादाय शाब्दबोधादेरपि तादृशपरामर्शविशेष-  
जन्यत्वेनातिव्याप्यापत्तेः । न चैवं परामर्शान्तरजन्यानुमितावव्याप्ति-  
रिति वाच्यम् । तादृशज्ञानवृत्ति-प्रत्यक्षासमवेतधर्मसमवायित्वस्य  
विवक्षितत्वात् समवायेन तद्वृत्तितालाभाय चरमज्ञानपदं । न चैवं  
यां काञ्चित् अनुमितिव्यक्तिसुपादाय तद्वृत्तिसमवेतप्रत्यक्षासमवेत-  
धर्मसमवायित्वमेव लक्षणमस्त्विति वाच्यम् । तस्यापि लक्षणान्तर-  
त्वात्, प्रकृते च तस्याप्रवेशेन वैयर्थ्याभावात् । इत्यञ्च व्याप्तिविशिष्टस्य  
व्याप्तिविशिष्टे वा पक्षधर्मता व्याप्तिविशिष्टपक्षधर्मतेति षष्ठी-सप्तमी-  
तत्पुरुषाभ्यां व्याप्तिविशिष्टवृत्तिर्यां पक्षधर्मता तज्ज्ञानजन्यज्ञानमनु-  
मितिरित्यर्थोऽपि सम्भवति, धूमवान् पर्वत इति ज्ञानजन्यानुव्यवसा-  
यादावतिव्याप्तेर्ज्ञानपदस्य ज्ञानविशेषपरत्वेनैव वारणात् हृदोवक्त्रि-

च समवायघटिततया परामर्शाभावान्नत्वयोः विशेषणता-समवायोभयघटि-  
तसामानाधिकरणस्य ततोऽपि लघुत्वादिति परस्परविशेष्य-विशेषणभावा-  
नापन्नानां परामर्शाभावकूटानां युगपदात्मत्वांश्च एव विशेषणत्वोपगमादिति  
स्वतन्त्रमतेऽपि तादृशजनकत्वस्य लक्षणघटकत्वेऽसम्भवापत्तेः इति ।

चेत् । न । तत्पदार्थस्याव्ययपद-निपातपदाद्यतिरिक्तनामार्थतया नामार्थस्य भेदेनान्वयस्याव्युत्पन्नतया तत्पदार्थस्यानुमितेराश्रयतासम्बन्धेन करणपदार्थेऽन्वयासम्भवात् । अन्यथा सकरणत्वं सकर्मकत्वमित्यादावपि तदौपकरणत्वादिप्रत्ययापत्तेः । न चैवं घटकरणं दण्डइत्यादौ खण्डशक्तिनये घटवद्बृत्त्यभावप्रतियोगितानवच्छेदकत्वघटितस्य<sup>(१)</sup> घटकरत्वस्याप्रत्ययप्रसङ्गः करणपदादधिकरण-तद्बृत्तित्वादेरुपस्थितत्वेऽपि घटस्य ततोऽनुपस्थितेरिति वाच्यम् । करणादिपदस्य खण्डशक्तिनयेऽपि कार्यवत्त्वरूपेण कार्यवदंगेऽप्यवश्यं शक्तेरुपगमात् । अन्यथा केवलकरणादिपदात् तात्पर्यधीनत्वेऽपि विना कार्यवाचकपदाध्याहारं घटादिकरणप्रत्ययापत्तेः । कार्यवद्बृत्त्यभावप्रतियोगितानवच्छेदकघटितकरणत्वे गौरवादधिकरणत्वेनाधिकरणप्रवेशादधिकरणंगे कार्यातिरिक्तस्याप्रकारतया कार्यवत्त्वरूपेणैव कार्याधिकरणे करणादिपदस्य शक्तेरावश्यकत्वाच्च । अन्यथा पदानिर्विकल्पकोपस्थितेरनभ्युपगमेनाधिकरणस्य ततोऽनुपस्थितिप्रसङ्गात् । न च कार्यवाचकघटादिपदस्यैव कार्यवति लक्षणा करणादिपदस्य तु केवलवृत्तित्वादिष्वेव शक्तिः कार्यवतो निरूपकतासम्बन्धेन वृत्तित्वेऽन्वयाच्च विशिष्टलाभ इति वाच्यम् । तर्हि लाघवात् करणादिपदस्य केवलधर्मवत्येव शक्त्वापत्तेः इतरांगस्य कार्यवाचकघटादिपदे लक्षणैव लाभसम्भवात् । एतेन खण्डशक्तिनये करणादिपदस्य नानात्वेऽपि तदर्थानां यथा भेदेन परस्परमन्वयोव्युत्पत्ति-

(१) घटवद्बृत्त्यभावप्रतियोगितानवच्छेदकघटितस्येति क०, ग० ।

वैचित्र्यात् तथा करणादिपदसमभिव्याहृतषष्ठ्यादीतरविभक्तिशून्यत-  
दादिपदार्थस्यापि करणपदार्थे भेदान्वयो व्युत्पत्तिवैचित्र्यादिति  
कस्यचित् प्रलपितमथपास्तम् । खण्डशक्तिनयेऽपि कार्यवदंगे शक्ते-  
रावश्यकत्वे व्युत्पत्तिसङ्कोचे प्रमाणाभावात् तदादिपदस्य कार्यस-  
म्बन्धिपरतया तादात्म्यसम्बन्धेनैवान्वयबोधसम्भवात् । न च खण्डशक्ति-  
नये कार्यवदंगे शक्तेरावश्यकत्वे कार्यभेदेन शक्तिभेदस्याविशिष्टतया  
विशिष्टशक्तिपक्षमपेक्ष्य खण्डशक्तिपक्षे किं लाघवमिति वाच्यं ।  
वैशिष्ट्यांगे शक्त्यकल्पनादेव तत्र लाघवसम्भवात् । इत्यञ्च खण्डश-  
क्तिपक्षेऽपि प्रकृतेऽनुमितिसम्बन्धिमदनुमितिकरणं अनुमितिमदनु-  
मितिकरणाभिन्नमित्यन्वयबोधान्न पुनरुक्तिः ।

केचित्तु तत्पदं न स्वरूपतोऽनुमितित्वजातिविशेषविशिष्टपरं  
किन्तु व्याप्तिप्रकारक-पक्षधर्मताज्ञानजन्यज्ञानवृत्तिप्रत्यक्षासमवेतध-  
र्मरूपेण तादृशधर्मसमवायिपरं, तथाच तादृशधर्मसमवायिकरण-  
मनुमानमित्यर्थः, अतो न पुनरुक्तिग्रन्थापि । नन्वेवं तादृशधर्म-  
समवायिकरणत्वेन इतरभेदसाधने व्यर्थविशेषणत्वं तद्वटकस्य व्याप्ति-  
ज्ञानत्वस्यैव हेतुत्वसम्भवात् । न च व्याप्तिज्ञानत्वेन व्याप्तिज्ञानत्वं  
न प्रविष्टमिति न वैयर्थ्यमिति वाच्यम् । तथापि तादात्म्येन  
व्याप्तिज्ञानस्यैव गमकत्वसम्भवात् । न च व्याप्तेरननुगमेन एकत-  
रव्याप्तिज्ञानस्य हेतुत्वे अनुमितिकरणमात्रस्य पक्षत्वात् भागासि-  
द्धिरतस्तादृशधर्मसमवायिकारणत्वं सर्वसाधारणं हेतुरिति वाच्यं ।  
अधिकस्य भागासिद्धिवारकत्वेऽपि व्याप्तिग्रहानुपयुक्ततया वैयर्थ्या-

दिति चेत् । न । भिन्नधर्मिकतया धूमप्रागभाववदवैयर्थ्यात्<sup>(१)</sup>  
करणत्वनिष्ठव्याप्तेर्याप्तिज्ञानत्वानवच्छेद्यत्वादित्याहुः ।

लक्षणमुक्त्वा स्वरूपमाह, 'तच्चेति अनुमानच्चेत्यर्थः, 'लिङ्गपरा-  
मर्गः' व्याप्तिज्ञानं, परामर्गस्य व्यापाराभावेनाकरणत्वात् ।

अन्ये तु नन्वेतावता अनुमितिकरणत्वमनुमानलक्षणमुक्तं भवति  
तत् कथं स्यात् ज्ञायमानलिङ्गस्यानुमितिकरणत्वेन अनुमानेतरा-  
प्रसिद्ध्या इतरभेदानुमापकत्वाभावात् इतरभेदानुमापकत्वस्यैव च  
लक्षणपदार्थत्वादित्यत आह, 'तच्चेतीति प्राहुः ।

'वद्व्यत इति, परामृश्यमानलिङ्गस्यानुमितिकरणत्वे अतीता-  
नागतलिङ्गादनुमितिर्न स्यादिति भावः ।

लक्षणं निरूपितं<sup>(२)</sup> इदानीं प्रामाण्यं निरूपयितुं प्रथमतश्चा-  
व्वाक्यमतमाग्रङ्गते, 'अथेति, । 'न प्रमाणं' न प्रमितिकरणं, ननु  
यदि चानुमानमनुमितिकरणं न प्रमाणमित्यर्थः तदाश्रयासिद्धिः  
तन्मतेऽनुमितिकरणस्याप्रसिद्धेः, यद्यनुमानं धूमादि न प्रमाणमित्यर्थः  
तदा सिद्धसाधनं व्याप्तिज्ञानस्यैव नैयायिकैः प्रमाणत्वोपगमादिति  
चेत् । न । अनुमानमित्यस्य व्याप्तिज्ञानमित्यर्थात् । न च तथा-  
प्याश्रयासिद्धिः तन्मते सर्वत्र व्यभिचारसंग्रहसत्त्वेन व्याप्तिनिश्चया-  
नुत्पादादिति वाच्यं । तन्मते संग्रहात्प्रकस्य प्रसिद्धेः । न चांग्रतः  
सिद्धसाधनं, पक्षतावच्छेदकावच्छेदेन साध्यसिद्धेरुद्देश्यत्वात् । न च

(१) तथाच व्यर्थविशेषणत्वघटकसामानाधिकरण्यविग्रहान्न दोष इति  
भावः ।

(२) लक्षणमुक्तमिति ख० ।

निर्विकल्पकद्वारा स्वप्रत्यक्षात्मकप्रमितिं प्रति करणत्वाद्वाध इति वाच्यं । निर्विकल्पकं प्रति करणत्वाभावात् विशिष्टज्ञानस्य तु तन्मते असद्विषयकत्वेनाप्रमितित्वाच्च । अत्र च प्रमाजनकतावच्छेदकरूपशून्यत्वादिति हेतुरुह्यः, तच्च तन्मते इन्द्रियत्वं असन्मते व्याप्तिनिश्चयत्वादिकमपि । ननु अयं हेतुः स्वरूपासिद्धः तादृशव्याप्तिनिश्चयत्वस्यैव सर्वत्र सत्त्वादित्यत आह, 'योग्योपाधीनामिति साध्यव्यापकतया गृहीतानामिन्धनादिलक्षणयोग्यधर्माणामित्यर्थः, 'योग्यानुपलब्ध्या' योग्यतासहितया अनुपलब्ध्या, 'अभावनिश्चयेऽपीति प्रत्यक्षतोव्यभिचारितासम्बन्धेन इन्धनत्वादिरूपेण अभावस्य धूमादौ हेतौ निश्चयेऽपीत्यर्थः, तेनोपाधित्वस्य अतीन्द्रियत्वेन तदवच्छिन्नाभावस्य लौकिकप्रत्यक्षागम्यत्वेऽपि न क्षतिः । न च व्यभिचारित्वस्यातीन्द्रियघटिततया तत्सम्बन्धेन इन्धनत्वाद्यवच्छिन्नाभावोऽपि कथं लौकिकप्रत्यक्षगम्य इति वाच्यम् । साध्याभाववद्यत्किञ्चियोग्यव्यक्तिवृत्तित्वरूपव्यभिचारिताविशेषसम्बन्धेन तदभावस्य प्रत्यक्षसम्भवादिति भावः । 'अयोग्योपाधिः शङ्कयेति साध्यव्यापकतया गृहीतस्य मनोवाद्यादिलक्षणयोग्यधर्मस्य व्यभिचारितासम्बन्धेन धूमादौ हेतौ शङ्कयेत्यर्थः । यदा साध्यव्यापकरूपायोग्यधर्मप्रकारेण साध्यव्यापकीभूतधर्मस्य व्यभिचारितासामान्यसम्बन्धेन धूमादौ हेतौ शङ्कयेत्यर्थः, 'व्यभिचारसंशयादिति सर्वत्र हेतौ साध्यव्यभिचारसंशयादित्यर्थः, व्यभिचारसंशये च व्याप्तिनिश्चयस्यैवासम्भवात् कथं तत्र व्याप्तिनिश्चयत्वमिति भावः । ननु भूयः साध्य-साधनसहचारज्ञानस्य व्यभिचारज्ञानप्रतिबन्धकतया तद्यत्रास्ति तत्रैव व्यभिचारसंशयासम्भवेन व्याप्ति-

अथानुमानं न प्रमाणं योग्योपाधीनां योग्यानु-  
पलब्धाभावनिश्चयोप्ययोग्योपाधिशक्त्या व्यभिचार-  
संशयात् शतशः सहचरितयोरपि व्यभिचारोपलब्धेश्च  
लोके धूमादिदर्शनानन्तरं वज्रादिव्यवहारश्च सम्भा-

निश्चयसम्भव इत्यत आह, 'शतश इति<sup>(१)</sup> शतशः सहचरितत्वेन  
ज्ञातपोर्द्वयोरपीत्यर्थः,<sup>(२)</sup> तथाच भूयः सहचारज्ञानस्य व्यभिचार-  
ज्ञानप्रतिबन्धकत्वमेवासिद्धमिति भावः । नन्वेवं वज्रिसन्निकर्ष-  
पर्वतविशेष्यकवज्रिप्रकारकसंस्काराद्यभावदशायामपि धूमदर्शनान-  
न्तरं पर्वतोवज्रिमान् इत्यादिप्रयोगोऽनुभूयते स कथं स्यात् तादृ-  
शशब्दप्रयोगं प्रति पर्वतविशेष्यक-वज्रिप्रकारकबुद्धेर्हेतुत्वादित्यत-  
आह, 'लोक इति लोकानामित्यर्थः, 'धूमादीति, वज्रीन्द्रियस-  
न्निकर्ष-पर्वतविशेष्यक-वज्रिप्रकारकसंस्काराद्यभावदशायामित्यादि,  
'वज्रादिव्यवहारश्च' पर्वतोवज्रिमानित्यादिशब्दप्रयोगः ।

केचित्तु 'वज्रादिव्यवहारः' पर्वतविशेष्यक-वज्रिप्रकारकप्रवृत्ति-  
रित्याहुः । तदसत् वज्रिप्रकारिका पर्वते प्रवृत्तिर्हि साध्यतया,  
उद्देश्यतया वा, उपादानतया वा, नाद्यौ वज्रिसत्पर्वतस्य सिद्ध-

(१) शतशः सहचरितयोरिति ख० ।

(२) एतदनन्तरं क—चिह्नितपुस्तके अधिक्तः पाठो वर्तते यथा,  
व्यभिचारोपलब्धेरिति यथा लौहलेख्यत्व-पार्थिवत्वयोर्हीरके इत्यर्थः इति ।

वनामात्रात् संवादेन च प्रामाण्याभिमानादिति नाप्र-  
त्यक्षं प्रमाणमिति, न, अप्रमाणसाधर्म्येणाप्रामाण्य-  
साधने दृष्टसाधर्म्यस्यानुमानत्वात् एतद्वाक्यस्य सन्दिग्ध-

त्वात्, नान्यः उपादानगोचरलौकिकसाक्षात्कारस्यैव प्रवृत्तिहेतु-  
तया न्यायनयेऽप्यनुमित्यात्मकज्ञानात्तदसम्भवादिति मन्तव्यं ।

‘सम्भावनेति, ‘सम्भावना’ पर्वते वज्रसंसर्गाग्रहोवह्नेः पर्वतस्य  
च ज्ञानम् । न च लाघवाद्भवहारं प्रति विशिष्टधिय एव हेतुत्वं न  
तु असंसर्गाग्रहादेर्गौरवादिति वाच्यं । न हि वयमसंसर्गाग्रहादे-  
र्यवहारकारणत्वं ब्रूमः, किन्तु तदुपलक्षितवज्रादिज्ञानादीनामेव  
कुर्वद्रूपत्वेन धर्मविशेषेण, अनन्तानुमितिकल्पनापेक्षया कुर्वद्रूपत्वक-  
ल्पनाया एव लघुत्वादिति भावः । ननु धूमदर्शनानन्तरं वज्रादि-  
व्यवहारजनिका न सम्भावना तज्जनकीभूतज्ञानस्य वल्लिसति  
वल्लिप्रकारकानुभवेनानुभवादित्यत आह, ‘संवादेनेति, ‘संवादेन’  
संवादादिव्यवहारजनकत्वादिरूपसाधारणधर्मदर्शनेन दोषेण च,  
‘प्रामाण्यं’ वल्लिसति वल्लिप्रकारानुभवत्वं, ‘अभिमानः’ पुनरगृहीता-  
संसर्गकं ज्ञानद्वयमेकमेव ज्ञानं वेत्यन्यदेतत् । उपसंहरति, ‘इतीति,  
‘इति’ अतो हेतोः, ‘नाप्रत्यक्षमिति प्रत्यक्षातिरिक्तं न प्रमाणमित्यर्थः,  
अनुमानाप्रामाण्ये तेन घटपदं घटे शक्तं असति वृत्त्यन्तरे वृद्धैस्तत्र  
प्रयुज्यमानत्वादित्यादिना प्रकारेण शक्तिग्रहे एव शब्दः प्रमाणं  
स्यादिति शब्दो न प्रमाणं, शब्दस्याप्रामाण्ये तेनातिदेशवाक्यार्थज्ञान-  
एव उपमानं प्रमाणं स्यादित्युपमानमपि न प्रमाणमिति भावः । न

विपर्यस्तान्यतरं प्रत्यर्थवत्त्वात् तयोश्च परकीययोर-  
प्रत्यक्षत्वात् अनुमानमप्रमाणमिति वाक्यस्य प्रामा-

च प्रत्यक्षातिरिक्तस्याप्रामाण्ये कथमतीन्द्रियपदार्थसिद्धिरिति वाच्यं ।  
तैरतीन्द्रियपदार्थानभ्युपगमादिति भावः । ननूपक्रमोपसंहारवि-  
रोधः येन रूपेण प्रतिज्ञा क्रियते तेनैव रूपेण निगमनमपीति  
सकलकथकसम्प्रदायसिद्धत्वात्, अत्र च अनुमानं न प्रमाणमित्य-  
स्योपक्रमत्वात् नाप्रत्यक्षं प्रमाणमित्यस्य चोपसंहारत्वादिति चेत्, अत्र  
मिश्राः नाप्रत्यक्षं प्रमाणमित्युपक्रमः अनुमानं न प्रमाणमित्या-  
दिकन्तु हेतुरिति प्राज्ञः ।

व्यास्तु नाप्रत्यक्षं प्रमाणमित्यपि प्रतिज्ञान्तरं न तु अनुमानं  
न प्रमाणमित्यस्योपसंहारः, तथाच यतोऽनुमानं न प्रमाणं अतः  
प्रत्यक्षातिरिक्तं शब्दोपमानमपि न प्रमाणमित्यर्थ इत्याहुः ।

वस्तुतस्तु नाप्रत्यक्षं प्रमाणमित्यपि नोपसंहारः अनुमानं न  
प्रमाणमित्यपि नोपक्रमः उपक्रमोपसंहारयोः प्रतिज्ञा-निगमनयोस्तै-  
रनङ्गीकारात्, किन्तु स्वरूपकीर्तनमात्रमित्येव तत्त्वं ।

अथानुमानस्याप्रामाण्यं केन प्रकारेण साध्यते, किं प्रमाप्रयो-  
जकतावच्छेदकरूपशून्यत्वलिङ्गकेनानुमानेन, किं वा अनुमानं न  
प्रमाणमिति शब्देन, तत्राद्ये आह, 'अप्रमाणेति, 'अप्रमाणसाध-  
र्म्येण' अप्रमाणत्वव्याप्येन प्रमाजनकतावच्छेदकरूपशून्यत्वेन<sup>(१)</sup> 'दृष्ट-  
साधर्म्यस्य' साधर्म्यदर्शनस्य अप्रमाणत्वव्याप्यदर्शनस्येति यावत् ।

(१) प्रमाणाप्रयोजकरूपशून्यत्वेनेति ख० ।



ख्याप्रामाण्ययोर्व्याघातात् । अपिचानुमानाप्रामाण्ये  
प्रत्यक्षस्याप्यप्रामाण्यत्वापत्तेः प्रामाण्यस्यानुमेयत्वात् स्व-  
तश्च प्रामाण्यग्रहे तत्संशयानुपपत्तेः । व्याप्तिग्रहो-  
पायश्च वक्ष्यते ।

इति श्रीमद्भक्तेशोपाध्यायविरचिते तत्त्वचिन्तामणौ  
अनुमानखण्डे अनुमितिनिरूपणं ।

अन्ये आह, 'एतद्वाक्येति अनुमानं न प्रमाणमितिवाक्यस्येत्यर्थः,  
'अर्थवत्त्वात्' प्रयोजनवत्त्वात् न तु खं प्रतीत्यर्थः, 'तयोः' सन्देह-  
विपर्यययोः, अचमर्थः अनुमानं प्रमाणं न वेति संग्रहस्य अनुमानं  
अप्रमाणमेवेति विपर्ययस्य वा निराससाधनताज्ञानादेतद्वाक्य-  
प्रयोगे तव प्रवृत्तिः तच्च ज्ञानं कथं स्यात् परकीयसंग्रह-विपर्य-  
ययोरप्रत्यक्षत्वात् अतोऽनुमानं प्रमाणं अवश्योपेयमिति । 'प्रामा-  
ण्याप्रामाण्योरिति प्रामाण्येऽप्रामाण्ये चेत्यर्थः, 'व्याघातात्' प्रत्यक्षा-  
तिरिक्तस्य अप्रामाण्यव्याघातात्, अनुमानमप्रामाण्यमिति वाक्यस्य  
प्रामाण्ये हि आयातं प्रत्यक्षातिरिक्तस्य शब्दस्य साक्षादेव प्रामाण्यं,  
अप्रामाण्ये च अप्रामाण्यभ्रमजनकत्वमिति । अनुमानेऽप्रामाण्यस्य  
भ्रम एव जननीयः, भ्रमत्वञ्च ज्ञानस्य विषयवाधाधीनमेवेत्यनु-  
मानाप्रामाण्ये बाध एवेति भावः । ननु भ्रमजनकत्वलक्षणं अप्रा-  
माण्यं शब्दस्य नोच्यते येन भ्रमत्वस्य विषयवाधाधीनतया प्रत्य-  
क्षातिरिक्तस्यानुमानस्य प्रामाण्यस्वीकारापत्तिः, परन्तु प्रमाकर-  
णत्वव्यतिरेकलक्षणमित्यस्वरसादाह, 'अपि चेति, 'प्रत्यक्षस्यापि'

अथचस्यापि, 'अप्रमाणत्वापत्तेरिति प्रमात्वाभावापत्तेरित्यर्थः, प्रमात्वे प्रमाणाभावादिति भावः । कथं प्रमाणं नास्ति तदाह, 'प्रामाण्य-  
स्येति प्रमात्वस्येत्यर्थः । ननु प्रत्यक्षप्रमात्वं खेनैव गृह्यते इति स्वय-  
मेव स्वप्रमात्वे प्रमाणमतो न तत्रानुमानापेक्षेत्यत आह, 'खत इति,  
'तत्संग्रयेति प्रमात्वसंग्रयेत्यर्थः । अयं घट इत्यादिज्ञानानन्तरं  
तृतीयक्षणे<sup>(१)</sup> इदं ज्ञानं प्रमा न वेति संग्रयोजायते, भवन्मते तन्न  
स्यात् खेनैव स्वप्रमात्वस्य निश्चितत्वादिति भावः । एतच्चापाततः अयं  
घट इत्यादिसविकल्पकज्ञानस्य हि तृतीयक्षणे प्रमात्वसंग्रयः तेन  
च तन्नयेऽपि न खसिन् प्रामाण्यं गृह्यते तस्यासन्मात्रविषयत्वेन  
प्रमात्वस्यैव तत्राभावात् किन्तु पारमार्थिकव्यक्तिमात्रविषयकनिर्वि-  
कल्पकज्ञानमेव तन्नते प्रमा तेनैव खसिन् प्रामाण्यं खेन गृह्यते  
तत्र तृतीयक्षणे प्रामाण्यसंग्रयोऽसिद्धः । किञ्च तन्नते संग्रयं प्रत्यपि  
दुर्बद्रूपत्वेनैव निश्चयस्य प्रतिबन्धकत्वात् निश्चयसत्त्वेऽपि संग्रयोत्पत्तौ  
विरोधाभावः । दुर्बद्रूपत्वस्य फलबलकल्पत्वेन यदुत्तरं संग्रयो  
जायते तत्र तदभावात् । वस्तुतस्तु अनुमानस्याप्रामाण्ये निर्विकल्प-  
कज्ञानस्यैवासद्विषयकत्व-खविषयकत्व-प्रामाण्यावगाहित्वसिद्धिः कथं  
स्यात् सद्विषयकत्वादिहेतुकानुमानेनैव असद्विषयकत्वस्य ज्ञान-  
त्वहेतुकानुमानेनैव खविषयकत्वस्य खेतरायाश्चप्रामाण्यकत्वे सति  
याश्चप्रामाण्यकत्वहेतुकानुमानेनैव प्रामाण्यावगाहित्वस्य सिद्धेः । न  
च तदपि खेनैव गृह्यत इति वाच्यं । विषयानवस्थाभिः प्रामाण्य-

(१) सर्वत्र 'तृतीयक्षणे' इत्यत्र 'द्वितीयक्षणे' इति ख—चिह्नितपुस्तक-  
पाठः ।

तद्घटकपदार्थाद्यतिरिक्तधर्मस्य स्वतोयाह्वानभ्युपगमात् । अपि च धूमदर्शनानन्तरं जायमाने वज्रादिव्यवहारजनके ज्ञाने अनुमितिवजातिविशेषस्यानुमिनोमीत्यवाधितानुव्यवसायसिद्धतया अपह्लापासम्भवः अनुमितिरूपजातिविशेषस्य सिद्धत्वे तदवच्छिन्नं प्रति व्याप्तिज्ञानादेः करणत्वमप्यावश्यकं, अन्यथा तदवच्छिन्नोत्पत्तिनियमानुपपत्तेः । न चास्तु अनुमितिरूपोज्ञानविशेषः अस्तु च तत्र व्याप्तिज्ञानादेः करणत्वं तथापि तादृशज्ञानविशेषस्य सविकल्पकरूपत्वेनासन्नात्रविषयकतया प्रमात्वाभावान्न तत्करणस्य प्रमाणत्वमिति वाच्यम् । सविकल्पकविज्ञानस्यासन्नात्रविषयकत्वासिद्धेः अनुमितिविषयीभूतानां पर्वतत्व-वज्रित्वादीनां सर्वेषां पारमार्थिकत्वादित्येव दूषणं सारं । ननु व्याप्तिनिश्चयस्य स्वोत्पत्तावेव प्रामाण्यं संभवति सैव न संभवति उपायाभावादित्यत आह, 'व्याप्तिग्रहोपायश्चेति' (१) ।

इति श्रीसथुरानाथतर्कवागीश्वरिचिते तत्त्वचिन्तामणौ अनुमानखण्डे अनुमितिरूपणरहस्यम् ।

तच्चागुणवत्वमिति साधर्म्यव्याख्यानावसरे गुणप्रकाशरहस्ये तद्द्वी-  
धितिरहस्ये च स्फुटं, अत्रययीभावसमासोत्तरपदार्थेन समं तत्स-  
मासानिविष्टपदार्थान्तरान्वयस्याव्युत्पन्नत्वाच्च<sup>(१)</sup> भूतलोपकुम्भं भूत-  
लाघटमित्यादौ भूतलवृत्तिघटसमीप-तदत्यन्ताभावयोरप्रतीतेः ।  
एतेन वृत्तेरभावोऽवृत्तीत्यव्ययीभावानन्तरं साध्याभाववतोऽवृत्ति-  
र्यत्रेति वज्रब्रीहिरित्यपि प्रत्युक्तं वृत्तौ साध्याभाववतोऽनन्वयापत्तेः  
अव्ययीभावसमासस्याव्ययतया तेन समं समासान्तरासम्भवाच्च ननु-  
पाध्यादिरूपाव्ययविशेषाणांमेव समस्यमानत्वेन परिगणितत्वात्<sup>(२)</sup> ।  
वस्तुतस्तु साध्याभाववतो न वृत्तिर्यत्र इति त्रिपदव्यधिकरणवज्र-  
ब्रीह्युत्तरं त्वप्रत्ययः साध्याभाववत इत्यत्र निरूपितत्वं षष्ठ्यर्थः,  
अन्वयस्यास्य वृत्तौ, तथाच साध्याभावाधिकरणनिरूपितवृत्त्यभाव-

(१) अव्ययीभावसमासोत्तरपदार्थेन समं तत्समासानिविष्टपदार्थान्तर-  
स्यान्वयस्याव्युत्पन्नत्वादित्यत्र अन्तरपदमनर्थकमिति नाशङ्कनीयं उपकुम्भ-  
मित्यादावपि तत्समासानिविष्ट-समीपादिपदप्रतिपाद्यसामीप्याद्यर्थे अन-  
न्वयप्रसङ्गात् अधिकस्य अन्तरपदस्य दाने तु तत्समासानिविष्टपदाप्रति-  
पाद्यार्थान्वयबोधस्याव्युत्पन्नत्वादित्यर्थकत्वसम्भवात् नानुपपत्तिगन्धोऽपि इति  
ध्येयम् । तत्समासानिविष्टपदार्थान्वयस्याव्युत्पन्नत्वादित्येव ग-चिङ्गितपुस्तक-  
पाठः ।

(२) ननु भूतलोपकुम्भं भूतलाघटमित्यादिप्रयोगदर्शनात् कथमेतादृश-  
नियमोयुक्तिसद् इति चेत्, न, ननुपाध्याद्यव्ययविशेषाणां समस्यमानत्वेन  
परिगणितत्वात् इत्यत्र आदिपदेन उपकुम्भादेरपि परिग्रहान्नासङ्गति-  
रिति ।

वद्भिन्नसाध्याभाववदवृत्तित्वं साध्यवत्प्रतियोगिकान्यो-  
न्याभावासामानाधिकरण्यं सकलसाध्याभाववन्निष्ठा-

वत्त्वमव्यभिचरितत्वमिति फलितं । न च व्यधिकरणवद्ब्रह्मिः  
सर्वत्र न साधुरिति वाच्यं । अयं हेतुः साध्याभाववदवृत्तिरित्यादौ  
व्यधिकरणवद्ब्रह्मिं विना गत्यन्तराभावेनात्रापि व्यधिकरणवद्ब्र-  
ह्मिहेः साधुत्वात् । साध्याभावाधिकरणवृत्तित्वाभावश्च तादृशवृत्ति-  
सामान्याभावोबोध्यः । तेन धूमवान् वङ्गेरित्यादौ धूमाभाववज्जल-  
हृदादिवृत्तित्वाभावस्य धूमाभाववदवृत्तित्व-जललोभयत्वाद्यवच्छिन्ना-  
भावस्य च वङ्गौ सत्त्वेऽपि नातिव्याप्तिः । साध्याभाववदवृत्तिश्च हेतुताव-  
च्छेदकसम्बन्धेन विवक्षणीया तेन वङ्गभाववति धूमावयवे जल-  
हृदादौ<sup>(१)</sup> समवायेन कालिकविशेषणतया धूमस्य वृत्तावपि न क्षतिः ।  
साध्याभावश्च साध्यतावच्छेदकसम्बन्धेन साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नप्रति-  
योगिताकोबोध्यः तेन वङ्गिमान् धूमादित्यादौ समवायादिसम्ब-  
न्धेन वङ्गिसामान्याभाववति संयोगसम्बन्धेन, तत्तद्वङ्गित्व-वङ्गि-जलो-  
भयत्वाद्यवच्छिन्नाभाववति च पर्वतादौ संयोगेन धूमस्य वृत्तावपि  
न क्षतिः<sup>(२)</sup> । तादृशसाध्याभाववत्त्वञ्च अभावीयविशेषणताविशेषेण बोध्यं

(१) धूमावयवं परित्यज्य जलहृदादिपर्यन्तानुधावनं प्रसिद्धविपक्षस्थल-  
मादायाव्याप्तिसम्भवे तदप्रदर्शने न्यूनताभङ्गायेति ।

(२) ननु साध्याभावपदस्य प्रथमोपस्थिततया तदंगे विशेषणोभूतस्य  
साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नत्वपदस्य व्यावृत्तिं दर्शयित्वैव शेषदणोपात्त-

भावप्रतियोगित्वं साध्यवदन्यावृत्तित्वं वा केवलान्व-  
यिन्यभावात् ।

तेन गुणत्वान् ज्ञानत्वात् सत्तावान् जातेरित्यादौ विषयित्वाव्याप्य-  
त्वादिसम्बन्धेन<sup>(१)</sup> तादृशसाध्यभाववति ज्ञानादौ ज्ञानत्व-जात्यादेर्वृत्ता-  
वपि नाव्याप्तिः । जात्यत्यन्ताभाव-तद्वदन्योन्याभावयोरत्यन्ताभावो न  
प्रतियोगि-प्रतियोगितावच्छेदकस्वरूपः किन्वतिरिक्तः तेन घट-  
त्वात्यन्ताभाववान् घटान्योन्याभाववान् वा पटत्वात् इत्यादौ वि-  
शेषणताविशेषसम्बन्धेन साध्याभावाधिकरणस्याप्रसिद्ध्या नाव्याप्तिः ।  
अत्यन्ताभावादेरत्यन्ताभावस्य प्रतियोग्यादिस्वरूपत्वनये तु साध्यता-  
वच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकसाध्याभाववृत्तिसाध्यासामान्यी-  
यप्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्धेन साध्याभावाधिकरणत्वं वक्तव्यम्<sup>(२)</sup> ।

वृत्तित्वाभावाद्यंशे विशेषणीभूतस्य हेतुतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नत्वस्य व्यावृ-  
त्तिदानं पश्चादेवोचितमिति व्युत्क्रमेण व्यावृत्तिदाने न्यूनता स्यादिति चेत्,  
न, प्रथमं वृत्तित्वसामान्याभावानुक्तौ साध्याभावांशे साध्यतावच्छेदकधर्म-  
सम्बन्धावच्छिन्नत्वस्य व्यावृत्तिदानं न सम्भवतीति व्युत्क्रमेण व्यावृत्तिदानं ।

(१) अत्राप्यत्वस्य वृत्त्यनियामकतया तत्सम्बन्धमादायाव्याप्तिर्न सम्भवती-  
त्यत आदिपदं आदिपदेन कालिकसम्बन्धपरिग्रहः, अन्यमात्रस्य कालो-  
पाधिकत्वे मानाभावेन वक्तिमान् धूमादित्यादौ नाव्याप्तिसम्भावनेति प्रसिद्धो-  
दाहरणं परित्यक्तं अतएव ज्ञानत्वहेतुं परित्यज्य जातेर्हेतुत्वमुक्तं तत्र  
साध्याभाववति महाकाले जातेर्वर्तमानत्वादव्याप्तिर्दुर्वारैवेति ध्येयम् ।

(२) ननु तथापि गुणत्ववान् ज्ञानत्वात् सत्तावान् जातेरित्यादौ विष-  
यित्वाव्याप्यत्वादिसम्बन्धेन तादृशसाध्याभाववति ज्ञानादौ ज्ञानत्व-जात्यादे-

वृत्त्यन्तं प्रतियोगिताविशेषणं, तादृशसम्बन्धस्य वङ्गिमान् धूमा-  
दित्यादिभावसाध्यकस्थले विशेषणताविशेषणव, घटत्वाभाववान्  
पटत्वादित्याद्यभावसाध्यकस्थले तु समवायादिरेव, समवाय-विषयि-  
त्वादिसम्बन्धेन<sup>(१)</sup> प्रमेयादिसाध्यके ज्ञानत्वादिहेतौ साध्यतावच्छेदक-  
समवायादिसम्बन्धावच्छिन्नप्रमेयाद्यभावस्य कालिकादिसम्बन्धेन यो-  
ऽभावः सोऽपि प्रमेयतया साध्यान्तर्गतस्तदीयप्रतियोगितावच्छेद-  
ककालिकादिसम्बन्धेन साध्याभावाधिकरणे ज्ञानत्वादेर्वृत्तेरव्या-  
प्तिवारणाय सामान्यपदोपादानं, साध्यसामान्यीयत्वञ्च यावत्साध्य-  
निरूपितत्वं स्वानिरूपकसाध्यकभिन्नत्वमिति यावत्<sup>(२)</sup>। अस्मैकोक्ति-  
मात्रतया गौरवस्यादोषत्वात् कारणतावच्छेदके च भावसाध्यकस्थले

वर्तमानत्वादव्याप्तिः । न च साध्याभावाधिकरणत्वमभावीयविशेषणतावि-  
शेषेण विवक्षितमिति वाच्यम् । तथा सति घटत्वात्यन्ताभाववान् घटा-  
न्योन्याभाववान् वा पठत्वादित्यादौ साध्याभावस्य घटत्वादेर्विशेषणतावि-  
शेषसम्बन्धेनाधिकरणत्वाप्रसिद्ध्या अव्याप्तिरिति चेत् । न । साध्यतावच्छे-  
दकसम्बन्धावच्छिन्नसाध्याभाववृत्तिसाध्यसामान्यीयप्रतियोगितावच्छेदकसम्ब-  
न्धेन साध्याभावाधिकरणत्वस्य विवक्षितत्वादिति ख० ग० ।

(१) साध्यतावच्छेदकसम्बन्धेन वृत्तिमत्साधीयप्रतियोगिताविवक्षये स-  
मवायसम्बन्धेन प्रामेयसाध्यकहेतौ अव्याप्तिवारणं सम्भवति अतः विष-  
यित्वसम्बन्धानुसरणमिति भावः ।

(२) अत्रानुगमस्तु साध्यतावच्छेदकसमानाधिकरणभेदप्रतियोगितानव-  
च्छेदकत्वं भेदप्रतियोगितावच्छेदकत्वञ्च निरूपकत्वसम्बन्धावच्छिन्नं यावत्त्व-  
मिति ।

अभावीयविशेषणताविशेषेण साध्याभावाधिकरणत्वं अभावसाध्यकस्थले च यथायथं समवायादिसम्बन्धेन साध्याभावाधिकरणत्वमुपादेयं साध्यभेदेन कार्य-कारणभावभेदात् । न च तथापि घटान्योन्याभाववान् पटत्वादित्यत्रान्योन्याभावसाध्यकस्थले घटत्वादिरूपे साध्याभावे न साध्यप्रतियोगित्वं न वा समवायादिसम्बन्धस्तदवच्छेदकः तादात्म्यस्यैव तदवच्छेदकत्वादित्यव्याप्तिस्तदवस्थेति वाच्यम् । अत्यन्ताभावाभावस्य प्रतियोगिरूपत्वेन घटभेदस्य घटभेदात्यन्ताभावत्वावच्छिन्नाभावरूपतया घटभेदात्यन्ताभावरूपस्य घटभेदप्रतियोगितावच्छेदकौभूतघटत्वस्यापि समवायसम्बन्धेन घटभेदप्रतियोगित्वात् । न चान्यत्रात्यन्ताभावाभावस्य प्रतियोगिरूपत्वेऽपि घटादिभेदात्यन्ताभावाभावो न घटादिभेदस्वरूपः किन्तु तत्प्रतियोगितावच्छेदकौभूतघटत्वात्यन्ताभावस्वरूप एवेति सिद्धान्तइति वाच्यं । यथा हि घटत्वावच्छिन्नघटवत्ताग्रहे घटात्यन्ताभावाग्रहात् घटात्यन्ताभावाभावव्यवहाराच्च घटात्यन्ताभावाभावोघटस्वरूपः तथा घटभेदवत्ताग्रहे घटभेदात्यन्ताभावाग्रहात् घटभेदात्यन्ताभावाभावव्यवहाराच्च घटभेद एव तदत्यन्ताभावत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभाव इति तत्सिद्धान्तः<sup>(१)</sup> न युक्तिसहः । विनिगमकाभावेनापि घटत्वत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकात्यन्ताभाववद्घटभेदस्यापि घटभेदात्यन्ताभावाभावत्वसिद्धेरप्रत्यूहत्वाच्च । अत एव तादृ-

(१) घटान्योन्याभावात्यन्ताभावाभावस्य घटत्वात्यन्ताभावस्वरूपत्वरूपसिद्धान्त इत्यर्थः ।



असिद्धान्तोपाध्यायसम्मतः, अत एव चाभावविरहात्मत्वं वस्तुनः  
 प्रतियोगितेत्याचार्याः, अन्यथा घटभेदात्यन्ताभावप्रतियोगिनि  
 घटभेदे तल्लक्षणव्याप्यापत्तेः अन्योन्याभावप्रतियोगितावच्छेदक-  
 घटत्वात्यन्ताभावे तल्लक्षणस्यातिव्याप्यापत्तेश्च<sup>(१)</sup> । न चैवं घटत्वत्वा-  
 वच्छिन्नप्रतियोगिताकघटत्वात्यन्ताभावस्यापि घटभेदस्वरूपत्वापत्ति-  
 रिति वाच्यं । तदत्यन्ताभावत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावस्यैव  
 तत्स्वरूपत्वाभ्युपगमात् तद्वत्ताग्रहे तादृशतदत्यन्ताभावाभावस्यैव  
 व्यवहारात् । उपाध्यायैर्घटत्वत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकघटत्वात्यन्ता-  
 भावस्यापि घटभेदस्वरूपत्वाभ्युपगमाच्च । न चैवं साध्यसामान्यीय-  
 प्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्धेनैव साध्याभावाधिकरणत्वं विवक्ष्यतां  
 किं साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नसाध्याभाववृत्तित्वस्य प्रतियोगि-  
 ताविशेषणत्वेनेति वाच्यम् । कालिकसम्बन्धावच्छिन्नात्मत्वप्रकारक-  
 प्रमाविशेष्यत्वाभावस्य<sup>(२)</sup> विशेषणताविशेषेण साध्यत्वे आत्मत्वादिहेता-

(१) अन्योन्याभावप्रतियोगितावच्छेदके तल्लक्षणस्यातिव्याप्यापत्तेश्चेति  
 ख० ग० । अयमपि पाठः समीचीनः यतः घटत्वात्यन्ताभावस्य घटभेदा-  
 स्वरूपत्वे घटत्वं न घटभेदप्रतियोगित्वलक्षणत्वं तदभावस्य घटभेदास्वरूप-  
 त्वात्, घटत्वात्यन्ताभावस्य घटभेदस्वरूपत्वे तु घटत्वं घटभेदप्रतियोगित्व-  
 लक्षणत्वमेव तदत्यन्ताभावस्य घटभेदस्वरूपत्वादिति ।

(२) अथात्र साध्यसामान्यीयप्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्धसामान्येन सा-  
 ध्याभावाधिकरणत्वं, अथ वा प्रत्येकं साध्यसामान्यीयप्रतियोगितावच्छेदके  
 यो यः सम्बन्धस्तत्तत्सम्बन्धेन साध्याभावाधिकरणत्वं इत्याशङ्कादयी तत्र  
 द्वितीयाशङ्कायां प्रमाविशेष्यत्वाभावसाध्यकेऽव्याप्तिर्न सम्भवति जन्याना-

व्याप्यापत्तेः कालिकसम्बन्धावच्छिन्नसाध्याभावस्य विशेषणताविशेषेण सम्बन्धेन योऽभावस्तस्यापि साध्यरूपतया कालिकसम्बन्धवद्विशेषणताविशेषोऽपि साध्यीयप्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्धेन सम्बन्धेनात्मत्वप्रकारकप्रमाविशेष्यत्वरूपसाध्याभाववति आत्मनि हेतोरात्मत्वस्य वृत्तेः<sup>(१)</sup> । प्रतियोगितावच्छेदकवत् प्रतियोग्यपि अन्योन्याभावाभावः<sup>(२)</sup> तेन तादात्म्यसम्बन्धेन साध्यतायां साध्यतावच्छेदकसम्-

मेव तादृशकालिक-स्वरूपोभयसम्बन्धेन साध्याभावाधिकरणत्वात् उक्तस्थले तु तादृशोभयसम्बन्धेन साध्याभावाधिकरणत्वाप्रसिद्ध्या अव्याप्तिः सम्भवति इत्युभयाव्याप्तिदानार्थं स्वात्मत्वप्रकारकप्रमाविशेष्यत्वाभावसाध्यकानुसरणं ।

(१) अत्र साध्याभावः साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिताको बोध्यः, एतद्भावायैव साध्यपदमिति भावः । तेन पूर्वोक्तवृत्तित्वविशिष्टसाध्याभाववृत्तिपूर्वोक्तवृत्तित्वविशिष्टसाध्याभावाभावरूपसाध्यीयप्रतियोगितावच्छेदकीभूतस्वरूपसम्बन्धेन साध्याभाववति हेतोर्वृत्तित्वेऽपि पूर्वोक्तस्थले नाव्याप्तिः । न च कपिसंयोग्येवत्त्वादित्यत्राव्याप्तिवारणाय निरवच्छिन्नसाध्याभावाधिकरणत्वे निवेशयितव्ये कालिकसम्बन्धेन निरवच्छिन्नसाध्याभावाधिकरणत्वाप्रसिद्धौबोक्तविशेषणदानेऽपि उक्तस्थले अव्याप्तेरपरीहारेण तादृशस्थले अव्याप्तिवारणाय तत्रवेशोऽनुचित इति वाच्यं । अन्योन्याभावस्य कालिकसम्बन्धेन योऽभावः तस्य विशेषणताविशेषसम्बन्धेन साध्यतायां स्वात्मत्वादिहेताव्याप्यापत्तेः, अन्योन्याभावरूपसाध्याभावस्य कालिकसम्बन्धेन व्याप्यवृत्तितया निरवच्छिन्नसाध्याभावाधिकरणत्वप्रसिद्ध्या उक्तविशेषणदाने अत्राव्याप्तिपरीहारः सम्भवत्येवेति भावः ।

(२) अथैतत्कल्पे घटभिन्नं कपालत्वादित्यत्राव्याप्तिः तादृशसमवायसम्बन्धेन घटस्वरूपसाध्याभावाधिकरणे कपाले हेतोर्वृत्तेरिति चेत्, न,

न्भावच्छिन्नसाध्याभाववृत्तिसाध्नीयप्रतियोगित्वस्य नाप्रसिद्धिः । इत्य-  
 च्चात्यन्ताभावत्वनिरूपितत्वेनापि साध्यसामान्नीयप्रतियोगिता विशेष-  
 षणीया अन्यथा घटान्योन्याभाववान् घटत्वत्वादित्यादावव्याप्यापत्तेः  
 तादात्म्यसम्बन्धस्यापि साध्याभाववृत्तिसाध्नीयप्रतियोगितावच्छेदक-  
 त्वात्<sup>(१)</sup> । यद्वा साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नसाध्याभाववृत्तिसाध्य-  
 सामान्नीयप्रतियोगित्व-तदवच्छेदकत्वान्यतरावच्छेदकसम्बन्धेनैव सा-  
 ध्याभावाधिकरणत्वं विवचणीयं वृत्त्यन्तमन्यतरविशेषणं, एवञ्च  
 घटान्योन्याभाववान् घटत्वादित्यादौ साध्याभावस्य घटत्वादेः सा-  
 ध्यप्रतियोगित्वविरहेऽपि न क्षतिः तादृशान्यतरस्य प्रतियोगिताव-  
 च्छेदकत्वस्यैव तत्र सत्त्वात् । न च तथापि कपिसंयोगेतद्वृत्तत्वा-  
 दित्याद्यव्याप्यवृत्तिसाध्यकसद्भूतावव्याप्तिरिति वाच्यम् । निरुक्तसा-  
 ध्याभावत्वविशिष्टनिरूपिता या निरुक्तसम्बन्धसंसर्गकनिरवच्छिन्ना-  
 धिकरणता तदाश्रयावृत्तित्वस्य विवक्षितत्वात् । गुण-कर्मान्य-  
 त्वविशिष्टसत्त्वाभाववान् गुणत्वादित्यादौ सत्त्वात्मकसाध्याभावाधि-  
 करणत्वस्य गुणादिवृत्तित्वेऽपि साध्याभावत्वविशिष्टनिरूपिताधिकर-  
 णत्वस्य गुणाद्यवृत्तित्वान्नाव्याप्तिः । न चैवं कपिसंयोगाभाववान्

स्वावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नत्व-साश्रयनिरूपितत्वोभयसम्बन्धेन तादृशप्रति-  
 योगिताविशिष्टसाध्याभावाधिकरणत्वस्य विवक्षितत्वात् स्वपदं निरुक्त-  
 प्रतियोगितापरं । न च निरुक्तप्रतियोगितायां अत्यन्ताभावत्वनिरूपित-  
 त्वनिवेशो व्यर्थ इति वाच्यं । तद्विवक्षाया अत्रैव तात्पर्यात् ।

(१) तथाच तादात्म्येन घटत्वस्वरूपसाध्याभावाधिकरणे घटत्वे हेतो-  
 र्वृत्तित्वादव्याप्तिरिति भावः ।

सत्त्वात् इत्यादौ निरवच्छिन्नसाध्याभावाधिकरणत्वाप्रसिद्ध्याव्याप्तिरिति वाच्यम् । केवलान्वयिन्यभावादित्यनेन ग्रन्थकृतैवास्य दोषस्य वक्ष्यमाणत्वात् । न च तथापि संयोगिभिन्नं गुणत्वादित्यादौ निरवच्छिन्नसाध्याभावाधिकरणत्वाप्रसिद्ध्याव्याप्तिः अन्योन्याभावस्य व्याप्यवृत्तित्वनियमवादिनये तस्य केवलान्वयनन्तर्गतत्वादिति वाच्यम् । अन्योन्याभावस्य व्याप्यवृत्तितानियमवादिनये अन्योन्याभावान्तरात्यन्ताभावस्य प्रतियोगितावच्छेदकस्वरूपत्वेऽप्यव्याप्यवृत्तिमदन्योन्याभावाभावस्य व्याप्यवृत्तिस्वरूपस्यातिरिक्तस्याभ्युपगमात् तच्चाग्रे स्फुटौ भविष्यति ।

ननु तथापि समवायादिना गगनादिहेतुके इदं वक्ष्यमद्-गगनादित्यादावतिव्याप्तिः वक्ष्यभाववति हेतुतावच्छेदकसमवायादिसम्बन्धेन गगनादेरवृत्तेः । न च तल्लक्ष्यमेव हेतुतावच्छेदकसम्बन्धेन पक्षधर्तृत्वाभावाच्चासद्धेतुत्वव्यवहार इति वाच्यम् । तच्चापि व्याप्तिभ्रमेणैवानुमितेरनुभवसिद्धत्वात्, अन्यथा धूमवान् वक्षेरित्यादेरपि लक्ष्यत्वस्य सुवचत्वात् । एवं द्रव्यं गुण-कर्मान्यत्वविशिष्टसत्त्वादित्यादावव्याप्तिः विशिष्टसत्त्वस्य केवलसत्त्वानतिरेकितया द्रव्यत्वाभाववत्त्वादिगुणादौ तस्य वृत्तेः गुणे गुण-कर्मान्यत्वविशिष्टसत्तेति प्रतीतेः सर्व्वित्वात् । सत्तावान् द्रव्यत्वादित्यादावव्याप्तिश्च सत्ताभाववति सामान्यहेतुतावच्छेदकसमवायसम्बन्धेन वृत्तेरप्रसिद्धेरिति चेत् । न । हेतुतावच्छेदकावच्छिन्नहेतुधिकरणताप्रतियोगिक-हेतुतावच्छेदकसमवायावच्छिन्नाधेयतानिरूपितविशेषणताविशेषसम्बन्धेन निरुक्तसाध्यत्वविशिष्टनिरूपितनिरुक्तसम्बन्धसंसर्गकनिरवच्छिन्नाधिकरणता

त्तिलसामान्याभावस्य विवक्षितत्वात्, वृत्तित्वञ्च न हेतुतावच्छेदक-  
सम्बन्धेन विवक्षणीयं, अस्ति च सत्तावान् द्रव्यत्वादित्यादौ सत्ता-  
भावाधिकरणताश्रयवृत्तित्वस्य हेतुतावच्छेदकसमवायसम्बन्धावच्छि-  
न्नाधेयतानिरूपितविशेषणताविशेषसम्बन्धेन सामान्याभावो द्रव्यत्वादौ,  
समवायसम्बन्धावच्छिन्नाधेयतानिरूपितविशेषणताविशेषसम्बन्धावच्छि-  
न्नप्रतियोगिताकसत्ताभावाधिकरणताश्रयवृत्तित्वाभावस्य व्यधिकरण-  
सम्बन्धावच्छिन्नाभावतया संयोगसम्बन्धावच्छिन्नगुणाभावादेरिव केव-  
लान्वयित्वात्। द्रव्यं सत्त्वादित्यादौ च द्रव्यत्वाभावाधिकरणगुणादि-  
वृत्तित्वस्यैव समवायसम्बन्धावच्छिन्नाधेयतानिरूपितविशेषणतासम्बन्धेन  
सत्तायां सत्त्वान्नातिव्याप्तिः। द्रव्यं विशिष्टयत्त्वादित्यादावव्याप्तिवारणा-  
य प्रतियोगिकान्तमाधेयताविशेषणं। वस्तुतस्तु एतल्लक्षणकर्तृनये विशि-  
ष्टसत्त्वं विशिष्टनिरूपिताधारतासम्बन्धेनैव द्रव्यत्वव्याप्यं न तु समवाय-  
सम्बन्धेन, तथाच प्रतियोगिकान्तमाधेयताविशेषणमनुपादेयमेव, तदु-  
पादाने हेतुतावच्छेदकभेदेन कार्य-कारणभावभेदापत्तेः। हेतुता-  
वच्छेदकसम्बन्धेन सम्बन्धित्वे सतीत्यनेनापि विशेषणादङ्गिमान्  
गगनादित्यादौ नातिव्याप्तिः। ननु तथापि उभयत्वमुभयत्रैव पर्याप्तं  
न तु एकत्रेति सिद्धान्तादरे<sup>(१)</sup> घटत्वान् घटत्व-तदभाववदुभय-  
त्वादित्यादौ पर्याप्त्याख्यसम्बन्धेन हेतुत्वेऽतिव्याप्तिः घटत्वाभाववति  
हेतुतावच्छेदकपर्याप्त्याख्यसम्बन्धेन हेतोरवृत्तेः घटो घट-पटोभय-

(१) प्रत्येकमसतो धर्मस्य उभयत्रापि सत्ताया अयोगात् “उभयत्व-  
मुभयत्रैव पर्याप्तं न तु एकत्वं” इति सिद्धान्तस्य न सर्वजनसम्मतत्वं अत-  
उक्तं “इति सिद्धान्तादरे” इति ।

मितिवत् घटोघटत्व-तदभाववदुभयमित्यप्रतीतेरिति चेत् । न । तादृशसिद्धान्तादरे हेतुतावच्छेदकसम्बन्धेन साध्यसमानाधिकरणत्वे सतीत्यनेनैव विशेषणीयत्वादिति । अत एव निविशतां वा वृत्ति-मत्त्वं साध्यसमानाधिकरणत्वं वेति केवलान्वयिग्रन्थे दौघितिकृतः ।

केचित्तु निरुक्तसाध्याभावत्वविशिष्टनिरूपिता या विशेषणतासम्बन्धेन यथोक्तसम्बन्धेन वा निरवच्छिन्नाधिकरणात् तदाश्रयव्यक्त्यवर्तमानं हेतुतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नयद्गुणावच्छिन्नाधिकरणत्वसामान्यं तद्गुणवत्त्वं विवक्षितं । धूमवान् वङ्गेरित्यादौ पर्वतादिनिष्ठवज्ज्यधिकरणताव्यक्तेर्धूमाभावाधिकरणावृत्तित्वेऽपि अयोगोलकनिष्ठवज्ज्यधिकरणताव्यक्तेरतथात्वान्नातिव्याप्तिरित्याहुः ।

अन्ये तु हेतुतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नहेतुतावच्छेदकावच्छिन्नाधिकरणताश्रयवृत्तियनिरवच्छिन्नाधिकरणत्वं तदवृत्तिनिरुक्तसाध्याभावत्वविशिष्टनिरूपितयथोक्तसम्बन्धावच्छिन्नाधिकरणतात्वकत्वमिति विशेषण-विशेष्यभावव्यात्यासे तात्पर्यं, स्वपदं हेतुपरं, इत्यञ्च कपिसंयोगाभाववान् सत्त्वात् कपिसंचोगिभिन्नं गुणत्वादित्यादावपि नाव्याप्तिरित्याहुःरिति सङ्क्षेपः ।

लक्षणान्तरमाह, 'साध्यवद्भिन्नेति साध्यवद्भिन्नो यः साध्याभाववान् तदवृत्तित्वमित्यर्थः । कपिसंयोगी एतदृचत्वादित्याद्यव्याप्यवृत्तिसाध्यकाव्याप्तिवारणाय 'साध्यवद्भिन्नेति साध्याभाववतो विशेषणमिति प्राञ्चः । तदसत् 'साध्याभाववदित्यस्य व्यर्थत्वापत्तेः साध्यवद्भिन्नावृत्तित्वस्यैव सम्यक्त्वात्<sup>(१)</sup> ।

(१) साध्यवद्भिन्नावृत्तित्वमित्यस्यैव व्याप्तित्वादिति क० ।

नयास्तु साध्यवद्भिन्ने यः साध्याभावः साध्यवद्भिन्नसाध्याभावः तदवृत्तित्वमिति सप्तमीतत्पुरुषोत्तरं मतुप्प्रत्ययः तथाच साध्यवद्भिन्नवृत्तिर्यः साध्याभावस्तदवृत्तित्वमित्यर्थः । एवञ्च साध्यवद्भिन्नवृत्तीत्यनुक्तौ संयोगी द्रव्यत्वादित्यादावव्याप्तिः संयोगाभाववति द्रव्ये द्रव्यत्वस्य वृत्तेः, तदुपादाने च संयोगवद्भिन्नवृत्तिः संयोगाभावो गुणादिवृत्तिः संयोगाभाव एव अधिकरणभेदेनाभावभेदात् तदवृत्तित्वान्नाव्याप्तिः । न च तथापि साध्यवद्भिन्नावृत्तित्वमित्येवास्तु किं साध्याभाववदित्यनेनेति वाच्यम् । यथोक्तलक्षणे तस्याप्रवेशेन वैयर्थ्याभावात्<sup>(१)</sup> तस्यापि लक्षणान्तरत्वात् । न च तथापि साध्यवद्भिन्नवृत्तिर्यस्तदवृत्तित्वमेवास्तु किं साध्याभावपदेनेति वाच्यं । तादृशद्रव्यत्वादिमद्वृत्तित्वादसम्भवापत्तेः । साध्याभावेत्यत्र साध्यपदमप्यत एव द्रव्यत्वादेरपि द्रव्यत्वाभावाभावत्वात् भावरूपाभावस्य चाधिकरणभेदेन भेदाभावात् ।

ननु तथापि घटाकाशसंयोग-घटत्वान्यतराभाववान् गगनत्वादित्यत्र घटानधिकरणदेशावच्छेदेन घटाकाशसंयोगाभावस्य गगने सत्त्वात् सद्भूतुतयाव्याप्तिः साध्यवद्भिन्ने घटे वर्तमानस्य साध्याभावस्य घटाकाशसंयोगरूपस्य गगनेऽपि सत्त्वात् तत्र च हेतोर्दत्तेः । न च साध्यवद्भिन्नवृत्तित्वविशिष्टसाध्यभाववत्त्वं विवक्षितमिति वाच्यम् । साध्याभावपदवैयर्थ्यापत्तेः । साध्यवद्भिन्नवृत्तित्वविशिष्टवद्वृत्तित्वस्यैव सम्य-

(१) स्वसमानाधिकरणव्याप्यतावच्छेदकधर्मान्तरघटितत्वस्यैव व्यर्थविशेषणघटितत्वरूपत्वात् साध्यवद्भिन्नवृत्तिसाध्याभाववदवृत्तित्वत्वस्य साध्यवद्भिन्नावृत्तित्वत्वाघटितत्वेन नोक्तलक्षणं व्यर्थविशेषणघटितमिति भावः ।

क्त्वादिति चेत् । न । अभावाभावस्यातिरिक्तत्वमतेनैतल्लक्षण-  
 करणात् तथाच अधिकरणभेदेनाभावभेदात् साध्यवद्भिन्ने घटे  
 वर्तमानस्य साध्याभावस्य प्रतियोगिव्यधिकरणस्य प्रतियोगिमति  
 गगनेऽसत्त्वादव्याप्तेरभावात् । न चैवं साध्याभावेत्यत्र साध्यपदवैयर्थ्यं  
 अभावाभावस्यातिरिक्तत्वेन द्रव्यत्वादेरभावत्वाभावात् साध्यवद्भिन्न-  
 वृत्तिघटाभावादेस्तु हेतुमत्यसत्त्वात् अधिकरणभेदेनाभावभेदादिति  
 वाच्यं । यत्र प्रतियोगिसमानाधिकरणत्व-प्रतियोगिव्यधिकरणत्व-  
 लक्षणविरुद्धधर्माध्यासस्तत्रैवाधिकरणभेदेन अभावभेदाभ्युपगमो न  
 तु सर्वत्र, तथाच साध्यवद्भिन्नवृत्तिघटाभावादेर्हेतुमत्यपि सत्त्वात्  
 असम्भववारणाय साध्यपदोपादानात् ।

यद्वा घटाकाशसंयोग-घटत्वान्यतराभावाभावोऽतिरिक्तः घटा-  
 काशसंयोग-घटत्वादीनामननुगततया तथात्वस्य वक्तुमशक्यत्वात् ।  
 घटत्व-द्रव्यत्वाद्यभावाभावस्तु नातिरिक्तः घटत्व-द्रव्यत्वादीनामप्य-  
 नुगतत्वात् तथाच द्रव्यत्वादिकमादायासम्भववारणायैव साध्यपदमिति  
 प्राञ्जरित्यास्तां<sup>(१)</sup> विस्तरः ।

(१) ननु घटत्व-घटाकाशतत्संयोगान्यतराभाववान् गगनत्वात् इत्यत्रा-  
 व्याप्तिर्दुर्व्वारैव घटत्व-घटाकाशतत्संयोगस्यानुगततया तत्र तादृशान्यतरा-  
 भावाभावत्वकल्पने बाधकाभावात् क्लृप्तानां तथात्वकल्पनसम्भवे अतिरिक्त-  
 तथात्वकल्पनानौचित्यात् इति चेत् । न । यद्वेति वाकारस्यानास्थासूचक-  
 त्वात् । वस्तुतस्तु घटत्व-घटाकाशतत्संयोगान्यतराभावाभावस्य घटे व्या-  
 प्यवृत्तित्वेन निरवच्छिन्नवृत्तिकतया घटे किञ्चिदवच्छेदेन तादृशान्यतरा-  
 भावो नास्तीति प्रतीतेरप्रामाणिकत्वं परन्तु तादृशान्यतराभावाभावस्य



‘साध्यवत्प्रतियोगिकान्योन्याभावेति हेतौ साध्यवत्प्रतियोगिका-  
न्योन्याभावाधिकरणवृत्तित्वाभाव इत्यर्थः । अन्योन्याभावश्च प्रतियो-  
ग्यवृत्तित्वेन विशेषणीयः, तेन साध्यवतोव्यासज्यवृत्तिधर्मावच्छिन्न-  
प्रतियोगिकान्योन्याभाववति हेतोर्वृत्तावपि नासम्भवः<sup>(१)</sup> । नन्वेवमपि  
नानाधिकरणकसाध्यके वङ्गिमान् धूमादित्यादौ साध्याधिकरणी-  
भूततत्तद्भक्तित्वावच्छिन्नप्रतियोगिकान्योन्याभाववति हेतोर्वृत्तेरव्या-  
प्तिदुर्वारा, प्रतियोग्यवृत्तित्वमपहाय साध्यवत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगिता-  
कान्योन्याभावविवचने तु पञ्चमेन सह पौनरुक्त्यमिति चेत् । न ।  
वक्ष्यमाणकेवलान्वयव्याप्तिवदस्याप्यत्र दोषत्वात् । न च तथापि

तादृशान्यतरस्वरूपत्वे तादृशान्यतरान्तर्गतघटाकाशतत्संयोगस्य अवच्छिन्न-  
वृत्तिकतया तत्प्रतीतेः प्रामाणिकत्वापत्तेः । अतिरिक्तत्वपक्षे घटे तादृ-  
शाभावस्य व्याप्यवृत्तित्वेन निरवच्छिन्नवृत्तिकतया तत्प्रतीतेर्न प्रामाणि-  
कत्वम् । घटाकाशसंयोगाभावत्वेन साध्यत्वे तादृशसाध्यस्य केवलान्वयि-  
तया भेदस्य व्याप्यवृत्तितया तद्वद्भिन्नत्वस्याप्रसिद्धत्वेनाव्याप्तेरशक्यपरोहार्-  
त्वादतोऽन्यतराभावः साधीकृत इति ध्येयम् ।

(१) अथात्र स्वप्रतियोग्यवृत्तित्वविशेषणदाने अन्योन्यपदं व्यर्थं साध्य-  
वत्प्रतियोगिकाद्यन्ताभावस्य स्वप्रतियोगिवृत्तित्वात् इति चेत् । न । धर्म्मि-  
भेदस्य धर्म्माद्यन्ताभावानतिरिक्तत्वेन स्वप्रतियोग्यवृत्तिसाध्यवत्प्रतियोगि-  
काभावाप्रसिद्धेः अन्योन्यपदनिवेशे च अन्योन्याभावत्वनिरूपकप्रतियोगि-  
ताश्रयावृत्तित्वलाभात् नाभावाप्रसिद्धिरिति । वस्तुतस्तु अन्योन्याभावत्वस्य  
अखण्डोपाधितया अन्योन्याभावत्वनिवेशे अभावत्वापेक्षया गौरवानवका-  
शादिति ध्येयम् ।

साध्यवत्प्रतियोगिकान्योन्याभावमात्रस्यैव एतल्लक्षणघटकत्वे वक्ष्यमाण-  
केवलान्वयव्याप्तिरत्रासङ्गता केवलान्वयिसाध्यकेऽपि साध्याधिकरणी-  
भूततत्तद्भूतित्वावच्छिन्नान्योन्याभावस्य प्रसिद्धत्वादिति वाच्यं ।  
अत्रापि तादृशान्योन्याभावस्य प्रसिद्धत्वेऽपि तदिति हेतोर्वृत्तेरेवा-  
व्याप्तेर्दुर्वारत्वात् ।

यदा साध्यवत्प्रतियोगिकान्योन्याभावपदेन साध्यवत्त्वावच्छिन्न-  
प्रतियोगिताकान्योन्याभाव एव विवक्षितः । न चैवं पञ्चमाभेदः, तत्र  
साध्यवत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगिकान्योन्याभाववत्त्वेन प्रवेशः अत्र तु तादृ-  
शान्योन्याभावाधिकरणत्वेनेत्यधिकरणत्वप्रवेशाप्रवेशाभ्यामेव भेदात् ।  
अखण्डाभावघटकतया च नाधिकरणत्वांशस्य वैयर्थ्यमिति न कोऽपि  
दोष इति दिक् ।

‘सकलेति’ साकल्यं साध्याभाववतोविशेषणं तथाच यावन्ति  
साध्याभावाधिकरणानि तन्निष्ठाभावप्रतियोगित्वं हेतौ व्याप्तिरि-  
त्यर्थः । धूमाद्यभाववज्जलद्भृदादिनिष्ठाभावप्रतियोगित्वाद्ब्रह्मादावति-  
व्याप्तिरिति यावदिति साध्याभाववतोविशेषणं, साध्याभावविशेषणत्वे  
तत्तद्भृदावृत्तित्वादिरूपेण यो वज्ज्याद्यभावस्तस्यापि सकलमध्ये  
प्रवेशात् तावदधिकरणप्रसिद्ध्या असम्भवापत्तेः<sup>(१)</sup> । न च द्रव्यं

(१) सकलस्य साध्याभावविशेषणत्वे तत्तद्भृदावृत्तित्वाद्यवच्छिन्नाभाव-  
कूटाधिकरणाप्रसिद्ध्या मधुरानाथेनासम्भवो दत्तः । जगदीशेन तत्राव्या-  
प्तिर्दत्ता अत्रायमाशयः स्वप्रतियोगिमत्ताग्रहविरोधिताघटकसम्बन्धेन सा-  
ध्याभाववत्त्वनिवेशो मधुरानाथाभिप्रेतः तथाच तत्तद्भृदावृत्तित्वाद्यव-

सत्त्वादित्यादौ द्रव्यत्वाभाववति गुणादौ सत्त्वादेर्विग्नित्वाभावादि-  
 सत्त्वादित्याप्तिरिति वाच्यं । तादृग्भावाप्रतियोगितावच्छेदकहेतु-  
 तावच्छेदकवत्त्वस्येह विवक्षितत्वात् । प्रतियोगिता च हेतुतावच्छेदक-  
 सम्बन्धावच्छिन्ना ग्राह्या तेन द्रव्यत्वाभाववति गुणादौ सत्त्वादेः  
 संयोगादिसम्बन्धावच्छिन्नाभावसत्त्वेऽपि नातित्याप्तिः । साध्याभावश्च  
 साध्यतावच्छेदकावच्छिन्न-साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगि-  
 ताको बोध्यः, अन्यथा पर्वतादावपि वज्रादेर्विग्नित्वाभावादिसत्त्वेन  
 समवायादिसम्बन्धावच्छिन्नवज्रादिसामान्याभावसत्त्वेन च यावदन्त-  
 र्गततया तन्निष्ठाभावप्रतियोगित्वाभावात् धूमस्यासम्भवः स्यात् । न  
 च कपिसंयोगी एतदृक्षत्वात् इत्यादौ एतदृक्षस्यापि तादृग्साध्या-  
 भाववत्त्वेन यावदन्तर्गततया तन्निष्ठाभावप्रतियोगित्वाभावादेतदृक्षत्व-  
 स्याव्याप्तिरिति वाच्यम् । किञ्चिदनवच्छिन्नायाः साध्याभावाधि-

च्छिन्नाभावस्य सप्रतियोगिमत्तायहविरोधिताघटकसम्बन्धेन साध्याभा-  
 वाधिकरणाप्रसिद्धत्वादसम्भवसङ्गतिः, साध्यवत्तायहविरोधिताघटकसम्ब-  
 न्धेन साध्याभाववत्त्वनिवेशो जगदीशाभिप्रेतः तथाच कालिकसम्बन्धा-  
 वच्छिन्नप्रतियोगिताकघटत्वाभावसाध्यक-आत्मत्वादिहेतौ लक्षणसमन्वयः  
 साध्यवत्तायहविरोधिताघटककालिकसम्बन्धेन साध्याभावकूटस्य काले  
 प्रसिद्धत्वात् जगदीशेनाव्याप्तिर्दत्ता । ननु गगनत्वाभावान् पटत्वादित्यत्र  
 लक्षणगमनात् कथमसम्भवः गगनत्वाभावाभावकूटाधिकरणत्वस्य गगने  
 प्रसिद्धत्वादिति चेत् । न । घटभिन्नत्वप्रकारकप्रमाविशेष्य-गगनत्वोभयत्वा-  
 वच्छिन्नाभावमादाय तद्दोषतादवस्थ्यात् तदभावघटितकूटाधिकरणाप्रसिद्धे-  
 रिति ।

करणताया इह विवक्षितत्वात्, इत्यञ्च किञ्चिदनवच्छिन्नायाः कपिसंयोगाभावाधिकरणताया गुणादावेव सत्त्वात्तत्र च हेतोरप्यभाव-सत्त्वान्नाव्याप्तिः । न च कपिसंयोगाभाववान् सत्त्वादित्यादौ साध्या-भावस्य कपिसंयोगादेर्निरवच्छिन्नाधिकरणत्वाप्रसिद्ध्याव्याप्तिरिति वाच्यं । केवलान्वयिन्यभावादित्यनेन ग्रन्थद्वैतेन एतद्दोषस्य वक्ष्यमाण-त्वात् । न च पृथिवी कपिसंयोगादित्यादौ पृथिवीत्वाभाववति जलादौ यावत्येव कपिसंयोगाभावसत्त्वादितिव्याप्तिरिति वाच्यं । तच्चिष्टपदेन तत्र निरवच्छिन्नवृत्तिमत्त्वस्य विवक्षितत्वात्, इत्यञ्च पृथिवीत्वाभावाधिकरणे जलादौ यावदन्तर्गते निरवच्छिन्नवृत्ति-मानभावो न कपिसंयोगाभावः किन्तु घटत्वाद्यभाव एव तत्प्रतियो-गित्वस्य हेतावसत्त्वान्नाव्याप्तिः । न चैवमन्योन्याभावस्य व्याप्यवृत्ति-तानियमनये द्रव्यत्वाभाववान् संयोगवद्भिन्नत्वादित्यादेरपि सद्भूततया तत्राव्याप्तिः संयोगवद्भिन्नत्वाभावस्य संयोगरूपस्य निरवच्छिन्नवृत्तेर-प्रसिद्धेरिति वाच्यं । अन्योन्याभावस्य व्याप्यवृत्तितानियमनयेऽन्योन्या-भावस्याभावो न प्रतियोगितावच्छेदकस्वरूपः किन्वतिरिक्तो व्याप्यवृत्तिरन्यथा मूलावच्छेदेन कपिसंयोगिभेदाभावभानानुपपत्ते-रिति संयोगवद्भिन्नत्वाभावस्यापि निरवच्छिन्नवृत्तिमत्त्वात् । वस्तुतस्तु सकलपदसत्राग्रेषपरं न त्वनेकपरं एतद्घटत्वाभाववान् पटत्वादित्याद्ये-कव्यक्तिविपक्षके साध्याभावाधिकरणस्य यावत्त्वाप्रसिद्ध्याव्याप्यापत्तेः, तथाच किञ्चिदनवच्छिन्नाया निरुक्तसाध्याभावाधिकरणताया व्याप-कौभूतो योऽभावः हेतुतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्न-तत्प्रतियोगिताव-च्छेदकहेतुतावच्छेदकवत्त्वं लक्षणार्थः । न च सत्त्वादिसामान्याभा-

वस्यापि प्रमेयत्वादिना निरुक्तसाध्याभावाधिकरणताव्यापकत्वात्  
 द्रव्यं सत्त्वादित्यादावतिव्याप्तिः । तद्वन्निष्ठान्योन्याभावप्रतियोगिता-  
 नवच्छेदकत्वं व्यापकत्वमित्युक्तौ तु निर्धूमत्ववान् निर्व्वह्नितादि-  
 त्यादावव्याप्तिः निर्व्वह्निताभावानां वह्नियत्कीनां सर्वासामेव चाल-  
 नीन्यायेन निर्धूमत्वाभावाधिकरणतावन्निष्ठान्योन्याभावप्रतियोगिता-  
 वच्छेदकत्वादिति वाच्यं । तादृशाभावाधिकरणताव्यापकतावच्छेदकं  
 हेतुतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्न-यद्गुर्त्सावच्छिन्नाभावत्वं तद्गुर्त्सवत्त्वस्य  
 विवक्षितत्वात् व्यापकतावच्छेदकत्वन्तु तद्वन्निष्ठात्यन्ताभावप्रतियो-  
 गितानवच्छेदकत्वं न तु तद्वन्निष्ठप्रतियोगिव्यधिकरणाभावप्रतियोगि-  
 तानवच्छेदकत्वं तद्वति निरवच्छिन्नवृत्तित्मान् योऽभावस्तत्रप्रतियोगि-  
 तानवच्छेदकत्वं वा, प्रकृते व्यापकतायां प्रतियोगिवैयधिकरणस्य  
 निरवच्छिन्नत्वस्य वा प्रवेगे प्रयोजनविरहात् तेन पृथिवी कपि-  
 संयोगादित्यादौ नातिव्याप्तिः कपिसंयोगाभावत्वस्य निरुक्तव्यापक-  
 तावच्छेदकत्वविरहादित्येव परमार्थः ।

‘साध्यवदन्येति अत्रापि प्रथमलक्षणोक्तरीत्या हेतौ साध्यव-  
 दन्यवृत्तित्वाभाव इत्यर्थः । तादृशवृत्तित्वाभावस्य तादृशवृत्तित्व-  
 सामान्याभावो बोध्यः तेन धूमवान् वह्नेरित्यादौ धूमवदन्यजल-  
 ह्लादिवृत्तित्वाभावस्य धूमवदन्यवृत्तित्व-जलत्वोभयाभावस्य च हेतौ  
 सत्त्वेऽपि नातिव्याप्तिः । साध्यवदन्यत्वञ्च अन्योन्याभावत्वनिरूपित-  
 साध्यवत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावत्वं तेन वह्निमान् धूमादि-  
 त्यादौ तत्तद्वह्निमदन्यस्मिन्धूमादेर्वृत्तावपि नातिव्याप्तिः, न वा वह्नि-  
 मत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगिकात्यन्ताभावस्य स्वावच्छिन्नभिन्नभेदरूपस्या-

धिकरणे<sup>(१)</sup> पर्वतादौ धूमस्य वृत्तावष्यव्याप्तिः<sup>(२)</sup> तस्य साध्यवत्त्वावच्छि-  
न्नप्रतियोगिताया अत्यन्ताभावत्वनिरूपितत्वेन अन्योन्याभावत्वनिरू-  
पितत्वविरहात् । अन्योन्याभावत्वनिरूपितत्वञ्च तादात्म्यसम्बन्धाव-  
च्छिन्नत्वमेव, साध्यवत्त्वञ्च साध्यतावच्छेदकसम्बन्धेन बोध्यं तेन वङ्गिमान्  
धूमादित्यादौ वङ्गिमत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकस्य समवायेन वङ्गि-  
मतोऽन्योन्याभावस्याधिकरणे पर्वतादौ धूमादेर्दृत्तावपि नाव्याप्तिः<sup>(३)</sup> ।  
सर्वमन्यत् प्रथमलक्षणोक्तदिग्भावसेयं<sup>(४)</sup> । यथा चास्य न तृतीय-  
लक्षणाभेदस्तथोक्तं तत्रैवेति समासः । सर्वाण्येव लक्षणानि केवलान्व-  
यव्याप्या दूषयति, 'केवलान्वयिन्यभावादिति पञ्चानामेव लक्षणानां  
इदं वाच्यं ज्ञेयत्वादित्यादित्याप्यवृत्तिकेवलान्वयिसाध्यके कपिसंयो-

(१) स्वावच्छिन्नभिन्नभेदस्य स्वस्वरूपानतिरिक्तत्वमिति भावः ।

(२) नन्वत्र सर्वत्रासम्भवसम्भवे कथमव्याप्तिदानं सङ्गतमिति चेत् ।  
न । शब्दवान् गगनत्वादित्यादौ लक्षणगमनसम्भवात् तत्र साध्यवदन्यन्ता-  
भावस्य केवलान्वयितया तदवच्छिन्नभिन्नाप्रसिद्धेरिति ।

(३) अत्र तादात्म्यसम्बन्धेन गगनसाध्यक-तद्दृक्त्वहेतौ लक्षणगमनात्ना-  
सम्भवः ।

(४) प्रथमलक्षणरीत्यावसेयमिति ख० । प्रथमलक्षणे यथा साध्या-  
भावाधिकरणत्वं सम्बन्धविशेषेण विवक्षितं अत्रापि तथा साध्यवद्भेदाधि-  
करणत्वं सम्बन्धविशेषेण वक्ष्यं, प्रथमलक्षणे यथा हेतुतावच्छेदकावच्छिन्ना-  
धिकरणताप्रतियोगिक-हेतुतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नाधेयताप्रतियोगिकस्व-  
रूपसम्बन्धेन साध्याभाववद्वृत्तित्वाभावो विवक्षितः तथा अत्रापि साध्य-  
वदन्यवृत्तित्वाभावो विवक्षणीयः अन्यथा प्रागुक्तदोषाणाम् अप्राप्यवकाशः  
स्यात् इति ।

इति श्रीमद्भक्तेशोपाध्यायविरचिते तत्त्वचिन्तामणौ  
अनुमानखण्डे व्याप्तिवादे व्याप्तिपञ्चकं ।

गाभावान् सत्त्वादित्याद्यव्याप्यवृत्तिकेवलान्वयिसाध्यकेऽपि चाभावा-  
दित्यर्थः, साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्न-साध्यतावच्छेदकावच्छिन्न-  
प्रतियोगिताकसाध्याभावस्य साध्यतावच्छेदकसम्बन्धेन साध्यवत्त्वाव-  
च्छिन्नप्रतियोगिताकान्योन्याभावस्य चाप्रसिद्धत्वात् कपिसंयोगा-  
भाववान् सत्त्वादित्यादौ निरवच्छिन्नसाध्याभावाधिकरणत्वस्याप्रसिद्ध-  
त्वाच्च इति भावः । तृतीयलक्षणस्य केवलान्वयिसाध्यकासत्त्वञ्च  
तद्ग्राह्यानावसर एव प्रपञ्चितम् । एतच्चोपलक्षणं द्वितीये कपि-  
संयोगी एतद्दृष्टत्वादित्यादावव्याप्तिः अधिकरणभेदेनाभावभेदे मा-  
नाभावेन कपिसंयोगवद्भिन्नवृत्तिकपिसंयोगाभावोऽपि द्रव्यवृत्तिः  
कपिसंयोगाभाव एव तद्दृष्टित्वादेतद्दृष्टत्वस्य । न च साध्यवद्भिन्न-  
वृत्तित्वविशिष्टसाध्याभाववद्दृष्टित्वं वक्तव्यं एवञ्च वृत्तस्य विशिष्टाधि-  
करणत्वाभावान्नाव्याप्तिरिति वाच्यं । साध्याभावपदवैयर्थ्यापत्तेः ।  
साध्यवद्भिन्नवृत्तित्वविशिष्टवद्दृष्टित्वस्यैव सम्यक्त्वात् । सद्धेतौ हेत्वधि-  
करणे विशिष्टाधिकरणत्वाभावादेवासम्भवाभावात् । तृतीये साध्य-  
वत्प्रतियोगिताकान्योन्याभावमात्रस्य घटकत्वे चालनौन्यायेनान्योन्या-  
भावमादाय नानाधिकरणकसाध्यके वन्निमान् धूमादित्यादाव-  
व्याप्तिश्चेत्यपि बोध्यम् ।

इति श्रीमथुरानाथतर्कवागीशविरचिते तत्त्वचिन्तामणिरहस्ये  
अनुमानखण्डे व्याप्तिवादरहस्ये व्याप्तिपञ्चकरहस्यं ।

अथ सिंह-व्याघ्रोक्तव्याप्तिलक्षणरहस्यम् ।



नापि साध्यासामानाधिकरण्यानधिकरणत्वं साध्य-  
वैयधिकरण्यानधिकरणत्वं वा, तदुभयमपि साध्यान-

अथ सिंह-व्याघ्रोक्तव्याप्तिलक्षणरहस्यं ।

‘नापीति, अत्र ‘साध्यासामानाधिकरणं’ न साध्याधिकरणवृ-  
त्तित्वाभावः, द्रव्यं सत्त्वादित्यादावतिव्याप्त्यापत्तेः द्रव्यवाधिकरण-  
वृत्तित्वाभावानधिकरणत्वात् सत्तायाः । नापि साध्यवद्विषयवृत्तित्वञ्च  
द्वितीयेन पौनरुक्त्यापत्तेः । किन्तु साध्याधिकरणत्वाभाववद्वृत्तित्वं  
तदनधिकरणत्वं तद्विषयत्वं अधिकरणत्वप्रवेशे प्रयोजनविरहात्,  
तथाच साध्याधिकरणत्वाभाववद्वृत्तिभिन्नत्वं हेतावयविचारित्वमिति  
फलितं, अव्याप्यवृत्तिसाध्यकसद्हेताव्याप्तिवारणायाधिकरणत्वप्रवेशः,  
अव्याप्यवृत्तेरधिकरणता तु नाव्याप्यवृत्तिः<sup>(१)</sup>, साध्याधिकरणत्वञ्च  
साध्यतावच्छेदकावच्छिन्न-साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नं ग्राह्यं  
अन्यथा गुणकसाम्यत्वविशिष्टसत्तावान् जातेरित्यादौ सत्ताया एव  
साध्यत्वेन साध्याधिकरणत्वाभाववत्सामान्यादिवृत्तिभिन्नत्वाज्जाते-  
रित्यतिव्याप्तिः स्यात् । स्याच्च समवायेन वद्द्वयादौ साध्ये संयोगेन

(१) व्याप्यवृत्तिरिति ख० ।



धिकारत्वाधिकारत्वं तच्च तच्च यत्किञ्चित्साध्यानधि-  
कारणाधिकारणे धूमे चासिद्धम् ।

धूमादिहेतावतियाप्तिः<sup>(१)</sup> वज्रधिकरणत्वाभाववज्जलद्रुदाद्येव तद-  
वृत्तित्वात् धूमादेः । इत्यञ्च साध्यतावच्छेदकसमवायसम्बन्धावच्छिन्न-  
वज्रधिकरणत्वाभाववत् पर्वताद्यपि धूमस्य तद्वृत्तित्वान्नातियाप्तिः ।  
वृत्तिश्च हेतुतावच्छेदकसम्बन्धेन बोध्या तेन तादृशवज्रधिकरणत्वा-  
भाववति धूमावयवे समवायेन धूमस्य वृत्तावपि न चतिः । न चैवं  
सत्तावान् द्रव्यत्वादित्यादावत्याप्तिः सत्ताधिकरणत्वाभाववति सामा-  
न्यादौ हेतुतावच्छेदकसमवायसम्बन्धेन वृत्तेरप्रसिद्धेरिति वाच्यम् ।  
तादृशसाध्याधिकरणत्वाभावव्यापकान्योन्याभावप्रतियोगितावच्छेदक-  
त्वमिति विवक्षितत्वात्, साध्याधिकरणत्वाभावसमानाधिकरणेत्युक्तौ  
धूमवान् वज्जेरित्यादौ धूमाधिकरणत्वाभाववति जलद्रुदादौ वज्रि-  
वदन्योन्याभावसत्त्वादितियाप्तिरिति व्यापकत्वानुधावनं । अन्योन्या-  
भावप्रतियोगितावच्छेदकत्वं हेतुतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नं हेतुताव-  
च्छेदकावच्छिन्नञ्च ग्राह्यं अन्यथा वज्रिमान् धूमादित्यादौ वज्रधि-  
करणत्वाभाववति धूमावयवे धूमवदन्योन्याभावासत्त्वादित्याप्तिः स्यात्,  
स्याच्च द्रव्यं जातेरित्यादौ घटत्व-पटत्वादितत्तज्जातिमतोऽन्योन्या-  
भावस्य द्रव्यत्वाधिकरणत्वाभावव्यापकत्वेनातियाप्तिः । अत्राप्यवृत्ति-

(१) वज्रिमान् धूमादित्यादौ च समवायेन वज्रेः साध्यत्वे संयोगेन धूमा-  
दिहेतावतियाप्तिरिति ख० ।

मतोऽन्योन्याभावस्तु नाव्याप्यवृत्तिरिति पृथिवी संयोगादित्यादाव-  
व्याप्यवृत्तिहेतुके व्यभिचारिणि नातिव्याप्तिरिति संक्षेपः ।

‘साध्यवैयधिकरणेति, ‘साध्यवैयधिकरणं’ साध्यवद्विन्नवृत्तित्वं,  
साध्यवद्वृत्तित्वपरत्वे द्रव्यं सत्त्वादित्यादावतिव्याप्तिः, अव्याप्य-  
वृत्तिसतोऽन्योन्याभावस्तु नाव्याप्यवृत्तिरित्यव्याप्यवृत्तिसाध्यकसङ्घे-  
तो नाव्याप्तिः, अनधिकरणत्वमित्यत्राधिकरणत्वांगस्य प्रवेशान्न साध्य-  
वदन्यावृत्तित्वमित्यनेन यथाश्रुतस्य पौनरुक्त्यं, अखण्डाभावघटकतया  
चाधिकरणत्वांगस्य न वैयर्थ्यम् । साध्यवद्विन्नत्वञ्च साध्यतावच्छे-  
दकसम्बन्धावच्छिन्न-साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगितावच्छेदकता-  
कभेदवत्त्वं बोध्यं तेन वद्विमान् धूमादित्यादौ धूमस्य समवायेन  
वद्विमतोभिन्ने यत्किञ्चित्साध्यवद्विन्ने च पर्वतादौ वृत्तित्वेऽपि  
न चतिः तादृशसाध्यवद्विन्नत्वव्यापकान्योन्याभावप्रतियोगितावच्छेद-  
कत्वमिति तु समुदायार्थनिष्कर्षः, अन्यथा पूर्ववत् साध्यवद्विन्न-  
वृत्तित्वमित्यत्र वृत्तेर्हेतुतावच्छेदकसम्बन्धेनैव वाच्यतया जातिमान्  
द्रव्यत्वादित्यादावव्याप्यापत्तेः<sup>(१)</sup> शेषं पूर्ववत् । लक्षणद्वयमेकदैव  
दूषयति, ‘तदुभयमपीति, ‘साध्यानधिकरणानधिकरणत्वं’ साध्या-  
नधिकरणानधिकरणत्वनियतं साध्यानधिकरणावृत्तित्वव्याप्यमिति  
यावत्, ‘तच्च’ व्यापकौभूतं साध्यानधिकरणावृत्तित्वञ्च, ‘तच्च’  
केवलान्वयिसाध्यके, ‘असिद्धमित्यन्वयः साध्यानधिकरणत्वस्य साध्या-  
धिकरणत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदवत्त्वस्य तत्राप्रसिद्धेः, ‘यत्-  
किञ्चिदिति यदि साध्यानधिकरणत्वं न तत्सामान्यभेदः किन्तु

(१) सत्त्वावान् द्रव्यत्वादित्यादावप्रसिद्ध्यापत्तेरिति ख० ।

इति श्रीमद्भक्तेशोपाध्यायविरचिते तत्त्वचिन्तामणौ  
अनुमानखण्डे सिंह-व्याघ्रोक्तव्याप्तिलक्षणम् ।

साध्याधिकरणप्रतियोगिकभेदमात्रं तदा वल्लिमान् धूमादित्यत्र  
यत्किञ्चिद्वद्भनधिकरणे पर्वतादौ वर्तमाने धूमेऽप्यसिद्धमित्यर्थः ।  
अपर्ययकचकारात् केवलान्वयिसमुच्चयः, तथाच व्यापकाभावाद्-  
व्याप्तीभूतं तदुभयलक्षणमपि तदुभयत्रासिद्धमिति भावः । 'साध्या-  
नधिकरणानधिकरणत्वमिति यथाश्रुतन्तु न सङ्गच्छते यथोक्तलक्षण-  
द्वयस्य तत्त्वरूपत्वाभावादिति ध्येयं<sup>(१)</sup> ।

इति श्रीमथुरानाथतर्कवागीश्वरविरचिते तत्त्वचिन्तामणिरहस्ये  
अनुमानखण्डे व्याप्तिवादे सिंह-व्याघ्रोक्तव्याप्तिलक्षणरहस्यम् ।

(१) भट्टाचार्य्यानुयायिनस्तु 'तदुभयमपि' तदुभयलक्षणवाक्यमपि, 'सा-  
ध्यानधिकरणानधिकरणत्वं' साध्यानधिकरणानधिकरणत्वबोधजनकं, सा-  
ध्याधिकरणत्वसामान्याभावदृष्टित्वाभाव-साध्यवत्त्वसामान्यभिन्नदृष्टित्वाभावा-  
न्यतरबोधजनकमिति यावत्, 'तच्च' तादृशान्यतराभाववत्त्वञ्च, 'तत्र' केव-  
लान्वयिसाध्यके, 'असिद्धमित्यन्वयः, साध्याधिकरणत्वसामान्याभावाप्रसि-  
द्धत्वादिति भावः । ननु तदुभयवाक्यं न यद्योक्तान्यतराभावबोधजनकं,  
अपि तु साध्याधिकरणत्वप्रतियोगिकाभाववदृष्टित्वसामान्याभाव-साध्य-  
वत्प्रतियोगिकभेदवदृष्टित्वसामान्याभावान्यतरबोधजनकमेव साध्याधिक-  
रणत्वप्रतियोगिकाभाव—साध्यवत्प्रतियोगिकभेदौ च केवलान्वयिनि नाप्र-  
सिद्धावित्यत आह, 'यत्किञ्चिदिति, शेषं पूर्ववदिति प्राहुः । इति खचि-  
ह्नितपुस्तके अधिकः पाठः ।

## अथ व्यधिकरणधर्मावच्छिन्नाभावः ।



अथेदं वाच्यं ज्ञेयत्वादित्यत्र समवायितया वाच्यत्वा-  
भावेऽघट एव प्रसिद्धः व्यधिकरणधर्मावच्छिन्नप्रतियो-  
गिताकाभावस्य केवलान्वयित्वात् । नचैवं घट एव व्य-  
भिचारः, साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभा-

## अथ व्यधिकरणधर्मावच्छिन्नाभावरहस्यं ।

व्यधिकरणधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभाववादिनोऽन्यथाख्यात्य-  
स्वीकारिणः सोन्दडस्य मतसादाय 'साध्यात्यन्तात्तदवदवृत्तित्व-  
मिति प्रथमसूत्रेण केवलान्वयिन्यव्याप्तिमुद्धरति । अतः, 'समवा-  
यितयेति समवायित्वादिरूपेण वाच्यत्वावृत्तिधर्मावच्छिन्नत्व-  
पदात् समवेतत्व-घटत्व-पटत्वादेर्वाच्यत्वावृत्तिधर्मावच्छिन्नत्व-  
'घट एव प्रसिद्ध इति एवकारोऽप्येवं घटेऽपि प्रसिद्ध इत्यर्थः, अन्यथा  
तादृग्भावात् पदार्थमात्रे प्रसिद्धत्वादेवधारणासङ्गतेः । ननु प्रति-  
योगिना सममभावस्य विरोधाद्वाच्यत्ववति घटे कथं तदभाव इत्यत-  
आह, 'व्यधिकरणधर्मावच्छिन्नाभावस्येति साध्यावृत्तिधर्माव-  
च्छिन्नप्रतियोगिताकाभावस्येत्यर्थः, स्वपदं प्रतियोगितापरं, 'केवला-  
न्वयित्वात्' सर्वत्र सत्त्वात् प्रतियोगिमत्यप्रतियोगिमिति च सत्त्वादिति  
यावत्, अभावस्य प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिनेव समं

ववदृत्तित्वं हि व्यभिचारः, न च वाच्यत्वाभावस्तादृशो-  
घटे, इति चेत्तर्हि तादृशसाध्याभावसामानाधिकर-  
ण्याभावोव्याप्तिः । तथाचाप्रसिद्धिः प्रतियोग्यवृत्तिश्च  
धर्म्मो न प्रतियोगितावच्छेदकः तद्विशिष्टज्ञानस्याभाव-

विरोधो न तु प्रतियोगिमात्रेण व्यधिकरणधर्म्मावच्छिन्नप्रति-  
योगी च न क्वचिदप्यस्ति अप्रसिद्धत्वादतः सर्वत्रैव तदवच्छिन्ना-  
भावः । न च वाच्यत्वमीश्वरेच्छा तत्र च गुणत्वेच्छात्वादि समवायित्व-  
भगवदात्मसमवेतत्वयोः सत्त्वेन समवायित्वं समवेतत्वं वा कुतोवाच्य-  
त्वनिष्ठप्रतियोगिताव्यधिकरणमिति वाच्यं । वाच्यत्वं न ईश्वरेच्छा-  
मात्रं किन्तु तद्विषयत्वमित्यभ्युपगमादिति भावः । 'समवायित-  
येत्यस्य घटादिसमवायितयेत्यर्थः इत्यप्यन्ये । यद्यपि समवायि-  
त्वादिना व्यधिकरणधर्म्मेण वाच्यत्वाभावस्य प्रसिद्धावपि तत्तत्साध्या-  
भाव-विशिष्टाभावोभयाभावादिकमादायासम्भववारणाय साध्यताव-  
च्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिताकसाध्याभावस्यैव लक्षणघटकत्वान्तादृ-  
शाभावस्य च वाच्यत्वादि साध्यत्वेऽप्रसिद्धत्वादव्याप्तिर्दुर्वारैव । न च  
साध्यप्रतियोगिताकाभावमात्रं लक्षणघटकमिति भ्रमादियमाशङ्केति  
वाच्यं । तथा सति विशिष्टाभावोभयाभावादिरूपं समानाधिकरण-  
धर्म्मावच्छिन्नाभावमादायैव प्रसिद्धिसम्भवेन व्यधिकरणधर्म्मावच्छिन्न-  
प्रतियोगिताकाभावपर्यन्तानुधावनवैफल्यात् । न च वैशिष्ट्य-व्यासज्य-  
वृत्तिधर्म्मानवच्छिन्नप्रतियोगिताकसाध्याभावमात्रं लक्षणघटकमिति  
भ्रमेण इयमाशङ्केति वाच्यं । दण्डावच्छिन्नपुरुषाभावस्यैव सम-

धीहेतुत्वात् अन्यथा निर्विकल्पादपि घटोनास्तीति  
प्रतीत्यापत्तेः, गवि शशशृङ्गं नास्तीतिप्रतीतेरप्रसिद्धेः  
शशशृङ्गं नास्तीति च शशे शृङ्गाभावइत्यर्थः ।

इति श्रीमद्भद्रेशोपाध्यायविरचिते तत्त्वचिन्तामणौ  
अनुमानखण्डे व्याप्तिवादे व्यधिकरणधर्मावच्छिन्ना-  
भावः ॥

वाचित्वावच्छिन्नवाच्यत्वाभावापि विशिष्टाभावत्वात् समवाय-  
समवाचिन्तयोर्विशिष्टत्वावच्छेदकीभूतधर्मावच्छिन्नत्वात् । तथापि साध्या-  
भावपदेन साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्न-साध्यतावच्छेदकावच्छिन्न-  
प्रतियोगिताकसाध्याभावो न विवक्षणीयः किन्तु, साध्यतावच्छेद-  
कसम्बन्धेन साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नसाध्यसमानाधिकरणत्व-व्यधिकर-  
णधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावव्यक्तिभिन्नलोभयाभाववद्भावमात्रं  
विवक्षणीयं, तावदेव तत्तत्साध्यत्वभाव-विशिष्टाभावादेर्वारणसम्भवात्  
तादृशोभयाभाववत्त्वस्य तत्र विरहात् । संयोगी द्रव्यत्वादित्यादौ  
द्रव्यत्व-गुणसमवेतत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावो व्यधिकरणधर्मा-  
वच्छिन्नप्रतियोगिताकसाध्याभावश्च तादृशाभावः सुखभः, कपिसंयो-  
गाभाववान् सत्तादिदं वाच्यं ज्ञेयत्वादित्यादिकेवलान्वयिसाध्यके तु  
व्यधिकरणधर्मावच्छिन्नाभाव एव तथा । न च केवलान्वयिनि व्यधिक-  
रणधर्मावच्छिन्नाभावमादायैव प्रसिद्धोपपादने साध्याभावपदेन सा-  
ध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्न-साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिता-

काभाव एव विवक्ष्यतां किं तादृशोभयाभाववदभावविवक्षणेन केव-  
 खान्वयिनि च स्वरूपसम्बन्धेन वाच्यत्वेन घटाद्यभावत्वेव तादृशस्य  
 प्रसिद्धत्वादिति वाच्यम् । प्रमेयसाध्यके व्यधिकरणधर्मावच्छिन्ना-  
 भावमादायापि साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्न-साध्यतावच्छेदकाव-  
 च्छिन्नप्रतियोगिताकाभावप्रसिद्धसम्भवात्, न हि प्रमेयत्वं कस्यचि-  
 द्वाधिकरणधर्मः, प्रमेयत्वेन घटाभावादिस्वरूपसमानाधिकरणधर्माव-  
 च्छिन्नाभावे च मानाभावादिति पूर्वपक्षिणां निगूढाभिप्रायः, शेष-  
 मनुपदं वक्ष्यामः । 'न चैवमिति, 'एवं' स्वव्यधिकरणधर्मावच्छिन्न-  
 प्रतियोगिताकाभावाभ्युपगमे, 'व्यभिचार इति ज्ञेयत्वस्य वाच्यत्वव्यभि-  
 चारित्वमित्यर्थः, वाच्यत्वेन व्यधिकरणधर्मेण स्वरूपसम्बन्धावच्छिन्न-  
 ज्ञेयत्वाद्यभावस्य साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्न-साध्यतावच्छेदकाव-  
 च्छिन्नप्रतियोगिताकस्याधिकरणे घटे ज्ञेयत्वस्य वृत्तेरिति भावः ।  
 न च प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिव्यधिकरणतादृशाभाव-  
 वद्वृत्तित्वमेव व्यभिचारः अन्यथा संयोगसाध्यकसद्भूतावतिव्याप्तिरिति<sup>(१)</sup>  
 कथमियमाशङ्केति वाच्यम् । व्याप्यवृत्तिर्या साध्यतावच्छेदकसम्ब-  
 न्धावच्छिन्नसाध्यतावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावाधिकरणता  
 तदाश्रयवृत्तित्वं व्यभिचार इत्यभिप्रायेणाशङ्कनात्, व्याप्यवृत्तित्वन्तु  
 गिरवच्छिन्नत्वं । 'साध्यतेति साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्न-साध्यता-  
 वच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिताकसाध्याभाववद्वृत्तित्वमित्यर्थः, वाच्य-  
 त्वेन व्यधिकरणधर्मेण स्वरूपसम्बन्धावच्छिन्नज्ञेयत्वाद्यभावस्तु साध्य-

(१) व्यभिचारित्वलक्षणस्यातिव्याप्तिरित्यर्थः सद्भूतोर्व्यभिचारित्वलक्षणा-  
 लक्ष्यत्वादिति भावः ।

तावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिताकोऽपि न साध्याभाव इति भावः ।  
 'तादृशः' साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्न-साध्यतावच्छेदकावच्छिन्न-  
 प्रतियोगिताकः । 'तद्दी'ति साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्न-साध्यता-  
 वच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिताकसाध्याभाववद्दृत्तित्वस्य व्यभिचारत्वे  
 इत्यर्थः, 'तादृशसाध्याभावेति साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्न-साध्य-  
 तावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिताकसाध्याभाववद्दृत्तित्वाभाव एव व्या-  
 प्तिर्न तु निरुक्तोभयाभाववदभाववददृत्तित्वरूपेत्यर्थः, अत्र व्यभिचरित-  
 त्वपदार्थस्यैव व्याप्तित्वात् अत्र व्यभिचरितत्वपदार्थस्य च व्यभिचरितत्वस्या-  
 भावोऽव्यभिचरितत्वमिति व्युत्पत्त्या व्यभिचारसामान्याभावरूपत्वा-  
 दिति भावः । 'अप्रविद्धिरिति, वाच्यत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकवा-  
 च्यत्वाभावस्याप्रविद्धत्वादिति भावः । ननु अत्र व्यभिचरितत्वपदं न यौ-  
 गिकं किन्तु निरुक्तोभयाभाववान् योऽभावस्तददृत्तित्वरूपे प्राथ-  
 मिकसञ्चणवादप्रार्थं पारिभाषिकमखण्डपदमेव, अथ एतस्याव्यभिच-  
 रितत्वपदार्थत्वे असंभव एव वदित्तमान् धूमादिदं वाच्यं ज्ञेयत्वादि-  
 त्यादौ व्यधिकरणधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकवद्वि-वाच्यत्वाद्यभाव-  
 वति पर्वत-घटादौ धूम-ज्ञेयत्वादेर्दृष्टेः । न च तद्वद्दृत्तित्वस्या-  
 पि व्यधिकरणधर्मावच्छिन्नाभाव-विशिष्टाभावोभयाभावादिमादायैव  
 सर्वत्र सञ्चणसमन्वय इति वाच्यम् । तथा सति धूमवान् वक्त्रे-  
 रित्यादावपि तादृशोभयाभाववदभाववददृत्तित्वस्य व्यधिकरण-  
 धर्मावच्छिन्नाभाव-विशिष्टाभावोभयाभावादेः<sup>(१)</sup> वक्ष्यादौ सत्त्वा-

(१) व्यधिकरणधर्मावच्छिन्नाभाव-तत्तद्व्यक्षित्वावच्छिन्नाभाव-विशिष्टा-  
 भावोभयाभावादेरिति ख० ।



द्व्यभिचारिमात्रेऽतिव्याप्तेरिति चेत् । न । तद्वदवृत्तित्वपदेन तद्वन्निष्ठ-  
 तत्त्वजातीयव्याप्यवृत्त्यभावप्रतियोगित्वस्य विवचणात्, इत्यञ्च वक्लि-  
 मान् धूमादित्यादौ व्यधिकरणधर्मावच्छिन्नवज्ज्ञाद्यभाववति पर्व-  
 तादौ तत्त्वजातीयस्य धूमादेर्व्यधिकरणधर्मावच्छिन्नाभावस्य सत्त्वा-  
 न्नासम्भवः, धूमवान् वक्लेरित्यादौ च तादृशोभयाभाववदभा-  
 वोव्यभिचारनिरूपकतत्तदधिकरणव्यक्तवृत्तित्वावच्छिन्नप्रतियोगिता-  
 कतत्तदधिकरणव्यक्तवृत्त्यभावः तदधिकरणे तत्तदधिकरणव्यक्तौ  
 तत्त्वजातीयस्य वज्ज्ञादेरभावस्यासत्त्वान्नातिव्याप्तिः । साजात्यञ्च न  
 यथाकथञ्चिद्रूपेण व्यावर्त्तकत्वाभावात्, नापि स्वसमानाधिकरणध-  
 र्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्व-स्वासमानाधिकरणधर्मावच्छिन्नप्रतियो-  
 गिताकत्वान्यतरूपेण अभावभेदेन प्रतियोगिताया भिन्नत्वात्  
 साध्याभावनिष्ठसमानाधिकरणधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वादेर्हेत्व-  
 थावावृत्तित्वादसम्भवापत्तेः, किन्तु स्वव्यधिकरणधर्मावच्छिन्नप्रति-  
 योगिताकान्यतमत्व-स्वव्यधिकरणधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदकूट-  
 वत्त्वान्यतरूपेण<sup>(१)</sup>, स्वपदद्वयं प्रतियोगितापरं, धूमवान् वक्ले-  
 रित्यादौ व्यभिचारनिरूपकतत्तदधिकरणव्यक्तवृत्तिसामान्याभा-  
 वाधिकरणे तत्तदधिकरणव्यक्तावपि तत्त्वजातीयस्य वज्ज्ञादेर्वैशिष्ट्य-  
 व्याप्यवृत्तिधर्मावच्छिन्नाभावस्य समवायादिसम्बन्धावच्छिन्नाभावस्य  
 च सत्त्वादतिव्याप्तितादवस्थमतो व्याप्यवृत्तित्वमभावविशेषणं, व्याप्य-

(१) 'स्वव्यधिकरणधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदकूटवत्त्वं' स्वव्यधिकर-  
 णधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकोयोयोऽभावस्तत्तद्व्यक्तित्वावच्छिन्नप्रतियोगि-  
 ताकभेदकूटवत्त्वमित्यर्थः ।

वृत्तित्वञ्च हेतुतावच्छेदकसम्बन्धेन हेतुतावच्छेदकावच्छिन्नसमानाधि-  
 करणत्व-व्यधिकरणधर्मावच्छिन्नाभावव्यक्तिभिन्नत्वोभयाभाववत्त्वं तेन  
 न तद्दोषतादवस्थं । द्रव्यं संयोगादित्याद्यव्याप्यवृत्तिहेतुके द्रव्यमात्र-  
 समवेताभाव-गुण-कर्माद्यवृत्त्यभावादेरन्ततः सर्वत्र विगेषणताविगेषेण  
 साध्यप्रकारकप्रसाविगेष्यत्व-साधनान्यतराभावादेश्च तादृशस्य सुल-  
 भत्वान्नाव्याप्तिः । इदं वाच्यं प्रमेयादित्यादौ घटत्वेन पटाभाव-पट-  
 त्वेन घटाभावादिमादाय प्रमेयमात्रस्यैव तादृशाभावप्रतियोगित्वाच्चा-  
 व्याप्तिः । न च विगेष्यताभावादिवारणाय तद्वन्निष्ठतत्त्वजातीयभाव-  
 निरूपितहेतुतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगितावच्छेदकहेतुता-  
 वच्छेदकत्वमेव विवक्ष्यतां किं यथोक्तव्याप्यवृत्तित्वेनाभावविगेषणेन  
 इदं वाच्यं ज्ञेयत्वादिकेवलान्वयिहेतुके च ज्ञेयत्वत्वादिना घटाद्य-  
 भावमादास्यैव लक्षणस्याभावादिति वाच्यं । पृथिवी संयोगादित्याद्यव्या-  
 प्यवृत्तिहेतुके व्यभिचारिण्यतियान्तेः इदं वाच्यं प्रमेयादित्यादौ तादृ-  
 शाभावाप्रसिद्धेश्च । एवं द्रव्यं सत्त्वादित्यादौ व्यभिचारनिरूपकतत्तद-  
 धिकरणावृत्तिसामान्याभावस्यापि सजातीयोऽभावः सत्त्वादिना  
 सत्ताद्यभाव एव तत्प्रतियोगित्वस्य सत्त्वादौ सत्त्वादतियान्तिताद-  
 वस्थं श्रुतस्तद्वन्निष्ठेति । न च तथापि धूमवान् वज्जेरित्यादौ तादृ-  
 शोभयाभाववदभावो धूमत्वादिना धूमाद्यभाव एव तद्वति जलहृदादौ  
 तत्त्वजातीयस्य वज्जभावस्य सत्त्वादेवं तादृशाभावो द्रव्यत्वत्वादिना  
 धूमाद्यभावः तद्वति यावत्येव तत्त्वजातीयस्य वज्जादेर्व्यधिकरणधर्मा-  
 वच्छिन्नाभावस्य सत्त्वाच्चातियान्तिरिति वाच्यम् । यावत्त्वेन प्रथमा-  
 भावविगेषणात्, तथाच तत्तदयोगोलकादिरूपव्यभिचारस्यलावृत्त्य-

भावोऽपि तादृशोभयाभाववत्तया यावदन्तर्गतस्तत्तदधिकरणे तत्त-  
 दयोगोलकादौ तत्तत्सजातीयस्य वज्रादेरभावस्यासत्त्वान्नातिव्याप्तिः,  
 इत्यत्र यावन्तस्तादृशोभयाभाववन्तोऽभावाः प्रत्येकं तत्तद्भूक्तौनां  
 सजातीयस्य समानाधिकरणस्य व्याप्यवृत्तेरभावस्य प्रतियोगित्वम-  
 व्यभिचारित्वमिति समुदितार्थनिष्कर्ष इति न कोऽपि दोषः इत्य-  
 खरसा दाह, 'प्रतियोग्यवृत्तिश्चेति तदवृत्तिधर्मा न तन्निष्ठप्रतियो-  
 गिताया अवच्छेदक इत्यर्थः, तथाच व्यधिकरणधर्मावच्छिन्नप्र-  
 तियोगिताकाभावस्यैवाप्रसिद्धत्वाद्यथोक्तमव्यभिचारित्वमप्रसिद्धमिति  
 भावः ।

अजवस्तु केवलान्वयिनि साध्यस्याभाव एवाप्रसिद्ध इत्यव्याप्ति-  
 रभिहितेति भ्रमेण तत्र यथाकथञ्चिद्रूपेण साध्याभावस्य प्रसिद्धिं  
 दर्शयति, 'अथेति, 'समवाचितयेति समवायित्वादिरूपेण वाच्य-  
 त्वावृत्तिधर्मणेत्यर्थः । आदिपदालम्बितल-घटल-पटलादेर्वाच्यत्वा-  
 वृत्तिधर्ममात्रस्य परिग्रहः । इदमुपलक्षणं वैशिष्ट्य-व्यास्यवृत्ति-  
 धर्मावच्छिन्नापत्ताभावोऽपि द्रष्टव्यः । भ्रमं निरागत्य दूषयति,  
 'तर्हीति साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिताकसाध्याभाववदृत्तित्वं  
 यदि व्यभिचारस्तदेत्यर्थः, 'तादृशसाध्याभावेति साध्यतावच्छेदकाव-  
 च्छिन्नप्रतियोगिताकसाध्याभाववदृत्तित्वत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकता-  
 दृशवृत्तित्वाभाव एव व्याप्तिः न तु साध्याभाववदृत्तित्वप्रतियोगिता-  
 काभावमात्रमित्यर्थः साध्याभाववदृत्तित्वमात्रस्य व्यभिचारत्वे सद्भेदा-  
 वतिव्याप्तिरतः साध्याभाववदृत्तित्वप्रतियोगिताकाभावमात्रस्य व्याप्ति-  
 त्वेऽपि व्यभिचारिण्यतिव्याप्यापत्तेस्तौल्यासाध्याभाववदृत्तित्वसामा-

न्याभावस्य व्याप्तित्वे चासम्भवात् व्यधिकरणधर्मावच्छिन्नस्य वैशिष्ट्य-  
व्यासज्यवृत्तिधर्मावच्छिन्नस्य च साध्याभावस्याधिकरणे हेतोर्वृत्तेरिति  
भावः । किञ्च वैशिष्ट्य-व्यासज्यवृत्तिधर्मावच्छिन्नसाध्याभावमादायैव  
केवलान्वयिनि साध्याभावप्रसिद्धिसम्भवेऽपि व्यधिकरणधर्मावच्छिन्न-  
साध्याभावमादाय प्रसिद्धाभिधानमत्यन्तमसङ्गतमेव तस्यैवाप्रसिद्ध-  
त्वादित्यभिप्रायेण दूषणान्तरमाह, 'प्रतियोग्यवृत्तिश्चेति, सर्वमन्यत्यू-  
र्व्वदित्याहुः ।

तद्वृत्तिधर्मस्य तद्विष्टप्रतियोगितावच्छेदकत्वे स्मनाभावे हेतु-  
माह, 'तद्विशिष्टेति 'असिद्धेरित्यन्तलेकोग्रन्थः, 'तद्विशिष्टज्ञानस्य' प्र-  
तियोगिनि प्रतियोगितावच्छेदकप्रकारकज्ञानस्य, 'अभावधीहेतुत्वात्'  
अभावसौक्तिकप्रत्यक्षहेतुत्वात्, 'गवि शशशृङ्गं नास्तीति प्रतीतेरसिद्धे-  
रिति योजना, तव नयेऽपि शशश्रीयत्वे गोवृत्तिशृङ्गाभावप्रतियोगिता-  
वच्छेदकत्वप्रत्यक्षासिद्धेरित्यर्थः<sup>(१)</sup>, शृङ्गे शशश्रीयत्वस्य बाधितत्वेन शश्री-  
यत्वप्रकारकशृङ्गज्ञानासम्भवादन्वया अन्यथाख्यात्यापत्तेरिति भावः ।  
ननु अभावसौक्तिकप्रत्यक्षं प्रति प्रतियोगितावच्छेदकप्रकारकप्रतियो-  
गिज्ञानत्वेन न हेतुत्वं किन्तु प्रतियोगितावच्छेदक-प्रतियोगिनोर्ज्ञान-  
विरुद्धशायां नेत्याकारकाभावप्रत्यक्षवारणाय प्रतियोगितावच्छेदक-  
प्रतियोग्युभयविषयकज्ञानत्वेनैव हेतुत्वं साधवात् तच्च प्रकृतेऽप्यस्ति  
शश्रीयत्व-शृङ्गयोरपि खण्डशः समूहासम्भवनज्ञानसम्भवात् । न च  
तथापि शृङ्गे शश्रीयत्वस्य बाधादेव शशशृङ्गं नास्तीति प्रत्यक्षस्य

(१) गोवृत्तिशृङ्गाभावप्रतियोगितावच्छेदकत्वप्रत्यक्षासिद्धेरित्यर्थं इति  
ख०, ग० ।

गृह्णे शश्रीयत्वप्रकारकस्य असम्भव इति वाच्यम् । बाधान्तादृश-  
 प्रत्यचासम्भवेऽपि शश्रीयत्वेन गृह्णं नास्तीत्याकारकप्रत्यचे स्वावच्छि-  
 न्नप्रतियोगिताकत्वसम्बन्धेनाभावे स्वातन्त्र्येण शश्रीयत्वप्रकारत्वे बाध-  
 काभावात् तत्र गृह्णे शश्रीयत्वस्याप्रकारत्वात् । न च तादृशप्रत्यया-  
 भ्युपगमे “अभावप्रत्ययो हि विशिष्टवैशिष्ट्यबोधमर्थ्यादां नातिशेते”  
 इति सिद्धान्तव्याघातः, ‘अभावप्रत्ययः’ अभावलौकिकसाक्षात्कारः,  
 ‘विशिष्टवैशिष्ट्यमर्थ्यादां’ अभावे प्रतियोगितावच्छेदकविशिष्टप्रतियो-  
 गिनः प्रतियोगितास्ववैशिष्ट्यविषयितां, ‘नातिशेते’ न जहाति, इति  
 तदर्थादिति वाच्यम् । तत्र ‘विशिष्टवैशिष्ट्यमर्थ्यादामित्यस्य प्रति-  
 योगितायां यत्किञ्चिद्भूतविशिष्टस्य वैशिष्ट्यविषयितामित्यर्थादित्यत-  
 आह, ‘अव्ययेति यदि प्रतियोगितावच्छेदक-प्रतियोगिनो ज्ञानमेवा-  
 भावप्रत्यचे हेतुर्न तु तत्प्रकारकप्रतियोगिज्ञानं तदेत्यर्थः, ‘निर्विकल्प-  
 कादपौति घट-घटत्वयोर्निर्विकल्पकसाक्षानन्तरमपीत्यर्थः, मात्रपदा-  
 द्भूतान्तरप्रकारकज्ञानव्यवच्छेदः, ‘घटोनास्तीतीति विशेषणतावच्छेद-  
 कप्रकारकविशेषणज्ञानस्य विशिष्टवैशिष्ट्यधीहेतुतया विशिष्टवैशिष्ट्य-  
 बोधात्मकस्य घटोनास्तीति प्रत्यचस्य तदानौमसम्भवेऽपि केवलविशिष्टे  
 विशेषणमिति न्यायेन घटोनास्तीति प्रत्यचस्यापत्तेरित्यर्थः, न हि  
 “अभावप्रत्ययो हीति सिद्धान्तचतिभिया सामग्री कार्यं नार्जयेत्,  
 प्रतियोगितावच्छेदकप्रकारकज्ञानस्य हेतुत्वे तदभावादेव तदानीं न  
 तादृशं प्रत्यचं तत्प्रत्यचत्वे तु विशिष्टवैशिष्ट्यधीसामग्रीसत्त्वादर्थसमाज-  
 सिद्धमेव विशिष्टवैशिष्ट्यबोधात्मकत्वं । न चैतदतिप्रसङ्गवारणाय प्रति-  
 योगितावच्छेदकप्रकारकज्ञानत्वेनैव हेतुत्वमसु लाघवात् किं प्रति-

योगिविशेषकत्वप्रवेगेन, तादृशञ्च ज्ञानं प्रकृतेऽपि सम्भवति शश्री-  
 यत्वप्रकारेण लोभादेरेव ज्ञानसत्त्वात् पूर्वपक्षिणः अन्यथाख्या-  
 त्यनभ्युपगमेन रजतत्वप्रकारकशक्तिज्ञानाद्रजताभावप्रत्यक्षापादनस्या-  
 सत्त्वादिति वाच्यम् । तथापि शश्रीयत्वेन शृङ्गं नास्तीति प्रत्यक्षा-  
 सत्त्वात् अभावसाक्षात्कारोहि प्रतियोगिनि तद्दूर्ध्वविशिष्टमवगाह-  
 मान एव तद्दूर्ध्वस्य अवच्छेदकत्वमवगाहते नान्यथेति नियमात्,  
 अन्यथाख्यात्यनभ्युपगमेन शृङ्गे शश्रीयत्ववैशिष्ट्यावगाहनस्य च अस-  
 त्त्वादिति भावः । इदमापाततः न्यायनथे शृङ्गे शश्रीयत्वस्य बाधि-  
 तत्वेऽपि बाधाप्रतिसन्धानदशायां शृङ्गे शश्रीयत्वप्रकारकज्ञानस्य  
 भ्रमरूपस्यैव सत्त्वेन शश्रीयत्वं नास्तीत्याकारकप्रत्यक्षे बाधकाभावात् ।  
 बाधप्रतिसन्धानदशायापि शश्रीयत्वांग्रे निर्धर्मितावच्छेदकादेकत्र  
 द्वयमिति न्यायेन शश्रीयत्व-शृङ्गत्वोभयप्रकारकज्ञानाच्छश्रीयत्वांग्रे  
 निर्धर्मितावच्छेदकस्य एकत्र द्वयमिति न्यायेन शश्रीयत्व-शृङ्गत्वोभय-  
 विशिष्टवैशिष्ट्यबोधात्प्रकृतस्य शश्रीयत्वं नास्तीति प्रत्यक्षस्य सत्त्वाच्च ।  
 न हि प्रतियोगितावच्छेदकप्रकारकप्रतियोगिप्रमात्वेन हेतुत्वं, गौर-  
 वात् किन्तु तादृशनिश्चयत्वेन । एतेन शृङ्गे न शश्रीयत्वमिति  
 बाधनिश्चये यद्यपि शश्रीयत्वं नास्तीति प्रतीतेरनुभवसिद्धतया शश्री-  
 यत्वरूपव्यधिकरणधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावे शश्रीयत्वावच्छि-  
 न्नप्रतियोगिताकत्वसम्बन्धेन शश्रीयत्वेन रूपेण शृङ्गं नात्र प्रकारः  
 किन्तु शश्री गोवृत्तिशृङ्गाभावः गोवृत्तिशृङ्गे शश्रीयत्वाभावो वा तद्वि-  
 षयः । न च बाधप्रतिसन्धानदशायां तथाविषयत्वेऽपि तदप्रति-  
 सन्धानदशायां शश्रीयत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकशृङ्गाभाव एव य-

योक्तप्रकारेण विषय इति वाच्यम् । प्रतीतेः समानाकारकत्वेऽपि  
 पुरुषावस्थावैचित्येण विषयवैचित्यस्य क्वाप्यदर्शनात् । न च तथापि  
 प्रतियोगितावच्छेदकप्रकारकप्रतियोगिज्ञानस्य स्वातन्त्र्येणाभावप्रत्यक्षं  
 प्रति हेतुत्वानङ्गीकर्तृणां नव्यानां नये शृङ्गे न शशीयत्वमिति बाध-  
 प्रतिसन्धानदशायामपि शशीयत्वेन शृङ्गं नास्तीति प्रत्यक्षमभवात्  
 तदेव व्यधिकरणधर्मावच्छिन्नाभावे मानं तत्र स्वावच्छिन्नप्रतियोगि-  
 ताकत्वसम्बन्धेन शशीयत्वस्य प्रतियोगितासम्बन्धेन शृङ्गत्वविशिष्टस्य  
 चाभावे प्रकारतया बाधबुद्धेरप्रतिबन्धकत्वादिति वाच्यम् । अभाव-  
 लौकिकसाक्षात्कारोहि तद्गुणविशिष्टस्य प्रतियोगिनोऽभावे प्रतियो-  
 गिताख्यवैशिष्ट्यमवगाहमान एव तद्गुणस्य प्रतियोगितावच्छेदकत्वमव-  
 गाहते न तु तदनवगाह्य इति नियमेन तादृशप्रतीतेरसम्भवात्  
 अन्यथा घटत्वेन कम्बुग्रीवादिमान्नास्तीत्यपि प्रत्यक्षं स्यात् । न चेष्टा-  
 पत्तिः, घटोनास्ति घटत्वेन घटोनास्तीत्यादिप्रत्यक्षैव सर्वसिद्धत्वा-  
 दिति कस्यचित् प्रलपितमप्यपास्तं । शृङ्गे न शशीयत्वमिति बाध-  
 प्रतिसन्धानदशायामपि शशीयत्वं नास्तीति प्रतीतेः एकत्र द्वयमिति  
 न्यायेन शशीयत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकशृङ्गाभावविषयकत्वसम्भवात् ।  
 घटत्वेन कम्बुग्रीवादिमान्नास्तीत्यादिप्रत्यक्षाभावस्य विवादग्रस्ततया  
 यथोक्ततियमस्यापि विवादग्रस्तत्वाच्च । वसुतस्तु गवि शशी-  
 यत्वं नास्ति शशीयत्वेन शृङ्गं नास्तीत्यादिप्रतीतौ मानाभाव  
 एव, प्रमाणसत्त्वेऽपि शशीयत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वसम्बन्धेनाभावे  
 शृङ्गस्य स्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वसम्बन्धेन शृङ्गाभावे शशीयत्वस्य  
 च भ्रमएव अतिरिक्तव्यधिकरणधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावा-

भ्युपगमे तत् प्रत्यक्षं प्रत्यनन्ततत्त्वप्रतियोगितावच्छेदकप्रकारक-  
प्रतियोगिज्ञानस्य प्राचान्नये हेतुत्वकल्पने अतिरिक्ताभाव-तत्त्वप्रति-  
योगित्व-तदवच्छेदकत्वादिकल्पने गौरवात् । न च तादृशप्रतीतीनां  
तत्तदंगे प्रमात्वमपि सर्वानुभवसिद्धमिति वाच्यं । अप्रसिद्धेः,  
अन्यथा शुक्लौ रजतत्वघानेऽपि प्रमात्वानुभवस्य सुवचतया शुक्लेरपि  
रजतत्वापत्तेः इत्येव तत्त्वं ।

प्राञ्चसु प्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्धेन प्रतियोग्याहार्यारोपः  
संसर्गाभाववृद्धौ कारणं अन्यथा ह्रदादौ संयोगादियत्किञ्चित्सम्ब-  
न्धावच्छिन्नवह्यादिसामान्याभावग्रहदशायां समवाय-रूपपादिसम्ब-  
न्धान्तरावच्छिन्नतदभावानां सर्वेषामेव नियतं ग्रहापत्तेः । आरोपस्य  
हेतुत्वे तु तत्त्वसम्बन्धेन प्रतियोग्यारोपविलम्बादेव विलम्बसम्भवात्,  
एवञ्च गवि शृङ्गावाधितत्वेनारोपाभावात् शशीयत्वेन शृङ्गाभाव-  
प्रत्ययस्तत्र कथं स्यात् येन तत्प्रमाणं भवेदित्याहुः । तदसत् आरोपस्य  
हेतुत्वे मानाभावात् । न हि ह्रदे वद्विमारोपैव वद्विर्नास्तीत्यनु-  
भवः, ह्रदादौ संयोगादियत्किञ्चित्सम्बन्धेन वह्यादिसामान्याभाव-  
ग्रहदशायाञ्चितं समवाय-रूपपादिसम्बन्धान्तरावच्छिन्नाभावग्रहस्य  
सत्यसंसर्गाग्रहे इष्टत्वात् सर्वत्रैव वद्विर्नास्तीत्येवाकारात् समवायेन  
वद्विर्नास्तीत्याद्याकारस्य च समवायत्वादिना समवायाद्युपस्थिति-  
विलम्बेनैव विलम्बसम्भवात् । अन्यथा प्रतियोग्यारोपो नाभावधीमात्रे  
हेतुरभावभ्रमे व्यभिचारात् । नापि तत्त्वमायां, पाकरक्तघटे श्यामा-  
भावप्रत्ययात् तत्र च श्यामारोपासम्भवात् भ्रम-प्रमासाधारणाहार्य-  
ज्ञानमात्रस्यैव हेतुत्वे च प्रकृतेऽपि सम्भवात् गौरवाच्च । किञ्च



प्रतियोग्यारोपस्य कारणत्वे हि गुणादौ गुणाद्यन्यत्वविशिष्टसत्त्वाद्य-  
भावप्रत्ययो न स्यात् तत्रप्रतियोगिनः सत्त्वादेरारोपाभावात् किन्तु  
प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिताकप्रतियोग्यभाववति प्रति-  
योगितावच्छेदकप्रकारकप्रतियोगिज्ञानं प्रतियोग्यारोपः स एव  
कारणं तच्च प्रकृतेऽपि अक्षतमेव शशीयत्वावच्छिन्नशृङ्गाभाववति  
गवि शशीयत्वप्रकारकशृङ्गप्रतीतेः सम्भवात् । अपि चैवमपि  
गवि शशशृङ्गं नास्तीतिप्रत्ययो मास्तु अश्वे शशशृङ्गं नास्तीति  
प्रतीतौ न कोपि विरोधः । तत्र शृङ्गारोपस्यापि सम्भवात् अथैव  
व्यधिकरणधर्मावच्छिन्नाभावे प्रमाणत्वस्य सुवचत्वादिति ह्यतं पक्ष-  
वितेन ।

ननु व्यधिकरणधर्मस्य प्रतियोगितावच्छेदकत्वानभ्युपगमे शश-  
शृङ्गं नास्तीत्यादौ कौटुशान्वयबोधः । शशीयत्व-शृङ्गत्वोभय-  
त्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वस्याप्रसिद्धतया तेन स्वन्वेन अभावे  
शशीयत्वावच्छिन्नशृङ्गप्रकारकान्वयबोधस्य शशीयत्वांग्रे भ्रमात्मकस्या-  
सम्भवात् । न च प्रतियोगितामात्रस्वन्वेनाभावे शशीयत्वावच्छिन्न-  
शृङ्गस्थान्वयः तादृशव्यवहारस्य सार्वत्रिकत्वेनातिप्रसङ्गविरहादिति  
वाच्यं । नत्राद्यर्थेऽभावेऽन्वयितावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वस-  
्वन्वेनैव प्रतियोगिनोऽन्वयस्य व्युत्पत्तत्वादित्यत आह, 'शशेति, 'इति  
चेति इत्यस्य चेत्यर्थः, गवि शशशृङ्गं नास्तीत्यादौ च गोवृत्तिशृङ्गं  
शशीयत्वाभाववत् शशीयत्वं गोवृत्तिशृङ्गवृत्तित्वाभाववदिति वार्थः<sup>(१)</sup> ।

(१) शशशृङ्गं गोवृत्तित्वाभाववदित्याद्यन्वयबोध इति ख० ।

दृढमापाततः शशशृङ्गं नास्तीत्यादिवाक्यश्रवणानन्तरं शशः शृङ्ग-  
वान् शृङ्गाभावो न शशवृत्तिरित्यादिभ्रभानुदयापत्तेः । एतेन शृङ्गं  
शशीयत्वाभाववत् इत्यपि नार्थः, तादृशवाक्यश्रवणानन्तरं शृङ्गं  
शशीयमितिभ्रसानुपपत्तेः । वस्तुतस्तु नञाद्यर्थेऽभावे प्रतियोगिनो-  
ऽन्वये अन्वयितावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिताकलं विशिष्टधर्मः संसर्ग-  
इति न व्युत्पत्तिः, किन्तु परस्परविशेष्य-विशेषणभावेनान्वयिताव-  
च्छेदकमवच्छिन्नत्वं खनिष्ठप्रतियोगिता चेति त्रयं संसर्ग इत्येव  
व्युत्पत्तिः, तथाच प्रकृते शशीयत्वस्य शृङ्गत्वस्यावच्छिन्नत्वस्य शृङ्ग-  
निष्ठप्रतियोगित्वस्य च खण्डशः प्रसिद्धत्वात् परस्परविशेष्य-विशेषण-  
भावेन तच्चतुष्टयसंसर्गकः संसर्गांशे भ्रमात्मकोऽभावे शशीयत्वावच्छि-  
न्नशृङ्गप्रकारकान्वयबोधः । एवं पीतः शङ्खो नास्तीत्यादावपि, अत-  
एव गुरुधर्मस्य प्रतियोगितानवच्छेदकत्वनयेऽपि कम्बुग्रीवादिमान्ना-  
स्तीत्यादिवुद्धौ नान्वयबोधानुपपत्तिः कम्बुग्रीवादिमत्त्वस्यावच्छिन्नत्वस्य  
कम्बुग्रीवादिमद्भक्तिनिष्ठप्रतियोगित्वस्य च खण्डशः प्रसिद्धत्वात् परस्परं  
विशेष्य-विशेषणभावेन<sup>(१)</sup> एतच्चितयसंसर्गकस्य संसर्गांशे भ्रमात्मकस्यैव  
कम्बुग्रीवादिमद्भक्तिप्रकारकाभावविशिष्यकान्वयबोधस्य सम्भवात् ।  
शशशृङ्गवत्पीतशङ्खवदित्यादिविशिष्टवुद्धिं प्रति प्रतिबन्धकत्वमपि  
परस्परविशेष्य-विशेषणभावेन तादृशचतुष्टयसंसर्गस्याभावे शशीयत्व-  
पीतत्वाद्यवच्छिन्नशृङ्ग-शङ्खादिप्रकारकस्य निश्चयस्यैवेति तत्त्वं ।

केचित्तु अन्वयितावच्छेदकमवच्छिन्नत्वं खनिष्ठप्रतियोगित्वञ्चेति

(२) विशेष्य-विशेष्यभावेनेति ख० ग० ।

त्रयं खण्डशः संसर्गः सखन्धता च व्यासञ्चरत्तिरित्येव व्युत्पत्तिरिति  
न काथनुपपत्तिरित्याहुः ।

इति श्रीमथुरानाथतर्कवागीश्वरिचिते तत्त्वचिन्तामणिरहस्ये  
अनुमानाख्यद्वितीयखण्डे व्याप्तिवादे व्यधिकरणधर्मावच्छिन्नाभाव-  
रहस्यं ।

## अथ पूर्वपक्षः ।



अथ साध्यासामानाधिकारणानधिकरणत्वे सति साधिकरणत्वं व्याप्तिः केवलान्वयिनि साध्यासामानाधिकरण्यं निरधिकरणे आकाशादौ प्रसिद्धमिति चेत् ।

## अथ पूर्वपक्षरहस्यं ।

केषाञ्चिन्नञ्जणं द्रूपचितुनाशङ्कते<sup>(१)</sup>, 'अथेति, ननु किमिह प्रसामानाधिकरण्यं तदधिकरणवृत्तित्वाभावः तदनधिकरणवृत्तित्वम् वा, प्राये व्यधिकारिण्यव्याप्तिः साध्यसामानाधिकरणत्वे सतीत्यस्यैव सम्यक्ते प्रभावद्वयघटनायां गौरवं 'साधिकरणत्वमित्यस्य वैयर्थ्यञ्च । द्वितीये समवायादिना आकाशादिहेतुके वन्निमानाकाशादित्वादावतिव्याप्तिवारणाय हेतुतावच्छेदकसम्बन्धेन सम्बन्धितार्थकस्य साधिकरणपदस्य सार्थकत्वेऽपि केवलान्वयिन्यव्याप्तिः 'केवलान्वयिनि साध्यासामानाधिकरण्यं हि निरधिकरणे आकाशादौ प्रसिद्धमिति सूत्राविरोधश्च । जैवं 'साध्यासामानाधिकरण्येत्यत्र साध्यसाध्यासामानाधिकरण्यं येषु तानि साध्यासामानाधिकरण्यानीति बहुव्रीहिः तेषामनधिकरणत्वं तदभावत्वं तस्मिन् सति साधिकरणत्वं तदवच्छिन्नाधिकरणताकत्वं सतिसप्तम्या अवच्छेदकत्वबोध-

(१) केषाञ्चिन्नञ्जणमाशङ्कते इति ख० ग० ।

न। साध्यासामानाधिकरण्यं हि न साध्यानधिकरणा-  
धिकरणत्वं साध्याधिकरणानधिकरणत्वं वा केवलान्व-  
यिनि यत्किञ्चित्साध्याधिकरणानधिकरणे धूमे चा-

नात् अवच्छेदकत्वञ्चात्रान्यूनवृत्तित्वं तथाच साध्यवदवृत्तिसकलपदा-  
र्याभाववत्त्वं यदधिकरणताया अन्यूनवृत्ति तत्त्वमित्यर्थः, यत्पदं हेतु-  
परं, अन्यूनवृत्तित्वं व्यापकत्वं, तच्च तत्समानाधिकरणान्योन्याभावप्रति-  
योगितानवच्छेदकत्वं, अभावश्च साध्यवदवृत्तित्वावच्छिन्नप्रतियोगिता-  
कोबोध्यः तेन वैशिष्ट्य-व्यासज्यवृत्तिधर्मावच्छिन्नाभावं जलादिलच-  
णतादृशतत्त्वपदार्थविशेषाभावञ्चादाय नातिव्याप्तिः। हेत्वधिकरणता  
च हेतुतावच्छेदकसम्बन्धेन बोध्या तेन धूमावयवादिमादाय नाव्याप्तिः।  
न च यथान्यूनवृत्ति तत्त्वमित्येवमेवास्तु किमधिकरणताप्रवेशेनेति  
वाच्यं। यथा सन्निवेशे वैचर्याभावात्। न च द्रव्यं सत्त्वादित्या-  
दावतिव्याप्तिः वृत्तिमन्मात्रस्यैव कालिक-दैशिकविशेषणताभ्यां  
साध्यवन्सहाकाल-दिगादिवृत्तित्वेन द्रव्यत्ववदवृत्तिरवृत्तिरेव<sup>(१)</sup>  
तदभावस्य सत्ताधिकरणताव्यापकत्वात्। यदि चावृत्तेरपि काल-  
दिग्वृत्तित्वं तदा द्रव्यं पृथिवीत्वादित्यादावव्याप्तिः द्रव्यत्ववदवृत्तेर-  
प्रसिद्धेरिति वाच्यं। विशेषणताविशेषेण साध्यवदवृत्तीनां विशेष-  
णताविशेषेणाभावस्य विवक्षितत्वात् एतच्चानुगतमपीति दिक्।

ननु केवलान्वयिनि साध्यवदवृत्तित्वं कुत्र प्रसिद्धमित्यत आह,

(१) द्रव्यत्ववदवृत्तित्वेन तदवृत्तिरवृत्तिरेवेति ग०।

व्याप्तेः । नापि स्वसमानाधिकरणात्यन्ताभावाप्रति-  
योगिसाध्यसामानाधिकरण्यं पर्वतीयवह्नेर्ब्रह्महानसीय-  
धूमसमानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगित्वात् द्रव्यत्वा-  
देरव्याप्यवृत्त्यव्याप्यतापत्तेश्च । न च प्रतियोगिविरो-

‘केवलान्वयिनौति यथाश्रुतं, यथासम्भवं विकल्प्य दूषयति, ‘साध्या-  
सामानाधिकरण्यं हीति, ‘साध्यानधिकरणाधिकरणत्वं’ साध्यानधि-  
करणवृत्तित्वं, ‘साध्याधिकरणानधिकरणत्वं’ साध्याधिकरणवृत्तित्वा-  
भावः, ‘केवलान्वयिनौति आद्ये इत्यर्थः, साध्यानधिकरणस्याप्रसिद्धेरि-  
त्यर्थः । द्वितीये त्वाह, ‘यत्किञ्चिदिति साध्याधिकरणविशेषणमेतत्,  
‘अनधिकरणे’ वृत्तित्वाभाववति, साध्याधिकरणवृत्तित्वसामान्याभा-  
वोक्तौ च द्रव्यं यत्त्वादित्यादावतिव्याप्तिरिति भावः । प्रकारान्तरेणा-  
व्यभिचारित्वमाशङ्क्य निराकरोति, ‘नापीति, ‘खं’ साधनं, एवञ्च  
केवलान्वयिन्यपि नाव्याप्तिः ज्ञेयत्वादिखमानाधिकरणघटाभावादिप्र-  
तियोगित्वाभावस्य वाच्यत्वादौ यत्त्वादिति भावः । ‘पर्वतीयवह्नेरिति,  
एवं महानसीयवह्नेः<sup>(१)</sup> पर्वतीयधूमसमानाधिकरणाभावप्रतियोगि-  
त्वात् कुत्रापि वक्तुं न तादृशाभावाप्रतियोगित्वमित्यर्थः । नन्वप्रति-  
योगिपदेन प्रतियोगितानवच्छेदकसाध्यतावच्छेदकावच्छिन्नं वक्तव्य-  
मित्यखरसादाह, ‘द्रव्यत्वादेरिति, ‘अव्याप्यवृत्तौति संयोगादीत्यर्थः,  
‘प्रतियोगिविरोधित्वमिति प्रतियोग्यधिकरणावृत्तित्वमित्यर्थः, प्रति-  
योग्यनधिकरणवृत्तित्वोक्तौ उक्ताव्याप्तितादवस्थ्यात् अये संयोगी

(१) एवमपर्वतीयवह्नेरिति ख० ग० ।

धित्वं व्याप्यवृत्तित्वं वा अभावविशेषणं देयं, संयोगादौ साध्ये सत्त्वादेरनैकान्तिकत्वाभावप्रसङ्गात् । न हि प्रतियोगिविरोधी संयोगादेरपरोऽत्यन्ताभावोऽस्ति, आधिकारणभेदेनाभावभेदाभावात् । नापि साधनवन्निष्ठान्योन्याभावाप्रतियोगिसाध्यवत्त्वं व्याप्तिः मूले

सत्त्वादित्यत्रातिव्याप्यभिधानासङ्गतेषु । 'व्याप्येति स्वसमानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगितानवच्छेदको य एकव्यक्तिमात्रवृत्तिधर्मस्तद्वत्त्वं व्याप्यवृत्तित्वं, प्रमेयत्वादिजादाय संयोगाभावादेरपि व्याप्यवृत्तित्ववारणाय एकव्यक्तिमात्रवृत्तौति, कालिकविशेषणत्व-दैशिकविशेषणताविशेषातिरिक्तसम्बन्धेनावच्छिन्नवृत्तिको यस्तदन्यत्वं वा व्याप्यवृत्तित्वं<sup>(१)</sup> व्यतिरेकिधर्ममात्रस्यैव काले दिगुपाधौ चाव्याप्यवृत्तितया अवच्छिन्नवृत्तिकत्वात् तृतीयान्तं वृत्तिविशेषणं, व्याप्यवृत्तिश्च न किञ्चिदवच्छिन्ना, न तु अनवच्छिन्नवृत्तिमत्त्वं<sup>(२)</sup> व्याप्यवृत्तित्वं उक्ताव्याप्तेस्तादवस्थात् अग्रे संयोगी सत्त्वादित्यत्रातिव्याप्यभिधानासङ्गतेषु संयोगाभावस्यापि गुणादौ निरवच्छिन्नवृत्तिमत्त्वात् ।

केचित्तु स्वसमानाधिकरणात्यन्ताभावाप्रतियोगित्वं व्याप्यवृत्तित्वं, प्रतियोगिता च वैशिष्ट्य-व्यासव्यवृत्तिधर्मानवच्छिन्नत्वेन विशेषणीया तेन नाप्रसिद्धिरित्याहुः ।

(१) अत्र दैशिकविशेषणतापदेन दिक्कृतविशेषणता ग्राह्या ।

(२) निरवच्छिन्नवृत्तिमत्त्वमिति ख० ।

दृक्षः कपिसंयोगवान्नेत्यबाधितप्रतीतेः तदन्योन्याभाव-  
स्यापि तत्र सत्त्वात् । न चैवं भेदाभेदः, अवच्छेदकभेदेन

‘अनैकान्तिकत्वेति व्यभिचरितत्वेत्यर्थः, सत्तासमानाधिकरण-  
संयोगादेरभावः प्रतियोग्यसमानाधिकरणो व्याप्यवृत्तिश्च न भवत्येव  
द्रव्ये तस्य संयोगसमानाधिकरणत्वात् किन्तु घटत्वादेरभाव एव  
तादृशसदप्रतियोगित्वात् संयोगस्येति भावः । ननु सत्ताधिकरण-  
गुणादिनिष्ठसंयोगाभावो द्रव्यवृत्तिसंयोगाभावादतिरिक्तः स च  
प्रतियोग्यसमानाधिकरणो व्याप्यवृत्तिश्च तत्प्रतियोगित्वात् संयोगस्य  
नातिव्याप्तिरित्यत आह, ‘न हीति, ‘अधिकरणेति, गौरवात्  
समानाभावाच्चेति भावः । साधिकरणे निरवच्छिन्नवृत्तिमत्त्वं यदि  
स्वसमानाधिकरणत्वमुच्यते तदा तु न कोऽपि दोष इत्यवधेयं । ‘तद-  
न्योन्याभावस्य’ कपिसंयोगवदन्योन्याभावस्य, ‘तत्र’ वृत्ते, तथाच कपि-  
संयोगी एतद्वृत्तत्वादित्यादावव्याप्तिरिति भावः, ‘भेदाभेद इति भेद-  
सहितोऽभेद इत्यर्थः, मध्यपदलोपिसमासात्, साहित्यं सामानाधि-  
करणं । यदा ‘न चैवमित्यनन्तरं वृत्त इतिशेषः, ‘भेदाभेद इत्यत्र भेदा-  
भेदौ अस्य स्तः इत्यर्थः, “अ-इकौ मत्वर्थं” इत्यनेनाप्रत्ययः, यथा  
वैजयन्ती अस्मिन् तिष्ठतीति वैजयन्तो विष्णुः, ‘वैजयन्ती’ वनमाला,  
तथाच वृत्ते भेदाभेदवान् इत्यर्थः । ‘तत्सत्त्वेति तयोरेकत्र सत्त्वेत्यर्थः ।  
किञ्च तत्रेत्यादौ चादिप्रत्ययेन सप्तम्यादिरिव साधनसमानाधिकर-  
णान्योन्याभावाप्रतियोगिसाध्यवत्त्वमित्यत्र वज्रब्रीह्युत्तरककारेण  
मतुप्रत्ययादिः स्मर्यन्ते तेन च व्याप्यत्वरूपसम्बन्धाश्रयः साध्यव्या-



तत्सत्त्वाभ्युपगमात् साधनवन्निष्ठान्योन्याभावाप्रति-  
योगि साध्यवद्यस्येति षष्ठ्यर्थव्याप्य-व्यापकभावानिरू-  
पणात् साध्य-साधनयोर्व्याप्तिनिरूप्यत्वात् वह्निसत्यव्य-  
तस्य धूमवत्सहानसनिष्ठान्योन्याभावप्रतियोगित्वाच्च

प्यत्वरूपसम्बन्धाश्रयो वा स्मर्यते, विग्रहवाक्यस्य षष्ठ्या अर्थवतो बद्ध-  
व्रीद्युत्तरककारस्मारितमतुवाद्यर्थत्वनियमात् तत्र प्रथमे तदेकदेशे  
व्याप्यत्वे निरूपितत्वसम्बन्धेन साध्यवतोऽन्वयः, द्वितीये तदेकदेशे साध्ये  
आधेयतासम्बन्धेन साध्यवतोऽन्वयः, तथाच साधनसमानाधिकरणा-  
न्योन्याभावाप्रतियोगिसाध्यवन्निरूपितव्याप्यत्वं साधनसमानाधिक-  
रणान्योन्याभावाप्रतियोगिसाध्यवदृत्तिसाध्यव्याप्यत्वं वा लक्षणवाक्यार्थः,  
स च दुर्ज्ञेयः घटकौभूतव्याप्यत्वस्यैवाज्ञानादित्याह, 'साधनेति, 'इति-  
षष्ठ्यर्थेति इत्यत्र विग्रहवाक्ये या षष्ठी तदर्थस्य व्याप्यत्वस्याज्ञानादित्यर्थः,  
तथाच तदज्ञाने तद्वत् एव प्रकृतलक्षणवाक्यस्वककारस्मारितमतुवा-  
द्यर्थत्वनियमेन प्रकृतलक्षणवाक्यार्थस्यापि दुर्ज्ञेयत्वमिति भावः । ननु  
विग्रहवाक्यस्य षष्ठ्याः संयोगत्वादिरूपेण संयोगादिरूपहेतुतावच्छेदक-  
सम्बन्ध एवार्थो न तु व्याप्यत्वादिरित्यस्वरसादाह, 'साध्य-साधनयोरिति  
भावप्रधानो निर्देशः साध्यत्व-साधनत्वयोरित्यर्थः, 'व्याप्तिनिरूप्यत्वादिति  
व्याप्तिज्ञानाधीनज्ञानविषयत्वादित्यर्थः । साध्यत्वं हि व्याप्तिप्रतियो-  
गित्वं, साधनत्वं व्याप्यनुयोगित्वं तथाचात्माश्रय इति भावः । ननु  
साध्यत्वं साधनत्वं न प्रवेशनीयं धूमत्व-वह्नित्वादिनैव विशिष्य व्याप्ति-

विशेषाभावकूटादेवाभावव्यवहारोपपत्तौ सामान्या-  
भावे मानाभावात् । नापि साधनसमानाधिकरण-  
यावद्धर्मानिरूपितवैयधिकरणानधिकरणसाध्यसामा-

निर्वक्तव्या अतो दूषणान्तरमाह, 'वङ्गिमत्पर्वतस्येति । ननु यत्समाना-  
धिकरणान्योन्याभावप्रतियोगितासामान्यं यद्धर्मावच्छिन्नपर्याप्ताव-  
च्छेदकताकं न भवति तद्धर्मावच्छिन्नेन सह तस्य सामानाधिकरण्य-  
मित्येव तस्यार्थः, एवञ्च धूमसमानाधिकरणान्योन्याभावप्रतियोगित्वं न  
वङ्गित्वावच्छिन्नावच्छेद्यमिति नाव्याप्तिरित्यत आह, 'विशेषाभावेति,  
'अभावव्यवहारेति हृदो वङ्गिसामान्याभाववानित्यादिवङ्गित्वादि-  
सामान्यधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावप्रकारकप्रतीत्युपपत्तेरित्यर्थः,  
'सामान्याभाव इति सामान्याभावस्यातिरिक्तस्य सामान्यावच्छिन्नप्रति-  
योगिताकत्वे मानाभावादित्यर्थः<sup>(१)</sup> किन्तु विशेषाभावस्यैव वङ्गित्वादि-  
सामान्यधर्मः प्रतियोगितावच्छेदकः, तथाच धूमसमानाधिकरणानां  
प्रत्येकं तत्तद्वङ्गिमदन्योन्याभावानामेव प्रतियोगितावच्छेदको वङ्गि-  
त्वावच्छिन्नोवङ्गिरित्यव्याप्तिस्तदवस्यैव । न चैवं धूमवान् वङ्गिसामा-  
न्याभाववान् इत्यादिप्रत्ययस्यापि प्रमात्वापत्तिः वङ्गित्वावच्छिन्नप्रति-  
योगिताकस्य तत्तद्वङ्गिभावस्य धूमवति सत्त्वादिति वाच्यं । वङ्गित्वा-  
दिसामान्यधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वं तादृशप्रतियोगिताकत्वसम्ब-  
न्धेन वङ्गित्वावच्छिन्नो वा व्यासज्यवृत्तिः तच्च विशेषाभावकूट एव पर्या-

(१) विशेषाभावातिरिक्तस्य सामान्यधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वे  
मानाभावादित्यर्थ इति ख० ग० ।

नाधिकारण्यं साधनसमानाधिकारणस्य प्रमेयत्वादे-  
र्वैयधिकारण्याप्रसिद्धेः महानसादौ समवायितया  
वह्नि-वह्निमतोरत्यन्तान्योन्याभावयोः सत्त्वात् धूमा-

प्रोति न तु प्रत्येकाभाव इति, द्रव्यं द्रव्यत्व-गुणत्वोभयवदिति प्रत्यच-  
वत्तत्प्रतीतेरप्रमात्वादिति हृदयं । 'साधनेति साधनसमानाधिक-  
रणा यावन्तोद्धर्मास्तेषां वैयधिकारणस्यानधिकरणं यत्साध्यं तत्सामा-  
नाधिकरणमित्यर्थः । अत्र साधनवैयधिकारणानधिकरणेत्युक्तौ द्रव्यं  
सत्त्वादित्यादावतिव्याप्तिरतः 'साधनसमानाधिकरणधर्मेति, धूम-  
वान् वज्जेरित्यादावपि धूमादेर्वज्जादिसमानाधिकरणद्रव्यत्वादि-  
वैयधिकारणानधिकरणत्वादतिव्याप्तिरतः 'यावदिति, वैयधिकारणञ्च  
तदनधिकरणवृत्तित्वं, न तु तदधिकरणवृत्तित्वं, 'प्रमेयत्वादेर्वैय-  
धिकारण्याप्रसिद्धेरित्युत्तरग्रन्थासङ्गतेः । न च साधनसमानाधिकरण-  
यावद्धर्माधिकरणप्रसिद्ध्या तदनधिकरणमप्यप्रसिद्धमिति वाच्यं ।  
प्रत्येकनिरूपितवैयधिकारणस्योक्तत्वात् । नन्वेवं वह्निमान् धूमादि-  
त्यादौ वज्जेर्धूमसमानाधिकरणमहानसत्त्वाद्यनधिकरणायः पिण्डादि-  
वृत्तित्वाधिकरणतया अव्याप्तिः । न च वैयधिकारणपदेन तद-  
नधिकरणमात्रवृत्तित्वं वक्तव्यमिति<sup>(१)</sup> वाच्यं । रूपवान् पृथिवी-  
त्वादित्यादावव्याप्तेः पटरूपस्य पृथिवीत्वसमानाधिकरणयावद्धर्मा-  
न्तर्गतघटत्वानधिकरणमात्रवृत्तित्वात् घटीयरूपस्य पृथिवीत्वसमाना-

(१) तदनधिकरणमात्रवृत्तित्वमुक्तमिति ख० ।

दावप्युक्तलक्षणाभावाच्च । अथानौपाधिकः सम्बन्धो-  
व्याप्तिः उपाधिश्च साध्यव्यापकत्वे सति साधनाव्यापकः,  
व्यापकत्वन्तु तद्वन्निष्ठात्यन्ताभावाप्रतियोगित्वं, व्यभि-  
चारे चावश्यमुपाधिः, प्रतियोगित्वं न विरोधित्वं सहा-

धिकरणयावदन्तर्गतपटत्वानधिकरणमात्रवृत्तित्वादिक्रमेण कस्यापि  
रूपस्य साधनसमानाधिकरणयावद्धर्माप्रत्येकनिरूपितवैयधिकरणा-  
नधिकरणत्वाभावात् गुणान्यत्वविशिष्टसत्तावान् जातेरित्यादावति-  
व्याप्तेश्च विशिष्टस्यानतिरिक्तत्वादिति चेत् । न । साधनसमानाधि-  
करणा यावन्तो धर्मास्तत्रत्येकानधिकरणमात्रवृत्ति यद्धर्मावच्छि-  
न्नाधिकरणत्वं तादृशधर्मभिन्नं यत्साध्यतावच्छेदकं तदवच्छिन्नसा-  
मानाधिकरणस्य विवक्षितत्वादिति दिक् ।

ननु व्यतिरेकित्वेन धर्मा विशेषणीयः, यद्वा यावत्पदं तादृ-  
शस्य कस्यापि धर्मस्य अनधिकरणमात्रवृत्तीतिस्फोरणाय, तथाच  
साधनसमानाधिकरणयत्किञ्चिद्धर्मानधिकरणमात्रवृत्ति यद्धर्माव-  
च्छिन्नाधिकरणत्वं तद्धर्मभिन्नं यत्साध्यतावच्छेदकं तदवच्छिन्नसामा-  
नाधिकरणं इति<sup>(१)</sup> पर्यवसितमिति नायं दोष इत्यस्वरसादाह,  
'महानसादाविति, 'धूमादावपौति, अत्र तदनधिकरणपदेन तद-

(१) साधनसमानाधिकरणयत्किञ्चिद्धर्माधिकरणवृत्ति यद्यद्धर्माव-  
च्छिन्नाधिकरणत्वं तत्तद्धर्मभिन्नं यत् साध्यतावच्छेदकं तत्तदवच्छिन्न-  
सामानाधिकरणमितीति ख० ।

नवस्थाननियमलक्षणं गोत्वाश्वत्वयोरतथात्वात् अन्यो-  
न्याभावप्रतियोगिन्यसत्त्वाच्च । किन्तु यथाधिकरणा-  
भावयोः स्वरूपविशेषः सम्बन्धः तथा प्रतियोगित्वमनु-

भावाधिकरणं तद्वद्भिन्नत्वञ्च वक्तव्यसुभयथापि धूमसमानाधिकरण-  
यत्किञ्चिद्भूमा वल्लिरेव समवायेन तदभावाधिकरणं तद्वद्भिन्नत्वञ्च  
महानसादावेव तद्वृत्तित्वाद्द्वल्लित्वावच्छिन्नाधिकरणताया अव्याप्ति-  
रिति भावः ।

मिश्रास्तु अत्र वैयधिकरणं तदनधिकरणवृत्तित्वं तदधिकरणा-  
वृत्तित्वं वा आद्ये आह, 'प्रमेयत्वादेरिति, द्वितीयमपि तद्वन्निष्ठा-  
त्यन्ताभावप्रतियोगित्वं, तद्वन्निष्ठान्योन्याभावप्रतियोगितावच्छेदकत्वं  
वा द्वयमप्ययुक्तमित्याह, 'महानसादावितीत्याहुः ।

आचार्यीयलक्षणमाशङ्कते, 'अथेति, 'अनौपाधिकः सम्बन्ध इति  
उपाध्यभावविशिष्टं साध्यसामानाधिकरणमित्यर्थः । वैशिष्ट्यञ्चैकाधि-  
करणवृत्तित्वं, उपाध्यभावस्य सम्बन्धसामान्येन ग्राह्यः<sup>(१)</sup> अन्यथा द्रव्यं  
सत्त्वादित्यादौ गुणवत्त्वाद्युपाधेरभावस्य सत्त्वादौ सत्त्वादतिव्याप्यापत्तेः,  
न तु व्यभिचारितासम्बन्धेन साधनाव्यापकत्वदलवैयर्थ्यापत्तेः<sup>(२)</sup> ।

(१) सम्बन्धत्वावच्छिन्नसंसर्गात्प्रतियोगिताक इत्यर्थः, सद्देतौ कस्या-  
प्युपाधित्वाभावात् नाव्याप्तिसम्भावना ।

(२) व्यभिचारित्वसंसर्गावच्छिन्नप्रतियोगिताकस्य उपाध्यभावस्य व्याप्ति-  
लक्षणघटकत्वे सर्वत्र साध्यव्यापकत्वमेव उपाधिलक्षणं न तु  
तत्र साधनाव्यापकत्वप्रवेशः, सद्देतौ साध्यव्यापकस्य उपाधित्वेऽपि

योगित्वमपि, अभावविरहात्मत्वं वेति चेत्, यत्किञ्चित्साध्यव्यापक-साधनाव्यापकधर्षनिषेधो न धूमादौ, प्रकृतसाध्यव्यापक-साधनाव्यापकधर्षश्च सिद्धसिद्धिभ्यां न निषेधुं शक्यः यावत्साध्यव्यापके प्रमेयत्वादौ साध-

केचित्तु उपाध्यभावः उपाधितावच्छेदकसम्बन्धेन उपाधिसामान्या-  
भाव एव ग्राह्यः, द्रव्यं सत्त्वादित्यादौ च सत्त्वादावुपाधितावच्छेदक-  
सम्बन्धेन द्रव्य-सत्त्वान्यतरत्वाद्युपाधेरेवाभावस्यासत्त्वान्नातिव्याप्तिः । न  
च तादात्म्येनैतद्विच्छेदके संयोगेन धूमसाध्यके व्यभिचारिण्यति-  
व्याप्तिः तत्र साधनवृत्तेर्धर्मस्य साधनव्यापकत्वनियमेनोपाधित्वा-  
सम्भवादिति वाच्यम् । तस्य विरुद्धत्वेन साध्यसामानाधिकरण्यदत्ते-  
नैव वारणादित्याहुः ।

तदसत् प्रमेयत्वान्यत् प्रमेयत्वात् घटाभावान्यो घटाभावा-  
दित्यादौ व्यभिचारिण्यतिव्याप्तेः तत्र साधनावृत्तिधर्मस्यैव उपाधि-  
त्वसम्भवादिति<sup>(१)</sup> दिक् ।

व्यभिचरितत्वसम्बन्धेन तदभावस्य हेतौ सत्त्वान्न कोऽपि दोषः पदमा-  
दधाति व्याप्यस्य व्यापकाव्यभिचरितत्वेन व्यापकव्यापकस्याप्यव्यभिच-  
रितत्वमिति ।

(१) अत्र साधनान्तर्भावस्यैव साधनस्य व्यभिचरिततया साधनवृत्तिधर्म-  
मात्रस्य साधनाव्यापकत्वविरहेण उपाधित्वासम्भवादिति भावः ।

नाव्यापकत्वं यावत्साधनाव्यापके च घटत्वादौ साध्य-  
व्यापकत्वं निषिध्यत इति चेत् । न । व्यधिकरणत्वात् या-  
वत्साधनाव्यापकमव्यापकं यत्साध्यस्य, यावत्साध्यव्या-  
पकं व्यापकं वा यस्य तत्त्वं तदिति चेत् । न । सौपाधेरपि

ननु उपाधित्वं साध्यसमव्याप्तत्वे सति<sup>(१)</sup> साधनाव्यापकत्वं सम-  
व्याप्तत्वञ्च व्याप्तिघटितं तच्च व्याप्यत्वमनौपाधिकत्वान्तररूपमित्यनव-  
स्येत्यत आह, 'उपाधिश्चेति । ननु तथापि व्यापकत्वं व्याप्तिनिरूपकत्वं  
तच्च व्याप्यत्वमनौपाधिकत्वान्तररूपमित्यनवस्था तदवस्यैवेत्यत आह,  
'व्यापकत्वन्विति । नन्वेवं यत्र व्यभिचारिणि नौपाधिसम्भवस्तत्राति-  
व्याप्तिरित्यत आह, 'व्यभिचारे चेति । ननु प्रतियोगित्वं विरोधित्वं  
विरोधित्वञ्च नियतसहानवस्थानं नियतसहानवस्थानञ्च तदभावव्या-  
प्यत्वं तदपि च व्याप्यत्वमनौपाधिकत्वान्तररूपमित्यनवस्येत्यत आह,  
'प्रतियोगित्वञ्चेति प्रतियोगित्वं सहानवस्थाननियमलक्षणं विरोधित्वं  
नैत्यन्वयः, 'अतथात्वात्' प्रतियोग्यनुयोगिभावानापन्नत्वात् ।

(१) तथाचोक्तं आचार्यैः "समासमाविनाभावौ एकत्र स्तो यदा यदा  
समेन यदि नो व्याप्तस्तयोर्हीनोऽप्रयोजकः" इति, 'यदा यदा'  
यस्मिन् यस्मिन् समये, 'एकत्र' एकधर्म्मिणि, 'समासमाविनाभावौ  
स्तः' साध्यस्य समव्याप्तत्वं हेतोः समव्याप्तत्वाभावश्च वर्त्तते, तदा स  
उपाधिरिति शेषः, 'समेन यदि नो व्याप्तः' यदि साध्यसमव्याप्तत्वा-  
भावः, तर्हि 'तयोर्हीनः' 'तयोः' साध्यसमव्याप्तत्व-हेत्वसमव्याप्तत्वयोः,  
'हीनः' एकतरेण विरहितः, 'अप्रयोजकः' व्यभिचाराननुमापकः  
इत्यर्थः ।

तथात्वात्, तथाहि साधनस्य वहेरव्यापकं यावदाद्र्-  
न्यनन्तत् प्रत्येकमव्यापकं साध्यधूमस्य, द्वितीये साध्य-  
धूमस्य व्यापकमाद्र्न्थनं तत् व्यापकं महानसीयवहेः ।

‘अन्योन्येति’<sup>(१)</sup> । इदमापाततः येन सम्बन्धेनाभावस्तेनैव सम्बन्धेन  
व्याप्यत्वं सहानवस्थाननियमपदेनावश्यं व्यक्तव्यम्, अन्यथा समवा-  
यादिसम्बन्धावच्छिन्नवज्जाद्यभाववति महानसादौ संयोगेन वज्जादे-  
वृत्तेरव्याप्यापत्तेः, तथाचान्योन्याभावप्रतियोगिनि नाव्याप्तिः अन्यो-  
न्याभावस्य तादात्म्यसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकतया तेन सम्बन्धेन  
प्रतियोगिनः तदभावव्याप्यत्वात्, किन्तु संयोगादिसम्बन्धावच्छिन्नस-  
त्ताद्यभावप्रतियोगिन्यव्याप्तिः तेन सम्बन्धेन प्रतियोगिसत्तादेखादभावा-  
व्याप्यत्वात् घटत्वादेर्द्रव्यत्वाद्यभावप्रतियोगित्वापत्तिश्च । स्वाभावविरो-  
धित्वमित्युक्तौ च स्वाभाव इत्यत्र षष्ठ्यर्थस्य दुर्बलत्वमित्येव दूषणं  
भारं । ‘तथा प्रतियोगित्वमपीति, प्रतियोग्यभावयोः स्वरूपसम्बन्ध-  
विशेष इति शेषः । ‘अभावविरहात्म्यत्वं वेति यस्याभावस्याभावो यो  
भवति स तस्याभावस्य प्रतियोगी भवतीत्यर्थः । भवति च घटा-  
भावस्य प्रतियोगी घटो घटाभावस्याभावः, तदभावत्वं तत्प्रतियोगि-

(१) द्रव्यत्व-गुणयोः परस्परं सहानवस्थाननियमलक्षणविरोधित्वाभावे-  
ऽपि द्रव्यत्वं न गुण इति प्रतीत्या अन्योन्याभावप्रतियोगित्वं वक्तव्य-  
एवेति भावः ।



नापि साध्यं यावद्व्यभिचारि तद्व्यभिचारित्व-  
मनौपाधिकत्वं, साध्यव्यभिचारित्वस्यैव गमकत्वसम्भ-  
वात्, तच्च दूषितम् ।

त्वमिति तु निष्कर्षः, घटाभावस्यापि घटप्रतियोगित्वात् । प्रति-  
योगितावच्छेदकस्येव तादात्म्यसम्बन्धेन प्रतियोगिनोऽप्यन्योन्याभावा-  
भावतया नान्योन्याभावप्रतियोगिन्यव्याप्तिः, न वा अन्योन्याभाव-  
प्रतियोगितावच्छेदकेऽतिव्याप्तिः, अत्यन्ताभावाभावस्य प्रतियोगि-  
रूपत्वेन घटादिभेदस्य घटादिभेदात्यन्ताभावाभावरूपतया घटादि-  
भेदात्यन्ताभावरूपस्य घटत्वादेः प्रतियोगितावच्छेदकधर्मस्यापि  
घटाद्यन्योन्याभावप्रतियोगित्वात् विवेचितञ्चेदं 'साध्याभाववदवृत्ति-  
त्वमिति प्रथमलक्षणव्याख्यानावसरे । न च तथापि संयोगादिसम्बन्धा-  
वच्छिन्नगुणाद्यभावरूपव्यधिकरणसम्बन्धावच्छिन्नाभावप्रतियोगिन्य-  
व्याप्तिः तादृशव्यधिकरणसम्बन्धावच्छिन्नाभावस्य केवलान्वयितया तद-  
भावत्वस्य तत्प्रतियोगिन्यभावादिति वाच्यम् । आकाशाद्यभावस्य  
केवलान्वयित्वेऽपि प्रतियोगित्वव्यवहारान्यथानुपपत्त्या आकाशादौ  
तदभावत्वस्यैव व्यधिकरणसम्बन्धावच्छिन्नाभावस्य केवलान्वयित्वेऽपि  
तदभावत्वस्य तत्प्रतियोगिन्यभ्युपगमात् । केवलान्वयिलक्षणे प्रतियो-  
ग्यधिकरणानिरूपितवृत्तिमत्त्वस्यात्यन्ताभावविशेषणतया च न केव-  
लान्वयित्वानुपपत्तिः । न चैवं समवायसम्बन्धेन गुणादिमति घटे  
तादृशगुणाद्यभावाभावप्रत्ययापत्तिरिति वाच्यं । प्रतियोगितावच्छे-

नापि कात्स्न्येन सम्बन्धो व्याप्तिः एकव्यक्तिके तद्भावात् नानाव्यक्तिकोऽपि सकलधूमसम्बन्धस्य प्रत्येकवह्नावभावात् । अत एव न कात्स्न्येन साध्येन सम्बन्धो व्याप्तिः विषमव्याप्ते तद्भावाच्च । न च यावत्साधनाश्रयाश्रितसाध्यसम्बन्धः, साधनाश्रये महानसादौ सकले प्रत्येकवह्नेराश्रितत्वाभावात् ।

दकसम्बन्धेन प्रतियोगिमत्त्वस्यैवाभावाभावप्रत्ययनियामकत्वं, अन्यथा समवायेन घटादिमति कपाले संयोगसम्बन्धावच्छिन्नघटात्यन्ताभावाभावप्रत्ययापत्तेः । एवं प्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्धेन प्रतियोगिमत्तावच्छेदककालसादाद्यैवात्यन्ताभावाभावप्रत्ययः, अन्यथोत्पत्तिकालेऽपि संयोगसम्बन्धावच्छिन्नैतद्घटात्यन्ताभावो नास्तीति प्रत्ययापत्तेः । अतो गुणादिमत्यपि कालादौ न तादृशगुणाद्यभावाभावप्रत्यय इति मणिलतामाश्रयः ।

केचित्तु नेदं प्रतियोगितासामान्यनिर्व्वचनं<sup>(१)</sup> तस्य स्वरूपसम्बन्धविशेषरूपत्वात्, किन्तु प्रकृतलक्षणघटकप्रतियोगितामात्रनिर्व्वचनमेव तेनान्योन्याभावस्य व्यधिकरणसम्बन्धावच्छिन्नाभावस्य च प्रतियोगिन्यव्याप्तिः<sup>(२)</sup> अन्योन्याभावप्रतियोगितावच्छेदकेऽतिव्याप्तिश्च न

(१) प्रतियोगितासामान्यलक्षणमित्यर्थः ।

(२) तेनान्योन्याभाव-व्यधिकरणसम्बन्धावच्छिन्नाभावप्रतियोगिनोरव्याप्तिरिति ख० ग० ।

नापि साधनसमानाधिकारणयावद्यत्समानाधिकारणसाध्यसामानाधिकारण्यं, यावद्वर्त्तमानाधिकारण्यं हि यावत्तद्वर्त्तमानाधिकारणाधिकारणत्वं तथाप्रसिद्धं साधनसमानाधिकारणसकलमहानसत्त्वाद्यधिकारणाप्रतीतेः ।

दोषायेति भावः । न चैवं प्रकृतलक्षणेऽत्यन्ताभावपदवैचर्यमिति वाच्यम् । तस्य स्वरूपक्रीर्तनमात्रत्वादित्याहुः । तदसत् आचायैरभावविरहात्मत्वं वस्तुनः प्रतियोगितेत्यनेन प्रतियोगितासामान्यस्यैव निर्वचनात् तस्योक्ताभिप्रायेणैवोपपादने प्रकृतेऽपि प्रतियोगितासामान्यलक्षणत्वे चतिविरहात् ।

‘अभावविरहेत्यत्र षष्ठीतत्पुरुषसमासात् षष्ठ्यर्थः प्रतियोगित्वं’<sup>१)</sup> तच्च स्वरूपसत्त्वविशेषरूपमेव वाच्यम् तथाच लाघवादावग्रकत्वाच्च तदेव प्रतियोगित्वं न तु अभावविरहात्मत्वं गौरवादित्यस्वरसः ‘वाग्रद्धेन सूचितः । ‘यत्किञ्चिदिति यत्किञ्चित्साध्यव्यापकयत्किञ्चित्साधनाव्यापकधर्माभाव इत्यर्थः, गुणवत्त्वादिसाध्यव्यापकप्रमेयत्वादिसाधनाव्यापकस्य द्रव्यत्वादेर्धूमादौ सत्त्वादिति भावः । ‘प्रकृतेति प्रकृतसाध्यव्यापक-प्रकृतसाधनाव्यापकधर्मस्येत्यर्थः । ‘निषेद्धुमिति प्रकृतसाधननिष्ठनिषेधप्रतियोगित्वेन ज्ञातुमशक्य इत्यर्थः । शङ्कते, ‘यावदिति, ‘निषिध्यत इति अनौपाधिकत्वपदेन निषेध-

(१) षष्ठ्यर्थतया प्रतियोगित्वं षट्कमिति ख०, ग० ।

नापि स्वाभाविकः सम्बन्धो व्याप्तिः, स्वभावजन्यत्वे  
तदाश्रितत्वादौ वा अव्याप्त्यतिव्याप्तेः ।

नाप्यविनाभावः, देवत्वान्वयिन्यभावात् ।

प्रतियोगितया बोध्यत इत्यर्थः, यावत्साध्यव्यापके साधनाव्यापकत्वा-  
भावो यावत्साधनाव्यापके साध्यव्यापकत्वाभावो वा अनौपाधिकत्व-  
पदार्थ इति भावः । 'व्यधिकरणत्वादिति निरुक्तनिषेधस्य हेतु-  
निष्ठसाध्यसामानाधिकरण्यव्यधिकरणत्वादित्यर्थः, तथाच तादृशा-  
नौपाधिकत्वविशिष्टं साध्यसामानाधिकरण्यं सर्वत्र हेतौ नास्तीत्य-  
व्याप्तिरिति भावः । वैयधिकरण्यबुद्धरति, 'यावदिति, 'यत्साध्यस्य'  
सत्साधनसामानाधिकरण्यसाध्यस्य, 'यस्य' साधनस्य, 'तत्' अनौपा-  
धिकत्वं, तथाच यावत्साध्यापकाव्यापकसाध्यकत्वं, यावत्साध्य-  
व्यापकाव्यापकत्वं वाऽनौपाधिकत्वमित्यर्थः । 'तथाहीत्यादि, इदञ्च  
यथाश्रुताभिप्रायेण, यत्साधनाव्यापकतावच्छेदकं यावत् साध्यता-  
वच्छेदकावच्छिन्नाव्यापकतावच्छेदकं तत्त्वं, साध्यतावच्छेदकावच्छिन्न-  
व्यापकतावच्छेदकं यावत् यद्दुर्मावच्छिन्नव्यापकतावच्छेदकं तद्दुर्मा-  
वच्छिन्नत्वं वा अनौपाधिकत्वं इत्यर्थे तु<sup>(१)</sup> न कोपि दोष इत्यवधेयं ।

'नापीति, साध्यं यावतामव्यभिचारि यावदभाववदवृत्ति ताव-  
तामव्यभिचारित्वं तावदभाववदवृत्तित्वं साधनस्थानौपाधिकत्वमि-  
त्यर्थः । सौपाधौ तु साध्यमुपाधेरेवाव्यभिचारि न च साधनं तद-

(१) इत्युक्ते तु इति ग० ।

अथ सम्बन्धमात्रं व्याप्तिः व्यभिचारिसम्बन्धस्यापि केनचित् सह व्याप्तित्वात्, धूमादिव्याप्तिस्तु विशिष्यैव निर्व्वक्तव्येति, तन्न, लिङ्गपरामर्शविषयव्याप्तिस्वरूप-

व्यभिचारौति तद्भवच्छेद इति भावः । तर्हि लाघवात् साध्याव्यभिचारित्वमेव तदस्त्वित्याह, 'साध्येति, अत्रेष्टापत्तेराह, 'तच्चेति, केवलान्वयव्याप्तेरिति भावः । ननु तर्हि केवलान्वयिसंग्रहार्थमेव गुरुशरीरस्याप्युक्तलक्षणस्यादरोऽस्त्विति चेत् । न । अत्रापि केवलान्वयिसंग्रहतादवस्थात् तत्र हि साध्यस्य प्रमेयत्वादेर्यदन्ताभाववदवृत्तित्वं तादृशधर्माप्रसिद्धेरिति हृदयम् ।

लीलावतीकारमतमाशङ्क्य<sup>(१)</sup> निराकरोति, 'नापीति, 'कार्त्स्न्येनेति, विशेषणे तृतीया, तथाच कार्त्स्न्येन कार्त्स्न्यविशिष्टेव सर्व्वेणेति यावत् । अत्र कार्त्स्न्ये साधनस्य साध्यस्य साधनाश्रयस्य साधनसमानाधिकरणधर्मस्य वा विवक्षितम् । आद्ये कृत्स्नेन साधनेन साध्यस्य सामानाधिकरणमित्यर्थः, तच्चैकव्यक्तिहेतुकस्थले नास्तीत्याह, 'एकव्यक्तिक इति, अनेकाशेषत्वरूपस्य कार्त्स्न्यस्याभावादिति भावः ।

अत्रैव पक्षे दूषणान्तरमाह, 'नानेति । न च कृत्स्नेषु साध्यसम्बन्ध इत्यर्थः इति वाच्यं । तथाप्येकव्यक्तिहेतुकस्थलेऽप्याप्तेः पृथिवी पृथिवीत्वव्यापकजातेरित्यादावतिव्याप्तेश्च । अर्थाभिधानपुरःसरं द्वितीयं

(१) लीलावतीकारणक्षणाशाशङ्क्येति ख०, ग० ।

निरूपणप्रस्तावे लक्षणाभिधानस्यार्थान्तरत्वात् । न च सम्बन्धमात्रं तथा, तद्दोषादनुमित्यनुत्पत्तेः ।

निरस्यति, 'अत एवेति एकव्यक्तिसाध्यकाव्याप्तेरेवेत्यर्थः, 'विषमव्याप्त-  
इति वङ्गिमान्धूमादित्यादावित्यर्थः, अयोगोलकौयवङ्गिसामाना-  
धिकरणस्य धूमेऽभावादिति भावः । इदमुपलक्षणं सङ्ख्यावान् परि-  
माणादित्यादिसमव्याप्तेऽप्यव्याप्तेः सकलसङ्ख्यासम्बन्धस्य कुत्रापि परि-  
माणेऽभावादित्यपि बोध्यं । अर्थपरिष्कारपूर्वकं तृतीयं निरस्यति,  
'न चेति, 'प्रत्येकवङ्गेरिति, इदमुपलक्षणं एकमात्रवृत्तिसाध्यकेऽव्या-  
प्तेऽप्येति बोध्यं<sup>(१)</sup> । अर्थपरिष्कारपूर्वकं चतुर्थं निरस्यति, 'नापीति,  
'यावद्दूर्गाधिकरणेति यावत्साधनसमानाधिकरणधर्माधिकरणवृ-  
त्तित्वमित्यर्थः, 'अप्रतीतेरिति । न च साधनसमानाधिकरणा-  
यावन्तो धर्मास्तेषां प्रत्येकनिरूपितं सामानाधिकरण्यं विवचणीय-  
मिति वाच्यं । धूमसमानाधिकरणानां यावद्दूर्गाणां महानसत्वादीनां  
प्रत्येकनिरूपितसामानाधिकरण्यस्यापि कुत्रापि वङ्गावभावादिति  
भावः । इदञ्च यथाश्रुताभिप्रायेण, यदि तु यद्दूर्गावच्छिन्नसामा-  
नाधिकरणत्वेन साधनसमानाधिकरण्यव्यापकत्वं तद्दूर्गावच्छिन्नसा-  
मानाधिकरण्यमिति विवक्ष्यते तदा नायं दोष इत्यवधेयं ।

टीकाकारलक्षणं शङ्कते, 'नापीति स्वाभाविकं साध्यसामाना-

(१) शब्दवान् गगनत्वादित्यादौ यावत्साधनाश्रयाप्रसिद्धत्वादव्याप्ति-  
रिति भावः ।

नापि व्याप्तिपदप्रवृत्तिनिमित्तमिदं सम्बन्धज्ञानेऽपि  
व्याप्तिपदाप्रयोगात् ।

धिकरणमित्यर्थः, व्यभिचारिणि तु साध्यसामानाधिकरण्यमौपा-  
धिकमिति भावः । स्वाभाविकत्वं हि हेतुस्वरूपजन्यत्वं, हेतुस्वरूपा-  
श्रितत्वं वा, आद्ये द्रव्यं पृथिवीत्वादित्यादौ पृथिवीत्वादिनिष्ठद्रव्य-  
त्वादिसामानाधिकरण्यस्य नित्यतया<sup>(१)</sup> अव्याप्तिः, द्वितीये द्रव्यं  
सत्त्वादित्यादौ व्यभिचारिण्यतिव्याप्तिरित्याह, 'स्वभावेति, 'स्वभाव-  
जन्यत्वे' हेतुस्वरूपजन्यत्वे, 'तदाश्रितत्वादौ वा,' स्वाभाविकपदार्थ-  
इति शेषः, 'अव्याप्त्यतिव्याप्तेरिति अव्याप्तिसहितातिव्याप्तेरित्यर्थः,  
अथपदलोपिसमासात्, अन्यथा इन्द्रद्वैविध्येन द्विवचन-नपुंसकलिङ्ग-  
तयोरन्यतरापत्तेः<sup>(२)</sup> 'तदाश्रितत्वादावित्यादिपदादनारोपितत्वपरि-  
ग्रहः, तत्रापि द्रव्यं सत्त्वादित्यादावतिव्याप्तिर्बोधा । सत्तायां द्रव्यत्व-  
सामानाधिकरण्यस्यानारोपितत्वात् ।

'अविनेति, 'विना' साध्येन विना साध्याभाववति, 'भावः' वृत्तिः,  
यस्य तद्भिन्नः साध्याभाववद्वृत्तिभिन्न इति यावत्, व्याप्य इति शेषः ।

(१) साध्यसामानाधिकरण्यपदेन अवश्यं हेतुतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्न-  
साध्यसामानाधिकरण्यस्य विवक्षणीयतया समवायसम्बन्धावच्छिन्नसामा-  
नाधिकरण्यस्य समवायसम्बन्धस्वरूपत्वात् समवायस्य नित्यत्वेन तस्यापि  
नित्यत्वमिति भावः ।

(२) इतरेतरइन्द्रपक्षे द्विवचनं समाहारइन्द्रपक्षे च नपुंसकत्वं प्रस-  
ज्येतेति भावः ।

क्षेत्रात्पयिनि क्षेत्रात्पयिधर्मात्सम्बन्धो व्यातिरे-  
दिति साध्यवद्ब्याहृत्तित्वं व्याप्तिः एतयोरनुमिति-  
विशेषजनकत्वं अनुमितिभावे पक्षधर्मात्तैव प्रयोगिका ।

अत्यन्ताभावान्योन्याभावभेदेन च भेदाच्च प्राथमिकाव्यभिचारित्वेन  
पौनरुक्त्यं<sup>(१)</sup> ।

केचित्तु 'अविनाभावः' हेत्वभावे साध्यविनाभावस्य साध्याभाव-  
वन्निष्ठाभावस्य प्रतियोगितासम्बन्धेनाभावः साध्याभावव्यापकत्वमिति  
यावत् । तथाच हेतोः साध्याभावव्यापकाभावप्रतियोगित्वं व्याप्ति-  
रिति फलितं । न चैवं सकलसाध्याभाववन्निष्ठाभावप्रतियोगित्व-  
मिति पूर्वोक्तेन पौनरुक्त्यं तत्रापि साकल्यस्य व्यापकत्वरूपत्वादिति  
वाच्यं । तत्र व्यापकत्वं साध्याभाववन्निष्ठाभावाप्रतियोगित्वमत्र तु  
व्यापकत्वं साध्याभाववन्निष्ठाभावस्य प्रतियोगितासम्बन्धेनाभाववत्त्वमिति  
भेदादित्याहुः ।

'अथेति, 'सम्बन्धमात्रं' साध्यसामानाधिकरण्यमात्रं, तत्र तत्सामा-  
नाधिकरण्यं तत्र तस्य व्याप्तिरिति यावत् । नचैवं द्रव्यं सत्त्वादित्यादौ  
सत्तानिष्ठद्रव्यत्वसामानाधिकरण्यस्यापि सत्तानिष्ठद्रव्यत्वव्याप्तित्वाप-  
त्तिरित्यत्र दृष्टापत्तिमाह, 'व्यभिचारीति व्यभिचारिहेतुनिष्ठसाध्य-

(१) प्राथमिकाव्यभिचारित्वपदार्थस्य साध्याभाववद्बृत्तित्वात्त्यन्ताभाव-  
गर्भत्वं, अविनाभावपदार्थस्य तु साध्याभाववद्बृत्तिभेदगर्भत्वं अतो न पौन-  
रुक्त्यमिति भावः ।



न जातिप्रसङ्गः, पित्रेपसामग्रीतहिताया एव सामान्य-  
सामान्याः कार्यजनकत्वनियमादिति केचित्, तदपि न,  
साध्यवद्वाद्यार्थित्वस्य धूमेऽसत्त्वात् वद्विमत्यर्थात्तान्य-

सामानाधिकरणस्यापीत्यर्थः, 'केनचित् सहेति किञ्चिद्रूपावच्छिन्ने-  
न साध्येन सहेत्यर्थः, द्रव्यत्वादेरपि जातित्वादिना सत्तादिव्यापकत्वा-  
दिति भावः। यथाश्रुते द्रव्यत्व-सत्तासामानाधिकरण्यस्यान्येन सह  
व्याप्तितासम्भवादसङ्गतेः, 'धूमादिव्याप्तिस्त्विति धूमत्वाद्यवच्छिन्न-  
निष्ठवद्विज्ञानाद्यवच्छिन्नव्याप्तिस्त्वित्यर्थः, 'विशिष्यैवेति धूमत्वावच्छिन्ने  
वद्विज्ञानावच्छिन्नसामानाधिकरण्यं धूमत्वावच्छिन्ने वद्विज्ञानावच्छिन्न-  
व्याप्तिः, द्रव्यत्वत्वावच्छिन्ने सत्तात्वावच्छिन्नसामानाधिकरण्यं द्रव्यत्वत्वा-  
वच्छिन्ने सत्तात्वावच्छिन्नव्याप्तिरिति विशिष्यैव निर्वक्तव्येत्यर्थः, न तु  
तद्वर्णावच्छिन्ने तद्वर्णावच्छिन्नसामानाधिकरण्यं तद्वर्णावच्छिन्ने  
तद्वर्णावच्छिन्नव्याप्तिरिति सामान्यतो यत्तद्भ्यामेकोक्त्या निर्वक्तव्या  
तेन व्यभिचारिणि नातिव्याप्तिरिति भावः। इदं व्याप्तेर्लक्षणं, किं  
वा अनुमितिकारणीभूतपरामर्शविषयतावच्छेदकं, व्याप्तिपदप्रवृ-  
त्तिनिमित्तं वा, आद्ये आह, 'खिङ्गेति, द्वितीये त्वाह, 'न चेति,  
'सम्बन्धमात्रं' साध्यसामानाधिकरण्यत्वावच्छिन्नमात्रं, 'तथा' अनुमि-  
तिहेतुपरामर्शविषयः, 'तद्बोधादिति अव्यभिचारांशाज्ञानदग्नायां  
वद्व्यभिचार्यभाववान् पर्वतः वद्व्यभिचार्यभावव्याप्यवान् इत्यादि  
ज्ञानदग्नायां वा वद्विसमानाधिकरणधूमवान् पर्वत इति सामाना-  
धिकरण्यविशिष्टपरामर्शादनुमित्यनुदयात् इत्यर्थः। न च अव्य-

त्विन् धूमसत्त्वान् । न च सत्त्वसाध्यवद्व्यापत्तित्वं,  
वर्णिततां प्रत्येकं तयात्वात् । सर्वत्र साध्यत्व-  
साधनत्व-तद्भिन्नतत्त्वानां व्याप्तिनिरूप्यत्वेनाज्ञाप्रयः,

भिचारांज्ञाज्ञानदशायां अनुमित्यनुत्पादोऽसिद्धः तथा वज्रव्यभि-  
चार्यभाववान् पर्वत इत्यादिज्ञानदशावामपि, अनु वा पचे साध्या-  
व्यभिचार्यभावादिज्ञानाभावोऽप्यनुमितिहेतुरिति वाच्यं । सर्वत्रना-  
नुभववाधितत्वात् साध्याव्यभिचार्यभाव-तद्वाप्यादिज्ञानानामनुमि-  
तिप्रतिबन्धकत्वकल्पने महागौरवाच्चेति भावः । तृतीये अर्थान्तरे  
सत्येवाह, 'नापीति ।

केवलान्वयिणीति केवलान्वयित्वग्रहदशाया-  
मित्यर्थः । 'केवलान्वयिधर्मसम्बन्ध इति<sup>(१)</sup> केवलान्वयिसाध्यसामा-  
नाधिकरणमित्यर्थः, साध्यस्य केवलान्वयित्वाऽभावे साध्यसामाना-  
धिकरणग्रहेऽप्यनुमित्यनुदत्तात् केवलान्वयित्वं साध्यविशेषणं, तच्चा-  
न्योन्याभावप्रतियोगितानवच्छेदकत्वं, तथाचान्योन्याभावप्रतियोगि-  
तानवच्छेदकसाध्यसामानाधिकरणमित्यर्थः । ननु तथापि इदं वाच्यं  
श्रेयसादित्यादावप्यभवः घटत्वादिविशिष्टवाच्यत्वादिसतोऽन्योन्या-  
भावप्रतियोगितावच्छेदकत्वादावप्यत्वादेर्विशिष्टत्वावच्छेदकत्वे विशे-  
यसाध्यवच्छेदकत्वात् । न चानवच्छेदकत्वं पर्याप्त्याप्यसम्बन्धेनावच्छेद-  
कताशून्यत्वं इति वाच्यं । घटत्वविशिष्टवाच्यत्वान् श्रेयसादित्यादा-

(१) 'केवलान्वयिसम्बन्ध इतीति ख०, ग० ।

साध्यत्वं हि न सिद्धिकर्तृत्वं, सिषाधयिषाविषयत्वं वा  
महानसीयवद्गौ तद्भावात् । न च सामान्यतो-  
व्याप्त्यवगमोऽस्येव परस्य कथमन्यथा दूषणेनासाध-

वतियाप्तेः वाच्यस्य पर्याप्त्याख्यसम्बन्धेनावच्छेदकताशून्यतया घटत्व-  
विशिष्टवाच्यत्वापि तथात्वात् विशिष्टवाच्यस्य वाच्यत्वानतिरिक्त-  
त्वादिति चेत् । न । अन्योन्याभावप्रतियोगितासामान्ये यद्गुर्मा-  
वच्छिन्नपर्याप्त्यावच्छेदकताकत्वाभावस्तद्गुर्मावच्छिन्नसामानाधिकरण्यस्य  
विवक्षितत्वात् यन्निष्ठपर्याप्त्यावच्छेदकत्वाभावस्तत्सामानाधिकरण्यमि-  
त्युक्तौ इदं वाच्यं ज्ञेयत्वादित्यादौ वाच्यत्वादेः स्वरूपतोऽभावप्र-  
तियोगितानवच्छेदकत्वेन वाच्यत्वादिनिष्ठपर्याप्त्यावच्छेदकत्वाप्रसिद्ध्या-  
व्याप्त्यापत्तिरतोऽवच्छिन्नानुसरणं । न च तथापि वाच्यत्वादेः कालि-  
कसम्बन्धेनान्योन्याभावप्रतियोगितावच्छेदकत्वादसम्भव इति वाच्यं ।  
साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नत्वेनावच्छेदकताया विशेषणात् वाच्य-  
त्वादिनिष्ठस्वरूपसम्बन्धावच्छिन्नावच्छेदकताकत्वन्तु संयोगादिसम्बन्धेन  
वाचादेरत्यन्ताभावप्रतियोगितायामेव प्रसिद्धं । साध्यतावच्छेदकसम्-  
बन्धेदेन व्याप्तेर्भेदात्तादात्म्यसम्बन्धेन प्रमेयादिसाध्यके पुनरन्योन्याभा-  
वप्रतियोगितासामान्ये यद्गुर्मावच्छिन्नपर्याप्त्यावच्छेदकत्वाभावस्तद्गुर्मावच्छि-  
न्नसामानाधिकरण्यमित्येव वक्तव्यं शब्दैकत्वानुपादेयत्वात्, यद्गुर्मावच्छि-  
न्नसाध्यतावच्छेदकपरं । अवच्छेदकता च साध्यतावच्छेदकतावच्छेदक-  
सम्बन्धावच्छिन्नत्वेन विशेषणीया तेन प्रमेयत्वादेः कालिकसम्बन्धे-  
नान्योन्याभावप्रतियोगितावच्छेदकत्वेऽपि तादात्म्यसम्बन्धेन प्रमेया-

कृतां साधयेदिति वाच्यं । स्वार्थानुमानोपयोगिव्याप्ति-  
स्वरूपनिरूपणं विना कथायामप्रवेशादिति ।

इति श्रीमद्भगवद्गीतोपाध्यायविरचिते तत्त्वचिन्ता-  
मणौ अनुमानाख्यद्वितीयखण्डे पूर्वपक्षः ।

दिसाध्यके नासम्भवः । तद्गुणविच्छिन्नसामानाधिकरणञ्च साध्यता-  
वच्छेदकसम्बन्धेन तद्गुणविच्छिन्नस्य सम्बन्धिनि या हेतुतावच्छेदक-  
सम्बन्धावच्छिन्ना सम्बन्धिता तन्निरूपकतावच्छेदकहेतुतावच्छेदक-  
वत्त्वं, तेन सम्बन्धान्तरेण साध्यसामानाधिकरणज्ञानेऽपि नानु-  
मितिः, न वा इदं वाच्यं गगनादित्यादौ समवायादिसम्बन्धेन  
गगनादिहेतुके, इदं वाच्यं घटत्व-पटलोभयस्यादित्यादौ समवाया-  
दिसम्बन्धेन विरुद्धोभयादिहेतुके चातिव्याप्तिरिति भावः ।  
'व्यतिरेकिणीति व्यतिरेकित्वग्रहदृश्यामित्यर्थः, 'व्याप्तिः' परा-  
मर्गविषयतयानुमितिप्रयोजिका व्याप्तिः । नन्वेवं परस्परं व्यभिचार-  
इत्यत आह, 'एतयोरिति, 'जनकत्वं' परामर्गविषयतया जनकता-  
वच्छेदकत्वं, केवलान्वयिसाध्यकानुमितौ निरुक्तकेवलान्वयिसाध्य-  
सामानाधिकरणविशिष्टवत्तापरामर्गः, व्यतिरेकिसाध्यकानुमितौ  
च साध्यवदन्यावृत्तिमत्त्वपरामर्गो हेतुरित्यर्थः । केवलान्वयिसाध्य-

कत्वञ्च निरुक्तकेवलान्वयिसाध्यसामानाधिकरण्यविशिष्टवत्तापरा-  
मर्णाव्यवहितोत्तरोत्पन्नत्वमेव, तेनेदं वाच्यं ज्ञेयत्वादित्यादावपि  
व्यतिरेकित्वभ्रमदशायां साध्यवदन्यावृत्तित्वमात्रपरामर्शादनुमित्यु-  
त्पादेऽपि न व्यभिचारस्तदवस्थः । न च क्लृप्तकारणवाधान्न भवत्येव  
तत्र तदानीमनुमितिरिति वाच्यम् । अनुभवविरोधात् तथापि  
हेतुतावच्छेदकसम्बन्धादिभेदेन निरुक्तसामानाधिकरण्यस्य विभिन्न-  
तया परस्परं व्यभिचारस्य दुर्वारत्वाच्च । एवं साध्यवदन्यावृत्ति-  
मत्तापरामर्णाव्यवहितोत्तरोत्पन्नानुमितित्वमेव व्यतिरेकिसाध्यकत्वं  
तेन व्यतिरेकिसाध्यके केवलान्वयित्वभ्रमदशायां निरुक्तकेवलान्वयि-  
साध्यसामानाधिकरण्यमात्रपरामर्शादनुमित्युत्पादेऽपि न व्यभिचार-  
स्तदवस्थः, नापि हेतुतावच्छेदकसम्बन्धादिभेदेन साध्यवदन्यावृत्तित्व-  
स्यापि विभिन्नतया परस्परं व्यभिचारश्चेति भावः ।

ननु तर्ह्यनुमितिसामान्ये किं प्रयोजनमित्यत आह, 'अनु-  
मितिसात्र इति, 'पक्षधर्मतैव' पर्वतादिनिरूपितसांसर्गिकविषयतैव,  
निरूपितान्तं स्वरूपकथनं तन्निवेशे अननुगमापत्तेः, 'प्रयोजिका'  
ज्ञाननिष्ठतया कारणतावच्छेदिका, तथाचानुमितित्वावच्छिन्नं प्रति  
सामान्यतो विशिष्टज्ञानत्वेनैव हेतुत्वमिति भावः । ज्ञानत्वेनैव हेतु-  
त्वमिति वस्तुगतिः, विशिष्टत्वप्रवेशे प्रयोजनविरहात् गौरवात्  
प्रकारित्व-विशेष्यत्वमादाय विनिगमनाविरहेण कार्य-कारणभाव-  
त्रयप्रसङ्गाच्च । नन्वेवं निरुक्तव्याप्तिद्वयज्ञानविरहदशाप्याप्तपि धूमवान्  
पर्वत इत्यादिपक्षधर्मताज्ञानादनुमितिसामान्योत्पत्त्यापत्तिः सामा-  
न्यसामग्रीसत्त्वादित्यत्र आह, 'न चेति, 'विशेषसामग्रीति, केवलान्व-

विशेषकानुमितिसामग्री व्यतिरेकिसाध्यकानुमितिसामग्री च प्रकृते  
 विशेषसामग्रीति भावः । 'सकलेति यावन्ति साध्यवन्ति तदन्या-  
 वृत्तित्वमित्यर्थः, साध्ये साकल्यविशेषणे यावत्साध्याधिकरणप्रसिद्धेः<sup>(१)</sup>,  
 'तथात्वादिति यावत्साध्यवतोऽन्यत्वादित्यर्थः, यावत्त्वावच्छिन्नप्रतियो-  
 गिताकान्योन्याभावस्य केवलान्वयित्वादिति भावः । इदमापाततः  
 साध्यवत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकान्योन्याभाववद्वृत्तित्वं वक्तव्यं, सामा-  
 न्याभावानभ्युपगमेऽपि साध्यवत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकान्योन्याभाव-  
 कूटाधिकरणवृत्तित्वमेव वक्तव्यमित्युक्तदोषाभावात् । वस्तुतस्तु सर्व-  
 त्रैव साध्ये केवलान्वयित्व-व्यतिरेकित्वग्रहदशाभेदेन कार्य-कारण-  
 भावद्वयकल्पनमपेक्ष्य साधवात् हेतुसमानाधिकरणान्योन्याभावे-  
 त्यादिवच्छायाणव्याप्तिज्ञानमेव सर्वत्र हेतुरचितसखोभयदशाया-  
 मेव सशवात् । न च हेतुसमानाधिकरणप्रवेशे एकस्मिन्नेव  
 साध्य-हेतुतावच्छेदकभेदेनानन्तकार्य-कारणभावापत्त्या तदपेक्ष्य  
 कार्य-कारणभावद्वयमेव लक्षिति वाच्यं । उक्तक्रमेण निरुक्तव्याप्तिद्वय-  
 स्थापि हेतुतावच्छेदकघटिततया हेतुतावच्छेदकभेदेन कार्य-कारण-  
 भेदस्याविशिष्टत्वात् । न च तथापि यत्र विषयविशेषे व्यतिरेकित्व-  
 ग्रहदशायां कदापि अनुमितिर्नात्पत्त्या तत्र साधवात् केवलान्वयि-  
 साध्यसमानाधिकरणज्ञानस्यैव हेतुत्वं युक्तमिति<sup>(२)</sup> वाच्यं । तत्राप्य-  
 भावे हेतुसमानाधिकरणानुपस्थितिदशायामनुमित्यनुदयात् हेतु-

(१) वङ्गिमान् धूमादित्यादौ यावतां वङ्गीनामधिकरणत्वं न एकस्मिन्  
 धर्मिणि वक्तव्य इति भावः ।

(२) वक्तव्यमितीति ग० ।

सामानाधिकरण्याग्रज्ञानस्यावश्यं हेतुत्वात् अनुभवापलापे लाघवात् सर्वत्रैव साध्याभाववदवृत्तित्वज्ञानमेवानुमितिहेतुः, साध्यस्य केवला-  
न्वयित्वग्रहदृश्याच्चानुमितिरेवासिद्धेत्यस्यैव वक्तुमुचितत्वात् इत्येव  
दूषणं सारं । 'सर्वत्र लक्षण इति सर्वत्र साध्य-साधनघटितलक्षण-  
इत्यर्थः । 'व्याप्तिनिरूप्यत्वेनेति व्याप्तिघटितत्वेनेत्यर्थः, तदनुमितिज-  
नकौभूतपरामर्शविषयतावच्छेदकव्याप्तिप्रतियोगित्वं हि तदनुमितौ  
साध्यत्वं, तादृशव्याप्याश्रयत्वं तदनुमितौ साधनत्वमिति भावः ।

ननु साध्यत्व-साधनत्वमन्यथैव निर्वाच्यमित्यत आह, 'साध्यत्वं  
हीति, 'सिद्धिकर्षत्वमिति तदनुमितिर्विधेयत्वं तदनुमितौ साध्यत्व-  
मित्यर्थः, 'सिषाधयिषेति तदनुमितिजनकौभूतसिषाधयिषाया वि-  
धेयतया विषयत्वं तदनुमितौ साध्यत्वमित्यर्थः । यद्यपि द्वितीये सिषाध-  
यिषां विना यानुमितिसिद्धौयसाध्येऽव्याप्तिः, तथापि स्फुटत्वात्तदुपेक्ष्य  
दूषणान्तरमाह, 'महानसौयवद्भाविति वद्विव्याप्यधूमवान् पर्वत इति  
सामान्यतः परामर्शेन जनिता या पर्वतीयवद्भिन्नात्रविषयकानुमिति-  
स्तदनुमितिव्यक्तेर्विधेयत्वस्य महानसौयवद्भावभावात् तत्र तस्यासाध्यत्व-  
प्रसङ्गः, एवं वद्विव्याप्यधूमवान् पर्वत इति सामान्यतः परामर्शेनैव पर्वती-  
यवद्भ्यनुमितिर्मे जायतामिति सिषाधयिषासदकाराज्जनिता या पर्व-  
तोवद्भिन्नानित्यनुमितिसञ्जनकौभूतसिषाधयिषाविषयत्वस्य महा-  
नसौयवद्भावात्तत्र तदसाध्यत्वप्रसङ्ग इत्यर्थः, इदमुपलक्षणं साध-  
नत्वमपि न सिद्धिकरणत्वं लिङ्गकरणत्वस्य निरस्यत्वादित्यपि बोध्यं ।  
यद्यपि वद्विव्याप्यधूमवान् पर्वत इति सामान्यपरामर्शात् पर्वतीयव-  
द्भिन्नात्रविषयकानुमितिरेवासिद्धौ सामर्थ्यविशेषेण वद्वित्वरूपेण

महानशीयादिवह्निभानेऽपि बाधकाभावात् । न च यत्र महानशीय-  
वह्नादेर्वाधज्ञानं तत्रैव सामान्यपरामर्शात् पर्वतीयवह्निमात्रभा-  
नसम्भव इति वाच्यं । बाधज्ञानं हि वह्नित्वरूपेण, तत्तद्वह्नित्वरूपेण,  
पर्वतीयवह्नित्वरूपेण वा, नाद्यः तत्सत्त्वे<sup>(१)</sup> पर्वतीयवह्नेरपि  
भानासम्भवात् । नान्यौ समानप्रकारकबाधज्ञानस्यैव प्रतिबन्धकतया  
तत्सत्त्वेऽपि वह्नित्वरूपेण महानशीयादिवह्निभानसम्भवात्<sup>(२)</sup> । अत एव

Fasciculus X of the Tattva-Chintāmaṇi should be regarded as  
Fasciculus I of Vol II. The title-page attached to Fasciculus X  
is the title-page to Vol. I.

नियमेन व्यापकसाधग्रीविरहात् । तथापि यत्र उद्बोधकमहिम्ना  
वह्नित्वरूपेण पर्वतीयवह्निमात्रविषयकस्मरणात्प्रकः परामर्शस्तत्रैव  
सामान्यपरामर्शात् पर्वतीयवह्निसात्रविषयकानुमितिसम्भवः विशेष-  
षण्ज्ञानाभावेन वह्नन्तरभानासम्भवात् । न च विशेषणं ग्रेऽन्याप्रका-  
रकविशिष्टप्रत्यक्षं प्रति विशेषणज्ञानस्य हेतुत्वेऽपि सर्वत्र तद्हेतुत्वे

(१) तत्सत्त्वे वह्नित्वरूपेण वह्नेरभावज्ञानसत्त्वे इत्यर्थः ।

(२) वह्नित्वरूपेण वह्निसामान्याभाववत्त्वज्ञानस्यैव  
विरोधित्वमिति भावः ।



मानाभाव इति वाच्यम् । सर्वत्र विशिष्टानुभय एव विशेषणज्ञानं हेतुरिति सम्प्रदायमतेनैतदभिधानात् ।

यदा पर्वतीयवह्निकल्पने लाघवं तदन्यवह्निकल्पने च गौरवमिति ज्ञानस्य पर्वतीयवह्न्यतिरिक्तसिद्धौ प्रतिबन्धकतया तत्सत्त्वदशायामेव सामान्यपरामर्शादपि पर्वतीयवह्निमात्रविषयकानुमितिसम्भवः ।

केचित् तु यत्र वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वतो वह्निमानिति सिद्धात्मकपरामर्शः ततः पर्वते पर्वतीयवह्न्यनुमितिर्जायतामिति सिषाधयिषा तत्रैव सामान्यपरामर्शादपि पर्वतीयवह्निमात्रविधेयकानुमितिसम्भवः सिद्धेः प्रतिबन्धकतया वह्न्यन्तरभानासम्भवादित्याहुः ।

अजवस्तु यदा वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वत इति परामर्शः पर्वतः पर्वतीयवह्नीतरवह्न्यभाववान् इति बाधज्ञानञ्च वर्तते तदा पर्वतीयवह्नित्वेन न पर्वतीयवह्नेर्भानमनुमितेर्यापकतावच्छेदकप्रकारकत्वनिश्चयादपि तु वह्नित्वरूपेणैव पर्वतीयवह्निमात्रभानमिति तद्धर्मावच्छिन्नेतरबाधज्ञानस्य भिन्नप्रकारकत्वेऽपि सामान्यरूपेण तद्धर्मावच्छिन्नेतरविधेयकानुमितित्वावच्छिन्नं प्रत्यतिरिक्तप्रतिबन्धकत्वकल्पनादिति प्राचीनमतमभिप्रत्येवेदं दूषणमित्याहुः । तादृशप्राचीनमतविचारश्चास्तत्त्वतसिद्धान्तरहस्येऽनुसन्धेयः ।

इदन्त्ववधेयं तादृशानुमितिषु महानसीयवह्न्यादेरसाध्यतायामिष्टापत्तेः सुकरत्वान्मूलोक्तमिदमसंगतमिति दिक् ।

तटस्थः शङ्कते, 'न चेति, 'सामान्यतः' व्याप्तिपदवाच्यत्वप्रकारेण, 'परस्य' नन्वनुमितिहेतुव्याप्तिज्ञाने का व्याप्तिरिति जिज्ञासोः

परस्य, 'दूषणेन' अद्याप्यादिलक्षणदूषणेन, 'असाधकतां' अनुमित्य-  
 प्रयोजकतां, उक्तव्याप्तीनामिति शेषः । तथाच किं व्याप्तिनिरूपणे-  
 नेति भावः । 'स्वार्थेति स्वस्मिन् स्वीये शिष्यादौ अर्थः प्रयोजनं  
 यस्य तादृशं यदनुमानं व्याप्तिज्ञानं शिष्यादेर्व्याप्तिज्ञानमिति यावत्,  
 तदुपयोगि यदिदं व्याप्तिस्वरूपनिरूपणं तद्विनेत्यर्थः, 'कथायामिति  
 स्वीयस्य शिष्यादेरित्यादिः, 'कथा' विचारः, 'अप्रवेशात्' प्रवेशा-  
 सशवात्, व्याप्तिनिरूपणं विना शिष्यादेर्व्याप्तिज्ञानासम्भवेन षड्हेतु-  
 नाषड्हेतुत्वपरिचयस्यैवाशङ्क्यतया हेतुदाहरणप्रयोगस्यैवासम्भवादि-  
 त्यर्थः, तथाच न केवलमिह परप्रश्नसमाधित्तया व्याप्तिनिरूपण-  
 मपि तु शिष्याणां व्याप्तिस्वरूपज्ञानं विना कथायां प्रवेशो न  
 सम्भवतीत्येतदर्थमपीति भावः ।

इति श्रीमथुरानाथ-तर्कवागीश्वरिचिते तत्त्वचिन्तामणिरहस्ये  
 अनुमानाख्यद्वितीयखण्डरहस्ये व्याप्तिवादे पूर्वपक्षरहस्यम् ।

## अथ सिद्धान्तलक्षणम् ।



अत्रोच्यते । प्रतियोग्यसमानाधिकरणयत्समानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नं यन्न भवति तेन समं तस्य सामानाधिकरण्यं व्याप्तिः ।

इति श्रीमद्भक्तेशोपाध्यायविरचिते तत्त्वचिन्तामणौ अनुमानाख्यद्वितीयखण्डे सिद्धान्तलक्षणम् ।

## अथ सिद्धान्तलक्षणरहस्यम् ।

‘प्रतियोग्यसमानाधिकरणेति, ‘यत्पदं हेतुत्वेनाभिमतपरं, द्वितीययत्पदं साध्यतावच्छेदकपरं, ‘प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नं’ प्रतियोगितावच्छेदकस्वरूपं, ‘यन्न भवति’, ‘तेन समं सामानाधिकरण्यं’ तदवच्छिन्नेन समं सामानाधिकरण्यं, ‘तस्य’ हेतोः, ‘व्याप्तिरिति योजना, तद्गर्भावच्छिन्नेन सह तस्य हेतोर्व्याप्तिरित्यर्थः। भवति च वल्लिमान् धूमादित्यादौ धूमसमानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगितानवच्छेदकं वल्लित्वं तदवच्छिन्नसमानाधिकरणो धूमः, धूमवान् वल्लेरित्यादौ वल्लिसमानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगितावच्छेदकमेव धूमत्वमिति नातिप्रसङ्गः। प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नेत्यादि यथाश्रुतन्तु न सङ्गच्छते वल्लिमान् धूमादित्यादौ सर्वेषामेव वल्लिनां हेतुसमा-

नाधिकरणभावप्रतियोगितावच्छेदकतत्तद्विहित-वन्नि-जलोभयत्वा-  
द्यवच्छिन्नत्वादसम्भवापत्तेः । न चैवमपि वन्निःसमानाधिकरणात्यन्ता-  
भावप्रतियोगितानवच्छेदकं प्रमेयत्वं तदवच्छिन्नधूमसमानाधिकरणो  
वन्निरित्यतिव्याप्तिरिति वाच्यं । व्यभिचारिणोऽपि वह्न्यादेः प्रमेयत्वा-  
दिहूपेण धूमादेर्व्याप्यत्वाभ्युपगमात् धूमत्वेनैव धूमो न वन्निव्यापकः प्रमे-  
यत्वादिना तु व्यापको भवत्येव । अत्र सत्तावान् द्रव्यत्वादित्यादिव्यति-  
रेकिसाध्यके<sup>(१)</sup> साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिकसाध्यसा-  
मान्याभावमादायाव्याप्तिवारणाय हेतुसमानाधिकरणत्वमत्यन्ताभाव-  
विशेषणं, तच्च हेतुतावच्छेदकसम्बन्धेन हेतुतावच्छेदकावच्छिन्नहेतोर्य-  
दधिकरणं तत्र येन केनापि सम्बन्धेन वर्तमानत्वं, अन्यथा दूदं गगनं  
गगनत्वप्रकारकप्रमात इत्यादौ विशेष्यतासम्बन्धेन हेतुतायां समवाय-  
सम्बन्धेन हेत्वधिकरणे आत्मनि वर्तमानस्य गगनत्वसामान्याभावस्य  
प्रतियोगितावच्छेदकमेव गगनत्वत्वमित्यव्याप्तिः स्यात् स्याच्च द्रव्यं गुण-  
कर्मान्यत्वविशिष्टत्वादित्यादौ हेतुभूतसत्ताधिकरणे गुणे वर्तमानस्य  
द्रव्यत्वसामान्याभावस्य प्रतियोगितावच्छेदकमेव द्रव्यत्वत्वमित्यव्याप्तिः ।  
न च हेतौ साध्यसामान्याभावस्य प्रतियोग्यसामानाधिकरण्यविरहात्

(१) केवलान्वयिसाध्यके साध्यसामान्याभावाप्रसिद्ध्या तमादाय तत्रा-  
व्याप्तिर्न सम्भवतीत्यत उक्तं व्यतिरेकिसाध्यके इति । वन्निमान् धूमादि-  
त्यादौ प्रसिद्धस्थले संयोगेन वन्नेरव्याप्यवृत्तितया हेतुसमानाधिकरणत्व-  
निवेशेऽपि अव्याप्तिपरिहारात् सत्तावान् द्रव्यत्वादित्यादिव्याप्यवृत्तिसाध्य-  
कस्थलानुसरणं । समवायेन साध्यतायामुक्तस्थलस्य प्रसिद्धस्थलत्वमिति  
केचित् ।

प्रतियोग्यसमानाधिकरणत्वस्य हेतोर्विशेषणत्वेनैव नैतद्व्याप्तिद्वयाव-  
काश इति वाच्यम् । प्रथमे आत्मरूपहेत्वधिकरणमादाय द्वितीये  
गुणादिमादाय वक्ष्यमाणक्रमेण वक्ष्यमाणद्विविधप्रतियोग्यसामा-  
नाधिकरणस्यैव साध्याभावस्य<sup>(१)</sup> हेतौ सत्त्वात् तच्चानुपदं स्फुटीभवि-  
ष्यति । अधिकरणत्वञ्च सम्बन्धितमात्रं तेन तादात्म्यादिवृत्त्यनियामक-  
सम्बन्धेन हेतुतायां हेतुतावच्छेदकसम्बन्धेन हेत्वधिकरणत्वाप्रसिद्धा-  
वपि नाव्याप्तिः । सम्बन्धितञ्च धर्मित्वं तच्च वृत्तिनियामकानियामक-  
सम्बन्धमात्रनिरूपितसम्बन्धितात्रसाधारणो धर्म-धर्मिभावाख्यः स्वरूप-  
सम्बन्धविशेषः, न त्वाधारमात्रवृत्तिः । अत एवागृहीतासंसर्गकधर्म-  
धर्मिभावगोचरैकज्ञानत्वं विशिष्टज्ञानत्वमिति सीमांसकाः, अन्यथा  
घटस्य ज्ञानं चैत्रस्य धनमित्यादिविषयित्व-स्वत्वादिवृत्त्यनियामक-  
सम्बन्धसंसर्गकविशिष्टप्रत्यक्षादौ तल्लक्षणाव्याप्त्यापत्तेः<sup>(२)</sup> । एतेन हेतु-  
तावच्छेदकसम्बन्धेन हेतुतावच्छेदकावच्छिन्नहेतोरधिकरणत्वविवक्षणे  
वृत्त्यनियामकसम्बन्धेन हेतुतायामव्याप्तिः तादृशहेतोः सम्बन्धित-  
मात्रविवक्षणे च द्रव्यं विशिष्टसत्त्वादित्यादौ अव्याप्तिस्तदवस्था गुणादौ  
विशिष्टनिरूपिताधारताविरहेऽपि तत्सम्बन्धितायाः सत्त्वादित्यपि  
निरस्तं । विशिष्टनिरूपिताधारतावद्विशिष्टनिरूपिताया धर्मितापर-

(१) साध्याभावस्य प्रतियोग्यसमानाधिकरणस्यैवेति योजना ।

(२) धर्म-धर्मिभावाख्यस्वरूपसम्बन्धविशेषस्य आधारमात्रवृत्तित्वे  
घटस्य ज्ञानं चैत्रस्य धनमित्यादिविशिष्टप्रत्यक्षे विषयित्व-स्वरूपवृत्त्य-  
नियामकसम्बन्धावच्छिन्नाधारत्वाप्रसिद्ध्या धर्म-धर्मिभावगोचरत्वविरहेण  
धर्म-धर्मिगोचरैकज्ञानत्वरूपविशिष्टज्ञानलक्षणाव्याप्त्यापत्तिरिति भावः ।

गान्ध्याः सम्बन्धिताया अपि विलक्षणतया गुणादावसत्त्वात् । सत्त्ववान्  
द्रव्यत्वादित्यादौ द्रव्यत्वाद्यधिकरणे महाकालादौ कालिकविश्लेष-  
णतादिना वर्तमानस्य सत्त्वादिसामान्याभावस्य प्रतियोगिताव-  
च्छेदकमेव सत्त्वत्वमित्यव्याप्तिः, एवं कपिसंयोगी एतत्त्वादित्याद्यव्याप्य-  
वृत्तिसाध्यकेऽव्याप्तिश्च साध्यसामान्याभावस्यापि निरुक्तहेतुसामानाधि-  
करणादतः 'प्रतियोग्यसमानाधिकरणेति यत्पदार्थस्य हेतोर्विश्लेषणं,  
तथाच स्वप्रतियोग्यसमानाधिकरणस्य हेतुतावच्छेदकावच्छिन्नहेतो-  
र्हेतुतावच्छेदकसम्बन्धेन सम्बन्धिनि येन केनापि सम्बन्धेन वर्तमानो  
योऽभावस्तत्प्रतियोगितानवच्छेदकं यदित्यर्थः, स्वपदसभावपरम् । न  
च साध्य-साधनभेदेन व्याप्तिभेदात् व्याप्यवृत्तिसाध्यके नेदं विशेषणं  
सफलं अभावीयविश्लेषणताविश्लेषसम्बन्धेन साध्याभाववृत्तिसाध्नीयप्र-  
तियोगित्व-तदवच्छेदकत्वान्यतरावच्छेदकसम्बन्धेन वा<sup>(१)</sup> हेत्वधिकरण-  
वृत्तित्वविवक्षणादेव साध्याभावस्य यथाकथञ्चित्सम्बन्धेन हेत्वधिकरण-  
वृत्तिसाध्यादाय व्याप्यवृत्तित्वतिरेकिसाध्यकमात्राव्याप्तेर्वारणसम्भवा-

(१) अभावीयविश्लेषणताविश्लेषसम्बन्धेन हेत्वधिकरणवृत्तित्वोक्तौ द्रव्य-  
त्वाभाववान् सत्त्वादित्यादौ अतिव्याप्तिः द्रव्यत्वरूपसाध्याभावस्य अभावीय-  
विश्लेषणताविश्लेषसम्बन्धेनावर्तमानत्वात् अतः साध्याभाववृत्तित्यादि, इत्यञ्च  
साध्यादिभेदेन व्याप्तेर्भेदात् भावसाध्यकस्थले अभावीयविश्लेषणताविश्लेष-  
सम्बन्धेनैव हेत्वधिकरणवृत्तित्वं, अभावसाध्यकस्थले यथायथं संयोग-सम-  
वायादिसम्बन्धेनैव हेत्वधिकरणवृत्तित्वं शब्दैक्यस्यानुपादेयत्वात् । न तु  
साध्याभाववृत्तिसाध्नीयप्रतियोगित्व-तदवच्छेदकत्वान्यतरावच्छेदकसम्बन्धत्वेन  
तादृशसम्बन्धस्य व्याप्तिलक्षणघटकत्वं प्रतियोग्यसामानाधिकरण्यनिवेशा-  
पेक्षया महागौरवापत्तेः इति तात्पर्यम् ।

दिति वाच्यं । तत्राप्येतद्विशेषणानुपादाने साध्याभावस्याव्याप्यवृत्तित्व-  
 भ्रमेण हेतुसामानाधिकरण्यभ्रमेऽनुमित्यनुदयापत्तेः, हेतुसमानाधि-  
 करणाभावप्रतियोगितायां साध्यतावच्छेदकावच्छेद्यत्वग्रहे तादृशप्रति-  
 योगितासामान्ये साध्यतावच्छेदकावच्छेद्यत्वाभावग्रहासम्भवात् प्रकृत-  
 लक्षणे वक्ष्यमाणयुक्त्या तथैव विवक्षणीयत्वात् इति भावः । स्वप्रतियो-  
 ग्यसमानाधिकरणत्वञ्च न स्वप्रतियोग्यधिकरणे केनापि सम्बन्धेन वर्तते  
 यत्तदन्यत्वं संयोगी सत्त्वादित्यादावतित्याप्तेः सत्ताया द्रव्ये संयोगा-  
 भावस्य प्रतियोगिसमानाधिकरणत्वात्, किन्तु स्वप्रतियोग्यधिकरणे  
 केनापि सम्बन्धेन वर्तमानत्वसामान्याभावः, तथाच सामानाधिकरण-  
 स्याव्याप्यवृत्तितया सत्ताया गुणादावेव संयोगसामानाधिकरण्याभाव-  
 वत्त्वमतो नातित्याप्तिः । एतेन इदं वाच्यं ज्ञेयत्वादित्यादौ तादृशा-  
 भाव एवाप्रसिद्धः यद्भावप्रतियोग्यसमानाधिकरणं ज्ञेयत्वमित्यपि  
 निरस्तं । सामानाधिकरणस्याव्याप्यवृत्तितया सामान्यत्वाद्यभावस्यैव  
 तादृशस्य प्रसिद्धत्वात् । न चैवं वक्षेरव्याप्यवृत्तितया वक्षिमान् धूमा-  
 दित्यादावत्याप्तिः हेतुसमानाधिकरणस्य साध्यसामान्याभावस्यापि  
 धूमावयवावच्छेदेन प्रतियोगिसामानाधिकरण्याभावस्य धूमादौ सत्त्वा-  
 दिति वाच्यं । स्वप्रतियोग्यधिकरणे वर्तमानत्वसामान्याभावविशिष्ट-  
 हेतुतावच्छेदकावच्छिन्नहेतोर्हेतुतावच्छेदकसम्बन्धेनाधिकरणत्वस्य वि-  
 वक्षितत्वात् । इत्यञ्च वक्षिमान् धूमादित्यादौ वक्ष्यादिसामान्याभा-  
 वस्य प्रतियोग्यधिकरणवृत्तित्वाभावविशिष्टहेतुतावच्छेदकावच्छिन्न-  
 हेतोर्हेतुतावच्छेदकसम्बन्धेनाधिकरणमेवाप्रसिद्धमतः अभावान्तरस्यैव  
 लक्षणघटकत्वान्नात्याप्तिः ।

केचित्तु प्रतियोग्यसमानाधिकरणत्वन्ताभावविशेषणं । न चैवं कपिसंयोगी एतद्वृत्त्वादित्यादावव्याप्तिस्तदवस्था संयोगी सत्त्वादित्यादावतित्याप्तिवारणाय सामानाधिकरण्यस्याव्याप्यवृत्तित्वाभ्युपगमावश्यकतया हेतुसमानाधिकरणकपिसंयोगाभावस्यापि गुणादौ प्रतियोग्यसमानाधिकरणत्वादिति वाच्यं । स्वप्रतियोग्यसमानाधिकरण्यविशिष्टेऽभावे हेत्वधिकरणवृत्तित्वाया विवक्षितत्वादित्याहुः । तदसत् विशिष्टस्थानतिरिक्ततया गुणाद्यन्यत्वविशिष्टसत्ताया गुणादिवृत्तित्वव्यतिथिसामानाधिकरण्यभावविशिष्टकपिसंयोगाभावस्यापि एतद्वृत्तित्वात् । न च हेत्वधिकरणवच्छेदेन प्रतियोग्यसमानाधिकरण्यसामान्याभाववत्त्वं विवक्षितमेतन्नाभाचैव च हेतुसमानाधिकरणमिति वाच्यं । दुष्टदृष्टिकल्पनापत्तेः । वस्तुतस्तु प्रतियोग्यसमानाधिकरणत्वं न प्रतियोग्यधिकरणवृत्तित्वाभावः सत्तायां गुणे न संयोगाभावप्रतियोग्यसमानाधिकरण्यमिति प्रतीतेर्गुणादौ सत्तानिष्ठतादृशसमानाधिकरणत्वस्यावच्छेदकतासम्बन्धेनाभावविषयकतया सामानाधिकरण्यस्याव्याप्यवृत्तित्वे मानाभावेन संयोगी सत्त्वादित्यादावतित्याप्तेः, किन्तु प्रतियोग्यनधिकरणे येन केनापि सत्त्वन्नेन वर्तमानत्वं तदपि हेतुविशेषणं न तु अभावविशेषणं कपिसंयोगी एतद्वृत्त्वादित्यादावव्याप्तेस्तादवस्थ्यात् हेतुसमानाधिकरणकपिसंयोगाभावस्यापि प्रतियोग्यनधिकरणगुणादिवृत्तित्वात्, विशिष्टस्थानतिरिक्ततया प्रतियोग्यनधिकरणवृत्तित्वविशिष्टस्याभावस्य हेत्वधिकरणवृत्तित्वाविवक्षणेऽप्यऽनिस्तारात् । न च निरुक्तप्रतियोग्यनधिकरणवृत्तित्वस्य हेतुविशेषणत्वेऽपि वङ्गेरव्याप्यवृत्तितया वङ्गिमान् धूमा-



दित्यादावव्याप्तिः धूमादेर्धूमादिसमानाधिकरणवद्भ्यादिसामान्या-  
 भावस्यापि प्रतियोग्यनधिकरणे धूमावयवादौ वृत्तेः, कपिसंयोगी  
 एतद्वृत्तविशिष्टसत्त्वादित्यादावव्याप्तिः निरुक्तहेतुसमानाधिकरणो-  
 ऽभावः कपिसंयोगसामान्याभावः विशिष्टस्थानतिरिक्ततया तत्प्रति-  
 योग्यनधिकरणगुणादिवृत्तिरपि हेतुतावच्छेदकविशिष्टहेतुः तत्प्रति-  
 योगितावच्छेदकत्वात् कपिसंयोगत्वस्येति वाच्यं । निरुक्तप्रतियोग्य-  
 नधिकरणवृत्तित्वविशिष्टहेतुतावच्छेदकावच्छिन्नहेतोर्हेतुतावच्छेदक-  
 सम्बन्धेनाधिकरणत्वस्य विवक्षितत्वात् । एवञ्च वक्षिमान् धूमात्  
 कपिसंयोगी एतद्वृत्तविशिष्टसत्त्वादित्यादौ<sup>(१)</sup> वक्षि-कपिसंयोगादि-  
 सामान्याभावस्य प्रतियोग्यनधिकरणवृत्तित्वविशिष्टहेतुतावच्छेदक-  
 विशिष्टहेतोर्हेतुतावच्छेदकसम्बन्धेनाधिकरणमेवाप्रसिद्धमित्यभावा-  
 न्तरस्यैव लक्षणघटकत्वान्नाव्याप्तिः । इत्यञ्च प्रतियोग्यनधिकरणं  
 यद्धेतुतावच्छेदकसम्बन्धेन हेतुतावच्छेदकविशिष्टहेतुवधिकरणं तत्र  
 येन केनापि सम्बन्धेन वर्तमानो योऽभाव इत्यभावान्तार्थनिष्कर्षः  
 प्रतियोग्यनधिकरणहेतुवधिकरणस्यैव प्रतियोग्यनधिकरणवृत्तित्व-  
 विशिष्टहेतुवधिकरणतया वृत्तित्वपर्यन्तप्रवेशे गौरवात् प्रयोजना-  
 भावाच्च । अत्र प्रतियोग्यनधिकरणत्वं प्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्धेन  
 यत्प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिसम्बन्धि तदन्यत्वं, अन्यथा  
 ज्ञानवान् द्रव्यत्वात् वक्षिमान् धूमादित्यादौ समवायेन ज्ञान-  
 वद्भ्यादेः साध्यतायामिदं वाच्यं ज्ञेयत्वादित्यादौ कालिकसम्बन्धेन  
 वाच्यत्वादेः साध्यतायाञ्जातिव्याप्यापत्तेः हेतुसमानाधिकरणस्य

(१) एतत्त्वविशिष्टसत्त्वादित्यादाविति क० ।

सप्तवायसम्बन्धावच्छिन्नज्ञान-वज्राद्यभावस्य कालिकसम्बन्धावच्छिन्न-  
वाच्यत्वाद्यभावस्य च विषयत्व-संयोग-विशेषणताविशेषसम्बन्धेन प्रति-  
योग्यधिकरणमेव हेत्वधिकरणमित्यभावान्तरा एव तादृशाः तत्रति-  
योगितानवच्छेदकत्वात् ज्ञानत्व-वद्वित्व-वाच्यत्वत्वादेः । गुण-कर्मान्य-  
त्वविशिष्टसत्तावान् जातेः भूतत्व-मूर्त्तत्वोभयवान् मूर्त्तत्वादित्यादाव-  
तित्याप्यापत्तेश्च हेतुसमानाधिकरणस्य विशिष्टसत्तात्वावच्छिन्नाभावस्य  
प्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्धेन प्रतियोग्यधिकरणमेव हेत्वधिकरण-  
मित्यभावान्तर एव तादृशः तत्रतियोगितानवच्छेदकत्वादिशिष्ट-  
सत्तात्वादेः । विषयितादिवृत्त्यनिचामकसम्बन्धेन घटादेः साध्यतायां  
ज्ञानत्वादिहेतौ विषयितादिसम्बन्धावच्छिन्नघटाद्यभावस्य प्रतियो-  
गितावच्छेदकसम्बन्धेन प्रतियोग्यधिकरणप्रसिद्धाऽतित्याप्यापत्ति-  
रतोऽधिकरणत्वमपहाय सम्बन्धित्वानुधावनम् ।

केचित्तु प्रतियोग्यवधिकरणत्वं साध्यतावच्छेदकसम्बन्धेन यत्र-  
तियोगितावच्छेदकावच्छिन्नस्य सम्बन्धि तदन्यत्वं तावतापि ज्ञान-  
वान् द्रव्यत्वादित्यादावतित्याप्तिवारणसत्त्वावादित्याहुः । तदसत् विष-  
यित्व-कालिकविशेषणत्वादिसम्बन्धेन<sup>(१)</sup> घटादेः साध्यतायां नित्यज्ञा-  
नत्व-महाकालत्वादिहेतावत्याप्यापत्तेः हेतुतावच्छेदकसम्बन्धेन हेत्व-  
धिकरणस्य साध्यतावच्छेदकविषयित्वादिसम्बन्धेनाभावमात्रस्यैव प्रति-

(१) विषयित्वादेः संसर्गतानभ्युपगमे व्याप्तिदानार्थं कालिकसम्बन्धानु-  
सरणं कालो हि जगदाधार इति प्रतीत्यनुरोधेन कालिकसम्बन्धस्य  
संसर्गत्वमवश्यमभ्युपेयमिति ।

योगिसम्बन्धितया तादृशाभावाप्रसिद्धेः प्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्धेन  
तथात्वाभिधाने च सम्बन्धान्तरावच्छिन्नाभावमादायैव प्रसिद्धिरि-  
त्यनुपदं वक्ष्यामः ।

प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नत्वञ्च प्रतियोगितावच्छेदकताव-  
च्छेदकसम्बन्धेन बोध्यं तेन गुण-कर्मान्यत्वविशिष्टसत्तावान् सत्त्वा-  
दित्यादौ हेत्वधिकरणस्य गुण-कर्मादेः स्वरूपसम्बन्धेन गुण-कर्मा-  
न्यत्वतः सत्त्वादेः समवायसम्बन्धेनाधिकरणत्वेऽपि<sup>(१)</sup> नातिव्याप्तिः ।  
ननु तथापि प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नासम्बन्धित्वं किं प्रति-  
योगितावच्छेदकावच्छिन्नस्य यस्य कस्यचिदसम्बन्धित्वं, प्रतियोगि-  
तावच्छेदकावच्छिन्नसामान्यासम्बन्धित्वं वा, प्रतियोगितावच्छेकयत्-  
किञ्चिदवच्छिन्नसामान्यासम्बन्धित्वं वा, आद्ये कपिसंयोगी एतद्-  
वृत्तत्वादित्यादावव्याप्तिः कपिसंयोगत्वावच्छिन्नयत्किञ्चित्कपिसंयोगा-  
सम्बन्धित्वादेतद्बृत्तस्य, द्वितीये वन्निभान् धूमादित्यादावसम्भवः यतः  
एवमभावो नास्ति यस्य प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नसामान्यासम्बन्धी  
हेतुसम्बन्धी पर्वतादिः, जलत्वाद्यभावनिष्ठस्याकाशाभावादिभेदस्या-  
भावाधिकरणकाभावत्वेनाधिकरणस्वरूपतया आकाशाभावादिरपि  
जलत्वाद्यभावप्रतियोगी तत्सम्बन्धित्वात् पर्वतादेः । न च द्रव्यत्वा-  
द्यात्मकभावरूपाभाव एव तादृशः प्रसिद्ध इति वाच्यं । भाव-  
स्यापि स्वसमानाधिकरणान्योन्याभावभिन्नत्वात्तद्भेदस्य चाधि-  
करणस्वरूपानतिरेकितया अन्योन्याभावरूपप्रतियोगिसम्बन्धिहेतु-

(१) सामानाधिकरणसम्बन्धेन गुण-कर्मान्यत्वविशिष्टसत्ताधिकरणत्वस्यैव  
विशिष्टाधिकरणतात्वमिति भावः ।

सवन्विकत्वात्, अन्योन्याभावान्तरसाधिकरणातिरिक्तत्वेऽपि अन्योन्या-  
 भावान्योन्याभावस्याधिकरणस्वरूपानतिरिक्तत्वात्<sup>(१)</sup> । न च नव्यनये  
 अभावाधिकरणकाभावस्यान्योन्याभावान्योन्याभावस्य चाधिकरणस्वरूप-  
 पत्वाभावादत्यन्ताभावत्वनिरूपितप्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नसामा-  
 न्यासवन्वित्वस्य विवक्षितत्वाद्वा<sup>(२)</sup> नाप्रसिद्धिरिति वाच्यं । तथापि  
 सर्वेषामेव भावरूपाणामभावरूपाणां वा अभावानां पूर्वक्षणादियत्कि-  
 ष्विदृत्तित्वविशिष्टत्वाभावात्यन्ताभावात्मकत्वस्य सर्वसिद्धतया तादृश-  
 खाभावरूपप्रतियोग्यधिकरणमेव हेत्वधिकरणमित्यप्रसिद्धेर्दुर्वारत्वात्  
 पूर्वक्षणादिदृत्तित्वविशिष्टानां घटादिदृत्तित्वविशिष्टानां वा जल-  
 ताभावादीनामभावाभावस्य विशिष्टजलत्वाभावादेः केवलजलत्वा-  
 भावाद्यनतिरिक्तत्वात् । ततोऽपि घटत्वाभावो घटत्वाभावत्वादित्यादौ  
 तादात्म्यसम्बन्धेन अभावसाध्यकेऽव्याप्तिः गोत्वादिरूपयत्किञ्चित्प्रति-  
 योगितावच्छेदकावच्छिन्नासम्बन्धिहेतुसम्बन्धिनिष्ठस्य गवादिभेदस्य  
 प्रतियोगितावच्छेदकाद्वटत्वाभावत्वादेः, प्राचां मतेऽभावाधि-  
 करणकाभावप्रतियोगिकाभावस्याधिकरणस्वरूपानतिरेकितया गवा-  
 दिभेदे वर्तमानस्य घटत्वाभावादिभेदस्य गवादिभेदस्वरूपत्वात् ।

(१) अन्योन्याभावान्योन्याभावस्यातिरिक्तत्वे तदन्योन्याभावस्याप्यतिरिक्त-  
 त्वमित्यनवस्था स्यादतः अन्योन्याभावान्योन्याभावस्याधिकरणस्वरूप-  
 त्वमिति तात्पर्यम् ।

(२) आकाशाभावादिनिष्ठजलत्वाभावीयप्रतियोगित्वं अन्योन्याभावत्वनि-  
 रूपितं न त्वत्यन्ताभावत्वनिरूपितमिति न दोषः ।

कपिसंयोगाभावे<sup>(१)</sup> साध्ये आत्मत्व-द्रव्यत्वादिहेतावव्याप्तिश्च आ-  
 त्मत्वादिषमानाधिकरणकपिसंयोगाभावाभावस्य कपिसंयोगस्य गु-  
 णसामान्याभावत्व-समवेतसामान्याभावत्वरूपयत्किञ्चित्प्रतियोगिताव-  
 च्छेदकावच्छिन्नसामान्यासम्बन्धित्वादात्मादेरिति । मैवं, स्वावच्छेदक-  
 सम्बन्धेन स्वावच्छेदकावच्छिन्नसामान्यासम्बन्धिनिरुक्तहेतुसम्बन्धिनि-  
 ष्टाभावनिरूपिता या या प्रतियोगिता तदनवच्छेदकत्वस्य विवचि-  
 तत्वात्, स्वपदं प्रतियोगितापरं । इत्यञ्च वन्निमान् धूमादित्यादौ  
 जलत्वाद्यभावस्य जलत्वादिनिष्ठजलत्वत्वाद्यवच्छिन्नप्रतियोगिताव्यक्त्य-  
 एव तादृश्यः प्रसिद्धाः, प्रतियोगितावच्छेदकभेदेन प्रतियोगिताभे-  
 दात्, तदवच्छेदकञ्च न वन्निहत्वादिकमिति नासम्भवः । घटत्वाभावो  
 घटत्वाभावत्वादित्यादौ च घटत्वाभावत्वावच्छिन्ना घटत्वाभावनिष्ठा  
 गवादिभेदनिरूपिता प्रतियोगिताव्यक्तिर्न तादृशी, किन्तु गवा-  
 दिनिष्ठगोत्वाद्यवच्छिन्नतदीयप्रतियोगिताव्यक्तिरेव तादृशी तद-  
 नवच्छेदकमेव घटाभावत्वमिति नाव्याप्तिः । एवं कपिसंयोगा-  
 भाववान् आत्मत्वादित्यादावपि कपिसंयोगाभावत्वावच्छिन्ना कपि-  
 संयोगाभावनिष्ठा कपिसंयोगनिरूपिता प्रतियोगिताव्यक्तिर्न ता-  
 दृशी, किन्तु गुणादिषामान्याभावनिष्ठगुणसामान्याभावत्वाद्यव-  
 च्छिन्नतदीयप्रतियोगिताव्यक्तिरेव तादृशी तदनवच्छेदकमेव कपि-  
 संयोगाभावत्वमिति नाव्याप्तिः ।

(१) अभावाधिकरणकाभावप्रतियोगिकाभावस्य अधिकरणरूपत्वान-  
 भ्युपगमे अव्याप्तिमाह कपिसंयोगाभाव इति ।

वस्तुतस्तु स्वावच्छेदकसम्बन्धेन स्वावच्छेदकावच्छिन्नसामान्या-  
सम्बन्धिनिरुक्तहेतुसम्बन्धिका या या प्रतियोगिता तदनवच्छेदकं  
यदित्येव विवक्षणीयं, अभावनिवेगे प्रयोजनविरहादिति तत्त्वम्<sup>(१)</sup> ।

तादृशी या या प्रतियोगिता तदनाश्रयो यत्तेन समं सामा-  
नाधिकरणमित्युक्तावसम्भवः वङ्गिमान् धूमादित्यादौ सर्वेषामेव  
वङ्गीनां तत्तद्वङ्गित्वोभयत्वाद्यवच्छिन्नप्रतियोगितायास्तादृश्या आ-  
श्रयत्वादतोऽवच्छेदकानुधावनं । नन्वेवमपि वङ्गिमान् धूमादि-  
त्यादावसम्भवः वङ्गित्वादेश्चानसौयत्वविशिष्टवङ्गित्वाद्यवच्छिन्न-  
प्रतियोगितायास्तादृश्या अवच्छेदकत्वात् विशिष्टस्यावच्छेदकत्वे तद्व-  
दकतया विशेष्यस्याप्यवच्छेदकत्वात् । अथानवच्छेदकत्वं पर्याप्त्या-  
ख्यसम्बन्धेनावच्छेदकताशून्यत्वं तथाच वङ्गित्वादिकं केवलं न  
सहानसौयत्वविशिष्टवङ्गित्वाद्यवच्छिन्नप्रतियोगिताया अवच्छेदकता-  
पर्याप्त्यधिकरणमतो नासम्भवः । न च तथापि दण्डिमान् दण्डि-

(१) अनुगमप्रणाली च हेत्वधिकरणवृत्तिप्रतियोगितानवच्छेदकसाध्यता-  
वच्छेदकावच्छिन्नसामानाधिकरणमित्यादिरूपा, प्रतियोगितायां हे-  
त्वधिकरणवृत्तित्वं स्वविशिष्टाधिकरणत्वसम्बन्धावच्छिन्नसनिष्ठावच्छे-  
दकताकभेदवत्त्वसम्बन्धेन अधिकरणत्वे स्वविशिष्ट्यं स्वावच्छेदकसम्ब-  
न्धावच्छिन्नत्व-स्वावच्छेदकधर्मावच्छिन्नत्वोभयसम्बन्धेन इति, हेत्वधि-  
करणवृत्तिप्रतियोगितानवच्छेदकत्वनेन तादृशप्रतियोगितावच्छेदक-  
त्वसामान्याभावस्य विवक्षणात् धूमवान् वङ्गेरित्यादौ धूमत्वस्य  
यत्किञ्चित्प्रतियोगितानवच्छेदकत्वेऽपि नातिव्याप्तिरिति ।

संयोगादित्यादिनानाव्यक्तिसाध्यतावच्छेदकत्वलेऽव्याप्तिः<sup>(१)</sup> साध्यता-  
वच्छेदकौभूतानां सर्वासासेव दण्डव्यक्तीनां चालनीन्यायेन दण्ड-  
संयोगवन्निष्ठ-तत्तद्दण्डावच्छिन्न-प्रतियोगिताक-तत्तद्दण्डभावप्रति-  
योगितायास्तादृश्या अवच्छेदकतापर्याप्त्यधिकरणत्वादिति वाच्यं ।  
जात्यखण्डोपाध्यतिरिक्तपदार्थस्य स्वरूपतोऽभावप्रतियोगितानव-  
च्छेदकतया दण्डव्यक्तीनां पर्याप्त्याख्यसम्बन्धेनावच्छेदकतावत्त्वविरहात्  
तत्त्व-दण्डत्वयोरप्यवश्यमवच्छेदककोटिप्रविष्टत्वादिति<sup>(२)</sup> चेत् । न ।  
तथा सति महानसीयत्वविशिष्टवद्भिमान् धूमादित्यादावतिव्याप्तिः  
वद्भित्वस्य पर्याप्त्याख्यसम्बन्धेनावच्छेदकताशून्यतया महानसीयत्व-  
विशिष्टवद्भित्वस्यापि तथात्वात् महानसीयत्वविशिष्टवद्भित्वस्य वद्भि-  
त्वानतिरिक्तत्वात्, तद्दण्डिमान् दण्डिसंयोगादित्यादावतिव्याप्तिश्च  
जात्यखण्डोपाध्यतिरिक्तपदार्थस्य स्वरूपतोऽभावप्रतियोगितानवच्छेद-  
कतया साध्यतावच्छेदकौभूत-तत्तद्दण्डव्यक्तेरपि पर्याप्त्याख्यतादृश-  
प्रतियोगितावच्छेदकताशून्यत्वादिति । मैवं, स्वावच्छेदकसम्बन्धेन  
स्वावच्छेदकावच्छिन्नसामान्यासम्बन्धिगिरुक्तहेतुसम्बन्धिका या या

(१) दण्डिसंयोगादित्यत्र दण्डिसंयोगपदेन दण्डिप्रतियोगिकत्वविशिष्ट-  
संयोगस्य विवक्षितत्वं तेन संयोगस्य निष्ठतया दण्डिसंयोगस्य  
दण्डिनि सत्त्वेऽपि न सद्हेतुत्वव्याघातः, तत्रप्रतियोगिकत्वविशिष्टस्य  
संयोगस्य तस्मिन्ननभ्युपगमादिति ।

(२) अवच्छेदकतावच्छेदकसाधारणावच्छेदकत्वमतेनेदं, तथाच तद्दण्डा-  
भावप्रतियोगितावच्छेदकत्वं तद्दण्ड इव तत्त्व-दण्डत्वयोरपि पर्याप्तं न  
तु तद्दण्डव्यक्तिमात्रे इति न दोष इति भावः ।

प्रतियोगिता तत्तत्प्रतियोगितासामान्ये यद्दुर्म्पपर्याप्तावच्छेदकता-  
 कत्वाभावस्तद्दुर्म्पवच्छिन्नसामानाधिकरणस्य विवक्षितत्वात् । यत्र  
 येन रूपेण साध्यतावच्छेदकत्वं तत्र तेन रूपेण तदेव यद्दुर्म्पपदेन  
 ग्राह्यं, इत्यत्र वक्षिमान् धूमादित्यादौ धूमवन्निष्ठमहानसीयव-  
 ङ्गित्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावप्रतियोगितायाः महानसीयत्ववि-  
 शिष्टवङ्गित्वपर्याप्तावच्छेदकताकत्वेऽपि शुद्धवङ्गित्वस्यैव साध्यताव-  
 च्छेदकतया शुद्धवङ्गित्वपर्याप्तावच्छेदकताकत्वविरहान्नासम्भवः ।  
 महानसीयत्वविशिष्टवङ्गित्वात् धूमादित्यादौ च धूमवन्निष्ठमहान-  
 सीयवङ्गित्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावप्रतियोगितायास्तादृशप्रति-  
 योगितान्तर्गतायाः साध्यतावच्छेदकौभूतमहानसीयत्वविशिष्टवङ्गित्व-  
 पर्याप्तावच्छेदकताकत्वात्जातिव्याप्तिः । एवं तद्दण्डमान् दण्डसंयो-  
 गादित्यादौ दण्डसंयोगवन्निष्ठतद्दण्डभावप्रतियोगितायास्तादृश-  
 प्रतियोगितान्तर्गतायाः शुद्धतद्दण्डव्यक्तिपर्याप्तावच्छेदकताकत्वाभाव-  
 वत्त्वेऽपि तद्दण्डत्वविशिष्टव्यक्तेरेव साध्यतावच्छेदकतया तादृशतद्दण्ड-  
 व्यक्तिपर्याप्तावच्छेदकताकत्वात्जातिव्याप्तिः । एतेन द्रव्यत्वव्याप्यजातिम-  
 त्तान् द्रव्यसमवायिवादित्यादिनाजातिसाध्यतावच्छेदकत्वलोऽव्याप्तिः  
 साध्यतावच्छेदकौभूतानां सर्वासां द्रव्यत्वव्याप्यजातीनां चालनीन्यायेन  
 द्रव्यसमवायिनि वर्तमानस्य स्वरूपतः पृथिवीत्व-जलत्वादिस्वरूपद्रव्य-  
 त्वव्याप्यतत्त्वव्याप्यवच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावस्य प्रतियोगितावच्छे-  
 दकतापर्याप्त्यधिकरणत्वात् जात्यखण्डोपाध्यतिरिक्तपदार्थस्यैव स्वरू-  
 पतोऽवच्छेदकतानभ्युपगमादित्यपि परास्तं । महानसीयत्वविशिष्ट-  
 वङ्गित्वात् धूमात् तद्दण्डमान् दण्डसंयोगादित्यादावतिव्याप्तिवार-



णाय यथोक्तविवक्षाया आवश्यकत्वे तत एवात्राप्यव्याप्तेर्निरामात्, स्वरूपतः पृथिवीत्व-जलत्वाद्यवच्छिन्नप्रतियोगिताया द्रव्यत्वव्याप्यजा- तित्वविशिष्टपर्याप्तावच्छेदकताकत्वाभावात् । न चैवं विवक्षणे घ्राण- ग्राह्यगुणवान् पृथिवीत्वादित्यादौ लघुसमनियतगुरुरूपेण साध्य- तायामव्याप्तिः स्वरूपसम्बन्धरूपावच्छेदकत्वस्य सम्भवति लघुधर्मै- गुरावभावेन घ्राणग्राह्यगुणत्वनिष्ठावच्छेदकत्वाप्रसिद्धेः लाघवाद्बन्धत्व- स्यैव प्रतियोगितावच्छेदकत्वात् । अनतिरिक्तवृत्तित्वरूपावच्छेदकत्व- प्रवेशे सत्तावान् जातेरित्यादावव्याप्तिः विशिष्टसत्तात्वाद्यवच्छिन्नप्रति- योगिताया अनतिरिक्तवृत्तित्वात् सत्तात्वादेरिति वाच्यं । लघुसम- नियतगुरुधर्मैण साध्यतायामलक्ष्यत्वात्<sup>(१)</sup> । अतएव गुरुधर्मो न का- रणतावच्छेदकः तन्निष्ठपर्याप्तावच्छेदकत्वाप्रसिद्ध्या तेन रूपेण व्याप- कत्वविरहात् यथोक्तव्यापकतायाश्च कारणताघटकत्वात् । अन्यथा गुरुधर्मैणापि व्यापकत्वे कार्यव्यवहितपूर्वत्वव्यापकतावच्छेदका- न्यथासिद्धनिरूपकधर्मस्यैव कारणतावच्छेदकतया गुरुधर्मस्यापि कारणतावच्छेदकत्वापत्तेः । गुरुधर्मस्य कारणतानवच्छेदकत्वन्तु तद्वटितव्यापकत्वस्य गौरवेण कारणतापदार्थत्वविरहात् ।

वस्तुतस्तु लघुसमनियतगुरुधर्मस्य शक्यताद्यनवच्छेदकत्वेऽपि कम्बु- ग्रीवादिमान्नास्तीत्याद्यवाधितप्रतीतेः प्रतियोगिताया अवच्छेदक- त्वमस्यैव, न हि तदप्रतीतेस्तत्प्रतियोगिकाभावमात्रं विषयः, तथाविध-

(१) लघुसमनियतगुरुधर्मावच्छिन्नविधेयकानुमितित्तु लघुधर्मावच्छिन्ने व्यापकत्वज्ञानादेव भवतीत्यभिप्रायेणैतदुक्तमिति ।

यत्किञ्चिद्व्यक्तिसत्त्वेऽपि तादृशप्रतीत्यापत्तेः । गुरुधर्मस्य कार-  
णतानवच्छेदकत्वञ्चावश्यकृत्प्रनियतपूर्ववर्त्तिसहभावादिवद्गौरवस्यापि  
स्वातन्त्र्येणान्यथासिद्धिसम्पादकत्वात्<sup>(१)</sup> ।

यद्वा कार्याव्यवहितपूर्वत्वरूपव्यापकतावच्छेदकान्यथासिद्धानिरू-  
पकधर्मस्यैव न कारणतावच्छेदकत्वमपि तु तादृशधर्मत्वरूपस्याति-  
रिक्ताखण्डपदार्थरूपस्य वा कारणत्वस्य स्वरूपसम्बन्धविशेषरूपाव-  
च्छेदकत्ववत् एव कारणतावच्छेदकत्वं तथाच लघुसमनियतगुरु-  
धर्मस्य प्रतीतिवत्त्वाद्भावप्रतियोगितायाः स्वरूपसम्बन्धरूपावच्छे-  
दकत्वेऽपि यथोक्तरूपायाः कारणतायाः स्वरूपसम्बन्धरूपावच्छे-  
दकत्वविरहादेव न कारणतावच्छेदकत्वं । न चैवं दण्डत्वादे-  
र्लघुधर्मस्यापि कारणतायास्तादृशावच्छेदकत्वे मानाभावः कार-  
णतावच्छेदकधर्मवत्त्वस्यैव कारणत्वरूपत्वेन दण्डत्वस्यैव कारणत्वरूप-  
तया स्वस्यैव स्वावच्छेदकत्वात्सम्भवश्चेति वाच्यं । दण्डत्वेन घटकार-  
णत्वमित्यादिप्रतीतेरेव मानत्वात् प्रतीतिवत्त्वात् स्वस्यापि धर्मा-  
न्तरविशिष्टस्वावच्छेदकत्वाच्चेत्येव तत्त्वं ।

ननु तथाप्यसम्भवः वद्विमान् धूमादित्यादौ धूमादिष-  
मानाधिकरणवद्भ्रान्तान्योन्याभावप्रतियोगितायाः तादृशसमवायादि-  
यत्किञ्चित्सम्बन्धावच्छिन्नवद्भ्रान्तिसामान्यात्यन्ताभावप्रतियोगितायाश्च  
तादृशप्रतियोगितान्तर्गताया वद्वित्वाद्यवच्छेद्यत्वात् । न च साध्यता-

(१) यथावश्यकृत्प्रनियतपूर्ववर्त्तिसहभावादेः अन्यथासिद्धिसम्पादकत्वं  
तथा गौरवस्यापि स्वातन्त्र्येणान्यथासिद्धिसम्पादकत्वं अतो गुरुध-  
र्मावच्छिन्नस्यान्यथासिद्धत्वं न तु कारणत्वमिति समुदिततात्पर्यम् ।

णाय यथोक्तविवक्षाया आवश्यकत्वे तत एवात्राप्यव्याप्तेर्निरासात्, स्वरूपतः पृथिवीत्व-जलवाद्यवच्छिन्नप्रतियोगिताया द्रव्यत्वव्याप्यजा- तित्वविशिष्टपर्याप्तावच्छेदकताकत्वाभावात् । न चैवं विवक्षणे घ्राण- ग्राह्यगुणवान् पृथिवीत्वादित्यादौ लघुसमनियतगुरुरूपेण साध्य- तायामव्याप्तिः स्वरूपसम्बन्धरूपावच्छेदकत्वस्य सम्भवति लघुधर्मै- गुरावभावेन घ्राणग्राह्यगुणत्वनिष्ठावच्छेदकत्वाप्रसिद्धेः लाघवाद्बन्धत्व- स्यैव प्रतियोगितावच्छेदकत्वात् । अनतिरिक्तवृत्तित्वरूपावच्छेदकत्व- प्रवेशे सत्तावान् जातेरित्यादावव्याप्तिः विशिष्टसत्तात्वाद्यवच्छिन्नप्रति- योगिताया अनतिरिक्तवृत्तित्वात् सत्तात्वादेरिति वाच्यं । लघुसम- नियतगुरुधर्मैण साध्यतायामलक्ष्यत्वात्<sup>(१)</sup> । अतएव गुरुधर्मो न का- रणतावच्छेदकः तन्निष्ठपर्याप्तावच्छेदकत्वाप्रसिद्ध्या तेन रूपेण व्याप- कत्वविरहात् यथोक्तव्यापकतायाश्च कारणताघटकत्वात् । अन्यथा गुरुधर्मैणापि व्यापकत्वे कार्याव्यवहितपूर्वत्वव्यापकतावच्छेदका- न्यथासिद्धनिरूपकधर्मस्यैव कारणतावच्छेदकतया गुरुधर्मस्यापि कारणतावच्छेदकत्वापत्तेः । गुरुधर्मस्य कारणतानवच्छेदकत्वन्तु तद्वटितव्यापकत्वस्य गौरवेण कारणतापदार्थत्वविरहात् ।

वस्तुतस्तु लघुसमनियतगुरुधर्मस्य शक्यताद्यनवच्छेदकत्वेऽपि कम्बु- ग्रीवादिमान्नास्तीत्याद्यवाधितप्रतीतेः प्रतियोगिताया अवच्छेदक- त्वमस्यैव, न हि तत्प्रतीतेस्तत्प्रतियोगिकाभावसाचं विषयः, तथाविध-

(१) लघुसमनियतगुरुधर्मावच्छिन्नविधेयकानुमितित्तु लघुधर्मावच्छिन्ने व्यापकत्वज्ञानादेव भवतीत्यभिप्रायेणैतदुक्तमिति ।

यत्किञ्चिद्व्यक्तिसत्त्वेऽपि तादृशप्रतीत्यापत्तेः । गुरुधर्मस्य कारणतानवच्छेदकत्वञ्चावश्यकृत्प्रनियतपूर्ववर्तिसहभावादिवद्गौरवस्यापि स्वातन्त्र्येणान्यथासिद्धिसम्पादकत्वात्<sup>(१)</sup> ।

यद्वा कार्य्याव्यवहितपूर्वत्वरूपव्यापकतावच्छेदकान्यथासिद्धनिरूपकधर्मस्यैव न कारणतावच्छेदकत्वमपि तु तादृशधर्मत्वरूपस्यातिरिक्ताखण्डपदार्थरूपस्य वा कारणत्वस्य स्वरूपसम्बन्धविशेषरूपावच्छेदकत्ववत् एव कारणतावच्छेदकत्वं तथाच लघुसमनियतगुरुधर्मस्य प्रतीतिवत्त्वाद्भावप्रतियोगितायाः स्वरूपसम्बन्धरूपावच्छेदकत्वेऽपि यथोक्तरूपायाः कारणतायाः स्वरूपसम्बन्धरूपावच्छेदकत्वविरहादेव न कारणतावच्छेदकत्वं । न चैवं दण्डत्वादेर्लघुधर्मस्यापि कारणतायास्तादृशावच्छेदकत्वे मानाभावः कारणतावच्छेदकधर्मत्वस्यैव कारणतारूपत्वेन दण्डत्वस्यैव कारणतारूपतया स्वस्यैव स्वावच्छेदकत्वावशवच्चेति वाच्यं । दण्डत्वेन घटकारणत्वमित्यादिप्रतीतेरेव मानत्वात् प्रतीतिवत्त्वात् स्वस्यापि धर्मान्तरविशिष्टस्वावच्छेदकत्वाच्चेत्येव तत्त्वं ।

ननु तथाप्यसंभवः वज्रिमान् धूमादित्यादौ धूमादिसमानाधिकरणवज्राद्यन्योन्याभावप्रतियोगितायाः तादृशसमवायादियत्किञ्चित्सम्बन्धावच्छिन्नवज्रादिसामान्यात्यन्ताभावप्रतियोगितायाश्च तादृशप्रतियोगितान्तर्गताया वज्रित्वाद्यवच्छेद्यत्वात् । न च साध्यता-

(१) यथावश्यकृत्प्रनियतपूर्ववर्तिसहभावादेः अन्यथासिद्धिसम्पादकत्वं तथा गौरवस्यापि स्वातन्त्र्येणान्यथासिद्धिसम्पादकत्वं अतो गुरुधर्मावच्छिन्नस्यान्यथासिद्धत्वं न तु कारणत्वमिति समुदिततात्पर्यम् ।

वच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नत्वेन प्रतियोगिताव्यक्तयोविशेषणीयाः स्वाव-  
 च्छेदकसम्बन्धेनेतिस्थाने साध्यतावच्छेदकसम्बन्धेनेति वा वक्तव्यमिति  
 वाच्यं । तथा सति कालिकसम्बन्धेन घटादेः साध्यत्वे कालपरि-  
 माणादिहेतावव्याप्त्यपत्तेः तत्र स्वावच्छेदकसम्बन्धेन स्वावच्छेद-  
 कावच्छिन्नासम्बन्धिनिरुक्तहेतुसम्बन्धिकायाः साध्यतावच्छेदककालि-  
 कसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगितायाः साध्यतावच्छेदककालिकसम्बन्धेन  
 स्वावच्छेदकावच्छिन्नासम्बन्धिनिरुक्तहेतुसम्बन्धिकायाः प्रतियोगिता-  
 याश्चाप्रसिद्धत्वात् निरुक्तहेतुसम्बन्धिनो महाकालस्य कालिक-  
 सम्बन्धेन वृत्तिवन्मात्रस्यैवाधारत्वात् । न च कालिकसम्बन्धाव-  
 च्छिन्नगगणाद्यभावप्रतियोगितैव तादृशी प्रसिद्धा तस्याश्च स्वावच्छे-  
 दककालिकसम्बन्धेन स्वावच्छेदकगगणत्वाद्यवच्छिन्नासम्बन्धित्वस्य हेतु-  
 सम्बन्धिनि महाकाले सत्त्वात् महाकालस्य गगणाद्यसम्बन्धित्वा-  
 दिति वाच्यं । कालिकसम्बन्धेन गगणादेर्वृत्तिमत्त्वे महाकाले कालि-  
 कसम्बन्धेन गगणादेरपि सम्बन्धित्वात् तेन सम्बन्धेन गगणादेर-  
 वृत्तित्वे तु तेन सम्बन्धेन गगणत्वाद्यवच्छिन्नसम्बन्धिन एवाप्रसिद्धत्व-  
 मित्युभयथापि कालिकसम्बन्धावच्छिन्नगगणाद्यभावप्रतियोगिता-  
 मादाय प्रसिद्धसम्भवात् । किञ्च घटवान् नित्यज्ञानत्वादित्यादौ  
 विषयितासम्बन्धेन घटादिषाध्यके विषयितासम्बन्धावच्छिन्नगग-  
 णाद्यभावप्रतियोगितामादायापि न प्रसिद्धिसम्भवः विषयितया  
 गगणादेरपि नित्यज्ञाने सत्त्वादिति । मैवं । स्वावच्छेदकसम्बन्धेन स्वा-  
 वच्छेदकावच्छिन्नसामान्यासम्बन्धिनिरुक्तहेतुसम्बन्धिकप्रतियोगिता-  
 सामान्ये साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नत्व-यद्गुर्भनिष्ठपर्याप्तावच्छेद-

कृताकलोभयाभावस्तद्भवविच्छिन्नसामानाधिकरणस्य विवक्षितत्वात् ।  
इत्यञ्च घटवान् कालपरिमाणादित्यादौ समवायादिसम्बन्धा-  
च्छिन्नघटाद्यभावप्रतियोगितात्मादायैव प्रसिद्धिः । एतेन घटत्वाभाव-  
वान् पटत्वादित्यादावव्याप्तिः पटत्वसमानाधिकरणस्य गोत्वाभावा-  
देर्घटत्वाभावनिष्ठप्रतियोगिताया घटत्वाभावत्वावच्छेद्यत्वात् अभा-  
वाधिकरणकाभावप्रतियोगिकाभावस्याधिकरणस्वरूपानतिरेकितया  
गोत्वाभावादिनिष्ठघटत्वाभावभेदस्य गोत्वाभावादिरूपत्वेन घटत्वा-  
भावस्यापि गोत्वाभावादिप्रतियोगित्वात् तदप्रतियोगिताव्यक्तेः स्वाव-  
च्छेदकतादात्म्यसम्बन्धेन स्वावच्छेदकावच्छिन्नासम्बन्धित्वस्यापि हेतु-  
सम्बन्धिनि सत्त्वाच्चेति प्राचां दूषणमप्यपास्तं । तदप्रतियोगिताव्यक्तेः  
घटत्वाभावत्वाद्यवच्छेद्यत्वेऽपि साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नत्वाभावे-  
नोभयाभाववत्त्वात् । अथैवमपि घटवान् नित्यज्ञानत्वात् इत्यादौ वृत्त्य-  
नियामकविषयितादिसम्बन्धेन साध्यतायामव्याप्तिस्तादात्म्यातिरिक्तवृ-  
त्त्यनियामकसम्बन्धमात्रस्याभावप्रतियोगितानवच्छेदकत्वेन<sup>(१)</sup> तत्र सा-  
ध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नत्वस्याप्रसिद्धत्वात् । यदि च वृत्त्यनियामक-  
विषयितादिसम्बन्धस्याभावप्रतियोगितानवच्छेदकत्वेऽपि घटत्वज्ञाना-  
द्यत्यन्ताभावादेः प्रतियोगितावच्छेदकतावच्छेदकमत्त्वेवेत्यभावप्रति-  
योगितावच्छेदकतायानेव तदवच्छिन्नत्वं प्रसिद्धमित्युच्यते, तदापि

(१) तादात्म्यस्य वृत्त्यनियामकत्वेऽपि तत्सम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगित्वमवश्यं-  
मभ्युपेयमन्यथा तादात्म्यसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावत्वलक्षणा-  
न्योन्याभावत्वस्य दुर्बलत्वापत्तिरिति तात्पर्यम् ।

वृत्त्यनियामकविषयतादिसम्बन्धेन साध्यतायां घटवज्ज्ञानत्वादित्यादावतिव्याप्तिः वृत्त्यनियामकसम्बन्धस्य अभावप्रतियोगितानवच्छेदकत्वेन ज्ञानत्वसमानाधिकरणाभावप्रतियोगितायां विषयितादिसम्बन्धावच्छिन्नत्व-घटत्वाद्यवच्छिन्नत्वोभयाभावसत्त्वादिति चेत् । न । वृत्तिनियामकसम्बन्धवत् वृत्त्यनियामकसम्बन्धस्याप्यभावप्रतियोगितावच्छेदकत्वात् । न चैवमपि तादात्म्यसम्बन्धेन साध्यतायां घटो द्रव्यत्वादित्यादावतिव्याप्तिः मूलोक्तसचणवाक्येऽत्यन्ताभावपदसत्त्वेन अत्यन्ताभावनिरूपितप्रतियोगिताया एव सचणघटकतया तादृशप्रतियोगितासामान्ये तादात्म्यसम्बन्धावच्छिन्नत्व-घटत्वाद्यवच्छेद्यत्वोभयाभावसत्त्वादिति वाच्यम् । अत्यन्ताभावस्यात्र प्रयोजनविरहेणानुपादेयत्वात् । न च तथापि संयोगादिसम्बन्धेन द्रव्यत्वादिसाध्यके द्रव्यं पृथिवीत्वादित्यादावतिव्याप्तिः संयोगसम्बन्धावच्छिन्नद्रव्यत्वाभावनिरूपितप्रतियोगितायन्तेः स्वावच्छेदकसम्बन्धेन स्वावच्छेदकावच्छिन्नसम्बन्धिन् एवाप्रसिद्धत्वं किन्त्वभावान्तरीयप्रतियोगिताव्यक्तय एव तथा तत्र संयोगसम्बन्धावच्छिन्नत्व-द्रव्यत्वावच्छिन्नत्वोभयाभावसत्त्वादिति वाच्यम् । तदवच्छिन्नसामानाधिकरण्यदलेनेव तन्निरासात् साध्यतावच्छेदकसम्बन्धेन तदवच्छिन्नसम्बन्धिनि हेतुतावच्छेदकसम्बन्धेन सम्बन्धित्वस्य तदर्थत्वात्<sup>(१)</sup> साध्यतावच्छेदकहेतुतावच्छेदकसम्बन्धघटितसाध्यसामानाधिकरणाज्ञाने सम्बन्धान्तरेण साध्यसामानाधिकरण्यज्ञाने वानुमित्यनुदयात् । तादा-

(१) तदवच्छिन्नसामानाधिकरण्यदलार्थत्वादित्यर्थः ।

व्यादिवृत्त्यनियामकसम्बन्धेन साध्यत्वे हेतुत्वे चाव्याप्तिवारणाय अधि-  
 करणत्वं वृत्तित्वमपहाय सम्बन्धित्वप्रवेगः । न च तथापि व्यापक-  
 तात्त्वणमतिव्याप्तमेव स्वावच्छेदकसम्बन्धेन स्वावच्छेदकावच्छिन्न-  
 सामान्यासम्बन्धिनिर्ऋहेतुसम्बन्धिकप्रतियोगितासामान्ये साध्यता-  
 वच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नत्व-यद्गुणपर्याप्तावच्छेदकताकलोभयाभावः त-  
 द्गुणावच्छिन्नत्वं व्यापकत्वमित्यस्यैव व्यापकतात्त्वणत्वात् स्वपदं प्रति-  
 योगितापरमिति वाच्यं । साध्यतावच्छेदकसम्बन्धेन सम्बन्धित्वे सती-  
 त्वनेनापि व्यापकतात्त्वणं विशेषणीयत्वात्, साध्यतावच्छेदकसम्बन्धा-  
 ग्रवृत्तित्वेन व्यापकतावच्छेदकधर्मो वा विशेषणीयः तेन द्रव्यत्वादेः  
 संयोगसम्बन्धेन प्रमेयत्वादिरूपेण पृथिवीत्वादिव्यापकताभ्युपगमेऽपि न  
 घतिः । न च प्रतियोग्यतागानाधिकरण्य-हेतुतागानाधिकरण्य-साध्य-  
 तागानाधिकरण्यदलेषु सर्वत्रैव सम्बन्धित्वप्रवेगेऽधिकरण्यत्व-वृत्तित्वयोः  
 ह्यप्यप्रवेगात् संयोगेन गगणादेर्द्रव्यत्वादिव्याप्यत्वं, पृथिवीत्वादेः संयो-  
 गेन गगणादिव्याप्यत्वञ्च स्यात् पृथिवीत्वाधिकरणे संयोगेन गगणा-  
 भावपत्तेऽपि तस्य संयोगेन तदीयप्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्न-  
 सम्बन्धित्वादिति वाच्यं । दृष्टत्वात् । नन्वेतावता धूमादिव्यापकतावच्छे-  
 दकवह्नित्वाद्यवच्छिन्नसंयोगिसंयोगितादेरेव व्याप्तिव्यतिरिक्तं पर्यवसिते  
 तादृशसंयोगित्वस्य समवायसम्बन्धेन रासभादौ व्यभिचारिण्यपि  
 सत्त्वाद्रासभादौ समवायसम्बन्धेन तद्वत्तापरामर्शाद्भूमव्यापकवह्नि-  
 यमानाधिकरणरासभवान् पर्वत इत्याकारकादपि वज्रनुमित्यापत्तिः  
 न्यायनये धूमत्वधर्मितानवच्छेदककव्याप्यत्वपरामर्शस्यापि अनुमि-  
 तिहेतुत्वात् । न चेष्टापत्तिः, रासभलिङ्गकवज्रनुमितेः व्याप्यं



भ्रमपरामर्शजन्यत्वनियमादिति<sup>(१)</sup> चेत् । न । तादृशसंयोगित्वादि-  
रूपव्याप्तेः स्वघटकीभूतधूमत्वादिसम्बन्धेनैव ज्ञानमनुमितिहेतुः  
न तु समवायादिसाक्षात्सम्बन्धेनेत्यभ्युपगमात्, धूमत्वादेस्तत्सम्बन्धता  
च तदाश्रयवृत्तित्वसम्बन्धेन, रासभत्वावच्छिन्ने धूमत्वसम्बन्धेन तद्वत्ता-  
भ्रमादनुमितिरिष्यत एव ।

केचित्तु<sup>(२)</sup> तादृशसंयोगिवृत्तिधूमत्वादिकमेव व्याप्तिः न तु  
तादृशसंयोगित्वादिमात्रं, तादृशसंयोगिवृत्तिधूमत्ववद्रासभवान् पर्व-  
तदतिभ्रमपरामर्शादनुमितिरिष्यत एवेत्याहुः । तदसत् । लाघ-  
वाद्भूमत्वादिसम्बन्धेन तादृशसंयोगित्वादेरेव व्याप्तित्वस्योचितत्वात्<sup>(३)</sup> ।

ननु तथापि कपिसंयोगि एतत्त्वादित्याद्यव्याप्यवृत्तिसाध्यके-  
ऽव्याप्तिसदवस्था समवायसम्बन्धावच्छिन्नकपिसंयोगत्वावच्छिन्नप्रति-  
योगिताया अपि तादृशप्रतियोगितासामान्यान्तर्गतत्वेन तत्र सा-  
ध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नत्व-कपिसंयोगत्वाद्यवच्छेद्यत्वोपघाताभाववि-

(१) धूमव्यापकवह्निसमानाधिकरणरासभवान् पर्वत इति ज्ञानस्य व्या-  
प्यंशे प्रमात्वेन एतादृशज्ञानात् वङ्गनुमितिस्वीकारे रासभलिङ्गक-  
वङ्गनुमितेर्याप्यंशे भ्रमजन्यत्वनियमो न स्यादिति भावः ।

(२) केचित्चित्वादिना दीधितिद्वन्मतमुत्पापितं तेन एतद्दोषवारणाय  
सामानाधिकरणविशिष्टधूमत्वस्य व्याप्तित्वमङ्गीकृतं तन्मते तादृश-  
धूमत्वस्य प्रकारविधया भानं, रद्वस्यद्वन्मते तु संसर्गविधया इत्येता-  
वान् विशेषः ।

(३) धूमत्वस्य प्रकारविधया भाने तस्य संसर्गमानमवश्यमभ्युपेयं संसर्ग-  
विधया भाने तु संसर्गस्य संसर्गभानानभ्युपगमात् न तदीयसंसर्ग-  
भानमिति लाघवमनुसन्धेयम् ।

रसात् । न च समवायावच्छिन्न-कपिसंयोगत्वावच्छिन्नप्रतियोगितायाः  
 खावच्छेदकसमवायसम्बन्धेन खावच्छेदककपिसंयोगत्वावच्छिन्नसम्ब-  
 न्धिभिन्नमेव न हेत्वधिकरणमेतद्वृत्त इति कुतस्तस्याः तादृशप्रति-  
 योगितान्तर्गतत्वमिति वाच्यं । कपिसंयोगस्याव्याप्यवृत्तितया तद्-  
 त्यन्ताभावस्येव तद्वद्विगतत्वापि मूलावच्छेदेन वृत्ते सत्त्वात् अव्याप्य-  
 वृत्तिमतोऽन्योन्याभावस्याव्याप्यवृत्तित्वादिति चेत् । न । कपिसंयोगा-  
 देरव्याप्यवृत्तित्वेऽपि तत्सम्बन्धिता नाव्याप्यवृत्तिरतः कपिसंयोगत्वा-  
 वच्छिन्नसम्बन्धिभिन्नत्वं नैतद्वृत्त इति ग्रन्थगतोऽभिप्रायात्, अव्याप्य-  
 वृत्तेरत्यन्ताभावस्याव्याप्यवृत्तित्वेऽपि तद्वदन्योन्याभावो नाव्याप्यवृत्ति-  
 रित्यभिप्रायाद्वा । “न चान्योन्याभावस्याव्याप्यवृत्तित्वं” इत्यग्रे वक्ष्य-  
 माणत्वात् इति मूलं चतुरस्रं ।

सतत्त्वासु खावच्छेदकसम्बन्धेन खावच्छेदकावच्छिन्नसम्बन्धि-  
 भिन्नत्वेन हेतुसम्बन्धिनो न विशेषणीयाः, किन्तु निरुक्तहेतु-  
 सम्बन्धिनि निरवच्छिन्नवृत्तिमान् योऽभावः तत्प्रतियोगितासा-  
 मान्ये साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नत्व-यद्दूर्ध्वपर्याप्तावच्छेदकताक-  
 लोभयाभावस्तद्दूर्ध्वावच्छिन्नसामानाधिकरण्यमेव व्याप्तिर्वक्तव्या, इत्य-  
 च्चाव्याप्यवृत्तिसम्बन्धित्वाव्याप्यवृत्तिसदन्योन्याभावयोरव्याप्यवृत्तित्वेऽपि  
 न चतिः । वृत्तिस्वाभावोचविशेषणताविशेषसम्बन्धेन वक्तव्या, तेन  
 सत्त्वावान् जातेरित्यादौ समवायसम्बन्धावच्छिन्नसत्तासामान्याभावा-  
 देर्विषयित्वाव्याप्यत्वादिसम्बन्धेन हेत्वधिकरणे ज्ञानादौ वर्तमानत्वे-  
 ऽपि न चतिः । अत्यन्ताभावान्योन्याभावयोरभावसु न प्रतियो-  
 गितत्त्वावच्छेदकस्वरूपः, किन्त्वतिरिक्तत्वेन घटत्वात्यन्ताभाववान्

घटान्योन्याभाववान् वा द्रव्यत्वादित्यादौ नातिव्याप्तिः। साध्यप्रतियोगिकाभाववृत्तिसाध्नीयप्रतियोगित्व-तदवच्छेदकत्वान्यतरावच्छेदकसम्बन्धेन वा वृत्तिर्वक्तव्या, वृत्त्यन्तमन्यतरविशेषणं । न चैवं समवायसम्बन्धावच्छिन्नसत्ताभावादौ साध्ये जातित्वादिहेतावत्याप्तिः अत्र समवायसम्बन्धस्यैव तादृशान्यतरावच्छेदकसम्बन्धतया तेन सम्बन्धेन हेत्वधिकरणवृत्तित्वाप्रसिद्धेरिति वाच्यं । तत्र विशेषणताविशेषसम्बन्धापि कालिकसम्बन्धावच्छिन्नतादृशसत्ताभाव-जातित्वोभयाभावादि-रूपसाध्यप्रतियोगिकाभाववृत्तिसाध्नीयप्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्धत्वात् । एतेन केवलान्वयिसाध्याभावस्याप्रसिद्ध्या तन्निष्ठसाध्नीयप्रतियोगित्वस्याप्यप्रसिद्धौ अव्याप्तिरित्यपि निरस्तं । तत्रापि कालिकादियत्किञ्चित्सम्बन्धावच्छिन्नसाध्याभावस्य वैशिष्ट्य-व्यासज्यवृत्तिधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकसाध्याभावस्य च प्रसिद्धत्वात् । यद्वा निरुक्तहेतुसम्बन्धिनि स्वावच्छेदकसम्बन्धेन स्वावच्छेदकावच्छिन्नसम्बन्धनिरूपितवृत्तिमन्विरूपितप्रतियोगितासामान्ये<sup>(१)</sup> साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नत्व-यद्दुर्गावच्छेद्यत्वोभयाभावस्तद्दुर्गावच्छिन्नसामानाधिकरण्यं व्याप्तिः स्वपदं प्रतियोगितापरं, प्रथमसप्तम्यन्तं

(१) स्वावच्छेदकसम्बन्धेन स्वावच्छेदकावच्छिन्नासम्बन्धनिरूपितं सत् हेतुसम्बन्धनिरूपितं यद्वृत्तित्वं तद्वदभावप्रतियोगितासामान्ये इति फलितार्थः, सत्तावान् जातेरित्यादौ समवायावच्छिन्नसत्ताभावस्य विषयितासम्बन्धेन हेत्वधिकरणे ज्ञानादौ वृत्तित्वेऽपि तादृशवृत्तित्वं न सत्ताभावप्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नासम्बन्धनिरूपितमतो न दोषः ।

वृत्तिविशेषणं, इत्यत्र सम्बन्धविशेषेण वृत्त्यविवक्षणेऽपि न चतिरिति  
प्राञ्जरिति कृतं पल्लवितेन ।

इति श्रीमथुरानाथ-तर्कवागीश्वरिचिते तत्त्वचिन्तामणिरहस्य  
अनुमानाख्यद्वितीयखण्डरहस्ये सिद्धान्तखण्डणरहस्यम् !

---

## अथ सामान्याभावः ।

अन्यनिष्ठवद्भूमवत्पूर्वतदृच्यत्यन्ताभावप्रतियोगि-  
त्वेऽपि तत्प्रतियोगिता न वह्नित्वेनावच्छिद्यते, धूमवति  
वह्निर्नास्तीत्यप्रतीतेः सामान्यावच्छिन्नप्रतियोगिता-  
काभावः पृथगेव, अन्यथा सकलप्रसिद्धरूपाभावे प्रसि-  
द्धरूपवदन्यत्वे चावगते वायौ रूपं न वा वायूरूपवान्  
वेति संशयो न स्यात् विशेषाभावदूटस्य निश्चितत्वात् ।

इति श्रीमद्भक्तेशोपाध्यायविरचिते तत्त्वचिन्तामणौ  
अनुमानाख्यद्वितीयखण्डे सामान्याभावः ॥

## अथ सामान्याभावरहस्यं ।

वह्निमान् धूमादित्यत्र तत्तद्वद्भावमादाय पूर्वपक्षग्रन्थोक्तम-  
व्याप्तिबुद्धरति, 'अन्यनिष्ठेति, एतेनावच्छेदकानुधावनस्य व्यावृत्तिः  
ह्यसतो दर्शिता । ननु विशेषाभावानां विशेषधर्मावच्छिन्नप्रतियोगि-  
तानामवच्छेदकं सामान्यरूपमन्यथा अभावप्रतियोगितावच्छेदकमेव  
तत्र सादभावान्तरे प्रतियोगितान्तरे च मानाभावात् । न चेष्टापत्तिः,  
वह्निर्नास्तीत्यादिप्रत्ययेन वह्नित्वादेः प्रतियोगितावच्छेदकत्वावगा-  
हनात्, तथाच वह्निमान् धूमादित्यादावव्याप्तिः सुदृढा संयोगसम्-  
न्धावच्छिन्न-तत्तद्वह्नित्वावच्छिन्नप्रतियोगितावच्छिन्नामेव तादृशप्रति-

योगितासामान्यान्तर्गतानां साध्यतावच्छेदकसंयोगसम्बन्धावच्छिन्नत्व-  
वन्निष्ठावच्छेदलोभपक्षत्वात् । न च वन्निष्ठावच्छिन्नत्वस्यापि तत्तद्वन्निष्ठाव-  
च्छिन्नप्रतियोगिताव्यक्तीनामवच्छेदकत्वे तत्प्रतियोगिताव्यक्तयो न  
तादृशप्रतियोगितासामान्यान्तर्गताः हेतुसम्बन्धिनः पर्वतादेरात्मा-  
काशादेश्च तदवच्छेदकवन्निष्ठावच्छिन्नत्वसम्बन्धित्वादपि तु विष-  
यित्व-काल-दिङ्गिहपितविशेषणत्वादिसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिता-  
कवन्निष्ठावच्छिन्नत्वप्रतियोगितैव तादृशप्रतियोगितासामान्यान्तर्गता  
तत्र च साध्यतावच्छेदकसंयोगसम्बन्धावच्छिन्नत्व-वन्निष्ठावच्छेदलो-  
भपक्षभावस्य सत्त्वात्साध्याप्रतिरिति वाच्यं । विशेषप्रतियोगितासामान्येव  
सामान्यधर्मत्वावच्छेदकत्वे सावच्छेदकसम्बन्धेन सावच्छेदकपत्कि-  
ञ्चिद्भूतवच्छिन्नासम्बन्धित्वमेव हेतुसम्बन्धिनो विशेषणं वक्तव्यमन्यथा  
धूमवान् वन्नेरित्वादावतित्याप्तिः संयोगसम्बन्धावच्छिन्न-धूमत्वा-  
वच्छिन्नप्रतियोगिताव्यक्तीनां सावच्छेदकसंयोगसम्बन्धेन सावच्छेद-  
कद्रव्यत्व-सत्त्वरूपत्वान्यधर्मावच्छिन्नत्वसम्बन्धेन निश्चितहेतुसम्बन्धि  
किन्तु विषयित्वादिसम्बन्धावच्छिन्नधूम-पटाद्यभावप्रतियोगिताव्यक्ती-  
नामेव सावच्छेदकसम्बन्धेन सावच्छेदकावच्छिन्नासम्बन्धि हेतुसम्-  
बन्धि तत्र साध्यतावच्छेदकसंयोगसम्बन्धावच्छिन्नत्व-धूमत्वावच्छेदलो-  
भपक्षभावस्य सत्त्वात् । इत्यत्र वन्निष्ठान् धूमादित्वादौ तत्तद्वन्निष्ठाव-  
च्छिन्नप्रतियोगिताव्यक्तीनामपि तत्तद्वन्निष्ठावच्छिन्नत्वसम्बन्धित्वावच्छे-  
दकावच्छिन्नासम्बन्धी भवत्येव धूमसम्बन्धीत्यव्याप्तिर्दुर्वारा इत्यत-  
त्राह, 'धूमवतीति 'पृथगेवेत्यन्तमेको ग्रन्थः, 'इत्यप्रतीतेरिति वन्निष्ठा-  
वच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावत्वविशेष्यतावच्छेदक-धूमवदृष्टित्वप्रका-

रकप्रतीतेः धूमवदृत्तित्व-वह्नित्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वोभयांश-  
 एव यथार्थत्वाभ्रमत्वयोरापत्तेरित्यर्थः, वह्नित्वावच्छिन्नप्रतियोगि-  
 ताकानां तत्तद्वह्नित्वावच्छिन्नाभावानां सर्वेषामेव धूमवदृत्तित्वा-  
 दिति भावः । 'सामान्यावच्छिन्नप्रतियोगिताकः' वह्नित्वावच्छिन्नप्र-  
 तियोगिताकः,<sup>(१)</sup> 'पृथगेव' तत्तद्वह्नित्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकादति-  
 रिक्त एव । न च तत्प्रतीतौ वह्नोर्भावद्विशेषाभावो विशेष्य इति  
 भ्रमत्वमप्रमात्वञ्चेति वाच्यं । तथापि यावद्रूपं द्रव्यवृत्तीतिप्रतीतिवत्  
 प्रमात्वाभ्रमत्वापत्तेर्दुर्वारत्वात्<sup>(२)</sup> । एतेन खावच्छिन्नप्रतियोगिताक-  
 त्वसम्बन्धेन वह्नित्वं वह्नित्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वसम्बन्धेन वह्नोर्वा  
 व्यासव्यवृत्ति तच्च तेन सम्बन्धेन विशेषाभावकूट एव पर्याप्नोति न  
 तु प्रत्येकाभाव इति तत्प्रतीतेर्भ्रमत्वमप्रमात्वञ्चेत्यपि गिरस्तं ।  
 तथापि यावत्तस्य व्यासव्यवृत्तित्वेऽपि<sup>(३)</sup> यावद्रूपं द्रव्यवृत्तीतिप्रतीतेः  
 प्रमात्वाभ्रमत्ववत् तत्प्रतीतेः प्रमात्वाभ्रमत्वापत्तेर्दुर्वारत्वात् । न च  
 वह्नोर्भावद्विशेषाभावाधिकरणवृत्तित्वविशिष्टाभावस्य तत्र विशेष्य-  
 तया भ्रमत्वमप्रमात्वञ्चेति वाच्यं । विशिष्टान्तस्य तच्चानुल्लेखात् तदु-  
 ल्लेखेऽपि विशिष्टस्यानतिरिक्ततया गुणे गुण-कर्तान्वयविशिष्टसन्नेति

(१) सामान्यावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभाव इति ख० ।

(२) यथा यावद्रूपस्य एकस्मिन् द्रव्ये असत्त्वेऽपि यावद्रूपं द्रव्यवृत्तीति  
 प्रतीतेः प्रामाण्यं तथा यावद्वह्नित्वविशेषाभावस्य एकस्मिन् धूमवति  
 असत्त्वेऽपि वह्नोर्भावो धूमवदृत्तीति प्रतीतेः प्रामाण्यापत्तिर्दुर्वारै-  
 वेति भावः ।

(३) 'व्यासव्यवृत्तित्वेऽपि' एकत्वानवच्छिन्नपर्याप्तित्वत्वेऽपीत्यर्थः ।

प्रतीतियत्प्रमात्वात्तत्पक्षेर्दुर्वारत्वात् । एतेन यथा विशिष्टसत्ता-  
याः सत्तानतिरिक्तत्वेऽपि विशिष्टसत्तात्वावच्छिन्नाधारता न गुणादौ  
तथा तत्तद्व्यथावानामेव वदित्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वेऽपि वदित्वा-  
वच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वावच्छिन्नानां तेषामाधारता न धूमवतीति  
तत्प्रतीतेः भ्रमत्वमप्रमात्वञ्चेत्यपि निरखं । तथापि गुणे गुण-कर्मान्य-  
त्वविशिष्टपक्षेति विशिष्टसत्तायां गुणाधेयतावगाहप्रतीतेः प्रमा-  
त्वादिवत् धूमवति वदित्वासीति धूमवदाधेयतावगाहप्रतीतेः  
प्रमात्वात्पक्षेर्दुर्वारत्वात् । न च सावच्छिन्न-तत्तत्प्रतियोगिताकत्व-  
सम्बन्धेन वदित्वं वदित्वावच्छिन्नतत्तत्प्रतियोगिताकत्वसम्बन्धेन  
वदित्वा प्रत्याप्यवृत्ति तच्च जलद्रुदाद्यवच्छेदेनैव विशेषाभावेषु वर्तते  
न तु धूनाधिकारणावच्छेदेनेति न तत्प्रतीतेः प्रमात्वमिति वाच्यं ।  
तावतापि धूमवति वदित्वादेरवच्छेदकत्वावगाहप्रतीतेरप्रमात्वोप-  
पादनेऽपि विशेषणताविशेषावच्छिन्नाधेयतासम्बन्धेन धूमवत्प्रकारक-  
वदित्वावच्छिन्नतत्प्रतियोगिताकाभावविशेष्यकचथोक्तप्रतीतेः प्रमा-  
त्वात्पक्षेर्दुर्वारत्वात् । अन्यथा गुणादेः सत्ताविष्टद्रव्यवृत्तत्वानवच्छे-  
दकतया द्रव्यवृत्तिसत्ता गुणे इति प्रतीतेरपि अप्रमात्वात्पक्षेः । न च  
यथा गुण-कर्मान्यत्वविशिष्टसत्तावान् गुण इतिप्रतीतिर्न प्रमा विशि-  
ष्टसत्तायाः सत्तानतिरिक्तत्वेऽपि विशिष्टसत्तात्वावच्छिन्नाधारतायाः  
गुणादौ विरहात् गुणे गुण-कर्मान्यत्वविशिष्टसत्तेति आधेयतोत्प्रेषि-  
प्रतीतिश्च प्रमेव तथेहापि धूमवान् वदित्वामान्याभाववान् इति  
प्रतीतिर्न प्रमा तत्तद्व्यथावानामेव वदित्वावच्छिन्नप्रतियोगिताक-  
त्वेऽपि तेषां तदवच्छिन्नाधारताया धूमवति विरहात् धूमवति वदित्वा-



नारीत्याधेपतोपेक्षिप्रतीतिः प्रलैव न तु भ्रम इति वाच्यं । अनुभवा-  
पत्तापात् । एवमनुभवापत्तापे एकलैवाभावस्य घट-पट-गोलाश्व-  
सकलप्रतियोगिकत्वस्य सुवचतया अभावमात्रभेदविलोपापत्तेः घटवान्  
घटसामान्याभाववानिति प्रतीतिर्न प्रमा घटवति घटसामान्याभाव-  
त्वावच्छिन्नाधारताविरहात् घटवति घटो नास्तीत्याधेयतोपेक्षि-  
प्रतीतिश्च प्रमा भवत्येवेति क्रमेणानुभवापत्तापस्य सर्वत्र सुकरत्वा-  
दिति भावः । सामान्याभावस्यातिरिक्तत्वे प्रकृतमां युक्तिमभिधाय  
युक्ताभावात्तरमाह, 'अन्यथेति यदि लाघवात् तत्तद्विद्वित्वावच्छिन्नप्र-  
तियोगिताकाभाव एव विद्वित्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावस्तदेत्यर्थः,  
तुल्ययुक्ता तत्तद्रूपत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावानामेव रूपत्वाव-  
च्छिन्नप्रतियोगिताकतयेति शेषः, 'सकलप्रसिद्धरूपाभाव इति वायुः  
पृथिवीरूपत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभाववान् जलरूपत्वावच्छिन्न-  
प्रतियोगिताकाभाववान् तेजोरूपत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभाववां-  
श्चेति सकलप्रसिद्धरूपत्वान्ताभावानां निर्णये, वायुः पृथिवीरूपवत्त्वा-  
वच्छिन्नप्रतियोगिताकान्योन्याभाववान् जलरूपवत्त्वावच्छिन्नप्रतियो-  
गिताकान्योन्याभाववान् तेजोरूपवत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकान्योन्या-  
भाववांश्चेति सकलप्रसिद्धरूपवदन्योन्याभावानां निर्णये चेत्यर्थः,  
'वायाविति, अथच रूप-तदभावविश्लेषको वायुविश्लेषणकः, विरुद्ध-  
योरेकधर्मिण्यन्वावगाहिघानस्यैव संग्रयत्वान्न तु विरुद्धोभयप्रका-  
रितापि निवृत्ता । द्वितीयस्तु रूपवत्-तददन्योन्याभावकोटिको  
वायुविश्लेषक इति नाभेदः, 'निश्चितत्वादिति निश्चितत्वेन संग्रयको-  
टित्वासंभवादतिरिक्तसामान्याभावस्य चानङ्गीकारादित्यर्थः, तथा-

जातिरिक्तसामान्याभावानभ्युपगमे संग्रयविषयोऽभाव एव दुर्लभ-  
इति भावः । यद्यपि वायौ रूपं न वेति संग्रयं प्रति रूपाभावनिश्चयो  
न विरोधी किन्तु रूप-तद्भावान्यतरविश्लेषकाधेयतासम्बन्धा-  
वच्छिन्नवाक्यभावनिस्य एव विरोधी, तथाप्यधिकरणे तत्तद्-  
भावान्यतरनिश्चयोऽपि तत्तद्भावोभयविश्लेषकाधिकरणप्रकारक-  
संग्रयविरोधी इत्यभिप्रायः, वायूरूपवान् तद्भाववान् वेति वायु-  
विश्लेषकसंग्रय एव वाक्य तात्पर्यं । एतच्चापाततः विशेषाभावानां  
तत्तद्रूपत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावत्वेन निश्चितत्वेऽपि रूपत्वा-  
वच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावत्वप्रकारेण संग्रयविषयत्वसम्भवात् तेनापि  
रूपेण विशेषाभावानां निर्णये तथा संग्रयस्य सामान्याभावाति-  
रिक्तत्ववादिनामप्यसिद्धत्वादिति ध्येयं । शेषमहात्तत्तद्विद्वान्तरहस्ये-  
ऽनुसन्धेयं ।

इति श्रीमथुरानाथ-तर्कवागीश्वरविरचिते तत्त्वचिन्तामणिरहस्ये  
अनुमानाख्यद्वितीयखण्डरहस्ये सामान्याभावरहस्यं ।

नास्तीत्याधेयतोत्प्रेषिप्रतीतिः प्रवैव न तु भ्रम इति वाच्यं । अनुभवा-  
 पत्तापात् । एवमनुभवापत्तापे एकस्यैवाभावस्य घट-पट-गोलाश्ल-  
 सकलप्रतियोगिकत्वस्य सुवचतया अभावमात्रभेदवितोपापत्तेः घटवान्  
 घटवासान्याभाववानिति प्रतीतिर्न प्रमा घटवति घटसामान्याभाव-  
 त्वावच्छिन्नाधारताविरहात् घटवति घटो नास्तीत्याधेयतोत्प्रेषि-  
 प्रतीतिश्च प्रमा भवत्येवेति क्रमेणानुभवापत्तापस्य सर्वत्र सुकरत्वा-  
 दिति भावः । सामान्याभावस्यातिरिक्तत्वे प्रकृत्यां युक्तिमभिधाय  
 युक्ताभासान्तरमाह, 'अन्यथेति यदि लाघवात् तत्तद्वद्विवावच्छिन्नप्र-  
 तियोगिताकाभाव एव वद्विवावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावस्तदेत्यर्थः,  
 तुल्ययुक्ता तत्तद्रूपत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावानामेव रूपत्वा-  
 वच्छिन्नप्रतियोगिताकतयेति शेषः, 'सकलप्रसिद्धरूपाभाव इति वायुः  
 पृथिवीरूपत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभाववान् जलरूपत्वावच्छिन्न-  
 प्रतियोगिताकाभाववान् तेजोरूपत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभाववां-  
 शेति सकलप्रसिद्धरूपत्वान्ताभावानां निर्णये, वायुः पृथिवीरूपत्वा-  
 वच्छिन्नप्रतियोगिताकान्योन्याभाववान् जलरूपत्वत्वावच्छिन्नप्रतियो-  
 गिताकान्योन्याभाववान् तेजोरूपत्वत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकान्योन्या-  
 भाववांशेति सकलप्रसिद्धरूपत्वान्योन्याभावानां निर्णये चेत्यर्थः,  
 'वाचाविति, अथच रूप-तदभावविशेष्यको वायुविशेष्यकः, विरुद्ध-  
 चोरेकधर्तिसम्बन्धावगाहिघ्नानस्यैव संग्रयत्वान्न तु विरुद्धोभयप्रका-  
 रितापि निचता । द्वितीयस्तु रूपवत्-तदद्वयोन्याभावकोटिको  
 वायुविशेष्यक इति नाभेदः, 'निश्चितत्वादिति निश्चितत्वेन संग्रयको-  
 टित्वासंभवादतिरिक्तसामान्याभावस्य चानङ्गीकारादित्यर्थः, तथा-

व्यातिरिक्तत्वात्सामान्याभावानभ्युपगमे संग्रहविषयोऽभाव एव दुर्लभ-  
 इति भावः । यद्यपि वायौ रूपं न वेति संग्रहं प्रति रूपाभावनिश्चयो  
 न विरोधी किन्तु रूप-तद्भावान्यतरविशेष्यकाधेयतासम्बन्धा-  
 वच्छिन्नवाक्यभावनिश्चय एव विरोधी, तथाप्यधिकरणे तत्तद्-  
 भावान्यतरनिश्चयोऽपि तत्तद्भावोभयविशेष्यकाधिकरणप्रकारक-  
 संग्रहविरोधी इत्यभिप्रायः, वायूरूपवान् तद्भाववान् वेति वायु-  
 विशेष्यकसंग्रह एव वाक्य तात्पर्यं । एतच्चापाततः विशेषाभावानां  
 तत्तद्रूपत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावत्वेन निश्चितत्वेऽपि रूपत्वा-  
 वच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावत्वप्रकारेण संग्रहविषयत्वसम्भवात् तेनापि  
 रूपेण विशेषाभावानां निर्णये तथा संग्रहस्य सामान्याभावाति-  
 रिक्तत्ववादिनामप्यसिद्धत्वादिति ध्येयं । शेषमज्ञातज्ञतसिद्धान्तरहस्ये-  
 ऽनुसन्धेयं ।

इति श्रीमथुरानाथ-तर्कवागीश्वरविरचिते तत्त्वचिन्तामणिरहस्ये  
 अनुमानाद्यदितीयखण्डरहस्ये सामान्याभावरहस्यं ।

## विशेषव्याप्तिः ।

यदा प्रतियोगिव्यधिकरणस्वसमानाधिकरणात्यन्ता-  
भावाप्रतियोगिना सामानाधिकरण्यं, यत्समानाधि-

### अथ विशेषव्याप्तिरहस्यं ।

‘वदेत्यादि,’ ‘स्वपदं हेत्वभिमतपरं,’ कपित्थयोगी एतदुच्यते इत्या-  
दाव्याप्तिवारणाय ‘प्रतियोगिव्यधिकरणेति स्वपदार्थस्य हेतोर्वि-  
शेषणं, तदर्थात् प्रतियोग्यनधिकरणवृत्तित्वं । ननु तथापि वद्विमान्  
धूमात् रूपवान् पृथिवीत्वादित्यादौ नानाव्यक्तिसाध्यकेऽव्याप्तिः  
चात्तनौन्यायेन सर्वेषामेव वज्रादीनां हेतुसमानाधिकरणात्यन्ता-  
भावप्रतियोगित्वात्, सत्तावान् द्रव्यत्वादित्याद्येकव्यक्तिसाध्यकेऽव्य-  
व्याप्तिश्च हेतुसमानाधिकरणविशिष्टाभाव-द्वित्वाद्यवच्छिन्नाभावप्रति-  
योगित्वात् सत्तादेः, गुण-कर्तान्यत्वविशिष्टसत्तावान् जातेः भूतत्व-  
मूर्त्तत्वोपपवान् मूर्त्तत्वादित्यादावव्याप्तिवारणाय प्रतियोगिव्य-  
धिकरणपदेन प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नव्यधिकरणत्वसावश्यं विव-  
चनीयत्वादिति चेत् । न । अत्राप्रतियोगिपदस्य तादृशप्रतियोगिता-  
नवच्छेदकाव्यतावच्छेदकावच्छिन्नपरत्वात् । नचैवं पूर्वसादभेदः,  
तादृशप्रतियोगितानवच्छेदकावच्छिन्नयत्किञ्चिद्विद्यमानाधिकरण्यं  
वद्विद्यमान्य-धूमसामान्ययोर्थाप्तिः, अत एव वद्वित्वरूपेण अयोगोक्त-

करणाद्योन्वाभापप्रतियोगि यत्न भवति तेन समं  
तस्य सामानाधिकरण्यं वा, सतमानाधिकरण्याद्योन्वा-

क्रीयवद्भेदपरि धूमो व्याप्य इत्युक्तं, इदानीन्तु तादृशप्रतियोगितानव-  
च्छेदकावच्छिन्नतत्तद्वह्निना समं तत्तद्भूमसामानाधिकरण्यं वह्नित्व-  
धूमत्वरूपेण तत्तद्वह्नि-तत्तद्भूमयोरेव व्याप्तिः, वह्नित्वरूपेणयोगो-  
क्तक्रीयवह्निव्याप्यो न धूम इत्युच्यते इत्येव विशेषादन्यत् सर्वं पूर्वं-  
वदिति दिक् ।

नन्वेतत्तद्वचनपक्षे द्रव्यत्वत्वाद्यवच्छिन्नविधेयिका घटो द्रव्यत्ववा-  
पित्वादिद्रव्यैवानुमितिः सर्वत्र स्यात् न तु कदाचिदपि स्वरूपतो द्रव्य-  
त्वादिविधेयिका घटो द्रव्यत्वित्वाकारिका एतयोर्द्वयोरेव साध्यताव-  
च्छेदकघटितत्वात् । न च साध्यतावच्छेदकघटितत्वेऽपि एतयोरेव ज्ञानं  
द्रव्यत्वत्वावच्छिन्नविधेयकानुमितिवत् स्वरूपतो द्रव्यत्वादिविधेयकानु-  
मित्यावपि हेतुर्द्रव्यत्वत्वाद्यतिरिक्तानवच्छिन्नद्रव्यत्वादिविधेयकानुमि-  
तित्वस्यैव<sup>(१)</sup> कार्यतावच्छेदकत्वादिति वाच्यं । तथा सति द्रव्यत्वाद्यनु-

(१) स्वरूपतः सत्ता-घटत्वादिविधेयताकानुमितिवारणार्थं विधेयतायां  
द्रव्यत्वादिनिष्ठत्वनिवेशः । अथ तथा सति द्रव्यत्वत्वादिना घटत्वादिविधे-  
यताकानुमितेरसंग्रहः घटत्वादिनिष्ठविधेयतायां द्रव्यत्वत्वाद्यतिरिक्तधर्मा-  
नवच्छिन्नत्वेऽपि द्रव्यत्वाद्यवृत्तित्वात् इति चेत् । न । द्रव्यत्वाद्यवृत्तिर्या नि-  
रवच्छिन्नविधेयता तद्विन्नविधेयतायां द्रव्यत्वत्वाद्यतिरिक्तधर्मानवच्छिन्नत्व-  
निवेशाभिप्रायादिति न कोऽपि दोषः । अथवा निरवच्छिन्नत्वविशिष्टद्र-  
व्यत्ववृत्तित्वाभाववत्त्व-द्रव्यत्वत्वानवच्छिन्नत्वोभयाभाववद्विधेयताकानुमितित्व-  
मित्यर्थकरणान्न कोऽपि दोषः ।

भावाप्रतियोगियद्वत्त्वं वा । अन्वयवृत्तिवृद्धि-तद्वतोर-  
न्यवृत्तिधूमवन्निष्ठात्यन्ताभावान्योन्याभावप्रतियोगि-

मितेर्निवृत्ततो द्विविधविषयत्वापत्तेः द्रव्यत्वत्वादिघटकतया<sup>(१)</sup> स्वरूपतो  
द्रव्यत्वादिविशिष्टवृद्धेर्जनकीभूतस्य स्वरूपतो द्रव्यत्वादिज्ञानस्यापि  
सर्वत्र सत्त्वादिति चेत् । न । स्वरूपतो द्रव्यत्वादिविधेयकानुमितेरधिद्वेः  
घटो द्रव्यत्ववान् इत्यादिरूपाया एव द्रव्यत्वत्वावच्छिन्नविधेयकानु-  
मितेः सर्वत्राभ्युपगमात् । एतदस्वरवेनैव वा अन्योन्याभावगर्भं ल-  
क्षणान्तरमाह, 'यत्समानाधिकरणेति, 'यत्पदं हेत्वभियतपरं, 'यदत्र  
भवति' यदधिकरणं न भवति, 'यत्पदं साध्यपरं, वङ्गिमान् धूमात्स-  
त्तावान् द्रव्यत्वात् इत्यादौ व्यतिरेकिषाध्यके साध्यशून्ये सामान्यादौ  
वर्त्तमानं साध्यवदन्योन्याभावजादायाव्याप्तिवारणाय हेतुसमानाधि-  
करणत्वं अन्योन्याभावविशेषणं, तच्च हेतुतावच्छेदकसम्बन्धेन यद्वे-  
तुतावच्छेदकावच्छिन्नहेतुसम्बन्धि तत्र वर्त्तमानत्वं, तेन वङ्गिमान्  
धूमादित्यादौ हेत्वधिकरणधूमावपवादौ वङ्गादिमतोऽन्योन्याभावस्य  
वृत्तावपि नाव्याप्तिः, न वा द्रव्यं गुण-कर्तान्यत्वविशिष्टसत्त्वादित्यादौ  
सत्तापधिकरणगुणादौ द्रव्यत्वादिमतोऽन्योन्याभावस्य सत्त्वेऽपि अ-  
व्याप्तिः । तादात्म्यादिवृत्त्यनियामकसम्बन्धेन हेतुतायामव्याप्तिवार-  
णायाधिकरणत्वमपहाय सम्बन्धित्वप्रवेशः । वर्त्तमाणत्वञ्च विशेषणता-

(१) द्रव्येतरावृत्तित्वविशिष्टसकसद्रव्यवृत्तित्वरूपस्य द्रव्यत्वत्वस्य ज्ञाने  
इतरत्वप्रतियोग्यं द्रव्ये द्रव्यत्वस्य स्वरूपतोभानात् स्वरूपतो द्रव्यत्वज्ञा-  
नस्य द्रव्यत्वत्वज्ञाननियतत्वमिति ।

त्वाद्यधिकरणपरि-धूमयोगेन व्याप्तिः, किन्तु तत्तद्भूमस्य  
समानाधिकरणतत्तद्विना । नपैवं धूममात्रे न व्याप्ति-

विशेषसम्बन्धेन साध्यप्रतियोगिकाभाववृत्तिसाधोचप्रतियोगित्व-तद-  
वच्छेदकत्वान्यतरावच्छेदकत्वसम्बन्धेन वा ग्राह्यं<sup>(१)</sup> तेन सत्तावान् जाते-  
रित्यादौ हेत्वधिकरणे घानादौ विषयित्व-कालिकविशेषणत्वाव्याप्य-  
त्वादिसम्बन्धेन सत्तादिमदन्योन्याभावस्य च वृत्तावपि नाव्याप्तिः ।  
यदिच कल्पमाणपुष्पा प्रतियोगिभिन्नत्वं निरुक्तहेतुसम्बन्धिनः  
प्रतियोग्यनिरूपितत्वं वा तद्वर्तमानत्वस्य विशेषणयुपादीयते तदा  
वर्तमानत्वं येन केनापि सम्बन्धेन ग्राह्यं न तु सम्बन्धविशेषो निवे-  
शनीयः । वङ्गिमान् धूनादिदं वाच्यं ज्ञेयत्वादित्यादौ वङ्गादि-  
मतः संबन्धादिसम्बन्धेनात्यन्ताभावस्य धूमसमानाधिकरणत्वात् अस-  
म्भववारणाचान्योन्याभावनिरूपितप्रतियोगितात्ताभाधं अन्योन्याभा-  
वपदं<sup>(२)</sup> यथाश्रुतेऽत्यन्ताभावस्यापि स्वावच्छिन्नभिन्नभेदात्मक-  
तया अन्योन्याभावत्वेन तद्दोषतादवस्थात् । ननु तथापि वङ्गि-

(१) घटान्योन्याभाववान् द्रव्यत्वादित्यादौ व्यभिचारिणि घटत्वरूपस्य  
घटभिन्नभेदस्य विशेषणताविशेषसम्बन्धेनावर्तमानत्वेन तत्समानाधि-  
करणान्योन्याभावपदेन धर्तुमशक्यत्वादितिव्याप्तिवारणाय पूर्वकल्पं  
परित्यज्यैतत्कल्पानुसरणमिति ।

(२) अन्योन्यपदमिति ख० ग० ।



रिति वाच्यं । सर्वधूमव्यक्तेस्तथात्वेन धूमभाष्य व्या-

मान् धूमादित्यादौ सर्वेषामेव साध्यवद्भक्तीनां चालनीन्यायेन निरुक्तहेतुसमानाधिकरणस्य तत्तद्भक्तिवावच्छिन्नप्रतियोगिताकान्योन्याभावस्य प्रतियोगित्वात् तादृशव्यासपृच्छतिधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकान्योन्याभावस्य प्रतियोगित्वाच्चासम्भवः । न च निरुक्तहेतुसमानाधिकरणान्योन्याभावप्रतियोगितानवच्छेदकं यत्साध्यं तेन समं साधनानाधिकरणं विवक्षितमिति वाच्यम् । तथापि वक्ष्यमान् धूमात् सत्तावान् जातिमत्त्वादित्यादौ वज्रादेर्निरुक्तहेतुसमानाधिकरणस्य तत्तदधिकरणवृत्तित्वविशिष्टवज्रादिमत्त्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकान्योन्याभावस्य वक्षि-घटोभयापवाच्छिन्नप्रतियोगिताकान्योन्याभावस्य च प्रतियोगितावच्छेदकत्वेनासम्भवात्तदवस्थात् । अथानवच्छेदकत्वं पर्याप्तिसम्बन्धेनावच्छेदकताशून्यत्वं<sup>(१)</sup> । न च तथापि वक्ष्यमान् धूमादित्यादौ चालनीन्यायेन सर्वेषामेव साध्यवद्भक्तीनां साधनसमानाधिकरणान्योन्याभावप्रतियोगितावच्छेदकतापर्याप्त्यधिकरणत्वात् अव्याप्तिर्दुर्वारेति वाच्यं । जात्यखण्डोपाधतिरिक्तपदार्थस्य खरूपतोऽभावप्रतियोगितानवच्छेदकतया<sup>(२)</sup> वज्रादेरवच्छेदकतापर्याप्त्यधिकरणत्वाभावात् इति चेत् । न । सत्ताव्याप्यजातिमान् जातिमत्त्वादित्यादौ तथाप्यव्याप्तेः सर्वेषामेव सत्ताव्याप्यजातीनां खरूपतः साधनसमानाधिकरणान्योन्याभावप्रतियोगितावच्छेदकतापर्या-

(१) पर्याप्तग्राह्यसम्बन्धेनावच्छेदकताशून्यत्वमिति ख० ग० ।

(२) एतच्चावच्छेदकतावच्छेदकसाधारणावच्छेदकत्वमभ्युपेतम् ।

प्राप्तात् । धूमसम्बन्धिविशिष्टत्वात् एव, युगपदुत्पन्न-

प्राधिकरणत्वात् । गुण-कर्मान्यत्वविशिष्टसत्तावान् जातेरित्यादावति-  
 व्याप्तेश्च सत्तायाः पर्याप्त्याख्यसम्बन्धेन तादृशावच्छेदकताशून्यतया  
 विशिष्टसत्ताया अपि तथात्वात् विशिष्टसत्तायाः सत्तानतिरिक्तत्वात्  
 मशानपीचवह्निमान् धूमादित्यादावतिव्याप्तिश्च जात्यखण्डोपाध्यति-  
 रिक्तपदार्थस्य स्वरूपतोऽनवच्छेदकतया मशानपीचवह्नादेरपि पर्या-  
 प्त्याख्यसम्बन्धेन तादृशावच्छेदकताशून्यत्वात् । एतेन निरुक्तहेतुसमा-  
 नाधिकरणान्योन्याभावप्रतियोगितावच्छेदकतावच्छेदकतायाः पर्या-  
 प्त्यधिकरणं यत् साध्यतावच्छेदकं तदवच्छिन्नसामानाधिकरण्यं विव-  
 चितमिति नाशक्यः यद्वेतौ वह्नित्वादेः साध्यतावच्छेदकस्य पर्या-  
 प्त्याख्यसम्बन्धेन साधनसमानाधिकरणान्योन्याभावप्रतियोगितावच्छे-  
 दकतावच्छेदकत्ववत्त्वस्य कदाचिदपि असम्भवात् सत्ताव्याप्यजाति-  
 मान् जातिसत्तादित्यादौ सर्वासादेव सत्ताव्याप्यजातीनां स्वरूपतः  
 साधनसमानाधिकरणान्योन्याभावप्रतियोगितावच्छेदकत्वेऽपि साध्य-  
 तावच्छेदकीभूतसत्ताव्याप्यजातित्वरूपेणानवच्छेदकत्वादित्यपि निरस्यं ।  
 द्रव्यत्वव्याप्यजातिमत्त्वान् द्रव्यत्ववापित्वादित्यादौ नानाजातिसाध्य-  
 तावच्छेदकत्वोऽप्याग्नेर्दुर्वारत्वात् साध्यतावच्छेदकीभूतानां सर्वासा-  
 देव पृथिवी-जलादिरूपाणां द्रव्यत्वव्याप्यजातीनां चाहनीन्यायेन  
 साधनसमानाधिकरणपृथिवी-जलादिमदन्योन्याभावप्रतियोगिताव-  
 च्छेदकतावच्छेदकतापर्याप्यधिकरणत्वात् । गुण-कर्मान्यत्वविशिष्टस-  
 त्तावान् जातेरित्यादावतिव्याप्तेश्च सत्तात्वस्य पर्याप्त्याख्यसम्बन्धेन तादृ-

विनष्टयोश्च व्याप्तिरेव । कर्त्तव्यं च संयोगाभावः  
प्रतियोग्यसमानाधिकरणः ।

अप्रतियोगितावच्छेदकतावच्छेदकत्वशून्यतया साध्यतावच्छेदकस्य वि-  
शिष्टसत्तात्वस्य तथात्वात् विशिष्टसत्तात्वस्य सत्तात्वानतिरिक्तत्वात् ।  
महानसीयत्वविशिष्टवन्निमान् धूमादित्यादावतिव्याप्तेश्च वन्निवस्य  
पर्याप्त्याख्यसम्बन्धेन तादृशप्रतियोगितावच्छेदकतावच्छेदकत्वशून्यतया  
साध्यतावच्छेदकस्य महानसीयत्वविशिष्टवन्निवस्यपि तथात्वात् वि-  
शिष्टवन्निवस्य वन्निवसानतिरिक्तत्वात् । तद्दृष्टिमान् दृष्टिसंयो-  
गादित्यादावतिव्याप्तेश्च जात्यतिरिक्तपदार्थस्य स्वरूपतोऽनवच्छेद-  
कतया साध्यतावच्छेदकौभूततद्दृष्टव्यन्तोः पर्याप्त्याख्यसम्बन्धेन ता-  
दृशप्रतियोगितावच्छेदकतावच्छेदकत्वशून्यत्वात् । अस्यापि साध्यताव-  
च्छेदकघटितत्वेन स्वरूपतो द्रव्यत्वादिविधेयकानुमितेरेतज्ज्ञानादथ-  
सम्भवापत्तेश्च । मैवं । यत्र हि स्वरूपतो द्रव्यत्वादेः साध्यत्वं न तु  
साध्यतावच्छेदकं किमप्यस्ति तत्र निरुक्ताहेतुसमानाधिकरणीयान्यो-  
न्याभावत्वनिरूपितप्रतियोगितासामान्ये यदधिकरणत्वनिष्ठपर्याप्त-  
वच्छेदकताकत्वाभावसत्तात्वानाधिकरण्यं स्वरूपतस्य व्याप्तिरिति  
विवचणीयं यत्पदं स्वरूपतः साध्यव्यक्तिपरं<sup>(१)</sup> । वन्निमान् धूमात्

(१) जातेः समवायेनेव निरूपितत्वसम्बन्धेनापि स्वरूपतोभानाभ्युपगमात्  
द्रव्यत्वत्वज्ञानमन्तरेणापि निरूपितत्वसम्बन्धेन स्वरूपतो द्रव्यत्वावगाहिनि-  
रुक्तव्याप्तिज्ञानसम्भवेन स्वरूपतो द्रव्यत्वविधेयकानुमित्युपपत्तिरिति ताव-  
प्यर्थम् ।

रूपवान् पृथिवीत्वादित्यादिकिञ्चिदवच्छिन्नसाध्यकस्यात्तत्त्वमेव  
जात्यखण्डोपाध्यतिरिक्तपदार्थस्य स्वरूपतो व्याप्यनभ्युपगमादिति  
नाव्याप्तिः । न च तथापि गुण-कर्मान्यत्वविशिष्टसत्तावान् जाते-  
रित्यादावतिव्याप्तिः विशिष्टसत्तायाः सत्तानतिरिक्तत्वेन सत्ताया  
एव साध्यतया तदधिकरणत्वनिष्ठपर्याप्तावच्छेदकताकत्वाभावस्य जा-  
तिमन्निष्ठान्योन्याभावप्रतियोगितासामान्ये सत्तादिति वाच्यं । जा-  
त्यादौ विशिष्टसत्तास्वरूपेण विशिष्टसत्ताया व्याप्यत्वानभ्युपगमेऽपि  
स्वरूपतो विशिष्टसत्ताव्याप्यत्वस्य सर्वसत्तत्वात्<sup>(१)</sup> । किञ्चिदवच्छिन्न-  
साध्यकस्थले तु निरुक्तहेतुसमानाधिकरणान्योन्याभावत्वनिरूपित-  
प्रतियोगितासामान्ये यद्गुणावच्छिन्नाधिकरणत्वनिष्ठपर्याप्तावच्छेदक-  
ताकत्वाभावः तद्गुणावच्छिन्नसामानाधिकरण्यं तद्गुणावच्छिन्नस्य  
व्याप्तिरिति विवक्षणीयं, यत्र येन रूपेण यस्य साध्यतावच्छेदकत्वं  
तत्र तेन रूपेण तदेव यद्गुणपदेन ग्राह्यं इत्यञ्च वक्षिमान् धूमा-  
दित्यादौ वक्षित्वादेः स्वरूपत एव साध्यतावच्छेदकतया स्वरूपतो-  
वक्षित्वादिकमेव यद्गुणपदेन ग्राह्यं, महानशीयत्वविशिष्टवक्षि-  
मान् धूमादित्यादौ महानशीयत्वादिविशिष्टत्वेन वक्षित्वादेः साध्य-  
तावच्छेदकतया तद्विशिष्टवक्षित्वादिकमेव यद्गुणपदेन ग्राह्यं, द्रव्यत्व-  
व्याप्यजातिमत्त्वान् द्रव्यत्वमवाचित्वादित्यादौ पृथिवीत्व-जलत्वादीनां  
द्रव्यत्वव्याप्यजातीनां द्रव्यत्वव्याप्यजातिस्वरूपेणैव साध्यतावच्छेदकतया  
तादृशजातिव्यविशिष्टमेव यद्गुणपदेन ग्राह्यं, न तु स्वरूपतः  
पृथिवीत्व-जलत्वादिकमित्यादि स्वयमूह्यं ।

(१) सर्वसिद्धत्वादिति ख० ग० ।

अत्राधिकरणत्वांशस्यानतिप्रयोजनकतया तदपहाय लक्षणान्तर-  
माह, 'स्वसमानाधिकरणेति, 'स्वपदं हेत्वभिमतपरं, यद्वत्त्वमिति  
यद्वद्वृत्तित्वमित्यर्थः, यस्य तस्य तद्वाप्यत्वमिति शेषः । तथाच यत्र  
स्वरूपतो द्रव्यत्वादेः साध्यत्वं तत्र हेतुसमानाधिकरणीयान्योन्या-  
भावत्वनिरूपितप्रतियोगितासामान्ये यन्निष्ठपर्याप्तावच्छेदकताकत्वा-  
भावस्तत्सामानाधिकरण्यं स्वरूपतस्तस्य व्याप्तिरिति वक्तव्यं, 'यत्पदं  
स्वरूपतः साध्यव्यक्तिपरं । किञ्चिदवच्छिन्नसाध्यकस्थले तु तादृश-  
प्रतियोगितासामान्ये यद्गुणावच्छिन्ननिष्ठपर्याप्तावच्छेदकताकत्वाभाव-  
स्तद्गुणावच्छिन्नसामानाधिकरण्यं तद्गुणावच्छिन्नस्य व्याप्तिरिति  
वक्तव्यं । ननु तथापि द्रव्यं पृथिवीत्वात् वक्षिमान् धूमादित्यादौ  
कालिकविशेषणत्व-समवायादिसम्बन्धेन साध्यदतोऽन्योन्याभावस्य  
हेत्वधिकरणे सत्त्वादसम्भवः । न च प्रतियोगिता साध्यतावच्छेदक-  
सम्बन्धावच्छिन्नावच्छेदकताकत्वेन विशेषणीया इति वाच्यं । घटवान्  
कालपरिमाणात् घटवाञ्छित्यज्ञानत्वादित्यादौ तादृशप्रतियोगित्वा-  
प्रसिद्धेरिति चेत् । न । साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नत्वेनावच्छेद-  
कताया विशेषणात्, केवलान्वयिनि वाच्यत्वादिपर्याप्तस्वरूप-  
सम्बन्धावच्छिन्नावच्छेदकताकत्वं संयोगादिसम्बन्धेन वाच्यत्वादिमद-  
त्यन्ताभावप्रतियोगितायामेव प्रसिद्धं । साध्यतावच्छेदकसम्बन्धभेदेन  
व्याप्तेर्भेदात् यत्र तादात्म्यसम्बन्धेन किञ्चिदवच्छिन्नस्य साध्यत्वं तत्र  
तादृशान्योन्याभावत्वनिरूपितप्रतियोगितासामान्ये यद्गुणपर्याप्ताव-  
च्छेदकताकत्वाभावस्तद्गुणावच्छिन्नसामानाधिकरण्यं वक्तव्यं यद्गुणपदं  
साध्यतावच्छेदकपरं । अवच्छेदकता च साध्यतावच्छेदकताघटकसम्ब-

आवच्छिन्नत्वेन विवक्षणीया<sup>(१)</sup> सर्वमन्यत् अत्यन्ताभावगर्भप्रथमलक्षणवदवशेषमिति संचेपः ।

ननु अत्यन्ताभावघटितद्वितीयलक्षणपक्षे व्यधिकरणधूमस्य वक्षितरूपेण व्यधिकरणवक्षितव्याप्यत्वं कथं स्यात् सामानाधिकरण्यविरहात् इत्यत आह, 'अन्येति, 'प्रतियोगित्वादिति, परस्परसामानाधिकरण्यविरहेणेति शेषः । यथाश्रुते नानाव्यक्तिसाध्यकानुरोधेनानवच्छेदकत्वपर्यन्तानुधावनस्यावच्छिन्नत्वेन तादृशप्रतियोगित्वस्याकिञ्चित्करत्वात्<sup>(२)</sup>, इत्यञ्च परस्परसामानाधिकरण्यविरह एव तस्य हेतुत्वात् । न चैवमन्यवृत्तिवक्षेरेन्यवृत्तिधूमवक्षित्वात्यन्ताभावप्रतियोगित्वादित्यस्यैव सन्धत्तया तदतोऽन्योन्याभावप्रतियोगित्वादिति व्यर्थमिति वाच्यं । अन्यवृत्तिवक्षेरेन्यवृत्तिधूमवक्षित्वात्यन्ताभावप्रतियोगित्वेऽपि द्रव्यस्याव्याप्यवृत्तितानये सामानाधिकरण्यं सम्भवतीत्यनुग्रहेन तदुपादानादिति । 'न चैवमिति, 'न व्याप्तिः' नैका व्याप्तिरित्यर्थः, तथाच धूमत्वं व्याप्यतावच्छेदकं न स्यात् व्याप्तेः प्रतिधूमं<sup>(३)</sup> भिन्नत्वेन धूमत्वस्यातिप्रसक्तत्वादिति भावः । 'तथात्वेन' व्याप्याश्रयत्वेन, 'धूममात्रेति, तथाच व्याप्तेः प्रतिधूमं भेदेऽपि वक्षितव्याप्तित्वावच्छिन्नस्यानतिप्रसक्तत्वात् धूमत्वमवच्छेदकं, यथा प्रतियोगितायाः प्रतिव्यक्तिभिन्नत्वेऽपि तत्तदभावप्रतियोगितात्वावच्छिन्नस्यानतिप्रसक्तत्वात् घट-

(१) साध्यतावच्छेदकतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नत्वेन विवक्षणीयेति ख० ग० ।

(२) व्याप्यत्वाभावे अप्रयोजकत्वादित्यर्थः ।

(३) सर्वत्र 'प्रतिधूम०' इत्यत्र प्रतिस्वमिति ख० ग० ।

त्वादिकसवच्छेदकमिति भावः । ननु सर्वस्मिन्नेव लक्षणे धूमसमा-  
नाधिकरणवन्निर्दिष्टरपि धूमव्याप्यः स्यात् एवं युगपदुत्पन्न-विनष्टव्यक्ति-  
द्वयोरपि कालिकसमव्याप्तिः स्यादित्यत्र द्रष्टापत्तिमाह, 'धूमेत्यादि,  
'व्याप्तिरेव' कालिकसमव्याप्तिरेव, द्वैशिकसमव्याप्यतायां समदेगस्यैव  
तन्त्रत्वात् उत्पाद-विनाशयोर्योगपद्याभिधानमसङ्गतं स्यात् अतः का-  
लिकत्वानुधावनं, एकस्य कालिकव्याप्यतायां उत्पाद-विनाशयोरन्य-  
तरयोगपद्यस्यैव तन्त्रत्वादुभयोर्योगपद्याभिधानमसङ्गतं स्यात् अतः  
समव्याप्यत्वानुधावनं । ननु प्रतियोग्यसमानाधिकरणलक्षणादित्यप्रथम-  
लक्षणे संयोगी सत्तादित्यादौ चक्षपि नातिव्याप्तिः सत्तायां गुणद्य-  
वच्छेदेन संयोगसामानाधिकरण्याभावसत्त्वेन प्रतियोग्यसमानाधि-  
करणसत्तायाः समानाधिकरणाभावः संयोगाभाव एव तत्प्रतियो-  
गितावच्छेदकत्वात् संयोगत्वस्य, तथापि संयोगवान् संयोगाभावादित्या-  
दावतिव्याप्तिः संयोगाभावे हेतौ संयोगसामानाधिकरण्याभावा-  
सत्त्वेन प्रतियोग्यसमानाधिकरणहेतोः समानाधिकरणाभावो न  
संयोगाभावः किन्तु अभावान्तर एव तादृशप्रतियोगितानवच्छेदक-  
त्वात् संयोगत्वस्य । न च सत्तावत् संयोगाभावे हेतावपि गुणद्य-  
वच्छेदेन संयोगसामानाधिकरण्याभावोऽस्यैव इति वाच्यं । तथा  
सति प्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्धेन प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्न-  
प्रतियोगिसामानाधिकरण्याभाववद्भावस्यैव व्याप्यवृत्त्यभावतया सं-  
योगाभावस्यापि व्याप्यवृत्त्यभावत्वापत्तेः इत्यत आह, 'कर्णणि चेति,  
'संयोगाभावः' संयोगवान् तदभावादित्यादौ साधनीभूतः संयोगा-  
भावः, प्रतियोग्यसमानाधिकरणः संयोगरूपप्रतियोगिसामानाधि-

करणाभावाश्रयः, संयोगाभावे कर्मादौ न संयोगसामानाधि-  
करणमित्यप्रतीतेः । न चैवं तस्य व्याप्यवृत्त्यभावत्वापत्तिरिति वाच्यं ।  
निरुक्तप्रतियोगिसमानाधिकरणभिन्नाभावस्य विशेषणताविशेषेणाव-  
च्छिन्नवृत्तिमङ्गिजाभावस्यैव वा व्याप्यवृत्त्यभावत्वादिति भावः । यद्वा  
ननु प्रतियोग्यसमानाधिकरणत्वघटितप्रथमलक्षणे संयोगी सत्त्वादि-  
त्वादावतियाप्तिः हेतोः संयोगाभावोचप्रतियोगिसमानाधिकरण-  
तया स्वप्रतियोग्यसमानाधिकरणहेतोः समानाधिकरणो न संयो-  
गाभावः किन्तु अन्यात्यन्ताभाव एव तत्रप्रतियोगितावच्छेदकता न  
संयोगत्वस्येत्यत आह, 'कर्माणि चेति, 'संयोगाभावः' संयोगाभाव-  
रूपः साध्याभावः, 'प्रतियोग्यसमानाधिकरण इति प्रतियोगिनो-  
ऽसमानं प्रतियोग्यधिकरणवृत्तित्वशून्यं यत्साधनं तदधिकरणकस्त-  
दधिकरणनिष्ठ इत्यर्थः, तस्याधिकरणं यत्सेत्यधिकरणार्थकषट्च्यन्ता-  
न्यपदार्थव्यधिकरणवृत्तिसमासस्य तदधिकरणमधिकरणं यत्सेति  
मध्यपदलोपिसमासस्य वा आश्रयणात् । सत्तायां कर्माणि न  
संयोगसामानाधिकरणमित्यादिप्रतीत्या सामानाधिकरणस्येत्याप्य-  
वृत्तित्वेन सत्तादावपि कर्मावच्छेदेन संयोगसामानाधिकरण्याभाव-  
सत्तादिति भावः<sup>(१)</sup> ।

ननु सामानाधिकरण्यं नाप्याप्यवृत्ति संयोगिवृत्तित्वाभावो न  
सत्तावृत्तिरित्यादिप्रतीत्यनुपपत्तेः सत्तायां कर्मादौ न संयोगसामा-  
नाधिकरणमित्यादिप्रतीतेस्तु कर्मादाववच्छेदकत्वसम्बन्धेन सत्ता-

(१) यद्देत्यादिपाठः ख० ग० पुस्तकद्वये नास्ति ।



यद्वा प्रतियोगिवैयधिकरण्यावच्छेदकावच्छिन्नत्व-  
मत्यन्ताभावविशेषणं कर्त्तव्यं च संयोगाभावस्य प्रति-  
योगिवैयधिकरण्यावच्छेदकावच्छिन्नत्वमेव । न चा-  
न्यायाभावस्याव्याप्यवृत्तित्वम्, अभेदस्याबाधितप्रत्य-

निष्ठसामानाधिकरण्याभाव एव विषयः तथाच प्रथमलक्षणे संयोगी  
सत्त्वात् संयोगवान् तदभावादित्यादावतिव्याप्तिर्दुर्वारेत्यस्वरसा-  
दाह, 'यद्वेति, 'प्रतियोगिवैयधिकरण्येति, 'प्रतियोगिवैयधिकरण्यं'  
प्रतियोग्यनधिकरणवृत्तित्वं, 'अवच्छेदकं' विशेषणं यत्र हेतौ तदव-  
च्छिन्नत्वं सामानाधिकरण्यसम्बन्धेन तद्विशिष्टत्वं तत्समानाधिकरणत्व-  
मिति चावत्, प्रतियोग्यसामानाधिकरण्यमपहाय प्रतियोग्यनधिक-  
रणवृत्तित्वं हेतुविशेषणं वक्तव्यमिति तु तदर्थः । यद्वा ननु प्रथमलक्षणे  
प्रतियोग्यसमानाधिकरणत्वस्यात्यन्ताभावविशेषणत्वेनोपादीयतां किं  
तस्य हेतुविशेषणत्वेनेत्यत आह, 'कर्त्तव्यं चेति, तथाचात्यन्ता-  
भावविशेषणत्वे संयोगी द्रव्यत्वादित्यादावेवाव्याप्तिः विशिष्टस्थान-  
तिरिक्ततया प्रतियोगिसामानाधिकरण्याभावविशिष्टः सन् हेतु-  
धिकरणवृत्तिर्योऽभाव इति विवचायामप्यप्रतीकारादिति भावः ।  
इदमुपलक्षणं द्वितीयलक्षणेऽपि प्रतियोगिवैयधिकरण्यस्यात्यन्ताभाव-  
विशेषणत्वे तत्रैवाव्याप्तिः कर्त्तव्यौ संयोगाभावस्य प्रतियोग्यनधि-  
करणवृत्तित्वात् विशिष्टस्थानतिरिक्ततया प्रतियोग्यनधिकरणवृत्तित्व-  
विशिष्टः सन् हेतुधिकरणवृत्तिर्योऽभाव इति विवचायामप्रती-  
कारादिति ध्येयं । ननु सामानाधिकरण्यं नाव्याप्यवृत्ति तथाच

अप्रयत्नाभावविशेषणत्वेऽपि नाव्याप्तिः, अतिव्याप्तिश्च हेत्वभावयोर्द्वयो-  
र्विशेषणत्व एव संयोगी सत्त्वादित्यादौ सामानाधिकरणस्य व्याप्यवृत्ति-  
तया सत्तायां संयोगाभावे च संयोगाभावीयप्रतियोग्यसामानाधि-  
करणविरहात् इत्यत आह, 'यदेति अर्थस्तु पूर्ववत् ।

बहुतस्तु 'प्रतियोगिवैयधिकरणस्य प्रतियोग्यनधिकरणवृत्तित्वस्य,  
यदवच्छेदकं निरूपकं हेत्वधिकरणं, प्रतियोग्यनधिकरणं हेत्वधि-  
करणमिति यावत्, तदवच्छिन्नत्वं तद्वृत्तित्वं अत्यन्ताभावविशेषण-  
मित्येवार्थः ।

केचित्तु प्रतियोगिवैयधिकरणं प्रतियोग्यनधिकरणवृत्तित्वरूपं  
यदवच्छेदकं विशेषणं तदवच्छिन्नत्वं तद्विशिष्टत्वमत्यन्ताभावविशे-  
षणमित्यर्थः, प्रतियोग्यसामानाधिकरण्यं विहाय प्रतियोग्यनधि-  
करणवृत्तित्वमत्यन्ताभावविशेषणं वक्तव्यमिति भावः । न चेवं कपि-  
संयोगी एतद्वृत्त्वादित्यादावव्याप्तिः एतद्वृत्त्वसामानाधिकरणकपि-  
संयोगाभावस्यापि प्रतियोग्यनधिकरणगुणादिवृत्तित्वादिति वाच्यं ।  
हेत्वधिकरणे प्रतियोग्यनधिकरणवृत्तित्वस्य विवचनीयत्वात् एत-  
न्नाभायैव च हेतुसामानाधिकरण्यपदमतो न तद्वैयर्थ्यं, प्रति-  
योग्यनधिकरणवृत्तित्वविशिष्टत्वाधिकरणहेत्वधिकरणकाभाव इति  
वा अभावान्तनिष्कर्ष इत्याहुः । तदसत् बहुतरबुद्धिकल्पनापत्ते-  
रिति ध्येयं ।

ननु मूले वृत्तः कपिसंयोगी न इत्यबाधितप्रतीतेः कपिसंयोगा-  
दिमत्यपि वृत्ते मूलाद्यवच्छेदेन कपिसंयोगादिमतोऽन्योन्याभावस्य  
सत्त्वात् अन्योन्याभावघटितलक्षणं कपिसंयोगी एतत्त्वादित्याद्य-

व्याप्यवृत्तिबाध्यकेऽव्याप्तमित्यत आह, 'न चेति, 'अन्योन्याभावस्य'  
 कपिसंयोगादिमदन्योन्याभावस्य, 'अव्याप्यवृत्तित्वं' कपिसंयोगादि-  
 मत्यपि वृत्ते मूलाद्यवच्छेदेन सत्त्वं, 'अभेदस्येति मूले वृत्तः कपिसं-  
 योग्याभिन्न इति मूलावच्छेदेनापि कपिसंयोगिभेदाभावस्य कपि-  
 संयोगिभिन्नभेदस्य च यथार्थप्रतीतेरित्यर्थः । न हि अव्याप्यवृत्ति-  
 नोरत्यन्ताभाव-तत्प्रतियोगिनोरन्योन्याभाव-तत्प्रतियोगितावच्छेदक-  
 योरेकावच्छेदेन सत्त्वं, विरोधात् । न च कपिसंयोगिभेदाभावस्य  
 कपिसंयोगिभिन्नभेदस्य च कपिसंयोगरूपतया मूलावच्छेदेन कथं  
 तत्प्रतीतिरिति वाच्यम् । अन्यत्रान्योन्याभावाभावस्यान्योन्याभाव-  
 वद्वेदस्य च प्रतियोगितावच्छेदकरूपत्वेऽप्यव्याप्यवृत्तिस्थले तद्वद-  
 न्योन्याभावात्यन्ताभावस्य तद्वद्भिन्नभेदस्य चातिरिक्तस्य व्याप्यवृत्तिस-  
 रूपस्योक्तरूपप्रतीत्यन्यथानुपपत्त्याभ्युपगमात् । न चैवं मूले वृत्तः कपि-  
 संयोगी नेत्यावाधितप्रतीतेः का गतिरिति वाच्यं । विशेषणौभूतस्य  
 कपिसंयोगादेरत्यन्ताभावस्यैव तद्विषयत्वात् । न च तत्र कपिसंयोग्य-  
 न्योन्याभावविषयकत्वमप्यनुभवसिद्धमिति वाच्यं । तथानुव्यवसायस्य भ्र-  
 मत्वात् । अथैवं गुणादावपि संयोगवदन्योन्याभावोऽपि अयोगोलकादौ  
 धूमवदन्योन्याभावोऽपि च न सिद्धेत् तत्रापि गुणो न संयोगी  
 अयोगोलकं न धूमवत् इत्यादिप्रतीतेर्विशेषणौभूतस्य संयोग-  
 धूमादेरत्यन्ताभावविषयतायाः सुवचत्वात् इति चेत् । न । तत्र बाधका-  
 भावेनानुव्यवसायानां भ्रमत्वे मानाभावात् । प्रकृते च यथोक्ताभेद-  
 प्रतीतेरेव बाधकतया अनुव्यवसायस्य भ्रमतायाः प्रमाणसिद्धत्वा-  
 दिति भावः । इदमापाततः मूले वृत्तः कपिसंयोग्याभिन्न इत्यवाधित-

भिन्नानात् । व्याप्य-व्यापकभावाघानेऽपि वस्तुसतस्त-  
घात्वेनाशयमानस्य सम्बन्धत्वेनैव भातस्य षडर्थत्वं ।

प्रतीतेरसिद्धेः कपिसंयोगिभेदाभावस्य कपिसंयोगादिमद्भिन्नभेदस्य  
चातिरिक्तस्य कल्पने गौरवात् । न च कपिसंयोगिभेदाभावः कपि-  
संयोगिभिन्नभेदस्य न कपिसंयोगरूपो न चातिरिक्तः किन्तु तत्तद्व्य-  
क्तित्वरूपत्वादात्म्यसम्बन्धेन तत्तद्व्यक्तित्वरूपो वा इति वाच्यम् । तथापि  
मूलस्य तत्रानवच्छेदकत्वात् तत्रतीतेः प्रमात्वासम्भवात् तत्रतीतेर्यथा-  
र्थत्वे मानाभावाच्च । न च तथापि वृत्तः कपिसंयोग्यभिन्न इति यथार्थ-  
प्रतीतिरेवान्योन्याभावस्याव्याप्यवृत्तित्वे बाधिकेति वाच्यं । वृत्ते कपि-  
संयोगिभेदस्याव्याप्यवृत्तित्वे तद्भेदात्यन्ताभावस्य तद्भिन्नभेदस्य च सुतरां  
वृत्ताग्रावच्छेदेन सत्त्वात् तादृशप्रतीतेरनुपपत्तिविरहात् । न च कपि-  
संयोगिभेदाभावस्य वृत्तावृत्तित्वज्ञानं बाधकमिति वाच्यं । तदसि-  
द्धेः, प्रत्युत तद्वृत्तित्वस्यैव ग्रहात् । वस्तुतस्तु अन्योन्याभावस्य व्याप्यवृ-  
त्तितानियमनयेऽपि कपिसंयोगी एतद्वृत्तत्वादित्यादौ कपिसंयोगिभे-  
दस्याव्याप्यवृत्तित्वभ्रमेण हेतुवामानाधिकरणभ्रमे नियमतोऽनुमि-  
त्यनुदयापत्त्या निरवच्छिन्नत्वं स्वप्रतियोग्यनिष्पितत्वं वा हेत्वधि-  
करणवृत्तित्वस्य स्वप्रतियोग्यनिष्पितत्वं हेत्वधिकरणस्य वा विशेषणमा-  
वश्यकं स्वपदमभावपरं, तथाच तत एव कपिसंयोगादिमद्भिन्नत्वस्या-  
व्याप्यवृत्तित्वेऽपि कपिसंयोगी एतत्त्वादित्यादौ नाव्याप्तिः मूले वृत्तः  
कपिसंयोगी नेत्यबाधितप्रतीतावपि वृत्तः कपिसंयोग्यन्योन्याभाव-

नचैवमननुगमो हेाषाय, कस्य का व्याप्तिरित्यनु-  
गतस्यैव लक्ष्यत्वात् । अथ धूमवति वह्नि-इदौ न

प्रतियोगी नेत्यप्रत्ययेन<sup>(१)</sup> स्वप्रतियोगित्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेद-  
वत्त्वस्य हेत्वधिकरणे विरहादित्येव तत्त्वं ।

केचित्तु कपिसंयोगिभिन्नत्वस्याव्याप्यवृत्तित्वभ्रमे तत्प्रमायां वा  
हेतुसामानाधिकरण्यग्रहे नियमतोऽनुमित्यनुत्पादवारणाय प्रतियो-  
ग्यवृत्तित्वेनान्योन्याभावो विशेषणीयः । न चैवं कपिसंयोगी सत्त्वा-  
दित्यादावतिव्याप्तिरिति वाच्यं । सामानाधिकरण्यस्याव्याप्यवृत्तितया  
कपिसंयोगवदन्योन्याभावस्यापि गुणादौ प्रतियोग्यवृत्तित्वात् । हेत्व-  
धिकरणवच्छेदेन प्रतियोग्यवृत्तित्वं विवक्षितं एतत्सामानाधिकरण्ये च हेतु-  
सामानाधिकरण्यपदं, तेन संयोगी द्रव्यत्वादित्यादौ नाव्याप्तिस्तद-  
वस्था । हेतुरेव वा प्रतियोग्यवृत्तित्वेन विशेषणीयः इत्याहुः । तदसत्  
गौरवात् सम्बन्धविशेषेणैव प्रतियोग्यवृत्तित्वस्य वक्तव्यतया<sup>(२)</sup> स्वप्रति-

(१) अव्याप्यवृत्तिधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदस्यैवाव्याप्यवृत्तित्वं न तु  
व्याप्यवृत्तिधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदस्य अतः प्रतियोगित्वस्य  
व्याप्यवृत्तिधर्मतया तदवच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदस्य नाव्याप्यवृत्तित्व-  
मिति भावः ।

(२) प्रतियोग्यवृत्तित्वस्य सम्बन्धविशेषानियन्तित्वे धूमवान् वह्नेरित्यादा-  
वतिव्याप्तिः तत्र धूमवद्भेदस्य प्रतियोगिनि धूमवति कालिकसम्बन्धेन  
वर्त्तमानत्वात् प्रतियोग्यवृत्तिभेदो गगनादिभेद एव तस्य प्रतियोगिनि  
गगनादौ केनापि सम्बन्धेनावर्त्तमानत्वात् तदप्रतियोगित्वात् धूम-  
वदादेः । सम्बन्धविशेषश्च स्वप्रतियोगितावच्छेदकवत्तायहविरोधिता-  
घटकसम्बन्धरूपः, स्वपदं अन्योन्याभावपरम् ।

स्तः धूमवान् वह्निमद्भ्रदौ न भवतीतिप्रतीतेर्व्यासज्य-  
वृत्तिप्रतियोगिकौ वह्नि-वह्निमतोरत्यन्तान्योन्याभावौ

योग्यनिरूपितत्वापेक्षया गुरुत्वात् प्रतियोग्यवृत्तित्वस्याव्याप्यवृत्तित्वे  
मानाभावाच्चेति दिक् ।

ननु तत्रेत्यादौ सप्तम्याद्युत्तरत्रादिप्रत्ययेन सप्तम्यादेरिव स्वस-  
मानाधिकरणान्योन्याभावाप्रतियोगियद्वत्कत्वमित्यत्र सम्बन्धिवोधक-  
वज्रव्रीह्युत्तरककारेण मतुप्प्रत्ययादिः स्मर्यते तेन च व्याप्यत्व-  
रूपसम्बन्धाश्रयः साध्यव्याप्यत्वरूपसम्बन्धाश्रयो वा स्मर्यते विग्रहवा-  
क्यस्यषष्ठ्यास्मर्यवतो वज्रव्रीह्युत्तरककारस्मारितमतुवाद्यर्थत्वनियमात्  
तत्र प्रथमे तदेकदेशे व्याप्यत्वे निरूपितत्वसम्बन्धेन यद्वत्पदार्थस्य  
साध्याधिकरणस्यान्वयः, द्वितीये तदेकदेशे साध्ये साधेयतासम्बन्धेन  
तदन्वयः, यद्वा यत्पदोत्तरमतुप्प्रत्ययस्यैवाधिकरणव्याप्योऽधिकरण-  
वृत्तिसाध्यव्याप्यो वा श्रयः विग्रहवाक्यस्यषष्ठ्यास्मर्यवतो वज्रव्रीहेश्वर-  
मपदार्थत्वनियमात्, तदेकदेशे साधिकरणे प्रतियोग्यन्तस्य यत्पदार्थ-  
साध्यस्य चान्वयः, ककारस्तात्पर्यग्राहकः, तथाच स्वसमानाधिकरणा-  
न्योन्याभावाप्रतियोगिसाध्याधिकरणव्याप्यत्वं स्वसमानाधिकरणान्यो-  
न्याभावाप्रतियोगिसाध्याधिकरणवृत्तिसाध्यव्याप्यत्वं वा लक्षणवाक्यार्थः  
उभययैव व्याप्यत्वं तदृषट्कं तदेव च व्याप्यत्वं न ज्ञायते इत्यत आह,  
'साधेति, 'व्याप्य-व्यापकभावाज्ञानेऽपि' साध्यवतो व्याप्यत्वज्ञानं विना-  
ऽपि, 'सम्बन्धलेनैव भातस्य' संयोगत्वादिनैव प्रकृतव्याप्तिज्ञानविषयस्य,  
'वस्तुमतः तथात्वेनाज्ञायमानस्य' वस्तुमतोव्याप्तित्वेन प्रकृतव्याप्तिज्ञा-

धूमवति विद्येते इति कथमेते लक्षणे इति चेत् । न ।  
तादृशाभावानभ्युपगमात् अभ्युपगमे वा तत्र तदुभयं  
प्रतियोगि न वह्नि-वह्निमन्तौ ।

नाविषयस्य, 'षष्ठ्यर्थत्वं' विग्रहवाक्यस्यषष्ठ्यर्थत्वमिति योजना, 'वस्तु-  
सतः' वस्तुनि फलीभूतानुमितौ विधेयतासम्बन्धेन सतः साध्यस्येति  
यावत्, तथाच संयोगत्वादिरूपेण संयोगादिरूपहेतुतावच्छेदक-  
सम्बन्धस्यैव विग्रहवाक्यस्यषष्ठ्यर्थतया ककारस्फारितमतुवादेरपि संयो-  
गत्वादिरूपेण संयोगादिरेवार्थो न तु व्याप्यत्वादिरूपसम्बन्धवानिति  
भावः । 'न चैवमिति, 'एवं' स्वपदार्थ-यत्पदार्थघटितलक्षणे, 'अननु-  
गतस्यैवेति, लक्ष्यस्थानुगतत्वे लक्षणस्थाननुगतत्वएव परस्परव्याप्ति-  
रूपदोषसम्भवादिति भावः । 'धूमवान् वह्निमद्ब्रह्मदौ न भवतीत्येव  
पाठः, 'न भवत इति पाठस्तु प्रामादिकः<sup>(१)</sup> । 'व्यासज्येति व्यासज्य-  
वृत्तिधर्मावच्छिन्नप्रतियोगिकावित्यर्थः, 'धूमवति' वह्नि-ब्रह्मदोभयत्वा-  
वच्छिन्नानधिकरणे धूमवति, 'कथमेते लक्षणे इति, 'एते' अत्यन्ताभा-  
वान्योन्याभावगर्भलक्षणे, प्रतियोगिव्यधिकरणत्वस्य प्रतियोगितावच्छे-  
दकावच्छिन्नव्यधिकरणत्वरूपतया वह्नि-ब्रह्मदोभयत्वावच्छिन्नाभाव-  
स्यापि तथात्वादिति भावः, 'तादृशाभावेति व्यासज्यवृत्तिधर्माव-  
च्छिन्नप्रतियोगिताकाभावानभ्युपगमादित्यर्थः । न चैवं वह्नि-ब्रह्मदौ

(१) प्रत्ययस्य उद्देश्यवाचकपदोत्तरवर्तिवचनसजातीयवचनकत्वनियमा-  
दिति श्रेयः ।

अथवानौपाधिकत्वं व्याप्तिः तत्र यावत्समाना-  
धिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नं यत्

न स इत्यादिप्रतीतेः को विषय इति वाच्यं । ह्रदाधिकरणे तादृश-  
प्रत्ययस्य वङ्गिसामान्याभावो विषयः वङ्गिमति तादृशप्रत्ययस्य ह्रद-  
सामान्याभावो विषयः तदुभयशून्ये च तादृशप्रत्ययस्य तादृशाभाव-  
द्वयमेव विषय इत्यभ्युपगमात् । न चैवं द्वित्वस्य प्रतियोगितावच्छेदक-  
त्वोत्प्रेषोऽनुपपन्न इति वाच्यं । साधवात् क्लृप्तप्रकारौभूतवङ्गित्व-ह्रद-  
त्वादिरूपतत्तद्धर्षावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावानामेव द्वित्वावच्छिन्न-  
प्रतियोगिताकत्वकल्पनात् । अथैवं लक्षणाव्याप्तिस्तदवस्था धूमसमा-  
नाधिकरणह्रदसामान्याभावस्य ह्रदत्वावच्छिन्नह्रदमात्रवृत्तिप्रतियो-  
गिताव्यक्तेर्वङ्गावसत्त्वेऽपि वङ्गि-ह्रदोभयत्वावच्छिन्नतत्प्रतियोगिताव्य-  
क्तेरुभयसाधारणतया वङ्गावपि सत्त्वात् द्रव्यसामान्याभावो वङ्गि-  
प्रतियोगिकः इति वत् ह्रदसामान्याभावो वङ्गिप्रतियोगिक इत्यपि  
प्रत्ययापत्तिः ह्रदसामान्याभावो न वङ्गिप्रतियोगिक इति प्रत्ययानुप-  
पत्तिश्च ह्रदसामान्याभावस्य द्वित्वावच्छिन्नप्रतियोगिताव्यक्तेर्वङ्गिनि-  
ष्ठत्वादिति चेत् । न । वङ्गिसामान्याभाव-ह्रदसामान्याभावादेः वङ्गित्व-  
ह्रदत्वावच्छिन्नवङ्गि-ह्रदमात्रवृत्तिप्रतियोगिताव्यक्तोरेव वङ्गि-ह्रदो-  
भयत्वावच्छिन्नत्वाभ्युपगमात् उभयसाधारणप्रतियोगितान्तरे माना-  
भावात् । न चैवं पर्वन्ते वङ्गि-ह्रदौ न स इति प्रतीतेः प्रतियोगिता-  
कत्वसम्बन्धेनाभावे वङ्गि-ह्रदयोरुभयोः प्रकारत्वानुपपत्तिः ह्रदसामा-  
न्याभावे वङ्गिनिष्ठप्रतियोगिताकत्वविरहादिति वाच्यं । ह्रदत्वावच्छि-



तत्प्रतियोगिकात्यक्ताभावसमानाधिकरणं यत् तेन  
समं सामानाधिकरण्यम् । नष्टेवं सोपाधिः, तत्र

नष्टदमात्रवृत्तिप्रतियोगितात्यक्तेर्हृदसम्बन्धत्ववदङ्गिसम्बन्धत्वस्याप्यभ्यु-  
पगमात् । न च तदसम्बद्धस्य कथं तत्सम्बन्धत्वमिति वाच्यं । तद्वृत्तिधर्मा-  
वच्छिन्नत्वसम्बन्धेन तस्यापि तत्सम्बद्धत्वात् तत्र निष्ठतासम्बन्धेन प्रतियो-  
गित्वस्योभयसम्बद्धत्वे मानाभावात् । अथ वङ्गि-हृदौ न स्तः घट-पटौ  
न स्त इत्यादिप्रतीतेः प्रकारीभूततत्तद्गर्भद्वयावच्छिन्नप्रतियोगिताका-  
भावविषयत्वेनोपपत्तावपि घटौ न स्तः पटौ न स्तः इत्यादि प्रतीतेर्न  
क्षुप्राभावविषयत्वेनोपपत्तिः घटादिसामान्याभावस्य तद्विषयत्वे एकैक-  
घटादिमति तादृशप्रतीत्यनुपपत्तिः यत्किञ्चिद्घटाद्यभावस्य तद्वि-  
षयत्वे घटद्वयादिसत्यपि तादृशप्रतीत्यापत्तिः अतो घटद्वयत्व-पटद्वय-  
त्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावस्यातिरिक्तावश्यकत्वमिति चेत् । न ।  
तावता घटौ न स्तः पटौ न स्त इत्यादिप्रतीतिवत्त्वाद्घटद्वयत्व-पट-  
द्वयत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावस्यातिरिक्तस्य सिद्धावपि घट-पटो-  
भयत्वावच्छिन्न-वङ्गि-हृदोभयत्वावच्छिन्नाभावादेरतिरिक्तत्वे माना-  
भावात् । यावत्यो घटव्यक्तयः प्रातिष्विकरूपेण तत्तद्घटव्यक्तिभिन्नघट-  
त्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावेव प्रत्येकं घटद्वयत्वावच्छिन्नप्रति-  
योगिताकत्वकल्पनात् यत्किञ्चिद्घटभिन्नघटाभावादेव घटौ न स्त  
इति प्रतीत्युपपत्तेः घटद्वयत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावेऽपि माना-  
भावाच्च यत्किञ्चिद्घटद्वयवति घटेतरघटस्यैव सत्त्वात् न तथा धीः ।  
न घानन्ताभावेषु घटद्वयत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वसम्बन्धकल्पना-

साधनसमानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगिन आर्द्र-  
न्धनवत्त्वादेरुपाधेर्योऽत्यन्ताभावस्तेन समं साध्यस्य

मपेक्ष्य लाघवादेक एव तत्सम्बद्धातिरिक्ताभावः सिद्धतीति वाच्यं ।  
अनन्ताधिकरणेषु अतिरिक्ताभावसम्बन्धकल्पनामपेक्ष्य क्लृप्तानन्ता-  
धिकरणसम्बन्धेवानन्ताभावेषु घटद्वयत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्व-  
सम्बन्धकल्पनाया एव लघुत्वादिति भावः । एतेन त्रित्वाद्यवच्छिन्ना-  
भावोऽपि व्याख्यातः । ननु घट-पटौ न स्तः घटौ न स्तः वङ्गि-हृदौ न  
स्तः वङ्गी न स्त इत्यादिप्रतीतेः अधिकरणभेदेन नानाभावविषयकत्व-  
मनुभवविरुद्धमेकाभावविषयकत्वस्यानुभवसिद्धत्वात् तादृशानुभवाप-  
त्तापे अधिकरणातिरिक्ताभावस्यासिद्धापत्तेः इत्यखरसादाह, 'अभ्युप-  
गमे वेति, 'तदुभयं प्रतियोगि' द्वित्वव्यावर्तकं तत्तद्धर्मद्वयं द्वित्वञ्च  
तादृशाभावप्रतियोगितावच्छेदकं, 'न वङ्गि-वङ्गिमन्तौ' न वङ्गित्व-  
वङ्गिमत्त्वे, तथाच हेतुसमानाधिकरणवङ्गि-हृदोभयाभावस्य वङ्गित्व-  
हृदत्वसुभयत्वं चित्तयं प्रतियोगितावच्छेदकं अवच्छेदकता च व्यासज्य-  
वृत्तिः न तु वङ्गित्वमवच्छेदकतापर्याप्त्यधिकरणं, एवं वङ्गिमद्-  
हृदोभयान्योन्याभावस्य वङ्गिमत्त्वं हृदत्वसुभयत्वञ्च चित्तयं प्रति-  
योगितावच्छेदकं अवच्छेदकता च व्यासज्यवृत्तिः न तु वङ्गिमत्त्वं  
अवच्छेदकतापर्याप्त्यधिकरणं अतो नाव्याप्तिः प्रागुक्तयुक्त्या सर्वेषा-  
मेव लक्षणानां अवच्छेदकतापर्याप्त्यधिकरणत्वघटितत्वादिति भावः ।  
'तदुभयं प्रतियोगीत्यादि यथाश्रुतन्तु न सङ्गच्छते उभयोः प्रति-  
योगित्वे एकस्यापि प्रतियोगित्वानपायात् । न च व्यासज्यवृत्तिधर्माव-

धूमादेः सामानाधिकरण्याभावात् उपाधेः साध्य-  
व्यापकत्वात् । एतदेव यावत्त्वय्यभिचारिव्यभिचारि-  
साध्यसामानाधिकरण्यमनौपाधिकत्वं गीयते ।

च्छिन्नाभावस्य प्रतियोगितापि व्यासज्यवृत्तिरिति वाच्यं । घटो  
घट-पटोभयाभावप्रतियोगीत्यप्रत्ययापत्तेः घटो न घट-पटोभया-  
भावप्रतियोगीति प्रत्ययापत्तेश्च इति ध्येयं ।

केचित्तु 'तदुभयं प्रतियोगि' द्वित्वव्यावर्तकतत्तद्धर्मावच्छिन्न-  
मात्रवृत्तिपर्याप्त्यधिकरणत्वसम्बन्धेन तदुभयत्वं तादृशाभावप्रतियो-  
गितावच्छेदकं, 'न तु वङ्गि-वङ्गिमन्तौ' न वङ्गित्व-मङ्गिमत्त्वे, तथाच  
वङ्गि-हृदोभयाभावादेर्वङ्गि-हृदमात्रवृत्तिपर्याप्त्यधिकरणत्वादिसम्ब-  
न्धेन द्वित्वं प्रतियोगितावच्छेदकं न तु वङ्गित्वादि । न चैवं वङ्गि-  
हृदौ न स्त इत्यादावन्वयितावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वव्यु-  
त्पत्तिभङ्गप्रसङ्गः केवलद्वित्वस्थान्वयितानवच्छेदकत्वादिति वाच्यं । त-  
द्व्युत्पत्तेरत्र सङ्कोचात् इत्याहुः ।

प्राञ्चस्तु घट-पटोभयाभावादेर्घट-पटोभयवृत्तिद्वित्वेन तादृश-  
द्वित्वमेव प्रतियोगितावच्छेदकं अन्वयितावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगि-  
ताकत्वव्युत्पत्तेश्चात्र सङ्कोच एव इत्याहुः । तदसत् घट-पटोभयवृत्ति-  
त्वाद्यनुपस्थितावपि घट-पटौ न स्तः इति प्रत्ययात् । न च तदानीं  
तादृशप्रत्ययोऽसिद्ध इति वाच्यं । तदानीमपि तादृशप्रत्ययस्यैव  
दौधितिज्ञता लिखितत्वादिति दिक् ।

यदा यावत्समानाधिकरणात्यन्ताभावाप्रतियोगि-

प्राचार्यलक्षणं परिष्करोति 'अथ वेति, यथाश्रुते प्रकृतसाध्य-  
व्यापकत्वे सति साधनाव्यापको यस्तदभाववत्त्वरूपमनौपाधिकत्वमिति,  
सद्वेतौ सिद्धयिद्धिव्याघातादाह, 'तच्चेति अनौपाधिकत्वचेत्यर्थः,  
'यावदिति, यावन्ति स्वसमानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगितावच्छे-  
दकानि तदवच्छिन्नप्रतियोगिताकात्यन्ताभावसमानाधिकरणं यत्  
साध्यं तेन समं सामानाधिकरणमित्यर्थः, 'स्वपदं हेत्वभिमतपरं,  
वक्षिमान् धूमादित्यादौ धूमसमानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियो-  
गितावच्छेदकानि यावन्ति जपलादीनि तदवच्छिन्नप्रतियोगिता-  
काभावसमानाधिकरण एव वक्षिः व्याप्यसमानाधिकरणात्यन्ताभाव-  
प्रतियोगिनो व्यापकवति सुतरां अत्यन्ताभावादिति लक्षणसमन्वयः ।  
धूमवान् वक्षेरित्यादौ च वक्षिसमानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगिता-  
वच्छेदकमार्द्रैन्धनत्व-धूमत्वादि तदवच्छिन्नप्रतियोगिताकात्यन्ताभाव-  
समानाधिकरणञ्च न धूमादिः<sup>(१)</sup> मार्द्रैन्धनादेर्धूमव्यापकत्वादिति ना-  
तिव्याप्तिः । वक्षिसमानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगितावच्छेदकं ज-  
पलादि तदवच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावसमानाधिकरणो धूम इत्यति-  
व्याप्तिवारणाय 'यावदिति । ननु सर्वत्र तादृशावच्छेदकैर्घटत्व-पटल-  
गोलादिभिर्धावद्भिरवच्छिन्नत्वस्य वृत्ताप्यभावाद्सिद्धिः । न च यावन्ति  
तादृशावच्छेदकानि तत्रत्येकावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावेति विव-

(१) तदवच्छिन्नप्रतियोगिताकात्यन्ताभावासमानाधिकरणञ्च धूमादि-  
दिति ख० ।

प्रतियोगिकात्यन्ताभावासामानाधिकरण्यं यस्य तस्य  
तद्देवानौपाधिकत्वं सोपाधौ तु साध्यवन्निष्ठात्यन्ताभा-

चितमिति वाच्यं । अवच्छिन्नपदस्याश्रयार्थकतया तत्प्रत्येकाश्रय-  
प्रतियोगिकोभयाभाव-विशिष्टाभावादिकमादायातिव्याप्यापत्तेः । न  
च यावत्त्वमवच्छिन्नस्य विशेषणं तथाच तादृशावच्छेदकावच्छिन्नानि  
यावन्ति तत्प्रतियोगिताकाभावेत्यर्थः, अवच्छिन्नपदमाश्रयार्थकमिति  
वाच्यं । तथापि यावत्तावच्छिन्नप्रतियोगिकात्यन्ताभावमादायाति-  
व्याप्तितादवस्थ्यात्प्रतियोगिव्यधिकरणत्वेनाभावविशेषणत्वेऽप्रसिद्धिः ।  
न च तादृशावच्छेदकानि यावन्ति तत्प्रत्येकावच्छिन्नप्रतियोगिका-  
त्यन्ताभावसमानाधिकरणं यत्साध्यं विवक्षितं इति अवच्छिन्नत्वञ्च  
स्वरूपसम्बन्धविशेषः, इत्यञ्च विशिष्टाभावोभयाभावमादाय नाति-  
व्याप्तिरिति वाच्यं । रूपवान् पृथिवीत्वादित्यादावव्याप्यापत्तेः पृथि-  
वीत्वसमानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगितावच्छेदकानि घटत्व-  
पटत्वत्वादीनि यावन्ति तत्प्रत्येकावच्छिन्नप्रतियोगिकाभावसामा-  
नाधिकरणस्य कापि रूपेऽसत्त्वात् घटीयरूपे घटत्वतावच्छिन्नप्रति-  
योगिकात्यन्ताभावसामानाधिकरण्यविरहात् पटीयरूपे पटत्वता-  
वच्छिन्नप्रतियोगिकात्यन्ताभावसामानाधिकरण्यविरहात् । विशिष्ट-  
सत्तावान् जातेरित्यादावतिव्याप्यापत्तेश्च जातिसमानाधिकरणा-  
त्यन्ताभावप्रतियोगितावच्छेदकानि यावन्ति तत्प्रत्येकावच्छिन्नप्रति-  
योगिताकाभावसामानाधिकरण्यस्यैव विशिष्टसत्त्वे सत्तानतिरिक्ते  
सत्तादिति । मैवं । हेतुसमानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगितावच्छे-

वाप्रतियोगिन उपाधेर्योऽत्यन्ताभावस्तेन समं हेतोः  
सामानाधिकरण्यम् उपाधेः साधनाव्यापकत्वात् ।

दका यावन्तो धर्मा यद्गुणावच्छिन्नसमानाधिकरणात्यन्ताभावप्रति-  
योगितावच्छेदकास्तद्गुणावच्छिन्नसमानाधिकरण्यस्य विवक्षितत्वात् ।  
यद्गुणपदं साध्यतावच्छेदकपरं, अत्र चरमप्रतियोगिता विशेषणतावि-  
शेषसम्भावच्छिन्नत्वेन विशेषणीया, तेन धूमवान् वदोरित्यादौ वद्वि-  
समानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगितावच्छेदकत्वाद्देहान्धनत्वादेः सर्व-  
सैव धूमत्वावच्छिन्नसमानाधिकरणसमवायादिसम्भावच्छिन्नाभाव-  
प्रतियोगितावच्छेदकत्वेऽपि धूमप्रकारकप्रमाविशेष्यत्वत्वादेः<sup>(१)</sup> तादृशा-  
वच्छेदकत्वावदन्तर्गतस्य धूमसमानाधिकरणाभावीचविशेषणताविशेष-  
णावच्छिन्नप्रतियोगितावच्छेदकत्वविरहात्प्रतियोगिताः । एवं प्रथम-  
प्रतियोगितापि विशेषणताविशेष्यत्वम्भावच्छिन्नत्वेन विशेषणीया, तेन  
वद्विमान् धूमादित्यादौ धूमसमानाधिकरण-संबन्ध-समवायादिसम्भ-  
न्नावच्छिन्नाभावप्रतियोगितावच्छेदकस्य वद्विप्रकारकप्रमाविशेष्यत्व-  
त्वादेर्भावदन्तर्गतस्य वद्विसमानाधिकरणाभावीचविशेषणताविशेषा-  
वच्छिन्नप्रतियोगितावच्छेदकत्वविरहेऽपि न चतिरिति दिक् । यथा-

(१) अयःपिण्डेऽपि धूमप्रकारकभ्रमात्मकज्ञानविशेष्यत्वसत्त्वात् धूम-  
प्रकारकज्ञानविशेष्यत्वत्वादेः वद्विसमानाधिकरणाभावप्रतियोगि-  
तावच्छेदकत्वं न सम्भवतीत्यत उक्तं धूमप्रकारकप्रमाविशेष्यत्वत्वादे-  
रिति ।

यद्वा यत्सम्बन्धितावच्छेदकरूपत्वं यस्य तस्य सा  
व्याप्तिः । तथाहि धूमस्य वह्निसम्बन्धित्वे धूमत्वम-

श्रुताभिप्रायेणासद्भेतौ लक्षणासत्त्वं प्रतिपादयति, 'न ह्येवमिति,  
'अत्यन्ताभावप्रतियोगिनः' प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नस्य, 'उपाधेः'  
आर्द्रैन्धनवत्त्वाद्युपाधेः<sup>(१)</sup> । ननु तस्यानौपाधिकत्वरूपत्वे "यावत्स्वयमि-  
चारिव्यभिचारिसाध्यसामानाधिकरण्यमनौपाधिकत्वं" इति प्राची-  
नग्रन्थविरोध इत्यत आह, 'एतदेवेति मथा यन्निरुक्तमेतदेवेत्यर्थः,  
'अनौपाधिकत्वमित्यनन्तरमिति पूरणीयं, 'गीचते' प्राचीनैरुच्यते,  
'स्वयमिचारिपदस्य स्वसमानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगितावच्छेद-  
कावच्छिन्नार्थकतया, द्वितीयव्यभिचारिपदस्य च तत्प्रतियोगिताका-  
त्यन्ताभावसमानाधिकरणार्थकतया तस्याप्ययमेवार्थः इति भावः ।

प्रकारान्तरेणानौपाधिकत्वं निर्व्वन्ति, 'यदेति यावन्तो यत्स-  
मानाधिकरणात्यन्ताभावाप्रतियोगिनस्तत्प्रतियोगिकात्यन्ताभावासा-  
मानाधिकरणं यस्य तस्य तत्त्वमेव तदनौपाधिकत्वमित्यर्थः, प्रथम-  
यत्पदं साध्यपरं यत्वेत्यत्र यत्पदं हेतुपरं, वह्निमान् धूमादित्यादौ  
वह्निसमानाधिकरणाभावाप्रतियोगिनामिन्धनादीनां सर्व्वेषामेवा-

(१) अस्मत्संग्रहणीतादर्शमूलपुस्तकेषु सर्व्वत्र 'आर्द्रैन्धनवत्त्वादेरुपाधेः'  
इति पाठो वर्त्तते परन्तु टीकाकारव्याख्यानुसारेण कस्मिंश्चिन्मूल-  
पुस्तके 'आर्द्रैन्धनवत्त्वादेरुपाधेः' इत्यत्र 'उपाधेः' इत्येतावन्मात्रपाठो  
वर्त्तते इत्यनुमीयते ।

वच्छेदकं धूममात्रस्य वह्निसम्बन्धित्वात्, वह्नेस्तु धूम-  
सम्बन्धे न वह्नित्वमवच्छेदकं धूमासम्बन्धिनि गतत्वात्,

भावेन समं धूमस्य न सामानाधिकरण्यं व्यापकव्यापकस्य सुतरां  
व्याप्यव्यापकत्वादिति लक्षणसमन्वयः, धूमवान् वह्नेरित्यादौ धूम-  
समानाधिकरणाभावाप्रतियोगिनामार्द्रैन्धनादीनामेवाभावेन समं  
वह्नादेः सामानाधिकरणात्तात्पर्यात् । धूमसमानाधिकरणा-  
भावाप्रतियोगिनो द्रव्यत्वादेरभावेन समसामानाधिकरणस्य वह्नौ  
सत्तादित्युक्त्याप्युक्त्या 'यावदिति । ननु सर्वत्र साध्यसमानाधिक-  
रणाभावाप्रतियोग्येवाप्रसिद्धं तादृशविशिष्टाभावोभयाभावप्रतियोगि-  
त्वस्य केवलान्वयित्वात् । न चाप्रतियोगिपदं विशेषणताविशेषा-  
वच्छिन्नप्रतियोगितानवच्छेदकावच्छिन्नपरं व्यधिकरणसम्बन्धावच्छि-  
न्नतादृशाभावप्रतियोगितावच्छेदकत्वस्य सर्वत्र सत्त्वात् तादृशप्रतियो-  
गितानवच्छेदकत्वाप्रसिद्धिरिति विशेषणताविशेषावच्छिन्नेति प्रति-  
योगिताविशेषणमिति वाच्यं । तथापि वह्निसमान् धूमादित्यादा-  
वसम्भवात् वह्निसमानाधिकरणाभावीयविशेषणताविशेषावच्छिन्न-  
प्रतियोगितानवच्छेदकावच्छिन्नयावत्प्रतियोगिकेन यावत्तावच्छिन्न-  
प्रतियोगिकाभावेन समं सामानाधिकरणस्य धूमे सत्त्वात् । न च  
साध्यसमानाधिकरणाभावीयविशेषणताविशेषावच्छिन्नप्रतियोगितान-  
वच्छेदकं यावत् तत्रत्येकावच्छिन्नविशेषणताविशेषावच्छिन्नप्रतियो-  
गिकाभावेन समसामानाधिकरण्यं विवक्षितं संयोग-समवायादि-  
सम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिकाभावसादायासम्भववारणाय विशेषणता-



न प्रतिप्रसक्तमवच्छेदकं, संयोगादौ तथात्वाददर्शनात् ।  
किन्तु वशावार्द्धेन प्रभववह्निं धूमसम्बन्धितावच्छे-  
दकं, तादृशञ्च व्याप्यमेव ।

विशेषावच्छिन्नेति चरमप्रतियोगिताविशेषणमिति वाच्यं । प्रमेयत्व-  
त्वादेरपि तादृशप्रतियोगितानवच्छेदकयावदन्तर्गततया तदवच्छिन्न-  
विशेषणताविशेषावच्छिन्नप्रतियोगिकाभावाप्रसिद्ध्या असम्भवात्तादव-  
स्थ्यात् । न च व्यतिरेकितावच्छेदकत्वेन<sup>(१)</sup> तादृशप्रतियोगितान-  
वच्छेदकं विशेषणीयमिति वाच्यं । तथापि केवलान्वयिन्यव्याप्तेः  
तत्र तादृशप्रतियोगितानवच्छेदकव्यतिरेकितावच्छेदकधर्माप्रसिद्धेः  
द्रव्यं विशिष्टसत्त्वादित्यादावव्याप्तेश्च विशिष्टस्यानतिरेकात् । अथ या-  
वत्त्वं द्वितीयात्यन्ताभावविशेषणं, तथाच साध्यसमानाधिकरणाभावी-  
यविशेषणताविशेषावच्छिन्नप्रतियोगितानवच्छेदकावच्छिन्नविशेषण-  
ताविशेषावच्छिन्नप्रतियोगिकयावदभावासामानाधिकरण्यमित्यर्थः ।  
न चायमात्मा ज्ञानादित्यादौ तादृशयावदभावान्तर्गतानां रूपादि-  
सामान्याभावाभावानां सकलरूपादिव्यक्तीनां अधिकरणाप्रसिद्धिः  
तादृशयावदभावप्रत्येकासामानाधिकरणीत्वावपि तादृशयावदभावा-  
न्तर्गतत्वाकाशादेरधिकरणाप्रसिद्ध्या असम्भवः द्रव्यं विशिष्टसत्त्वादि-  
त्यादौ अव्याप्तिश्च विशिष्टसत्त्वानतिरिक्तत्वात् इति वाच्यं । सप्तमीतत्-  
पुरुषाग्रवणात् तादृशयावदभावे असामानाधिकरण्यं यद्भूत्वावच्छि-

(१) अभावप्रतियोगितावच्छेदकत्वेनेत्यर्थः ।

अथवा यत्सामानाधिकरण्यावच्छेदकावच्छिन्नं यस्य

तस्य तद्द्रव्यत्वत्वं तदनौपाधिकत्वमित्यस्य विवक्षितत्वात् आकाशादा-  
वपि हेतुसामानाधिकरण्याभावसत्त्वात् न दोष इति चेत् । न । द्रव्यं  
पृथिवीत्वादित्यादावव्याप्तेः तादृशप्रतियोगितानवच्छेदकद्रव्यान्यत्व-  
विशिष्टसत्त्वाभावत्वाद्यवच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावात् सत्तादेः पृथिवी-  
त्वादिसामानाधिकरणत्वादाकाशाभावादेरभावे सामानाभावेन केवला-  
नविसृष्टेऽपि तादृशाभावाप्रसिद्धेऽपि । मैवं । साध्यसामानाधि-  
करणाभावीयविशेषणताविशेषावच्छिन्नप्रतियोगितानवच्छेदका या-  
वन्तो धर्मा यद्द्रव्यावच्छिन्नसामानाधिकरणाभावीयविशेषणताविशेषा-  
वच्छिन्नप्रतियोगितानवच्छेदकास्तद्द्रव्यत्वमनौपाधिकत्वमिति विव-  
क्षितत्वादिति दिक् । सोपाधौ यथाश्रुताभिप्रायेण लक्षणाभावं  
दर्शयति, 'सोपाधाविति । 'यदेति, 'सा' तत्त्वस्वन्विता, स्वन्विता च  
सामानाधिकरणं, तथाच यत्सामानाधिकरण्यावच्छेदकरूपत्वत्वं यस्य  
तस्य तत्सामानाधिकरणमित्यर्थः, प्रथमव्यपदेशं साध्यत्वेनाभिमत-  
परं । न च द्रव्यं सत्तादित्यादावव्याप्तिः सत्ताया द्रव्यत्वसामाना-  
धिकरण्यावच्छेदकगुणाद्यन्यत्वविशिष्टसत्त्वत्वावच्छिन्नत्वात् यथेत्यन्त-  
वैयर्थ्याद्यावर्त्तकत्वात् इति वाच्यं । यत्त्वन्वितावच्छेदकं यद्रूपत्वत्वं  
यस्य तस्य तत्सामानाधिकरणं तद्रूपेण तस्य व्याप्यत्वमित्यभिप्रायात् ।  
इत्यत्र वक्तेर्वक्तृत्वरूपेण धूमव्याप्यत्ववारणाय यथेत्यन्तं, तथाच  
साध्यसामानाधिकरण्यावच्छेदकत्वत्वे सति साध्यसामानाधिकरणं  
व्याप्तिरिति फलितं । अत्र च साध्यसामानाधिकरण्यावच्छेदकत्वं न

स्वरूपं तत्तस्य व्याप्यं वह्निसामानाधिकरण्यं हि धूमे  
धूमत्वेनावच्छिद्यते सौपाधौ तूपाधिना ।

स्वरूपसम्बन्धविशेषः, लघुसमनियतगुरुरूपेण हेतुतायामव्याप्यापत्तेः<sup>(१)</sup>  
धूमत्वादेर्वह्निसामानाधिकरण्यस्य स्वरूपसम्बन्धरूपावच्छेदकत्वे माना-  
भावाच्च । नापि साध्यसामानाधिकरण्यान्यूनवृत्तित्वं वह्निमान् प्रमे-  
यात् इत्यादावतिव्याप्यापत्तेः वह्निमान् धूमादित्यादावव्याप्यापत्तेश्च<sup>(२)</sup>  
नापि तदन्यूनानतिरिक्तवृत्तित्वं, वह्निमान् धूमादित्यादावेवाव्याप्तेः ।  
नापि तदनतिरिक्तवृत्तित्वं, द्रव्यं सत्त्वादित्यादावतिव्याप्यापत्तेः । किन्तु  
पारिभाषिकं, तच्च स्वविशिष्टाधिकरणावृत्तियावत्साध्यासमानाधि-  
करणकत्वं, स्वपदं हेतुतावच्छेदकपरं । न चैवं वह्निमान् नील-  
धूमादित्यादौ व्यर्थविशेषणेऽतिव्याप्तिः निरुक्तावच्छेदकत्वस्य नीलधूम-  
त्वादावपि सत्त्वादिति वाच्यं । तस्यापि लक्ष्यत्वात् व्यर्थविशेषणोद्भा-  
वने वादिनोऽधिकेन नियह इत्येव व्यर्थविशेषणताया दूषकतावीज-  
त्वात् । तत्र साध्यासमानाधिकरणत्वं साध्यतावच्छेदकसम्बन्धेन सा-  
ध्यतावच्छेदकावच्छिद्याधिकरणे दैशिकविशेषणताविशेषेणावृत्तित्वं,  
तेन समवायेन वज्रादौ साध्ये वह्निमान् धूमादित्यादौ गुणाद्यन्व-

(१) सम्भवति लघौ धर्मे गुरौ तदभावादिति नियमादिति शेषः ।

(२) अन्यूनवृत्तित्वपदस्य व्यापकत्वायंक्ततया प्रमेयत्वस्य वह्निसामानाधि-  
करणव्यापकतया वह्निमान् प्रमेयादित्यादावतिव्याप्तिः । वह्निसामा-  
नाधिकरण्यस्य रासभादिसाधारणतया धूमत्वस्य तदव्यापकतया  
वह्निमान् धूमादित्यादावव्याप्तिश्चेति भावः ।

त्वविशिष्टसत्तावान् जातेरित्यादौ च नातिव्याप्तिः, न वा गगनादेः  
 कालिकसम्बन्धेनावृत्तित्वमते द्रव्यं सत्तादित्यादौ द्रव्यत्वाधिकरणका-  
 लावृत्तित्वस्यावृत्तिमात्रे सत्त्वेऽपि अतिव्याप्तिः, गगनादेस्तेन सम्बन्धेन  
 वृत्तित्वमते द्रव्यं गुणादित्यादौ द्रव्यत्ववदवृत्तित्वस्याप्रसिद्धाव्याप्तिः,  
 स्वविशिष्टाधिकरणावृत्तित्वमपि हेतुतावच्छेदकसम्बन्धेन स्वविशि-  
 ष्टाधिकरणे दैशिकविशेषणताविशेषेणावर्तमानत्वं, तेन वङ्गिमान्  
 धूमादित्यादौ वङ्गसमानाधिकरणधूमावयवत्वादेर्दैशिकविशेषणता-  
 विशेषेण वङ्गसमानाधिकरणद्रव्यत्वादेश्च धूमावयवताधिकरणत्वेऽपि  
 नाव्याप्तिरिति संक्षेपः ।

यद्वेत्तवद्वेत्तोर्ध्वेत्तवत्तत्पुपपादपति, 'तथाहीति, 'वङ्गि-  
 सम्बन्धित्वे' वङ्गिसामानाधिकरण्ये, एवं सर्वत्र, 'न ह्यतिप्रसक्तमिति न  
 हि साध्यसामानाधिकरणातिप्रसक्तं निरुक्तसाध्यसामानाधिकरणा-  
 वच्छेदकत्ववदित्यर्थः, 'संयुक्तादौ' संयुक्तत्वाद्दौ, 'आदिना प्रमेयत्वा-  
 दिपरिग्रहः, 'तथात्वादर्शनादिनात यथोक्तधूमादिसामानाधिकरणा-  
 नवच्छेदकत्वादित्यर्थः, साध्यसामानाधिकरणातिप्रसक्तस्यापि निरु-  
 क्तसाध्यसामानाधिकरणावच्छेदकत्वात्प्रपत्ते संयुक्तत्व-प्रमेयत्वादेरपि  
 तादृशधूमादिसामानाधिकरणावच्छेदकत्वापातादिति भावः । अत्र  
 साध्यसामानाधिकरणातिप्रसक्तस्य प्रमेये प्रयोजनविरहात् गौर-  
 वाच्च तत्परित्यज्य लक्षणान्तरमाह, 'अथ वेति 'यत्पदं साध्यपरं,  
 अत्रापि यत्सम्बन्धितावच्छेदकवदुर्भावस्त्रिंशं यत् तत् तदुर्ध्वरूपेण  
 तस्य व्याप्यमित्यर्थः, अन्यथा द्रव्यं सत्तादित्यादावपि सत्ताया द्रव्यत्व-  
 सामानाधिकरणावच्छेदकविशिष्टसत्तात्वावच्छिन्नत्वादतिव्याप्यापत्तेः,

तथाच साध्यसामानाधिकरण्यावच्छेदकहेतुतावच्छेदकत्वचं व्याप्तिरिति पर्यवसितं अन्यत्सर्वं पूर्ववत् ।

सद्धेलसद्धेलोर्लक्षणसत्त्वसुपपादयति, 'वन्निःसामानाधिकरण्यामित्यादिना, 'सोपाधौ तु उपाधिनेति उपाधिना तु सोपाधिविति योजना, तथाच 'सोपाधौ' साध्यव्यभिचारित्वविशिष्टसाधने<sup>(१)</sup>, 'उपाधिनेव साध्यसम्बन्धोऽवच्छिद्यत इत्यर्थः, 'तुशब्दस्य इतरव्यवच्छेदकत्वात्<sup>(२)</sup> । न सोपाधेः साधनावृत्तित्वात् कथं साधननिष्ठसाध्यसम्बन्धितावच्छेदकत्वमिति वाच्यं । सर्वत्र साधनसमव्याप्तोपाधेः सामानाधिकरण्यासम्बन्धेनैव साधननिष्ठसाध्यसामानाधिकरण्यावच्छेदकत्वसम्भवादिति भावः । यथाश्रुतन्तु न सङ्गच्छते साधनतावच्छेदकानवच्छेदकत्वप्रतिपादनस्यैव<sup>(३)</sup> प्रकृतोपयोगितया तदसाभात्<sup>(४)</sup> । यद्यपि धूमवान् वज्जेरित्यादौ चार्द्रैन्धनप्रभववज्जित्वादेरुपाधिभिन्नसाध्यवच्छेदकत्वात् अवधारणमनुपपन्नं । न चार्द्रैन्धनप्रभववज्जेरपि संयोगसम्बन्धेन धूमसम्बन्धितया "सर्वे साध्यसामानाधिकरणाः सदुपाधयो हेतोरैकाग्रये येषां स्व-साध्यव्यभिचारिता" इति न्यायेनार्द्रैन्धनप्रभववज्जित्वादिकजपुपाधिरिति<sup>(५)</sup> वाच्यं । एवमपि खेहवत्

(१) साध्यव्यभिचारिणीति ख० । (२) इतरव्यवच्छेदार्थत्वादिति ख० ।

(३) साधनतावच्छेदके साध्यसामानाधिकरण्यानवच्छेदकत्वप्रतिपादनस्यैवेत्यर्थः ।

(४) सोपाधौ उपाधिना तु इति योजनाभावे सा न तावच्छेदके साध्यसामानाधिकरण्यानवच्छेदकत्वस्य प्रतिपादयितुमशक्यत्वमिति भावः ।

(५) साश्रयार्द्रैन्धनप्रभववज्जित्त्वसम्बन्धेनोपाधिरिति तात्पर्यम् ।

सर्गादित्यत्रानुपाधिनापि ग्रीतत्वेन साध्यसामानाधिकरण्यवच्छेदा-  
 दवधारणासङ्गतेः । न च खेदवत् सर्गादित्यादौ ग्रीतत्वादिरपि  
 साध्यपीभूतग्रीतसर्गादिसम्बन्धेन उपाधिरेवेति वाच्यं । तथा सति  
 पदार्थमात्रस्यैव यथाकथञ्चित्सम्बन्धेनोपाधित्वादुपाधिभिन्नस्याप्रसिद्ध्या  
 व्यवस्थाप्रसिद्धेर्धूमवान् वनेरित्यादौ साधनतावच्छेदकस्यापि वक्त्रि-  
 तादेराङ्गैर्न्यनप्रभवज्ञादिसम्बन्धेनोपाधित्वात् साधनतावच्छेदकव्यव-  
 छेदाप्राप्तेः । न चोपाधिपदं साधनतावच्छेदकमित्यपरमिति वाच्यं ।  
 इदं दधि दध्न इत्यत्र साधनतावच्छेदकदधित्वस्यापि सामानाधि-  
 करणसम्बन्धेनावच्छेदकतया नियतासङ्गतितादवस्थ्यात्<sup>(१)</sup> । तथापि  
 सामान्यत उपाधिभिन्नव्यवच्छेदत्वं न नियतव्यवच्छेदं, अपि तु सा-  
 धनतावच्छेदकताघटकसम्बन्धेन साधनतावच्छेदकावच्छिन्नत्वमात्र-  
 मिति न कोऽपि दोषः ।

पितृपरणासु उपाधिपदसुपाधिवृत्तिधर्मापरं तथाचोपाधिवृ-  
 त्तिधर्मैरेवेत्यर्थः, भवति धूमवान् वनेरित्यादौ आङ्गैर्न्यनप्रभव-

(१) इदं दधि दध्न इत्यत्र दधित्वस्य समवायेन साध्यत्वं दध्नः समवायेन  
 हेतुत्वं, द्रव्यत्वव्याप्यव्याप्यजातेः परमाणुवृत्तित्वानभ्युपगमेन परमा-  
 खन्तर्भावेण दधित्वसाध्यकदध्यात्मकचेतोर्व्यभिचारित्वं । न च दधि-  
 त्वस्य समवायेनाप्यवच्छेदकत्वं सम्भवति कथं तत् परित्यज्य सामा-  
 नाधिकरण्यसम्बन्धासुधावनमिति वाच्यम् । दधित्वसामानाधिकरण्य-  
 शून्ये क्षणिके समवायेन दधित्वस्य वर्तमानत्वेनातिप्रसङ्गत्वात्, सामा-  
 नाधिकरण्यसम्बन्धेन दधित्वन्तु न क्षणिकात्मके दधि वर्तमानमतो-  
 ऽनतिप्रसङ्गत्वेनावच्छेदकमिति ।

वदित्वादिकं साध्यतामानाधिकरणवच्छेदकमुपाधिवृत्ति, तथा-  
 च यथाश्रुतनियतेऽपि न व्यभिचारः, सर्वत्र व्यभिचारिणि किञ्चिद्-  
 विशिष्टसाधनयोपाधित्वात् । न च तथापि इदं स्वेहाभाववत् सर्गा-  
 दित्यादिसाध्याव्यापकसाधनत्वे एव व्यभिचारः श्रौतान्यसर्गहो-  
 पाध्यवृत्तिधर्मस्यैव तत्र साध्यसम्बन्धितावच्छेदकत्वादिति वाच्यं ।  
 श्रौतान्यसर्गादेरपि साधनावच्छिन्नसाध्यव्यापकत्वेनोपाधितया श्रौ-  
 तान्यसर्गत्वादेरप्युपाधिवृत्तित्वादित्याहुः । तदसत् तथापि साध-  
 नतावच्छेदकत्वानवच्छेदत्वालाभेन प्रकृतानुपयोगात् व्यभिचारिणि  
 किञ्चिद्विशिष्टसाधनस्यैव उपाधित्वेन साधनतावच्छेदकस्याप्युपाधि-  
 वृत्तित्वादिति ध्येयम् ।

## अतएव चतुष्टयं ।

अतएव साधनतावच्छेदकभिन्नेन येन साधनताभि-  
मते साध्यसम्बन्धोऽवच्छिद्यते स एव तत्र साधने विशेष-  
णसुपाधिरिति वदन्ति । अतएव च तत्र साधनाव्या-  
पत्त्वे सति साधनावच्छेदकसाध्यव्यापकत्वं लक्ष्यं भ्रुवं,  
व्यभिचारिणि साधने एतत् साध्य-तद्भावयोर्विरो-  
धेनावच्छेदकभेदं विना तदुभयसम्बन्धाभावाद्दृश्यं

## अतएव चतुष्टयरहस्यं ।

सोपाधौ साधनतावच्छेदकं न साध्यसम्बन्धितावच्छेदकं इत्यत्र  
प्राभाकरसप्तमिमाह, 'अत एवेति चत एव सोपाधौ साधनता-  
वच्छेदकं न साध्यसम्बन्धितावच्छेदकं अत एवेत्यर्थः, 'साधनता-  
वच्छेदकभिन्नेनेति साधनतावच्छेदकस्य तत् भिन्नमेति कर्णधारयः,  
'भिन्नपदस्य 'साध्यसम्बन्धितावच्छेदकभिन्नपरं, वैशिष्ट्यस्य तृतीयार्थः,  
अन्वयश्चास्य 'साधनताभिमत इत्यनेन, तथाच साध्यसम्बन्धिताव-  
च्छेदकभिन्नेन साधनतावच्छेदेन विशिष्टे साधनताभिमते वर्त्तते  
यः साध्यसम्बन्धः स येन धर्मेणावच्छिद्यते 'स एव विशेषणं' स एव  
धर्मस्तत्र साधने सुपाधिरिति नियमं प्राभाकरा वदन्तीत्यर्थः, अन्यथा  
सोपाधौ साधनतावच्छेदकस्यापि साध्यसम्बन्धितावच्छेदकत्वे च



साध्यसम्बन्धितावच्छेदकमस्ति, तदेव च साधनाव-  
च्छिन्नसाध्यव्यापकं साधनाव्यापकं तत्रोपाधिः, अतएव  
व्यभिचारे चावश्यमुपाधिरिति सङ्गच्छते । अन्यथा  
व्यभिचारादेव तपागमकत्वेन व्यभिचारित्वेन न तदनु-  
मानमप्रयोजकत्वात् । अतएव च तस्य साध्यसम्बन्धि-

व्यभिचारिणि साधनतावच्छेदकं साध्यसम्बन्धितावच्छेदकं तत्र सोपा-  
धावेव तदुक्ते तन्नियमो व्यभिचारी स्यात् तत्र साधनतावच्छेदकस्य  
साध्यसम्बन्धितावच्छेदकभेदत्वविरहादिति भावः । न चार्द्रैन्धनप्रभव-  
वज्रादावेव तदुक्ते तन्नियमो व्यभिचारी तस्य साधननिष्ठसाध्यसा-  
मानाधिकरणव्यधिकरणत्वेन तदनवच्छेदकत्वादिति वाच्यं । सामाना-  
धिकरणत्वसम्बन्धेन अवच्छेदकत्वस्योक्तत्वात् । अवच्छेदकत्वञ्च न खरूप-  
सम्बन्धविशेषः, चार्द्रैन्धनीयवज्रादेः तादृशावच्छेदकत्वे मायाभावेना-  
व्याप्यापत्तेः । नायनतिरिक्तवृत्तित्वं, धूमवान् वक्षेरित्वाद्गौ चार्द्रैन्धन-  
प्रभववक्षिसामानाधिकरणत्वापीन्धनाद्गौ वक्षिणिविष्टधूमसामानाधि-  
करणातिरिक्तवृत्तित्वाद्दशरथापत्तेः, किन्तु अन्धूवृत्तित्वं व्यापकत्व-  
मिति यावत्, इत्यञ्च साध्यसम्बन्धितागवच्छेदकसाधनतावच्छेदका-  
वच्छिन्नसाधननिष्ठसाध्यसम्बन्धितायाः सामानाधिकरणत्वसम्बन्धेन व्याप-  
को यः स एव उपाधिरिति फलितं । प्रत्यचं उद्भूतरूपादित्यत्र  
प्रत्यक्षसामानाधिकरणस्य सुखत्व-रूपत्वाद्गौ सत्त्वात् तत्र महत्त्वसा-  
मानाधिकरणाभावात् महत्त्वव्याप्तिवारणाय निष्ठान्तं साध्यसम्बन्धि-  
ताविशेषणं, तस्यापि साधनावच्छिन्नसाध्यव्यापकत्वेनोपाधित्वात् । न च

तापदेदपरूपसाध्या व्याप्तिः साधनताभिमतं च  
 दास्तीति स्फटिके जवाजुसुजवहुपाधिरसावुच्यते ।  
 लक्षणं साध्य-साधनसम्बन्धव्यापकत्वे सति साधना-  
 व्यापकत्वं, विषयव्याप्तस्तु नोपाधिपदवाच्यः प्रवृत्ति-  
 निमित्ताभावात् । दूषकता च तस्य व्यभिचारोन्नाय-

तथापि अयं चाक्षुषो जातिमत्त्वादित्यत्र पञ्चधर्माद्रव्यत्वावच्छिन्नसाध्य-  
 व्यापकोपाधवुद्भूतरूपेऽव्याप्त्यापत्तिः विषयव्यापकस्योपाधित्वान्भ्युप-  
 गमे च महत्त्वेऽव्याप्तिवारणाय निष्ठाक्तविशेषणवैचर्यं वक्ष्यमाणलक्ष-  
 णस्य धूमवान् वदेरित्यादावार्द्रैर्व्यनादौ द्रव्यं कर्मान्यत्वे सति  
 सत्तात् प्रत्यक्षवुद्भूतरूपात् महानमित्यद्रव्यत्वादित्यादौ गुणान्यत्व-  
 महत्त्वानित्यसम्बन्धत्वादिषु अतिव्याप्त्यापत्तिश्चेति वाच्यं । साधनाव-  
 च्छिन्नसाध्यव्यापकत्वे एतन्नाते उपाधितया उक्तखले उद्भूतरूपस्यानु-  
 पाधित्वात् । न च तथापि सत्ताद्येकव्यक्तिहेतुके द्रव्यं सत्तादित्यादौ  
 साध्यव्याप्ये<sup>(१)</sup> घटत्वादायतिव्याप्तिर्दुर्वारा सामानाधिकरणसम्बन्धेन  
 तथापि साधननिष्ठासाध्यसामानाधिकरणव्यापकत्वादिति वाच्यं । परे-  
 षाप्तेदनुपाधितत्वं अपि तु एतादृशविशिष्टधर्माद्योपाधित्वव्यापकत्व-  
 सेव तेषामभिमतं तथाचोपाधितत्वातिव्याप्तेः व्यभिचारसंपादकत-  
 या<sup>(२)</sup> दोषत्वेऽपि व्यापकतातिप्रवृत्त्यादोषतयातिव्याप्तेरदोषत्वात् । न  
 चैतस्य व्यापकधर्मरूपत्वे साध्यसम्बन्धितानवच्छेदकसाधनतावच्छेदका-

(१) घटत्वस्य उपाधित्वाभावसूचनार्थं साध्यव्याप्ये इति विशेषणम् ।

(२) तथाचासम्भवाव्याप्त्योर्यभिचारसम्पादकतयेति ख०, ग० ।

कतया । न च व्यभिचारोवायकत्वमेवोपाधित्वं  
अप्रयोजकसाध्यव्यापकव्यभिचरिणोरप्युपाधित्वापत्ते-  
रिति ।

इति श्रीमद्भक्तेशोपाध्यायविरचिते तत्त्वचिन्तामणौ  
अनुमानाख्यद्वितीयखण्डे विशेषव्याप्तिः । समाप्तश्च  
व्याप्तिवादः ।

वच्छिन्नेति साधनविशेषणवैयर्थ्यं व्यापकतातिप्रसङ्गस्यादोषतया सङ्केतौ  
साध्यसामानाधिकरण्यावच्छेदकोऽतिप्रसङ्गस्याप्यदोषत्वादिति वाच्यं<sup>(१)</sup> ।  
गुरुधर्मवद्विशिष्टधर्मस्यापि व्यापकत्वेन व्यापके व्यर्थविशेषणताया-  
प्रदोषत्वादिति दिक् । नन्वेतादृशधर्मस्य<sup>(२)</sup> गोत्ववान् अश्वत्वादित्या-  
दिविरुद्धस्य लीयसात्तावत्त्वाद्युपाधावभावात् कथयुपाधित्वमित्यत-  
आह,<sup>(३)</sup> 'अत एवेति यत एव तन्नते तत्र तस्या नोपाधित्वमत एवेत्यर्थः,  
'तत्र' तन्नते, 'साधनावच्छिन्नेति साधनविशिष्टेत्यर्थः, 'ध्रुवं' निर्दीपं,  
अन्यथा साधनविशिष्टसाध्याप्रसिद्ध्या तत्रैव<sup>(४)</sup> च लक्षणमव्याप्तं स्यादिति

(१) साध्यव्यापकतातिव्याप्तेरप्यदोषत्वादित्येति ख-चिह्नितपुस्तकपाठः, प-  
रन्तेतादृशपाठे 'साध्यव्यापकतातिव्याप्तेः' इत्यस्य साध्यसामानाधिक-  
रण्यव्यापकतातिव्याप्तेरित्येवार्थः, अतोनासङ्गतिः ।

(२) 'एतादृशधर्मस्य' साधननिष्ठसाध्यसामानाधिकरण्यावच्छेदकत्वस्ये-  
त्यर्थः ।

(३) अत्र साधननिष्ठसाध्यसामानाधिकरण्यास्यैवाप्रसिद्धतया सुतरां सा-  
धननिष्ठसाध्यसामानाधिकरण्यावच्छेदकत्वमप्रसिद्धमिति भावः ।

(४) गोत्ववान् अश्वत्वादित्यादौ विरुद्धस्यैव एवेत्यर्थः ।

भावः । अत्र वक्षिमान् धूमादित्यादौ साध्यादेरुपाधितावारणाय सत्यन्तं, तत्रैव महानसत्वादिवारणाय विभेद्यद्वयं । स श्यामोमिचा-  
तनयत्वादित्यादौ शाकपाकजत्वादावव्याप्तिवारणाय 'साधनावच्छि-  
न्नेति । न चायं चाक्षुषः प्रलेपत्वादित्यादौ पक्षधर्तद्रव्यत्वावच्छिन्न-  
साध्यव्यापके उद्भूतरूपेऽव्याप्तिरिति वाच्यं । साधनावच्छिन्नसाध्य-  
व्यापकत्वैव तन्मते उपाधितया तस्यालक्ष्यत्वात् । द्रव्यं सत्त्वादित्या-  
दौ रूपान्यत्व-गुणान्यत्वादिकञ्च लक्ष्यमेवातो न तत्रातिव्याप्तिः ।

केचित्तु साध्याभावविशिष्टसाधनवदवृत्तेरेव एतन्मते लक्ष्यत्वात्  
अप्यं चाक्षुषोमेधत्वादित्यादौ उद्भूतरूपादौ नाव्याप्तिः, एवञ्च द्रव्यं  
सत्त्वादित्यादौ रूपान्यत्व-गुणान्यत्वादेरपि अलक्ष्यतया तत्रातिव्याप्ति-  
वारणाय 'साधनाव्यापकत्वमिह साध्याभावविशिष्टसाधनव्यापकी-  
भूताभावप्रतियोगित्वं निर्वाच्यं, धूमवान् वक्षोर्द्रव्यं प्रलेपत्वादित्यादौ  
तत्राद्योगोक्तकान्यत्व-सत्त्वादिकञ्च न लक्ष्यं अतो न तत्राव्याप्ति-  
रित्याहुः ।

नन्वेतस्य उपाधिलक्षणत्वे व्यभिचारे चावश्यरुपाधिनिश्चयोऽवङ्गतः  
यत्र व्यभिचारिणि हेतौ एतादृशधर्तौ नास्ति तस्यैव निरुपाधित्वा-  
दित्यत आह, 'व्यभिचारिणीति, 'सङ्गच्छते' इत्यन्तमेकोयम्बः,  
व्यभिचारित्वञ्च साध्य-तदभावसमानाधिकरणत्वं, 'तदुभयसम्बन्धाभा-  
वात्' तदुभयसमानाधिकरणासम्भवात्, 'साध्यसम्बन्धितावच्छेदक-  
मसीति अधिकरणविधया साध्यसम्बन्धितावच्छेदकमसीत्यर्थः,  
'तदेव' साधननिष्ठसाध्यसम्बन्धितावच्छेदकमधिकरणमेव, साधन-  
निष्ठसाध्यसम्बन्धितावच्छेदकत्वरूपेण तादात्म्यसम्बन्धेनेति शेषः ।

‘तत्रोपाधिः’ अन्ततस्तत्रोपाधिः, ननु साध्य-तदभावयोर्विरोधेऽपि तदुभयसामानाधिकरणयोरविरोधात् कथं तत्रावच्छेदकभेदापेक्षेत्यत आह, ‘अन्यथेति साध्य-तदभावसामानाधिकरणयोर्विरोधाभावाद् इत्यर्थः, ‘तत्र’ व्यभिचारिहेतौ, ‘अगमकत्वेन’ अव्याप्यत्वसम्भवेन, ‘व्यभिचारित्वेनेति’ अयं हेतुः सोपाधिर्व्यभिचारित्वादिति व्यभिचारित्वेन हेतुना, उपाध्यनुमानं अप्रयोजकं स्यादनुकूलतर्काभावादित्यर्थः, साध्य-तदभावसामानाधिकरणयोर्विरोधे तु अवच्छेदकविधया विरोधभङ्गनमेवानुकूलतर्कः, साधननिष्ठसाध्यसामानाधिकरण्यावच्छेदकीभूतस्याधिकरणस्यैव तादात्म्यसम्बन्धेन तादृशावच्छेदकत्वरूपेण साध्याधिकरणत्वादिरूपेण सोपाधित्वादिति भावः । सोपाधौ साधनतावच्छेदकस्य न साधननिष्ठसाध्यसम्बन्धितावच्छेदकत्वमित्यत्र प्राभाकरसंवादसुक्ता आचार्यसंवादमाह, ‘अत एवेति यत एव सोपाधौ साधनतावच्छेदकं केवलं न साध्यसम्बन्धितावच्छेदकमत एवेत्यर्थः, ‘तस्य’ समव्याप्तधर्मस्य, ‘साधनाभिमतं च कास्तीति’ साधनताभिमततांशे प्रकारीभूते साधनतावच्छेदके तादात्म्यसम्बन्धेन विशेषणीभूतं भ्रमविषयोभवतीत्यर्थः, ‘इतीति’ इत्यतो हेतोरित्यर्थः, उप समीपस्य आदधाति साक्षात्परम्परया वा खनिष्ठधर्मप्रकारकं भ्रमं जनयतीति उपाधिपदव्युत्पत्त्येति शेषः, ‘स्कटिके ज्वाकुसुमवदिति’ यथा ज्वाकुसुमं स्कटिके खनिष्ठसौहित्यभ्रमजनकतया खनिष्ठसौहित्यप्रकारकसौहिताभेदभ्रमजनकतया वा स्कटिके उपाधिसाधयेत्यर्थः, ‘उपाधिरसावुच्यत इति, ‘असौ’ साध्यसमव्याप्तो धर्मः, उपाधिपदवाच्यत्वेनाचार्यैरुच्यत इत्यर्थः, अन्यथा सोपाधावपि केवल-

साधनतावच्छेदकस्य साध्यसम्बन्धितावच्छेदकत्वे तत्र खनिष्ठायाः साध्यसम्बन्धितावच्छेदकरूपात्मिकाया व्याप्तेस्तादात्म्यसम्बन्धेन साधनतावच्छेदके विशेषणीभूय भ्रमविषयत्वनिवन्धनं साध्यसमव्याप्तधर्म्मस्य उपाधिपदवाच्यताभिधानसम्पन्नं स्यात् तत्सम्बन्धेन तद्वृत्ताविच्छिन्नप्रतियोगिताकाभाववति तत्सम्बन्धेन तद्वृत्ताविच्छिन्नप्रकारकज्ञानस्यैव भ्रमतया साधनतावच्छेदके तादात्म्यसम्बन्धेन उपाधिनिष्ठसाध्यसम्बन्धितावच्छेदकप्रकारकज्ञानस्य भ्रमत्वासम्भवादिति भावः । एतच्च साध्यसम्बन्धितावच्छेदकत्वं सर्वसाधारणमनुगतं खरूपसम्बन्धरूपं तत्तत्पटकमित्यभिधानेन, अन्यथा साधनतावच्छेदकस्य साध्यसम्बन्धितावच्छेदकत्वेऽपि साधनतावच्छेदके उपाधिनिष्ठसाध्यसम्बन्धितावच्छेदकाग्नेदवुद्धेर्यथोक्तभ्रमत्वसम्भवात्, अत एव प्राचार्यैरपि व्याप्त्यन्तरमपराय साध्यसम्बन्धितावच्छेदकरूपवत्तत्तत्पणव्याप्तिरन्तामकत्वमेव योगार्थाऽभिहितः, खरूपसम्बन्धरूपावच्छेदकत्वपटितत्वेन तस्य सर्वतोऽपुनमित्यभिधानादिति ध्येयं । नन्वेवमाचार्य्यनये धूमवान् वद्धेरित्यादौ महानसत्त्वादौ उपाधिब्यवहारः स्यात् योगार्थसत्त्वात् । न च “सर्वे साध्यसमानाधिकरणा इति न्यायेन दृष्टापत्तिरिति वाच्यं । प्राचार्य्यैः साध्यसमव्याप्त्योपाधित्वाभ्युपगमादित्यत आह, ‘खरूपमिति खरूप्यतावच्छेदकमित्यर्थः, तथायोपाधिपदस्य योगरूपत्वात् महानसत्त्वादौ योगार्थसत्त्वेऽपि खरूपभावायोपाधिपदप्रयोगः<sup>(१)</sup> इति भावः। ‘साध्य-साधनेति साध्यव्यापकत्वे सतीत्यर्थः, अन्य-

(१) उपाधिब्यवहार इति ख०, ग० ।

धा गोत्वान् अश्वत्वादित्यादिविरुद्धत्वे सास्त्रावत्त्वादेरुपाधिपदावा-  
 च्यत्वप्रसङ्गात् । न चैवं स श्यामोभिचारतयत्वादित्यत्र ग्राकपाकजला-  
 दावव्याप्तिर्दुर्वारैवेति वाच्यं । आचार्य्यमते साध्यसमव्याप्त्युपाधितया  
 तत्त्वानुपाधित्वात् । ननु तथाप्यत्र विशेष्यदत्तं व्यर्थं तदसत्त्वेऽपि असद्भूतौ  
 साधनव्यापके साध्यव्याप्यत्वस्य योगलभ्यार्थस्याभावादेवातिप्रसङ्गभङ्गात् ।  
 न च सद्भूतौ साध्यसमव्याप्तेऽतिव्याप्तिवारणाय तदावश्यकमिति  
 वाच्यं । तत्र हेतुतावच्छेदकत्वापि साध्यसम्बन्धितावच्छेदकतया  
 खनिष्ठसाध्यसम्बन्धितावच्छेदकरूपव्याप्तिसंक्रामकत्वस्य खनिष्ठतादृश-  
 व्याप्तिप्रकारकहेतुतावच्छेदकभ्रमजनकरूपस्य लघुतयाचार्याभिम-  
 तयोगार्थस्याभावादेवातिप्रसङ्गविरहात् । न च तत्र साध्यव्यभिचारि-  
 हेतन्तरे खनिष्ठतादृशव्याप्तिसंक्रामकत्वसम्भवात् अतिप्रसङ्गसम्भव इति  
 वाच्यं । खनिष्ठतादृशव्याप्त्यभिन्नतया चद्भूततावच्छेदकसंक्रामकत्वं  
 तद्भूततावच्छेदकावच्छिप्ते स उपाधिरिति विवक्षयैव तदतिप्रसङ्गवा-  
 रणसम्भवादिति । मैवं वदित्तान् धूमादित्यादिसद्भूतौ हेतुतावच्छे-  
 दकसम्बन्धभिन्नसम्बन्धेन साध्यसमव्याप्ये वदित्तप्रकारकप्रमाविशेष्यत्वा-  
 दावव्याप्तिवारणाय विशेष्यदत्तस्यावश्यकत्वात् सम्बन्धभेदेन साध्यसम्ब-  
 न्धित्वस्य विभिन्नतया तदवच्छेदकत्वत्वापि विभिन्नत्वेन तत्र निरुक्ता-  
 दृशव्याप्तिसंक्रामकत्वस्य योगार्थस्य सम्भवात् । न च हेतुतावच्छेद-  
 कसम्बन्धेन या खनिष्ठव्याप्तिः तत्संक्रामकत्वविवक्षयैव तत्प्रतीकार-  
 इति वाच्यं । धूमवान्वच्छेरित्यादौ धूमप्रकारकप्रमाविशेष्यत्वादेर-  
 संयत्तापत्तेरिति भावः । नन्वेवं विषमव्याप्तोऽपि तन्मते उपाधिप-  
 दवाच्यः स्यात् ह्यर्थस्य सत्त्वादित्यत्र चाह, 'विषमेति, 'प्रवृत्ति-

निमित्ताभावादिति योगार्थाभावादित्यर्थः, यथा स्थूलपद्मं न पद्म-  
जपद्वाच्यमिति भावः । इदमापाततः यौगिकप्रवृत्तिनिमित्ताभा-  
वेऽपि केवलरूपव्यर्थमादाय उपाधिपद्वाच्यत्वस्य दुर्वारत्वात्, न हि  
योगार्थविशिष्टोरूपव्यर्थः प्रवृत्तिनिमित्तः । न चैवं स्थूलपद्मस्यापि  
पद्मजपद्वाच्यत्वापत्तिरिति वाच्यं । यदि च तद्व्यावर्तकं वैजात्यं  
न रूपव्यर्थावच्छेदकं तदा तस्यापि दुर्वारत्वात् । अतएव प्रामा-  
णिकाः तद्वार्यत्वं तत्र रूपव्यर्थावच्छेदकमामनन्ति । नन्वेवं विषम-  
व्याप्त्युपाधिपदावाच्यत्वे दूषकतापि तस्य न स्यादित्यत आह,  
'दूषकता चेति, 'तस्य' विषमव्याप्तस्य, 'व्यभिचारोन्नायकतयेति  
व्यभिचारित्वसम्बन्धेन तद्वत्तथा साध्यव्यभिचारानुमानसम्भवादित्यर्थः,  
'उपाधितेति उपाधिपद्वाच्यतेत्यर्थः, तादात्म्यसम्बन्धेन तयोरपि  
साध्यव्यभिचारानुमापकत्वादिति भावः । 'अप्रयोजक-साध्यव्यापकव्य-  
भिचारिणोः' अप्रयोजकत्व-साध्यव्यापकव्यभिचारित्वयोरित्यर्थः, इति  
केचित् । न च स्वव्यभिचारित्वेन साध्यव्यभिचारानुमापकत्वमेव  
तथास्तु अप्रयोजकत्वादिकन्तु न तथेति वाच्यं । योगार्थापेक्षया  
तस्य गुरुत्वादिति दिक् ।

इति श्रीमथुरानाथ-तर्कवागीश्वरविरचिते तत्त्वचिन्तामणिरहस्ये  
अनुमानाद्यद्वितीयाखण्डरहस्ये विशेषव्याप्तिरहस्यं, सम्पूर्णं व्याप्तिवा-  
दरहस्यं<sup>(१)</sup> ।

(१) अतएव अनुष्टयरहस्यस्य विशेषव्याप्तिरहस्यान्तर्गतत्वेन आदर्श-  
मुख्येषु पृथङ्निर्देशेऽपि अत्र न पृथङ्निर्देशः अपि तु तदन्तर्गत-  
त्वेनैवेति ।



## अथ व्याप्तिग्रहोपायः ।

सेयं व्याप्तिर्न भूयोदर्शनगत्या दर्शनानां प्रत्येक-  
महेतुत्वात् आशुविनाशिनां क्रमिकाणां मेलकाभा-  
वात् । न च तावद्दर्शनजन्यसंस्कारा इन्द्रियसहकृता  
व्याप्तिधीहेतवः प्रत्यभिज्ञायामिन्द्रियस्य तथात्व-

## अथ व्याप्तिग्रहोपायरहस्यम् ।

व्याप्तिस्वरूपं निरूप्य परमतनिराकरणपूर्वकं स्वमतेन तद्ग्रहो-  
पायमभिधातुं प्रथमं प्राभाकरमतमुपदर्शयति, 'सेचमित्यादिना  
'सैवमित्यन्तेन, 'सा' अनुमितिकारणीभूतज्ञानविषयीभूता, 'इयं'  
अनुपदनिरुक्ता, तथाच भूयोदर्शनं न तदेतद्व्याप्तिप्रत्यचे कारणमि-  
त्यर्थः, न तु सेचं व्याप्तिर्न भूयोदर्शनजन्यप्रत्यचविषय इत्यर्थः,  
प्राभाकरनये उपनीतमानस्य विशिष्टबुद्धौ विशेषणज्ञानहेतुत्वस्य  
ज्ञानभ्युपगमेन ज्ञानस्य स्वप्रकाशतया ज्ञानप्रत्यचं प्रति ज्ञानत्वेन  
हेतुत्वानभ्युपगमेन तादृशप्रत्यचाप्रसिद्ध्या प्रतिचोग्यप्रसिद्धेः, विशेष-  
णतावच्छेदकप्रकारकज्ञानविधया तज्जन्यत्वमादाय प्रसिद्धाभिधाने  
सहकारविशिष्टवैशिष्ट्यवोधात्मकप्रत्यचमादाय बाधापत्तेः । न च  
प्राभाकरनये सद्दर्शनस्य व्याप्तिग्राहकतया भूयोदर्शनमपि व्याप्ति-  
ग्राहकमेव भूयोदर्शनस्य सद्दर्शनानतिरिक्तत्वादिति तवापि बाधो-  
दुर्वार इति वाच्यं । प्राभाकरनये सद्दर्शनस्यापि व्याप्त्यग्राहकत्वा-

द्वयनादिति वाच्यं । समानविषये स्वरणे प्रत्यभि-  
ज्ञाने च संस्कारोहेतुरतः कथं संस्कारेण व्याप्तिज्ञानं  
जन्येत, अन्यथातिप्रसङ्गः । किञ्च सम्बन्धभूयोदर्शनं

इति । न चैवं “तस्मात् सत्तद्दर्शनगम्या सेत्युपसंहारविरोध इति  
वाच्यं । तत्र हि ‘सत्तद्दर्शनगम्यत्वं न सत्तद्दर्शनजन्यप्रत्यक्षविषयत्वं  
अपि तु निखिलसाध्य-साधनसम्बन्धग्रहविषयत्वमिति तत्रैव स्फुटी-  
भविव्यति इति भावः । भूयोदर्शनानां साध्य-साधनग्रहचारदर्शनत्वेन  
जनकत्वं, भूयत्त्वविशेषितेन वा, नाद्य इत्याह, ‘दर्शनानामिति,  
‘अहेतुत्वादिति फलानुपधायकत्वादित्यर्थः, तथाचान्वयविचार-  
इति भावः । नान्य इत्याह, ‘आशुविनाशिनामिति तृतीयक्षण-  
वृत्तिध्वंसप्रतियोगिनमित्यर्थः, ‘क्रमिकाणां’ विभिन्नसमयोत्पत्ति-  
कानां, ‘सैलकाभावादिति एकक्षणवृत्तिकत्वाभावादित्यर्थः, तथाच  
यतिरेकव्यभिचारः, सर्वत्रापेक्षावृत्त्यात्मकभूयोदर्शने मानाभावा-  
दिति भावः । क्रमिकाणां घट-पटादीनां मिलनमस्तीत्यतः ‘आशु-  
विनाशिनमित्युक्तं, आशुविनाशिनामपि युगपदुत्पन्नानां विभि-  
न्नपुरुषौषधानादीनां मिलनमस्तीत्यतः ‘क्रमिकाणामित्युक्तं, आशु-  
विनाशिनोः क्रमिकयोरपि ज्ञानद्वयोर्मिलनमस्तीत्यतोवडवचनं  
इति । इत्यञ्च भूयोदर्शनं न व्याप्तिप्रत्यक्षमात्रवृत्तिधर्मावच्छिन्न-  
कार्यताप्रतियोगिककारणताश्रयः तादृशकारणतावच्छेदकरूपशून्य-  
त्वादिति फलितं । विशेषणतावच्छेदकप्रकारकज्ञानस्य कार्यता तु  
न तादृशधर्मावच्छिन्ना तादृशकार्यताप्रतियोगिककारणत्वञ्च विषय-

भूयःसु स्थानेषु भूयसां वा दर्शनं भूयांसि वा दर्शनानि न यथा एकत्र रूप-रसयोर्द्रव्यत्व-घटत्वयोश्च व्याप्तिग्रहात् एकैव धारावाहिके तद्गीप्रसङ्गात्

विधया व्याप्तावेव प्रसिद्धं । न च साध्याविशेषः कारणतावच्छेदक-धर्मवत्त्वस्यैव कारणतारूपत्वादिति वाच्यं । अन्योन्याभावात्यन्ताभाव-भेदेन<sup>(१)</sup> भेदादिति श्रेयं । अत्र स्वरूपासिद्धिमाशङ्कते, 'न चेति, 'तावद्दर्शनेति भूयसां दर्शनानां जन्या भूयःसंस्कारा इत्यर्थः । तथाच भूयस्त्वविशिष्टसहचारदर्शनत्वमेव जनकतावच्छेदकं संस्कारश्च व्यापार इति भावः । 'तथात्वकल्पनादिति संस्कारसहकारित्वकल्पनादित्यर्थः । 'समानविषयइति तद्विशेष्यक-तत्प्रकारकस्वरूपे तद्विशेष्यक-तत्प्रकारकः संस्कारो हेतुः तद्विशेष्यक-तत्प्रकारकप्रत्यभिज्ञाने तद्विशेष्यक-तत्प्रकारकसंस्कारो हेतुरित्यर्थः, यो यत्र विशिष्य-पूर्व-मवगतः स एव तत्र संस्कारवशात् प्रत्यभिज्ञाने भासत इति नियमात्, अत एव केवलदण्डादिगोचरसंस्कारादयं दण्डीत्यादि-प्रत्यभिज्ञानं न जायत इति मीमांसकाभिप्रायः, एतच्चोपनीतभान-मभ्युपेत्य । 'व्याप्तिज्ञानमिति, सहचारगोचरसंस्कारस्य धूमादिवि-शेष्यक-स्वरूपापकसाध्यसामानाधिकरण्यात्प्रकारकत्वाभावा-दिति भावः । 'अन्येति एकविषयकसंस्कारस्यापि अन्यविषयक-ज्ञानजनकत्वे इत्यर्थः, 'अतिप्रसङ्गः' घटादिगोचरसंस्कारादपि

(१) तथाच साध्यघटकनञ्पदस्य अन्योन्याभावपरत्वं हेतुघटकशून्य-पदस्यात्यन्ताभावपरत्वमतः साध्य-हेत्वोर्वैषम्यं ।

भूयस्त्वस्य पि-चतुरादित्वेनाननुगमात् । अपि च  
पार्थिवत्व-लौहयेवत्वाद्दौ शतशो दर्शनेऽपि व्याप्त्य-  
ग्रहात्, तर्कसहस्रतं तथेति चेत्, तर्हि सहचारदर्शन-

पटादिगोचरज्ञानजननप्रसङ्ग इत्यर्थः । किं वज्जना सम्बन्धभूयो-  
दर्शनमपि दुर्निरूपनित्यभिप्रायेण पृच्छति, 'किञ्चेति, 'किंशब्दः  
प्रश्ने, 'चकारो वार्थे, यत्सम्बन्धभूयोदर्शनं संस्कारद्वारा हेतुश्चते  
तदेव सम्बन्धभूयोदर्शनं वा किमित्यर्थः । ननु सम्बन्धभूयोदर्शन-  
पदेन भूयःसु स्थानेषु साध्य-साधनसम्बन्धभूयोदर्शनं, भूयसां वा  
साध्य-साधनानां सम्बन्धभूयोदर्शनं, भूयसांश्च वा साध्य-साधनयोः  
सम्बन्धदर्शनानीति वक्तव्यमित्याह, 'भूयःस्यिति, 'दर्शनं' भूयःसा-  
ध्य-साधनसहचारदर्शनं, तथाचाधिकरणदर्शनयोर्भूयसांमिति  
भावः । 'भूयसां वेति भूयसां साध्य-साधनानां भूयःसहचारदर्शन-  
मित्यर्थः, तथाच साध्य-साधन-दर्शनानां त्रयाणां भूयसांमित्यर्थः,  
'भूयसांश्चेति, 'दर्शनानि' साध्य-साधनसम्बन्धदर्शनानि, तथाच दर्श-  
नमात्रस्य भूयसांमित्यर्थः, 'न तथा' न व्याप्तिग्राहकं, आद्ये 'एवेति  
एकचक्षितरूप-रसयोरित्यर्थः, एतद्घटवृत्तिरूपवान् एतद्घटवृत्ति-  
रपादित्येति भावः, न त्वेतरूपवान् एतद्द्रवादित्यत्र, तथा सति  
द्वितीयेऽप्यत्रैव दोषसंशये स्वतन्त्रानुधावनप्रथास्य व्यर्थतापत्तेरिति  
ध्येयं । न च भूयःस्थानेषु व्यतिरेकसहचारदर्शनं तथापि सम्भवतीति  
वाच्यं । तदभावेऽपि व्याप्त्यनुभवात् । द्वितीये आह, 'द्रव्यत्वेति, एकच

सहकृतः स एव व्याप्तिग्राहकोऽस्तु आवश्यकत्वात्  
किं भूयोदर्शनेन । न च तेन विना तर्क एव नावत-  
रति, प्रथमदर्शने व्युत्पन्नस्य तर्कसम्भवात् । न चैवमे-

घट एव पाकजरूप-रसानां भूयस्त्वादुक्तखलमुपेक्षितं । तृतीये वाह,  
'एकत्रैवेति एकस्मिन्नेव महानसे धारावाहिकसहचारज्ञाने इत्यर्थः,  
संस्कारद्वारा भूयसां दर्शनानां सत्त्वादिति भावः । कदाचिद्वेष्टा-  
पत्तिसम्भवादाह, 'भूयस्त्वस्येति, 'त्रि-चतुरादित्वेनेति त्रिव-चतुश्चा-  
दिरूपत्वेनेत्यर्थः । ननु बद्धत्वमेव भूयस्त्वं त्रिवमेव वा चतुरादिद-  
र्शनेऽपि त्रिकदर्शनसत्त्वेन व्यभिचाराभावादित्यत आह, 'अपि चेति,  
तथाचान्वयव्यभिचार इति भावः । 'तर्कसहकृतमिति तर्कसहकृतं  
भूयोदर्शनं संस्कारद्वारा व्यभिचारज्ञानं निवर्त्य व्याप्तिधीहेतु-  
रित्यर्थः, 'स एव' तर्क एव, 'भूयोदर्शनेनेति भूयस्त्वघटितकारण-  
तावच्छेदकेनेत्यर्थः । भूयोदर्शनस्य तर्कप्रयोजकत्वमाशङ्क्य निराक-  
रोति, 'न चेति, 'व्युत्पन्नस्येति शब्दादितस्तर्कमूलोभूतापाद्यापादक-  
व्याप्तिज्ञानवत् इत्यर्थः । इष्टापत्तिमाशङ्कते, 'न चैवमेवेति व्यभि-  
चारादर्शन-सहचारदर्शनसहकृतः तर्क एव व्याप्तिग्राहकोऽस्त्वित्यर्थः ।  
शङ्कते, 'जातमात्रस्येति स्तनपानं सुखसाधनं तदनन्यथासिद्धान्वय-  
व्यतिरेकानुविधायित्वात् यत् यदनन्यथासिद्धान्वय-व्यतिरेकानुवि-  
धायि तत् तस्यासाधनमितीष्टसाधनतानुमितिजनकव्याप्तिज्ञानमि-  
त्यर्थः, 'तर्कं विनेवेति 'द्वयशब्दः सादृश्यार्थः, तथाच तत्तद्व्याप्तिज्ञानं  
यथा तर्कं विना तथा सर्वत्रैव मूलोभूतयत्किञ्चित्तर्कजनकौभूत-

वास्तु, तर्कस्य व्याप्तिग्रहमूलकत्वेनानवस्थानात् । जात-  
मात्रस्य प्रवृत्ति-निवृत्तिहेत्वनुमितिजनकव्याप्तिज्ञानं  
तर्कं विनेवातो नानवस्थेति चेत्, (१) तर्हि व्यभिचारात्

व्याप्तिप्रत्यक्षं तर्कं विनेवातो नानवस्था इत्यर्थः । यथाश्रुते जातमात्र-  
वालक्रीयव्याप्तिस्वरणस्य विना तर्कस्युत्पादेऽपि तन्मूलभूतजन्मा-  
न्तरीयव्याप्त्यनुभवस्य तर्कसापेक्षत्वात् अनवस्थातादवस्थ्यात् अत्रानव-  
स्थापरीहारेऽपि वज्रि-धूमादिव्याप्तिग्रहखले (१) अनवस्थातादवस्थ्यात्

(१) 'विनेवेत्यत्र 'विनेवेति कस्यचित् मूलपुरुषकस्य पाठः ।

(२) वज्रिमान् धूमादित्वादौ व्याप्तिग्रहखले इति ख० । 'सेयं व्याप्ति-  
र्नभूयोदर्शनगम्येत्यादिमूलं मथुरानाथेन यद्व्याख्यातं तत्रेदं विवेचनीयं ।  
सेयं व्याप्तिर्न भूयोदर्शनगम्या इति भूयोदर्शनं न तदेतद्व्याप्तिप्रत्यक्षे  
कारणमित्यर्थः, न तु सेयं व्याप्तिर्न भूयोदर्शनजन्यप्रत्यक्षविषय इत्यर्थः विश्ले-  
षणतावच्छेदकप्रकारकज्ञानविधया तज्जन्यत्वमादाय प्रसिद्धिभिधाने सह-  
चारविशिष्टवैशिष्ट्यबोधात्मकप्रत्यक्षमादाय बाधापत्तेरिति मथुरानाथः ।  
ननु भूयोदर्शनजन्यप्रत्यक्षविषयो न इत्यत्र विषयत्वपदेन मुख्यविश्लेष्य-  
त्वमेव वक्तव्यं तथाच व्याप्तौ धर्म्मिणि तादृशप्रत्यक्षीयमुख्यविश्लेष्यत्वाभाव-  
सत्त्वात् कथं बाधापत्तिरित्युक्तं, मुख्यत्वस्य प्रकारत्वान्यविषयत्वं,  
तथाच पर्वतादौ तत्प्रसिद्धिः । न च वज्रिसमानाधिकरणधूमवान् पर्वतः  
धूमव्यापकवज्रिसमानाधिकरणश्च धूमवृत्ति इति समूहात्मन्यनतादृश-  
बोधात्मकप्रत्यक्षमादाय बाधापत्तिसङ्गतिः धूमव्यापकवज्रिसमानाधिक-  
रणरूपव्याप्तेर्धूमवृत्तित्वांशे मुख्यविश्लेष्यविधयैव भानात् इति वाच्यं ।  
भूयोदर्शनजन्यप्रत्यक्षविषयो न इत्यनेन भूयोदर्शनजन्यप्रत्यक्षीयमुख्यविश्ले

व्यतानिरूपितप्रकारत्वाभावस्य विवक्षणीयत्वात् तथाच तादृशसमूहास-  
 म्बनप्रत्यक्षीयमुख्यविशेष्यतानिरूपितप्रकारत्वं धूमनिष्ठं धूमवृत्तित्वनिष्ठञ्च  
 तदभावस्य व्याप्तौ सत्त्वात् न बाधः । न च तथापि वङ्गिसमानाधिकरण-  
 धूमवान् पर्वतः धूमव्यापकवङ्गिसमानाधिकरणञ्च धूम इति समूहासम्बन्-  
 मादाय धूमनिष्ठमुख्यविशेष्यतानिरूपितप्रकारत्वस्य सामानाधिकरण्येऽपि  
 सत्त्वाद्बाधापत्तेर्नासङ्गतिरिति वाच्यं । भूयोदर्शनजन्यतावच्छेदकीभूतमुख्यवि-  
 शेष्यतानिरूपितप्रकारत्वाभावस्य न भूयोदर्शनजन्यप्रत्यक्षविषयत्वमित्यनेन  
 विवक्षितत्वात् तथाच भूयोदर्शनजन्यतावच्छेदकं वङ्गिसमानाधिकरण-  
 विशिष्टधूमप्रकारकबुद्धित्वं निरूपकत्वसम्बन्धेन सङ्घचारविशिष्टधूमनिष्ठप्र-  
 कारतापि ज्ञानजन्यतावच्छेदिका जन्यतावच्छेदकतायाः पर्यायविवक्षणात्,  
 एवञ्च भूयोदर्शनजन्यतावच्छेदकमुख्यविशेष्यतानिरूपितप्रकारता धूमादे-  
 रेव तदभावस्य व्याप्तौ सत्त्वात् न बाधः इति चेत् । न । सङ्घचारविशिष्टप्रका-  
 रकबुद्धित्वं न सङ्घचारप्रकारकज्ञानजन्यतावच्छेदकं पर्वते धूमः धूमे च  
 वङ्गिसमानाधिकरण्यमिति विशेष्ये विशेषणमिति रीत्या जायमानस्य  
 वङ्गिसमानाधिकरण्यधूमवान् पर्वत इति प्रत्यक्षस्य धूमधर्मिकसामानाधि-  
 करणप्रकारकज्ञानं विनापि उत्पादेन व्यभिचारापत्तेः, किन्तु वङ्गिसमाधि-  
 करणधूमवान् पर्वत इति विशिष्टवैशिष्ट्यावगाहिवुद्धौ धूमविशेषणताप-  
 न्नवङ्गिसमानाधिकरण्यमपि स्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकसंयोगवत्तासम्बन्धेन  
 पर्वतांशे भासते उक्तविशेष्ये विशेषणमिति रीत्या बोधे च तादृशसम्बन्धेन  
 सामानाधिकरण्यं न भासते इति धूमविशेषणतापन्नसामानाधिकरण्यनि-  
 स्सोक्तपरम्परासम्बन्धावच्छिन्नप्रकारताकबुद्धित्वमेव जन्यतावच्छेदकं तथाच  
 न व्यभिचारः, एवञ्च भूयोदर्शनजन्यतावच्छेदिका उक्तपरम्परासम्बन्धावच्छि-  
 न्नधूमनिरूपितविशेषणतापन्नसामानाधिकरण्यनिष्ठप्रकारता सा च पर्वत-  
 निष्ठमुख्यविशेष्यतानिरूपितापि इति तादृशप्रकारत्वाभावस्य व्याप्तावसत्त्वेन  
 बाधः सुखिर एव ।

इत्यञ्च भूयोदर्शनं न व्याप्तिप्रत्यक्षमात्रवृत्तिधर्मावच्छिन्नकार्यतानि-

रूपितकारणताश्रयः तादृशकारणतावच्छेदकरूपशून्यत्वात् इति फलितं  
 इति मथुरानाथः । न च व्याप्तिप्रत्यक्षमात्रवृत्तिकार्यतानिरूपितकार-  
 णतानाश्रयस्तादृशकार्यतानिरूपितकारणतावच्छेदकरूपशून्यत्वादित्यस्यैव  
 सम्यक्त्वे हेतु-साध्ययोर्धर्मावच्छिन्नत्वदलं विफलमिति वाच्यं । सहचा-  
 रविशिष्टवैशिष्ट्यावगाहिवुद्धित्वावच्छिन्नकार्यताया नानात्वे धूमव्यापकवङ्गि-  
 समानाधिकरणधूमवान् इति सहचारविशिष्टवैशिष्ट्यावगाहिवोधात्मक-  
 व्याप्तिप्रत्यक्षमात्रवृत्तिकार्यतानिरूपितकारणतावच्छेदकरूपस्य पक्षवृत्ति-  
 तया तादृशकार्यतानिरूपितकारणतावच्छेदकरूपशून्यत्वस्य पक्षोऽसत्त्वात्  
 खरुपासिद्ध्यापत्तेः अतो हेत्वंग्रे धर्मावच्छिन्नत्वदलं सफलं, साध्यांग्रे  
 च तादृशसहचारविशिष्टवैशिष्ट्यावगाहिवोधात्मकव्याप्तिप्रत्यक्षमात्रवृत्ति-  
 कार्यतानिरूपितकारणताश्रयभिन्नत्वस्य पक्षोऽसत्त्वाद्वाधापत्तिरतो धर्मा-  
 वच्छिन्नत्वदलं निवेशनीयं । धर्मावच्छिन्नत्वदलनिवेशे तु तादृशधर्म-  
 पदेन व्याप्तिप्रत्यक्षत्वमेव लभ्यते न तु सहचारविशिष्टवैशिष्ट्यावगा-  
 दिवुद्धित्वं । तस्य व्याप्तिप्रत्यक्षेतरत् यत् वङ्गिसमानाधिकरणधूमवान्  
 इत्याकारकप्रत्यक्षादिकं तत्र वृत्तित्वात् । न च मात्रपदनिवेशो विफल-  
 इति वाच्यं । सहचारविशिष्टवैशिष्ट्यावगाहिवोधात्मकव्याप्तिप्रत्यक्षवृत्ति  
 यत् सहचारविशिष्टवैशिष्ट्यावगाहिवुद्धित्वं तद्धर्मावच्छिन्नकार्यतानिरूप-  
 पितकारणतावच्छेदकरूपशून्यत्वस्य पक्षावृत्तित्वेन खरुपासिद्धेस्तादवस्थ्यात्  
 साध्यांग्रे मात्रपदानिवेशे तु तादृशविशिष्टवैशिष्ट्यावगाहिवुद्धित्वावच्छि-  
 न्नकार्यतानिरूपितकारणताश्रयभिन्नत्वस्य पक्षावृत्तित्वेन वाधापत्तिरत उभ-  
 यत्रैव मात्रपदमवश्यं निवेशनीयं, तथाच सहचारविशिष्टवैशिष्ट्यावगाहिवु-  
 द्धित्वन्तु न तथा तस्य व्याप्तिप्रत्यक्षेतरत् यत् वङ्गिसमानाधिकरणधूमवान्  
 इत्यादि प्रत्यक्षादिकं तत्र वृत्तित्वात् । न चैवमपि हेतु-साध्ययोः व्याप्तिपदं  
 व्यर्थमिति वाच्यं । मीमांसकनये ज्ञानस्य स्वप्रकाशतया धूमव्यापकवङ्गिस-  
 मानाधिकरणधूमवान् पर्वतः वङ्गिसमानाधिकरणत्वेन धूममहं जानामि  
 इत्याकारकसमूहलम्बनप्रत्यक्षमादाय सहचारविशिष्टवैशिष्ट्यावगाहिवु-



द्वित्वस्य प्रत्यक्षमात्रवृत्तितया तद्धर्मावच्छिन्नकार्यतानिरूपितकारणता-  
वच्छेदकरूपशून्यत्वस्य पक्षावृत्तित्वेन स्वरूपासिद्ध्यापत्तेः, साध्यांशे तद-  
निवेशे चोक्तरीत्या तादृशधर्मपदेन सहचारविशिष्टवैशिष्ट्यावगाहिवृद्धि-  
त्वस्य ग्राह्यतया तद्धर्मावच्छिन्नकार्यतानिरूपितकारणताश्रयभिनत्वस्य  
पक्षावृत्तितया बाधापत्तिरिति व्याप्तिपदनिवेशः सफल इति यत्प्रकृतो-  
ऽभिप्रायः । अत्रेयमापत्तिः । भूयोदर्शनं न तदेतद्व्याप्तिप्रत्यक्षे कारणमि-  
त्युक्तौ यथाश्रुतं कार्यतावच्छेदकविधया व्याप्तिप्रत्यक्षत्वमेव भासते तथाच  
व्याप्तिप्रत्यक्षत्वावच्छिन्नकार्यतानिरूपितकारणतानाश्रयत्वस्य साध्यत्वे जरनै-  
याधिकमतनिराससम्भवात् कथं व्याप्तिप्रत्यक्षमात्रवृत्तिधर्मावच्छिन्नत्वेन  
कार्यता विशेषणीयेति । अत्र केचित् व्याप्तिप्रत्यक्षमात्रवृत्तिधर्मावच्छिन्ने-  
त्यादिना व्याप्तिप्रत्यक्षवृत्तिवैजात्यावच्छिन्नकार्यतायाः परिग्रहः तथाच  
व्याप्तिप्रत्यक्षवृत्तिवैजात्यावच्छिन्नकार्यतानिरूपितकारणतानाश्रयत्वस्यापि  
संग्रह इति प्राज्ञः ।

अपरे तु व्याप्तिप्रत्यक्षत्वं व्याप्तिविषयकत्वविशिष्टप्रत्यक्षत्वं तथाच व्याप्ति-  
प्रत्यक्षत्वावच्छिन्नकार्यतानिरूपितकारणतानाश्रयत्वस्य साध्यत्वे प्रत्यक्षत्व-  
विशिष्टव्याप्तिविषयकत्वावच्छिन्नं प्रति भूयोदर्शनं हेतुरिति जरनैयायि-  
कमतस्य निराकरणायोगात् । व्याप्तिप्रत्यक्षमात्रवृत्तिधर्मावच्छिन्नकार्य-  
तानिरूपितकारणतानिवेशे तु प्रत्यक्षत्वविशिष्टव्याप्तिविषयकत्वस्यापि  
प्रत्यक्षमात्रवृत्तितया तदवच्छिन्नकार्यतानिरूपितकारणताश्रयभिनत्वमपि  
सम्भत इति स्थितं ।

नव्यास्तु व्याप्तिवस्त्यैकस्याभावात् अत्र सा इत्यनेन व्यापकसामानाधिक-  
रणरूपव्याप्तिवत्त्वेन निवेशे तस्मात् सन्नदर्शनगम्या सा इत्युपसंहारेऽपि  
सा इत्यनेन तस्यैव परामर्शेन तथा ह्युपाध्यभावो व्याप्तिरित्यनेन उपाध्य-  
भावरूपव्याप्तेः सन्नदर्शनगम्यत्वोपादानविरोधः, उपाध्यभावरूपव्याप्तिवत्त्वेन  
प्रवेशे नन्वनौपाधिकत्वज्ञानं व्याप्तिज्ञानहेतुरिति मूलविरोधः उपाध्यभा-  
वरूपव्याप्तिप्रत्यक्षं प्रति उपाध्यभावज्ञानकारणत्वस्य केनाप्यनङ्गीकारात्,

किन्तु अनुमितिजनकतावच्छेदकतापर्यायधिकरणतया व्याप्तेः प्रवेशः, एवं सति उपक्रमोपसंहारस्य एकधर्मावच्छिन्नपक्षकत्वनियमोऽपि सङ्गच्छते । तथाच तस्मात् सद्दर्शनगम्या सा इत्यत्र सा इत्यनेन अनुमितिजनकतावच्छेदकतापर्यायधिकरणत्वेन मीमांशकाभिमतयाः उपाध्यभावरूपव्याप्तेः परामर्शात्तथाद्युपाध्यभावोव्याप्तिरिति विवरणमपि सङ्गच्छते, सेयं व्याप्तिर्न भूयोदर्शनगम्येत्यत्र सा इत्यनेन अनुमितिजनकतावच्छेदकतापर्यायधिकरणत्वरूपेण व्यापकसामानाधिकरण्यव्याप्तेः परामर्शात् नन्वनौपाधिकत्वज्ञानं व्याप्तिज्ञाने हेतुरिति मूलमपि सङ्गच्छते । एवञ्चेद्दानुमितिजनकतावच्छेदकतापर्यायधिकरणविषयकप्रत्यक्षत्वावच्छिन्नकार्यतानिरूपितकारणतानामश्रयत्वस्य साध्यत्वं वक्तव्यं तच्च न सम्भवति जरन्नैयाधिकमतेऽपि व्यापकसामानाधिकरण्यविषयकप्रत्यक्षत्वमेव भूयोदर्शनजन्यतावच्छेदकं न त्वनुमितिजनकतावच्छेदकतापर्यायधिकरणविषयकप्रत्यक्षत्वं प्रमेयत्वादिना व्याप्तिग्रहे व्यभिचारापत्तेः भूयोदर्शनपदार्थस्य साध्य-साधनभेदेन भिन्नतया चाबोक्तधर्मिकाव्याप्तिग्रहस्यापि अनुमितिजनकतावच्छेदकतापर्यायधिकरणविषयकतया तत्र वङ्गि-धूमसहचारग्रहात्मकभूयोदर्शनविरहेण व्यभिचारापत्तेश्च, तथाच अनुमितिजनकतावच्छेदकतापर्यायधिकरणविषयकप्रत्यक्षत्वावच्छिन्नकार्यतानिरूपितकारणताप्रवेशेऽप्रसिद्धिः अनुमितिजनकतावच्छेदकतापर्यायधिकरणविषयकप्रत्यक्षमात्रवृत्तित्वप्रवेशे तु व्यापकसामानाधिकरण्यविषयकप्रत्यक्षत्वस्य तादृशप्रत्यक्षमात्रवृत्तित्वान्नाप्रसिद्धिरित्यभिप्रायेणैव मात्रवृत्तित्वज्ञं इति भावः । ननु व्याप्तिप्रत्यक्षत्वं व्याप्तिविषयकत्वविशिष्टप्रत्यक्षत्वं तस्य च प्रत्यक्षत्वानतिरिक्ततया घटप्रत्यक्षेऽपि वृत्तित्वेन व्याप्तिप्रत्यक्षमात्रवृत्तित्वाभावादेव व्याप्तिप्रत्यक्षमात्रवृत्तिधर्मावच्छिन्नकार्यतानिरूपितकारणत्वाभावसाधने प्रतियोग्यप्रसिद्ध्या इदमसङ्गतं । एवमुत्तरं । व्याप्तिविषयकत्वविशिष्टप्रत्यक्षत्वावच्छिन्नभेदव्यापकभेदप्रतियोगितावच्छेदकं व्याप्तिप्रत्यक्षमात्रवृत्तिधर्मपदेन विवक्षितमतो न काप्यनुपपत्तिरिति ।

तादृशकार्यतानिरूपितकारणत्वञ्च विषयविधया व्याप्तावेव प्रसिद्धमिति मथुरानाथः । इदञ्च विषयतासम्बन्धेन प्रत्यक्षत्वावच्छिन्नं प्रति तादात्म्येन व्याप्तिर्हंतुरित्यभिप्रायेण । ननु जरन्नैयायिकमते समवायसम्बन्धेन व्याप्ति-प्रत्यक्षत्वावच्छिन्नं प्रति समवायसम्बन्धेन भूयोदर्शनस्य हेतुत्वात् भूयोदर्शनधर्मिकतत्सम्बन्धावच्छिन्नकारणत्वाभावसाधनद्वारा तन्मतेनिरासमिच्छता नीमांसकेन कथं तादात्म्यसम्बन्धावच्छिन्नस्य व्याप्तिप्रत्यक्षमात्रवृत्तिधर्मावच्छिन्नकार्यतानिरूपितकारणत्वस्य व्याप्तौ प्रसिद्धिः कृता । न चैवं तादात्म्यसम्बन्धावच्छिन्नकारणत्वाभाव एव साध्य इति वाच्यं । तादात्म्यसम्बन्धावच्छिन्नकारणत्वाभावस्य जरन्नैयायिकमतेऽपि भूयोदर्शने सत्त्वात् सिद्धसाधनापत्तेः । न च व्याप्तिप्रत्यक्षमात्रवृत्तिधर्मावच्छिन्नकार्यतानिरूपितकारणतानाश्रय इत्यनेन सम्बन्धसामान्येन कारणत्वसामान्यभाव एव साध्यस्तथाच यत्किञ्चित्सम्बन्धेन यत्किञ्चित्कारणताप्रसिद्धिसम्भवात् तत्सम्भवः, नापि सिद्धसाधनावतारः जरन्नैयायिकेन सम्बन्धसामान्येन कारणत्वसामान्याभावस्य साधयितुमशक्यत्वात् तन्मते भूयोदर्शने यत्किञ्चित्समवायसम्बन्धेन यत्किञ्चित्कारणतायाः सत्त्वात् इति वाच्यं । कारणतायाः कारणतावच्छेदकस्वरूपत्वमवश्यं वक्तव्यं अन्यथा हेतु-साध्ययोर्विभिन्नतया साध्याविशेषभिया अन्यन्ताभावान्योन्याभावभेदेन भिन्नत्वमिति यदुक्तं मथुरानाथेन तद्विफलं स्यात्, तथाच तादृशकारणत्वञ्च कार्यव्यवहितप्राक्क्षणावच्छेदेन कार्यतावच्छेदकसम्बन्धेन कार्याधिकरणवृत्त्यभावीयकारणतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगितानवच्छेदकधर्मवत्त्वं तस्य च सम्बन्धभेदेन भिन्नतया विषयतासम्बन्धेन व्याप्तिप्रत्यक्षाधिकरणवृत्तिभेदीयतादात्म्यसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगितानवच्छेदकधर्मवत्त्वं जरन्नैयायिकमते तु समवायसम्बन्धेन व्याप्तिप्रत्यक्षाधिकरणवृत्त्यन्ताभावीयसमवायसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगितानवच्छेदकधर्मवत्त्वरूपं तथाचैतदुभयसाधारणानुगतकारणतात्वाप्रसिद्धिः । अत्रेदमुत्तरं । निरक्तोभयरूपकारणतायां अन्यतरत्वमनुगतीकृत्य सम्बन्धसामान्येन अन्यथासिद्ध्यनिरूपकतादृशान्यतरत्वावच्छिन्न-

प्रतियोगिताकान्यतरसामान्याभाव एव साध्यते, तथाचान्यतरस्य यत्-  
किञ्चित्तादात्म्यसम्बन्धावच्छिन्नत्वसम्भवेनापि तत्सम्भव इति, नापि सिद्ध-  
साधनमिति जरन्नैवाधिकेन एतदन्यतरत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावः  
साध्यितुं न शक्यते भूयोदर्शने तादृशान्यतरीभूतत्वस्य समवायसम्बन्धाव-  
च्छिन्नकारणसत्त्वादिति ध्येयं ।

तादृशकारणत्वञ्च विषयतया व्याप्तावेव प्रसिद्धमिति, इदन्तु विषयता-  
सम्बन्धेन व्याप्तिप्रत्यक्षं प्रति तादात्म्येन व्याप्तिहेतुरित्यभिप्रायेणोक्तं । ननु  
धूमव्यापकवह्निसमानाधिकरणो धूम इत्याकारकव्याप्तिप्रत्यक्षस्य व्याप्तिघट-  
कप्रत्येकपदार्थधूमादावपि विषयतासम्बन्धेन जायमानतया तत्र तादात्म्येन  
व्याप्तेरभावाद्यभिचारापत्तिः तस्याद्याप्तिनिष्ठविषयतासम्बन्धेन व्याप्तिप्रत्यक्ष-  
त्वावच्छिन्नं प्रति तादात्म्येन व्याप्तेहेतुत्वं वाच्यं, तथाच तादृशधूमादौ तादृश-  
सम्बन्धेन व्याप्तियद्दानुत्पादान्न व्यभिचारः, एवं सति कार्य-कारणभावे  
व्याप्तिप्रत्यक्षमित्यत्र व्याप्तिपदं विहाय तादृशसम्बन्धेन प्रत्यक्षत्वावच्छिन्नं  
प्रति तादात्म्येन हेतुत्वं वक्तव्यं, तथा सति व्याप्तिप्रत्यक्षमात्रवृत्तिधर्मावच्छिन्न-  
कार्यतानिरूपितकारणत्वाभावसाधने प्रतियोग्यप्रसिद्धिल्लदवस्थैवेति तादृ-  
शसम्बन्धेन प्रत्यक्षत्वस्य कार्यतावच्छेदकतया तस्य व्याप्तिप्रत्यक्षेतरघटादि-  
प्रत्यक्षवृत्तितया व्याप्तिप्रत्यक्षमात्रवृत्तित्वविरहात् व्याप्तिप्रत्यक्षमात्रवृत्ति-  
धर्मावच्छिन्नकार्यतानिरूपितकारणत्वाप्रसिद्धेः । अत्रेदं सिद्धान्तितं । विषय-  
तासम्बन्धेन व्याप्तिप्रत्यक्षत्वावच्छिन्नं प्रति तादात्म्येन व्याप्तेहेतुत्वं वाच्यं । न च  
तादृशधूमादौ विषयतया व्याप्तिप्रत्यक्षं जायते येन तत्र तादात्म्येन व्याप्तेर-  
भावात् व्यभिचारावकाश इति वाच्यं । व्याप्तिप्रत्यक्षत्वस्य व्याप्तिविषयकत्व-  
विशिष्टप्रत्यक्षत्वात्मकतया विषयतया तदधर्मावच्छिन्नाधिकरणताया अति-  
रिक्तात्वात् विषयतया तादृशञ्च व्याप्तावेव जायते न तु धूमादाविति स्थितं ।

सुखपानं सुखसाधनं सुखानन्यथासिद्धत्वे सति सुखान्वयव्यतिरेकानुविधा-  
यित्वात् यद्यदनन्यथासिद्धान्वयव्यतिरेकानुविधायि तत्तत्साधनमिति व्याप्ते-

घाने तर्कापेक्षाविरहादनवस्था निराकृता । अत्र सुखान्यथासिद्धत्वञ्च न  
 सुखान्यथासिद्धत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकभेदः यावत्सुखान्यथासिद्धसाधार-  
 णसुखान्यथासिद्धत्वस्यानुगतस्याभावात्, किन्तु सुखान्वय-व्यतिरेकानुविधा-  
 यितावच्छेदकौभूतयद्यद्धर्मावच्छिन्ने सुखस्याकारणत्वव्यवहारः प्रामाणिकानां  
 तत्तद्धर्मावच्छिन्नं यद्यत् तत्तद्भक्तिभिन्नत्वं, सुखान्वय-व्यतिरेकानुविधायि-  
 घटादीनां विशेष्यदलेनैव वारणसम्भवात्तेषां तत्तद्भक्तित्वावच्छिन्नप्रतियो-  
 गिताकानन्तभेदनिवेशेन वारणे गौरवमतो यद्यद्धर्मेऽवच्छेदकान्तं । विशे-  
 य्यदकार्यन्तु स्वायवहितपूर्वकालवृत्तित्वे सति अवच्छेदकतासम्बन्धेन स्वाधि-  
 करणदेशावच्छेदेन स्वायवहितपूर्वकालावृत्त्यभावप्रतियोगितावच्छेदकधर्म-  
 वत्त्वं न तु स्वायवहितपूर्वकालवृत्तित्वे सति सुखाधिकरणीभूतदेशावच्छे-  
 देन सुखायवहितपूर्वकालवृत्त्यभावप्रतियोगितानवच्छेदकधर्मवत्त्वमर्थः,  
 तथा सति साध्याविशेषापत्तिरिति । स्वपदं सुखपदं, यथाश्रुतसुखान्वय-  
 व्यतिरेकानुविधायित्वस्य स्तनपानेऽसत्त्वात् स्वरूपासिद्ध्यापत्तिः, एवञ्च सत्ता-  
 शरीरत्वादिजात्यामपि विशेष्यदलसत्त्वात् तत्र सुखसाधनत्वासत्त्वेन व्यभि-  
 चारः अतोऽन्यथासिद्धत्वान्तं, प्रलयादीनामभावस्य सुखायवहितपूर्वकाले  
 व्याप्यवृत्तितया न सुखाधिकरणदेशः अवच्छेदक इति स्वाधिकरणदेशाव-  
 च्छेदेन स्वायवहितपूर्वकालवृत्तिर्यस्तदन्यत्वं प्रलयाभावस्याक्षतमिति तत्-  
 प्रतियोगितावच्छेदकप्रलयत्वमादाय प्रलये अतिप्रसङ्गः अतो विशेष्यदल-  
 घटकौभूतसत्त्वन्तं, सुखायवहितपूर्वकालवृत्तिघटादिषु व्यभिचारवारणाय  
 विशेष्यदलघटकविशेष्यदलं, तथाच स्वायवहितपूर्वकालेऽवच्छेदकतासम्-  
 बन्धेन स्वाधिकरणशरीरावच्छेदेन घटाभावस्य सत्त्वान्न व्यभिचारः । स्तन-  
 पानाभावस्यापि स्वायवहितपूर्वकाले देशान्तरावच्छेदेन सत्त्वात् न तत्र  
 विशेष्यदलघटकविशेष्यनिर्वाहः अतः स्वाधिकरणदेशावच्छेदेनेति । स्वा-  
 धिकरणत्वञ्च अवच्छेदकतासम्बन्धेन, सुखं प्रति स्तनपानस्य हेतुतायां कार्य-  
 स्यावच्छेदकत्वं कारणस्य तु समवायः प्रत्यासत्तिरिति ध्येयं । वस्तुतः तदन-

सोऽपि न व्याप्तिग्रहे हेतुः । न च तदुपायवान्तर-  
जातिरस्ति, सामान्यप्रत्यासत्त्या सर्वोपसंभाराद्विना-  
भावग्रहः, सामान्यरूपता च सहदर्शनगम्येति भूयो-  
दर्शनापेक्षेति चेत् । न । सामान्यस्य हि प्रत्यासत्तित्वं  
लाघवात् न तु सामान्यतया ज्ञातस्य तद्व्यभ्युपगमाच्च ।

‘तर्हि व्यभिचारादित्याद्यधिसग्रन्थासङ्गतेषु व्याप्तिप्रत्ययं प्रत्येव तर्कस्य  
हेतुतया ज्ञातमात्रवालकीयव्याप्तिज्ञानस्य स्वरूपरूपतया व्यभिचा-  
रासम्भवात् । न च ‘विनैवेतिपाठेऽपि एवशब्द इवार्थं, तथाच  
पूर्वोक्त एवार्थ इति वाच्यं । एवशब्दस्य इवार्थकत्वे पूर्वस्वरविलोपा-  
पत्तेः “एवे इवार्थं” इति परिशिष्टानुशासनात्, इवार्थोऽवधारणे-  
त्यर्थः, “एवेऽवधारणे” इति व्याकरणान्तरीयानुशासनैकवाक्यत्वात् ।  
‘तर्हीति यत्किञ्चित्तर्कजनकीभूतव्याप्तिप्रत्ययस्य तर्कं विनाप्युत्पाद-  
त्यर्थः, ‘सोऽपि’ तर्कोऽपीत्यर्थः, अनादित्वेनैतत्परिहारश्चाग्रे वक्ष्यते ।  
ननु तर्कजन्यव्याप्तिबुद्धिषु वैजात्यं वर्तते तदेव तर्कजन्यतावच्छेदकं ।  
न च चाक्षुषत्वादिना सङ्करः, चाक्षुषत्वादिव्याप्यनानाजातिसौका-  
रात् कार्यतावच्छेदकत्वाननुगमत्वादोषत्वादित्यत आह, ‘न चेति,

न्यासिद्धान्वय-व्यतिरेकानुविधायित्वमित्यस्य खान्वयप्रयोजकान्वयप्रतियो-  
गित्वे सति खानुत्पादप्रयोजकीभूताभावप्रतियोगित्वमिति समुदायदणस्य  
निष्कृष्टार्थः । अन्वयप्रयोजकत्वं स्वरूपसम्बन्धविशेषः, तथाच प्रकृते स्तन-  
पानादौ सुखान्वय-व्यतिरेकानुविधायित्वमक्षतमेवेति ।

न च काकतालीयत्वादिशङ्काव्युदासार्थं द्वितीयादि-  
दर्शनापेक्षेति वाच्यं । द्वितीयादिदर्शनेऽपि शङ्काताद-  
यस्थ्यात् । नन्वनौपाधिकत्वज्ञानं व्याप्तिज्ञाने हेतुः तद्दे-  
श-काल-तत्रावस्थितघटादीनां<sup>(१)</sup> उपाधित्वशङ्कानिरा-  
सः कस्यचित् साधनव्यापकत्वज्ञानेन कस्यचित् साध्या-  
व्यापकत्वज्ञानेन स्यात् तच्च भूयोदर्शनं विना नावत-

‘तदुद्धौ’ तज्जन्यव्याप्तिवुद्धौ, ‘जातिरस्तीति, मानाभावात् तर्कस्य  
हेतुत्वासिद्धिरिति भावः । साभूत् भूयोदर्शनं कारणं तथापि  
कचिदुपयुज्यत एवेत्यभिप्रायेण शङ्कते, ‘सामान्येति, एवमुत्तरत्र  
सर्वत्रापि, ‘सर्वोपसंहारादिति सर्वेषां साध्यानां साधनानां ज्ञाना-  
दित्यर्थः, ‘सामान्यरूपतेति, सामान्यत्वस्थानेकवृत्तित्वरूपत्वादिति  
भावः । इदञ्च सामान्यत्वेन ज्ञातं प्रत्यासत्तिरित्यभिप्रायेण । न  
चैतावतापि अनेकवृत्तीनां धूमादीनां ज्ञानस्यापेक्षा सिद्धा न तु  
सहचारभूयोदर्शनापेक्षेति वाच्यं । सामान्यतोऽस्थानेकदर्शनमात्र-  
पेक्षाव्यवसायकत्वात् एवमुत्तरत्रापि । ‘सामान्यस्य’ सामान्यज्ञानस्य,  
‘तदिति सामान्यस्य प्रत्यासत्त्यनभ्युपगमाच्चेत्यर्थः । ‘काकतालीय-  
त्वादिशङ्का’ साध्य-साधनसहचारस्यैतन्नात्रस्य लीयत्वशङ्का, ‘आदिप-  
दात् चिसलीयत्वादिपरिग्रहः । ‘अनौपाधिकत्वज्ञानं’ उपाध्यभाव-

(१) तद्देश-काल-तत्रावस्थितघटादीनामित्यत्र तत्रेतिपदं व्यर्थं, तद्देश-  
काल-तत्तदवस्थितघटादीनामित्येव समीचीनः पाठो भवितुमर्हति ।

रतीति चेत् । न । अयोग्योपाधिव्यतिरेकस्यानुमाना-  
धीनज्ञानत्वेनानवस्थापातात् । अथ साध्य-साधनसह-  
चरितधर्मान्तराणामुपाधित्वसंशये न व्याप्तिग्रहः  
अतस्तेषामनुपाधित्वज्ञानं भूयोदर्शनाधीनसाध्याव्या-  
पकत्वज्ञाने सतीत्येतदर्थं भूयोदर्शनापेक्षा, अत एव

निश्चयः, 'तच्चेति साध्यवदृत्तौ साध्याव्यापकत्वज्ञानञ्च न तच्छून्य-  
साध्याधिकरणान्तरज्ञानं विनेत्यर्थः । 'अयोग्येति, तथाच अनौपा-  
धिकत्वज्ञानं न व्याप्तिधीहेतुरिति भावः । ननु माभूत् अनौपा-  
धिकत्वनिश्चयो हेतुः उपाधित्वशङ्काविरहश्च हेतुरेव तावतैव भूयो-  
दर्शनापेक्षा सिद्धेत्याशङ्कते, 'अथेति, 'अत इति, अनुपाधिकत्व-  
ज्ञानं विना सन्देहानिवृत्तिरिति भावः । 'यावतेति अनुपा-  
धित्वनिश्चायकदर्शनत्वेन हेतुत्वमिति भावः । ननु उपाधित्वशङ्कायाः  
प्रतिबन्धकत्वे हि अनुपाधित्वनिश्चयापेक्षा स्यात्तदेव च न विरोध्य-  
विषयकत्वात् इत्याह, 'अथपि चेति, 'तदाहितः' तच्चन्यः ।  
यद्यप्येवमपि तत्र खतः सिद्ध उपाधिशङ्काविरहस्तत्र भूयोदर्शनस्या-  
पेक्षा वृथैव तथापि स्फुटत्वादिदशुपेक्ष्य दूषणान्तरमाह, 'अयोग्येति,  
तथाच तत्संग्रहस्याप्रतिबन्धकत्वमेवावश्यं वाच्यमिति भावः । 'स च  
नेति, भूयोदर्शनेऽपि अयोग्योपाधिशङ्कातादवस्थादनुमानस्य चान-  
वस्थाप्रसत्तादिति भावः । किञ्च भूयोदर्शनजन्यसंस्कारस्य मानसे-  
तरव्याप्तिप्रत्यक्षत्वं कार्यतावच्छेदकं सामान्यतो व्याप्तिप्रत्यक्षत्वं वेति



यावता दर्शनेन तन्निश्चयस्तावदभूयोदर्शनं हेतुरिति न वारसंख्यानियमो न वाननुगमः। यद्यपि चान्यस्य साध्यव्यापकत्व-साधनाव्यापकत्वसंशयो नान्यव्याप्तिग्रहप्रतिबन्धकस्तथापि तदाहितव्यभिचारसंशयः प्रति-

विकल्प्य दूषयति 'अपि चेति, 'न वहिरिन्द्रियसहकारी' न वहिरिन्द्रियमात्रसहकारी, न मानचेतरव्याप्तिप्रत्यक्षत्वावच्छिन्नं प्रति जनक इति यावत् । 'तज्ज्ञापारं विनापीति भूयोदर्शनजन्यसंस्काररूपव्यापारं विनापीत्यर्थः, 'व्याप्तिग्रहात्' मानसव्याप्तिग्रहप्रसङ्गात् । 'नापि', 'मनसः' मनसोऽपि, मानसप्रत्यक्षं प्रत्यपीति यावत्, जनक इत्यनुषज्यते । संस्कारजन्यत्वे व्याप्तिप्रत्यक्षस्य स्मृतित्वापत्तेः संस्कारस्य तत्र न हेतुत्वं किन्तु तज्जन्यस्मरणखेत्यपि मतं दूषयितुमाह, 'तज्जन्यस्मरणस्य वेति, 'प्रमाणान्तरत्वापत्तेः' यदसाधारणं सहकार्यासाद्य मनोवह्निर्गोचरां प्रमां जनयति तस्य प्रमाणान्तरत्वादिति भावः । न च प्रमाणान्तरत्वं प्रत्यक्षादिभिन्नप्रमाणत्वं तच्चाप्रसिद्धमिति वाच्यं । मानसज्ञानाकरणत्वे सति प्रमाकरणत्वापत्तेरित्यर्थात्<sup>(१)</sup> । प्राभाकरमतबुपसंहरति, 'तस्मादिति भूयस्त्वविशिष्टसाध्य-साधनसहचारज्ञानत्वस्य व्याप्तिप्रत्यक्षकारणतानवच्छेदकत्वादित्यर्थः, 'परिशेषेणेति, 'सा' व्याप्तिः । यद्यपि सज्जदर्शनजन्यप्रत्यक्ष-

(१) मानसज्ञानकरणत्वातिरिक्तप्रमाकरणत्वापत्तेरिति निष्कृष्टार्थः ।

व्यय इति तद्विधूननमायत्नमिति चेत् । न । अयो-  
 ग्योपाधिसंशयाधीनव्यभिचारसंशयस्य तथाप्यनुच्छे-  
 दात् स च न भूयोदर्शनात्ताप्यनुमानादित्यक्तम् ।  
 अपि च भूयोदर्शनादितसंस्कारो न वहिरिन्द्रियसह-

विषयत्वरूपस्य सकृद्दर्शनगम्यत्वस्य साध्यत्वे मीमांसकनये बाधः<sup>(१)</sup>  
 तन्मते साध्य-साधनसम्बन्धज्ञानस्यैव व्याप्तिज्ञानत्वेन तस्य तज्जन्यत्वा-  
 भावात् । न च साध्य-साधनसम्बन्धविशिष्टप्रत्यक्षस्य साध्य-साधनसम्ब-  
 न्धज्ञानजन्यत्वान्न बाध इति वाच्यं । तन्मते विशिष्टबुद्धौ विशेषण-  
 ज्ञानस्थाहेतुत्वात् न्यूनैयाधिकमते सिद्धसाधनाच्च तन्मतेऽपि व्यभि-  
 चारज्ञानानवतारे प्रथमदर्शनेनापि व्याप्तिग्रहात् । तथापि साध्य-  
 साधनसम्बन्धसाक्षात्कारत्वव्यापकविषयिताकत्वं साध्यं<sup>(२)</sup> । न च न्याय-

(१) न च तन्मते भूयोदर्शनजन्यप्रत्यक्षाप्रसिद्ध्या भूयोदर्शनजन्यप्रत्यक्ष-  
 विषयत्वाभावसाधने पूर्वं यथा साध्याप्रसिद्धिरक्ता तथात्रापि सकृद्दर्शन-  
 जन्यप्रत्यक्षाप्रसिद्ध्या साध्याप्रसिद्धिः सम्भवति कथं तन्नोक्ता बाध उक्त-  
 इति वाच्यम् । पूर्ववदिहापि यदि सकृद्दर्शनं पक्षीकृत्य व्याप्तिप्रत्य-  
 क्षकारणत्वं मीमांसकैः साध्यते तदा व्याप्तिप्रत्यक्षकारणत्वस्य विषयतया  
 थाप्तौ सिद्धिसम्भवात् न साध्याप्रसिद्धिरतो बाधः उक्तः ।

(२) विशिष्टवैशिष्ट्यावगाहिवुद्धिं प्रति विशेषणतावच्छेदकप्रकारक-  
 ज्ञानस्य कारणतावादिनैयायिकमते साध्यसामानाधिकरण्यविशिष्टवैशि-  
 ष्ट्यावगाहिविधौ धात्मकसकृद्दर्शनजन्यप्रत्यक्षविषयत्वस्य व्याप्तौ सत्त्वेन बाधा-  
 मावेऽपि न्यूनैयाधिकमते व्यभिचारज्ञानानवतारे सकृद्दर्शनजन्यप्रत्यक्षवि-  
 षयत्वस्य थाप्तौ सत्त्वात् सिद्धसाधनापत्तेरतः साध्य-साधनसम्बन्धसाक्षात्-

मतेऽपि व्याप्तेः साधनतावच्छेदकानतिरेकितया साध्यसामानाधिकरणानतिरेकितया वा सिद्धसाधनमिति वाच्यं । मणिकृतेव

कारत्वव्यापकविषयिताकत्वं व्याप्तौ साधितं । यद्यपि साध्य-साधनसम्बन्ध-साक्षात्कारत्वसमानाधिकरणविषयिताकत्वं व्याप्तौ साध्यते तदा धूमव्यापकवह्निसमानाधिकरणो धूम इत्याकारकसाध्य-साधनसम्बन्धसाक्षात्कारविषयत्वस्य व्याप्तौ नयनैयाधिकमते सत्त्वात् सिद्धसाधनतादवस्थामतः साध्य-साधनसम्बन्धसाक्षात्कारत्वव्यापकविषयिताकत्वं निवेशितं, तथाच धूमो वह्निसमानाधिकरण इति साक्षात्कारेऽपि तादृशसाक्षात्कारत्वस्य सत्त्वात् तत्र विशिष्टवह्निसामानाधिकरणरूपनैयाधिकमतसिद्धव्याप्तिविषयताया असत्त्वान्न दोषः । ननु व्याप्तिग्राह्यश्च वक्ष्यते इति प्रतिज्ञा मणिका-रेण कृता अतो व्याप्तिग्राह्यस्य कारणकथनमेव प्रकृतोपयुक्तमिति साध्य-साधनसम्बन्धसाक्षात्कारत्वव्यापकविषयिताकत्वसाधनमर्थान्तरग्रन्थमिति । यदि च साध्य-साधनसम्बन्धसाक्षात्कारत्वव्यापकविषयिताकत्वस्य व्याप्तौ सत्त्वे साध्य-साधनसम्बन्धग्राहकं यत्तदेव व्याप्तिग्राहकमिति लभ्यते तदा साध्य-साधनसम्बन्धग्राहकत्वव्यापकग्राहकताकत्वरूपविशेषहेतोर्याप्तौ कथनेन व्याप्तिग्राह्योपायः क इति जिज्ञासानिरुत्तेः साध्य-साधनसम्बन्धग्राहकत्वव्यापकविषयिताकत्वसाधनं निष्फलमिति चेत् । न । सर्वमिदं सति व्याप्तिनिश्चये स एव तु न सम्भवति उपायाभावादित्यादियत्नेन व्याप्तिग्राह्यकारणाभावेन व्याप्तिनिश्चयस्यासम्भवात् अनुमानप्रामाण्यवस्थापनं न सम्भवतीति चार्वाकपूर्वपक्षप्रतिपादनात्साध्य-साधनसम्बन्धग्राहकत्वव्यापकत्वग्राहकत्वस्य हेतुत्वकथनेन व्याप्तिग्राह्यस्य कारणं प्रतिपादितं, निश्चलसद्दर्शनगम्यत्वसाधनेन च साध्य-साधनसम्बन्धसाक्षात्कारस्य व्याप्तिनिश्चयरूपता प्रतिपादिता, तथाच तस्यैवानुमितिकारणत्वं सम्भवतीति सर्वं सुसम-प्लवं ।

कारी तथापारं विनापि च सहचारादिज्ञानवतो  
व्याप्तिग्रहात् । नापि मनसः इन्द्रियादिवद्भूयोदर्शन-  
जन्यसंस्कारस्य तज्जन्यस्वरणस्य वा प्रमाणान्तरत्वापत्तेः,  
तस्मात् परिशेषेण सहदर्शनगम्या सा, तथाप्युपाध्य-  
भावोव्याप्तिः अभावश्च केवलाधिकरणं तत्कालसम्ब-

‘क्षिप्त्यादिना अनुपदमेव तद्दोषस्य वक्ष्यमाणत्वात् । परिशेषस्य  
न सप्रत्यक्षाकारणभूयोदर्शनकाले सति सहचारदर्शनग्राह्यत्वं स्वरूपा-  
दिप्रापत्तेः साध्य-साधनसम्बन्धज्ञानस्यैव तज्जते व्याप्तिज्ञानत्वात् ।  
न च सहचारदर्शनग्राह्यत्वं सहचारदर्शनविषयत्वं, समूहात्मनज्ञा-  
नमादाय घट-पटादौ व्यभिचारापत्तेः, किन्तु साध्य-साधनसम्ब-  
न्धग्राहकसामग्रीत्वव्यापकत्वग्राहकसामग्रीत्वकत्वमिति हेतुपुपपाद-  
यति, ‘तथाहीति, ‘उपाध्यभाव इति उपाध्यभाववत्त्वे सति साध्य-  
सामानाधिकरणमित्यर्थः, तेन तज्जते विरुद्धहेतावुपाधिविरहेऽपि  
नातिव्याप्तिः । ‘केवलाधिकरणमिति, तच्च साधनं धूमादिरे-  
वेति भावः । नन्वेवं प्रतियोगिकालेऽपि तदधिकरणमस्यैव कथं वा  
अधिकरणभावपोराधाराधेयभावप्रतीतिरित्यत आह, ‘तत्कालेति  
तत्कालेन प्रतियोग्यनधिकरणकालेनाधिकरणस्य सम्बन्ध इत्यर्थः,  
तज्जते कालस्य षडिन्द्रियवेद्यत्वादेव तस्य प्रत्यक्षत्वं । सर्वत्र हेतुसम्ब-  
न्धभाने कालभानावश्यभावाभावादाह, ‘स्वप्रकाशेति, ‘तज्ज्ञानमिति  
अधिकरणज्ञानमित्यर्थः, ‘स्वप्रकाश इत्यनेन प्रथमदर्शनगम्यत्वमुप-

न्धीया स्वप्रकाशरूपं तज्ज्ञानं वा तच्च प्रथमदर्शनेनाव-  
गतमेव<sup>(१)</sup> चक्षुरादिना, न चाधिकस्तद्भायोऽस्ति, न च  
प्रतियोगिज्ञानमधिकरणादिज्ञानजनकं येनापाधि-  
ज्ञानं विना तन्न स्यात्, एवमुपाध्यभावे ज्ञाते किञ्चिन्न  
ज्ञातुमवशिष्यते उपाध्यभावव्यवहारस्तु तद्वियमपेक्षते  
दीर्घत्वादिव्यवहार इवावधिज्ञानं। न पैवं रासभसम्ब-

पादितं। न च प्रतियोगिसत्त्वकालीनाधिकरणज्ञानस्याभावत्वाभावेन  
प्रतियोग्यसत्त्वकालीनाधिकरणज्ञानमेवाभावस्तथाच साधनज्ञानमाच-  
क्ष्योपाध्यभावत्वाभावात् कथं साध्य-साधनसम्बन्धयाच्चात्कारत्वव्यापक-  
विपयिताकत्वमिति वाच्यं। सद्भूतसत्त्वे सर्वदैव उपाध्यसत्त्वेन  
साधनज्ञानमात्रस्यैव उपाध्यभावत्वात्। 'तच्चेति, तच्च चक्षुरादिना  
प्रथमसम्बन्धदर्शनेऽवगतमेव विषयीभूतमेवेत्यन्वयः, 'प्रथमसम्बन्ध-  
दर्शनेनेति तृतीयान्तपाठे 'अवगतं' विषयीकृतं। ननु अधिकरणा-  
दिभ्योऽतिरिक्त एवाभावः तज्ज्ञानं विनापि च साधनं गृह्यत इत्यत-  
श्चाह, 'न चेति, अतिरिक्ताभावकल्पने गौरवादिति भावः। नन्वेता-  
दृशसत्त्वदर्शनगत्यत्वसिद्धावपि भूयोदर्शनापेक्षावशकी अभावज्ञानस्य  
प्रतियोगिज्ञानाधीनत्वेन उपाधिज्ञानार्थं भूयोदर्शनावश्यकत्वात्  
उपाधित्वस्य साध्यव्यापकत्वादिघटितत्वादित्यत आह, 'न च  
प्रतियोगीति, 'एवमिति अभावबुद्धौ प्रतियोगिज्ञानस्याहेतुत्वे,

तदुत्पत्ति-धूमसम्बन्धज्ञानादेवानुमितिः स्यादिति वाच्यम् । उपाधिस्वरूपे सत्युपाधि-तद्वाच्येतरसकलतदु-  
पलक्षणसमवधाने चोपाध्यनुपलम्बसहितस्य केवला-  
धिस्वरूपज्ञानस्यानुमितिहेतुत्वात् तद्भवहारहेतुत्वाच्च<sup>(१)</sup> ।  
नन्वेवं प्रथमदर्शनेन व्याप्तिनिश्चयादिशेषदर्शने सति  
रासभादिसंशयवत्तत्संशयो न स्यादिति चेत्, व्याप्ति-  
ज्ञानानन्तरं किं विद्यमान एवोपाधिर्नोपाधित्वेन

‘उपाध्यभाव इति, घटकत्वं सप्तम्यर्थः, तस्य ‘किञ्चिदित्यनेनान्वयः,  
‘अवशिष्यत इति, येन तज्ज्ञानार्थं भूयोदर्शनापेक्षा स्यादिति  
भावः । नन्वेवं प्रतिबोधिज्ञानं विनापि अभावप्रत्यये<sup>(२)</sup> तज्जन्यव्य-  
वहारोऽपि स्यादित्यत आह, ‘उपाध्यभावव्यवहारस्त्विति उपाधि-  
र्नास्तीति शब्दप्रयोग इत्यर्थः, ततोपाध्यभावत्वप्रकारकज्ञानसाध्यत्वा-  
दिति भावः । ‘दीर्घत्वेति, यथा दीर्घत्वपरिमाणस्य द्रव्यगच्छात्का-  
रणाद्यप्येवाप्यतया दीर्घत्वज्ञाने नावधिज्ञानापेक्षा किन्तु अथमस्मा-  
द्दीर्घइति व्यवहार एवावधिज्ञानापेक्षेति भावः । ‘रासभसम्बन्ध-  
तुषेति वद्वि-रासभसम्बन्धतुषेत्यर्थः, तुष्यता च अनुमित्यजनक-  
तया, तथाच वद्वि-रासभसम्बन्धज्ञानं यथा अनुमित्यजनकं तथा  
वद्विगत्या अनुमित्यजनकं चद्वद्वि-धूमसम्बन्धज्ञानं तस्मादेव भवन्मते-  
ऽनुमितिः स्यादित्यर्थः । ‘उपाधिस्वरूप इति स्वरूपत्वमविवक्षितं

(१) व्यवहारहेतुत्वाच्चेति क० । (२) अभावप्रत्यय इति ख०, ग० ।

न ज्ञात इतिशक्त्या गृहीतव्याप्तायपि संशयः अतस्तत्र  
 ध्रुवोद्दर्शनेनोपाधिनिरासद्वारा व्याप्यभावशक्तापनी-  
 यते। यद्वा ज्ञानप्रामाण्यसंशयाद् व्याप्तिसंशयः यद्वा घट-  
 ज्ञानसामग्र्यां सत्यां घटज्ञाने सति तद्व्याप्यसंशया-

उपाधिज्ञाने सतीत्यर्थः, 'उपाधि-तद्वाप्येतरेति उपाधिरुपाधिव्या-  
 प्योय उपधीन्द्रियसन्निकर्षादिसुदितरोपाधिविशिष्टप्रत्यक्षजनकका-  
 रणकलापे सतीत्यर्थः, 'उपाध्यनुपलक्षसहितेति उपाधिमत्ता-  
 ज्ञानाभावसहितेत्यर्थः। नन्वेवं धूमे व्यभिचारभ्रमेऽपि ततो-  
 ऽनुमितिः स्यात् उक्तहृत्पक्षकलहेतुसत्त्वात् भ्रमसु ज्ञानद्वयमेकज्ञानं  
 वेत्यन्यदेतत्। न च तत्र भ्रमरूपोपाधिविशिष्टबुद्धेरप्युत्पत्तेः उपा-  
 ध्यनुपलक्ष एव नास्तीति वाच्यं। तैरन्यथाख्यात्यनङ्गीकारात्  
 व्यभिचारज्ञाने उपाधिज्ञानानियमाच्च इति चेत्। न। व्यभिचा-  
 रज्ञानाभावस्यापि सहकारित्वात्। अथैवमप्यसन्निकर्षादिहेतुका-  
 नुमितिर्न स्यात् उपाधिविशिष्टोपलक्षककारणकलापविरहादिति  
 चेत्। न। उपाध्यनुपलक्षकादिकं नानुमितिहेतुः किन्तु उपाध्य-  
 भावत्वेन ज्ञानं, तच्चासन्निकर्षसत्त्वेऽपि संभवति, 'उपाधिसरणे'  
 इत्यादिकन्तु सौक्तिकप्रत्यक्षात्मकोपाध्यभावत्वप्रकारकज्ञानस्य कार-  
 णमात्रप्रदर्शनं इति। न चैवं उपाध्यभावत्वप्रकारकव्याप्तिज्ञानस्य  
 उपाधिज्ञानाद्यधौनत्वेन निरुक्तसत्तद्दर्शनगम्यत्व-निरुक्तपरिशेषत्व-  
 योस्तत्र बाध इति वाच्यं। व्याप्तिरूपप्रतीतावितरापेक्षाविर-  
 हादेव तयोस्तत्र संभवादिति। नन्वेवं केवलोपाधिकरणज्ञानादु-

हितस्तत्संग्रहो न त्वग्रिमसंग्रहावुरोधेन तत्र घट-  
ज्ञानमेव न वृत्तमिति कल्प्यते तथेहाप्युपाध्यभावस्य  
व्याप्तित्वात् तस्य च केवलाधिकरणरूपस्य प्रथमदर्शने-  
ऽपि निश्चितत्वात् व्याप्तिग्राहकान्तरस्याभावाच्च परि-

मितिर्न भवतु उपाधिज्ञानं विना केवलाधिकरणज्ञानमात्रदशा-  
याद्युपाध्यभावव्यवहारस्तु जायतामित्यत आह, 'तद्व्यवहारेति<sup>(१)</sup>  
उपाध्यभावव्यवहारहेतुत्वाच्चेत्यर्थः ।

केचित्तु नन्वेवमसन्निगृह्यादिहेतुकानुमितिर्न खान्तादृशोपाधि-  
विशिष्टप्रत्वचजनककारणकलापविरहादित्यखरसादाह, 'तद्व्यवहा-  
रेति तस्य व्यवहारो यस्यादिति व्युत्पत्त्या अनुमितेरुपाध्यभावव्यव-  
हारहेतुहेतुकत्वाच्चेत्यर्थः, 'चकारः वार्थे, उपाध्यभावव्यवहारहेतुश्च  
परोक्षधोरसमाधारणं उपाध्यभावत्वप्रकारकज्ञानमात्रमिति ग्राहः ।

'नन्वेवमिति, 'एवं' व्याप्तिग्रहस्य साधनग्राहकातिरिक्तानपे-  
क्षत्वे<sup>(२)</sup>, 'प्रथमेति प्राथमिकधूमादौन्द्रियसन्निकर्षेत्यर्थः, 'व्याप्ति-  
निश्चयादिति, विशेषणज्ञानस्य विशिष्टबुद्धावहेतुत्वेन धूमादौ  
सात्त्विकव्याप्तिप्रकारकनिश्चये बाधकाभावादिति भावः । विशेष-  
दर्शने सतीति यथा वल्ल्याप्यत्वस्य विशेषदर्शने सति रासभादौ  
न वल्लिव्याप्यत्वसंग्रहः तथेत्यर्थः, 'तत्संग्रह इति धूमादौ वल्लि-

(१) व्यवहारेतीति ख० ग० ।

(२) साध्य-साधनसम्बन्धग्राहकातिरिक्तानपेक्षत्वे इति क० ।



शेषेण सद्बद्दर्शनस्य व्याप्तिग्राहकत्वात् तन्निश्चये प्रामा-  
ण्यसंशयादेव तत्संशयः। न चैवं रासनेऽपि प्रथमं व्याप्ति-  
परिच्छेदः<sup>(१)</sup> स्यादिति वाच्यं। तत्र व्याप्तेरभावात् प्रत्य-  
क्षज्ञाने विषयस्य हेतुत्वात्, क्वचिद्दसंसर्गाग्रहात् तथा

व्याप्यत्वसंशय इत्यर्थः, तत्र इति शेषः, अत एवाग्रे मयेति सङ्ग-  
च्छते, व्याप्तिरूपप्रतीतावपि उपाध्यभावत्वरूपेण उपाध्यभावात्प्रक-  
व्याप्तिप्रकारकनिश्चयाभावात्तत्रकारकसंशयो नानुपपन्नः, यदा तन्नि-  
श्चये प्रामाण्यसंशयाद्वाप्तिसंशय इति समाधानद्वयं क्रमेणाह, 'व्याप्ति-  
ज्ञानानन्तरमिति धूमादिसन्निकर्षानन्तरमित्यर्थः, प्रायते अनेनेति  
व्युत्पत्तेः<sup>(२)</sup>। 'किमिति अत्र किंशब्दोऽयिमेवदेत्यपेक्षया विकल्पे,  
'विद्यमानेति, 'विद्यमाने' प्रायमाने धूमादौ, उपाधित्वेन उपा-  
धिरेव मया न ज्ञात इत्यर्थः, न तु उपाध्यभावत्वेन उपाध्य-  
भावोऽपि निश्चितइति शेषः, 'इति शब्दचा' अतः शब्दानुसंगी-  
मन्तया, 'गृहीतव्याप्तावपि गृहीतव्याप्तिरूपेऽपि, 'संशयः' उपा-  
ध्यभावत्वरूपेण उपाध्यभावात्प्रकव्याप्तिसंशयः, समानप्रकारक-  
निश्चयैव विरोधित्वादिति भावः। 'उपाधिगिरायेति उपाध्यभा-  
वत्प्रकारकनिश्चयद्वारेत्यर्थः।

- (१) व्याप्तिनिश्चय इति म०।

(२) व्याप्तिज्ञानपदस्य प्रायते अनेनेति करणव्युत्पत्त्या व्याप्तिज्ञानजनक-  
धूमादिसन्निकर्षपरत्वमिति भावः।

व्यपारो<sup>(१)</sup> द्वापमाशात्प्रात् । न पादापि तथा, आरोपे  
सति निमित्तानुसरणं न तु निमित्तमस्तीत्यारोप-  
इत्यभ्युपगमात् ।

सज्वस्तु पूर्वपक्षे तवेति नाध्याहार्यं, 'व्याप्तिज्ञानानन्तरमिति  
व्याप्तिनिश्चयानन्तरमित्यर्थः । 'किं विद्यमान इति किमत्र उपा-  
धिरेव विद्यमान वर्त्तमानः स्यात् उपाधिबलेन न ज्ञातइत्यर्थः,  
किं वा उपाधिरेव न वर्त्तते, 'इति शङ्कया' इति शङ्कासत्तया,  
'गृहीतव्याप्तावपि' निश्चितायां व्याप्तावपि संशय इत्यर्थः । एतादृश-  
समाख्याविरहविशिष्टव्याप्तिनिश्चयस्यैव प्रतिबन्धकत्वादिति भावः ।  
ननु तापयाज्ञाप्तिनिश्चयस्यैव प्रतिबन्धकत्वान्तादृशसंभावनाया उत्ते-  
जकत्वे मानाभाव इत्यखरसादाह, 'यदेति, इति प्राङ्गः ।

ननु मध्ये प्रामाण्यसंशयकल्पने गौरवान्निश्चय एव व्याप्तेर्न वृत्त-  
इत्येव कल्पयितुं युक्तमित्यत आह, 'यथेति, 'घटज्ञान इति घट-  
निश्चय इत्यर्थः । 'न चैवमिति, 'एवं' साधनग्राहकातिरिक्तानपेक्षने,  
राशभेऽपि धूरावमानाधिकरणे राशभेऽपि, 'व्याप्तिनिश्चयः स्यात्'<sup>(१)</sup>  
स्वरूपतो व्याप्तिप्रकारकनिश्चयः स्यात्, विशेषणज्ञानस्य तन्मते<sup>(२)</sup>

(१) तद्यवहार इति ग० ।

(२) 'व्याप्तिपरिच्छेदः स्यात्' इत्यत्र 'व्याप्तिनिश्चयः स्यात्' इति कस्य-  
पिद् मूलपुस्तकस्य पाठमनुसृतवन्तो रक्ष्यन्तः ।

(३) तवेति ख० ।

केचित्तु साधनवन्निष्ठात्यन्ताभावाप्रतियोगिसाध्य-  
सामानाधिकरण्यं साधनवन्निष्ठान्योन्याभावाप्रति-  
योगिसाध्यवत्कत्वं वा व्याप्तिस्तदुभयमपि योग्यं<sup>(१)</sup>  
प्रत्यक्षेण वह्नि-धूमसम्बन्धानुभवेन प्रथममवगतमेव ।

विशिष्टबुद्धावहेतुत्वादिति भावः । 'विषयस्य' विशेष्य-विशेषणसम्बन्धस्य,  
विशिष्टप्रत्यक्षत्वस्य तत्कार्यतावच्छेदकतया न प्रमाया गुणजन्यत्व-  
मिति भावः । नन्वेवं कुत्रापि व्याप्त्यभाववति व्याप्यत्वव्यवहारो न  
स्यात् तस्य तन्निश्चयाधीनत्वात् इत्यत आह, 'क्षिप्रदिति, 'दोषमा-  
हात्यादिति, व्याप्तिस्मरणपुरोवर्त्तिज्ञानसहितोव्याप्यत्वासंसर्गाग्रहण-  
स्मात्तद्भवहार इत्यन्वयः । 'न चात्रापीति सर्वत्र रासभादावित्यर्थः,  
'तथेति दोषमाहात्याद्व्याप्तिस्मरणपुरोवर्त्तिज्ञानसहितव्याप्यत्वासंस-  
र्गाग्रहोभवत्वित्यर्थः, 'आरोपे' पुरोवर्त्तिताज्ञान-तदगृहीतासंसर्गक-  
विशेषणज्ञाने, 'सतीति प्रामाणिके इत्यर्थः, 'निमित्तेति, 'निमित्तस्य'  
दोषस्य, 'अनुसरणं' कल्पनमित्यर्थः, फलवत्त्वादिति भावः । 'न  
त्विति न तु सर्वत्रैव दोषाख्यं निमित्तमस्ति, 'इत्यारोपः' येना-  
रोपः येन सर्वत्रागृहीतासंसर्गकव्याप्तिज्ञानमिति यावत् ।

तदेवं उपाध्यभावरूपाया व्याप्तेः सत्त्वाद्दर्शनगम्यत्वसुपपाद्य मीमा-  
सकः नैयायिकसिद्धाया एव व्याप्तेः ताद्रूप्येण सत्त्वाद्दर्शनगम्यत्वं स्वैक-  
देशिमतं दूषयितुसुपन्यस्यति, 'केचित्त्विति, 'प्रत्यक्षेण' चचुरा-  
दिना, 'अवगतं' विषयीकृतं, 'महानस इति एतद्भूमवतीत्यर्थः,

महानसे योऽत्यन्ताभावोऽन्योन्याभावोवावगतस्तस्य  
प्रतियोगी न वह्निर्न वा वह्निमानित्यनुभवात्, रासभे  
तयावगमेऽप्यग्रे स बाध्यत इति, तन्न, एवं तत् तद्वह्नि-त-

‘अवगतः’ वर्त्तमानः, ‘अनुभवादिति प्राथमिकवह्नि-धूमसम्बन्धग्रह-  
कालेऽनुभवादित्यर्थः । न च पिशाचाद्यतीन्द्रियाभावस्याप्येतद्धूम-  
समानाधिकरणभावत्वादिना निविष्टत्वात् कथं साध्य-साधनसम्बन्धा-  
नुभवकाले अवश्यं तदनुभव इति वाच्यं । गुरुमते अभावस्याधिकरण-  
रूपतया पिशाचाभावत्वादि रूपधर्मैवायोग्यत्वात् न तु तदभावस्य,  
अत्र तु अभावत्वेनैव तद्ज्ञानात् । न च तथापि तादृशप्रतियोगित्वा-  
भावत्वेन कथं तादृशप्रतियोगित्वाभावग्रहः महानसवृत्तिपिशाचाद्य-  
भावप्रतियोगित्वातीन्द्रियस्यापि तत्रप्रतियोगिकुचिनिःक्षिप्तत्वेन ता-  
दृशाभावत्वस्यायोग्यत्वादिति वाच्यं । यत्किञ्चित्प्रतियोगियोग्य-  
त्वेनैवाभावस्य योग्यतया तादृशप्रतियोगित्वसामान्याभावत्वस्य योग्य-  
त्वात् अप्रतियोगित्वस्य प्रतियोग्यन्योन्याभावरूपतया प्रतियोगि-  
योग्यत्वात्तन्नत्वाच्चेति भावः<sup>(१)</sup> । नन्वेवमिन्द्रियस्यिच्छे व्यधिकर-  
णरासभेऽपि तादृशप्रतियोगित्वाभावग्रहापत्तिस्तत्र नये साध्य-साध-  
नसहचारग्रहस्य तादृशप्रतियोगित्वाभावग्रहाच्चेतुत्वादित्यत आह,

(१) अत्यन्ताभावग्रहे प्रतियोगियोग्यत्वस्य तन्त्रत्वेऽपि अन्योन्याभाव  
ग्रहे प्रतियोगियोग्यत्वं न तन्नं, अन्यथा घटादौ पिशाचाद्यतीन्द्रियपदा-  
र्थांन्योन्याभावस्याप्रत्यक्षापत्तेरिति भावः ।

धूमयोरेव व्याप्तिः स्यात् न तु धूमत्व-वह्नित्वावच्छेदेन।  
न च तदनुमानोपयोगि, वह्नित्वं वह्निसत्त्वं वा न प्रति-  
योगितावच्छेदकमिति प्रथमतो ज्ञातुमशक्यमेवेति।  
मैवं। प्रकृतसाध्यव्यापकसाधनाव्यापकोवा साधनत्वा-

‘रासभ इति सन्निहृष्टे व्यधिकरणरासभे इत्यर्थः, ‘तथावगमेऽपि’  
प्रथमं तादृशप्रतियोगित्वाभावावगमेऽपि, ‘अग्रे’ एतद्धूमवति रासभा-  
भावग्रहणान्तरं, ‘वाध्यते’ अप्रसालेन ज्ञायते, ‘एवं तदिति लुप्तप्रथ-  
मान्तं, सन्नद्धर्षनविषयीभूतं तादृशात्यन्ताभावाप्रतियोगित्वादिक-  
मित्यर्थः, ‘स्यात्’ भवति, ‘न तु धूमत्वोति धूमत्वावच्छिन्ने वह्नि-  
त्वावच्छिन्नस्य व्याप्तिरित्यर्थः। ‘न च तदिति तद्वह्नि-तद्धूमयो-  
र्याप्यत्वं, ‘अनुमानोपयोगि’ धूमसामान्ये न वह्नि-सामान्यानुमा-  
नोपयोगीत्यर्थः। ननु धूमत्वावच्छिन्नसमानाधिकरणात्यन्ताभाव-  
प्रतियोगितानवच्छेदकवह्नित्वावच्छिन्नसमानाधिकरणं तादृशान्यो-  
न्याभावप्रतियोगितानवच्छेदकवह्निसामानाधिकरणं वा धूमसामा-  
न्यहेतुकवह्न्यानुमानोपयोगि तदपि सन्नद्धर्षनग्राह्यमित्यत आह,  
‘वह्नित्वमिति, ‘न प्रतियोगितावच्छेदकमिति<sup>(१)</sup> न धूमत्वावच्छि-  
न्नसमानाधिकरणात्यन्ताभावस्य तादृशान्योन्याभावस्य वा प्रतियो-

(१) प्रतियोगितानवच्छेदकमिति ख०, ग०।

भिन्नेन समं प्रकृतसाध्यसत्त्वन्वितावच्छेदकं विशेषणं  
 वेपाधिः उभयथापि तदभावे न व्याप्तिः सिद्ध-  
 सिद्धिभ्यां तन्निषेधानुपपत्तेः, किन्तु यावत्सव्यभिचारि-  
 व्यभिचारिसाध्यसामानाधिकरण्यमनौपाधिकत्वं तस्य  
 प्रथमं ज्ञातुमशक्यत्वात् । किञ्च न वस्तुगत्या व्याप्ते-

गितासामान्यावच्छेदकमित्यर्थः<sup>(१)</sup>, 'ज्ञातुमशक्यमेवेति तादृशप्रति-  
 योगितागवच्छेदकत्वसत्त्वेऽप्यभावदेशविप्रकर्षादिना अनुपलक्ष्यसम्भाव-  
 नापत्तिगर्भयोग्यानुपलब्धिविरहादिति भावः । अथपि तादृशप्रति-  
 योगितावच्छेदकत्वाभावोऽप्यधिकरणादिरूप एवेति तज्ज्ञानमपि  
 प्रथमदर्शने सम्भवत्येव अधिकरणादिज्ञाने योग्यानुपलब्धेरहेतुत्वात् ।  
 न च प्रतियोगितावच्छेदकत्वाभावप्रकारेण ज्ञानं प्रथमतो न सम्भ-  
 वति तस्य प्रतियोगितावच्छेदकत्वज्ञानाधीनत्वायोग्यानुपलब्ध्यधीन-  
 त्वाच्चेति वाच्यं । उपाध्यभावरूपव्याप्तिप्रत्ययेऽपि उपाध्यभावप्रका-  
 रकज्ञानस्य प्रथमतोऽसम्भवात् उपाधिज्ञानाधीनत्वात् । तथाप्युक्त-  
 रूपव्याप्तित्वेनोक्त्युपस्थाप्तेः सत्तद्दर्शनगम्यत्वस्यैकदेश्यभिप्रेतत्वाच्चेतद्दोषा-  
 यज्ञतिरिति ध्येयं ।

(१) अत्र सामान्यपदं पर्याप्तिनिवेशाभिप्रायकं तथाच प्रतियोगिता-  
 गवच्छेदकमित्यस्य प्रतियोगितावच्छेदकतापर्याय्यधिकरणत्वाभाववत्त्वमर्थः  
 तेन महानसौयवङ्गभावमादाय वङ्गित्यस्य प्रतियोगितावच्छेदकत्वेऽपि  
 वङ्गिमान् धूमादित्यादौ नाव्याप्तिः ।

ज्ञानं हेतुः किन्तु व्यक्तित्वेन तत्र उपाध्यभावत्वं । न च उपाधेरज्ञाने तद्भावत्वेन ज्ञानं सम्भावति, विशेषण-ज्ञानसाध्यत्वादिशिष्टज्ञानस्य । नच नियमतः प्रथममुपाधिधीरस्ति । यद्योक्तं प्रतियोगिज्ञानं व्यवहारहेतुः

तदेवं व्याप्तिर्न भूयोदर्शनगम्या किन्तु सद्यदर्शनगम्यैवेति मीमांसकमते च निरूढे तद्दूषयति<sup>(१)</sup> 'सैवमिति, 'प्रकृतेति न्यायनये, 'साधनत्वेति मीमांसकनये, साधनत्वाभिसतेन समं या प्रकृतसाध्यसम्बन्धिता तदवच्छेदकत्वे षति यद्विशेषणं तत्त्वमित्यर्थः । अत्रावच्छेदकत्वमन्यूनवृत्तित्वं साधननिष्ठसाध्यसम्बन्धितावच्छेदकीभूताधिकरणनिष्ठाभावाप्रतियोगित्वमिति यावत् । स श्यामो मित्रातनयत्वात् प्रत्यक्षं उद्भूतरूपादित्यादौ पाकशाकजल-महत्त्वादावव्याप्तिवारणाय साधननिष्ठेति साध्यसम्बन्धिताविशेषणं, अत्राववारणाय साधनार्भावः । तथाच साधनविशिष्टसाध्यव्यापकत्वमिति सत्यन्तस्य फलितार्थः<sup>(२)</sup> । विरुद्धस्य चैतनये नोपाधित्वमतोगोत्वान् अश्वत्वादित्यादौ साधनविशिष्टसाध्याप्रसिद्ध्या साक्षात्त्वादौ नाव्याप्तिः । न च तथाप्यं

(१) निरूढं तद्दूषयतीति ख०, ग० ।

(२) तथाच स श्यामो मित्रातनयत्वादित्यादौ शाकपाकजलोपाधेः स्वाभाविकश्यामकाक-सोक्षितान्तर्भावेण एवं प्रत्यक्षं उद्भूतरूपादित्यादौ महत्त्वोपाधेः गुणान्तर्भावेण साध्यव्यापकत्वभङ्गेऽपि साधनविशिष्टसाध्यव्यापकत्वमन्वतमेवेति भावः ।

नाभावज्ञाने इति, अस्तु तावदेवं तथापि तदभावो मा  
व्यवहारि उपाध्यभावज्ञानाधीनानुमितिः स्यादेव  
उपाधिज्ञानं विनापि, न चैवं । वस्तुतस्तु विशेषादर्शने

वाच्यः प्रमेयत्वादित्यादौ पञ्चधर्मद्रव्यत्वावच्छिन्नसाध्यव्यापके उद्भूत-  
रूपादावव्याप्तिरिति वाच्यं । साधनावच्छिन्नसाध्यव्यापकस्यैतन्मते  
उपाधितया तस्यालक्ष्यत्वात् । सद्भूतौ साध्यादेरुपाधितावारणाय  
‘विशेषणमिति विशेषणत्वं यत्किञ्चित्साधनाधिकरणज्ञावर्त्तकत्वं  
साधनाव्यापकत्वमिति यावत् । निःस्रेहं स्वर्गात् द्रव्यं सत्तादित्यादौ  
करकान्यत्व-रूपान्यत्वादिकमपि लक्ष्यत्वेति न तत्रातिव्याप्तिः ।

वेचित्तु सद्भूतौ साध्यादेः<sup>(१)</sup> साध्याभावविशिष्टसाधनवदवृत्तेरेव  
एतन्मते लक्ष्यतया निःस्रेहं स्वर्गात् द्रव्यं सत्तादित्यादौ करकान्यत्व-  
रूपान्यत्वादेशोपाधितावारणाय ‘विशेषणमिति, विशेषणत्वञ्च साध्या-  
भावविशिष्टसाधनाधिकरणसामान्याज्ञावर्त्तकत्वं साध्याभावविशिष्ट-  
साधनव्यापकीभूताभावप्रतियोगित्वमिति यावत् । धूमवान् वक्त्रेः  
द्रव्यं प्रमेयत्वादित्यादौ तत्तद्घोगोलकान्यत्व-सत्तादिकञ्च न लक्ष्यं  
अतो न तत्राव्याप्तिरित्याहुः ।

‘तदभाव इति सम्बन्धसामान्यावच्छिन्नप्रतियोगिताकतदभाव-  
इत्यर्थः, ‘सिद्धसिद्धिभ्यामिति प्रतियोगिप्रसिद्धप्रसिद्धिभ्यामित्यर्थः,  
‘तद्विषेधानुपपत्तेरिति तदभावस्य सद्भूतावनुपपत्तेरित्यर्थः । ‘याव-

(१) साध्यादेः उपाधितावारणाय इत्यग्निमेयान्वयः ।



सहचारादिसाधारणधर्मदर्शनाद्ब्यभिचारसंशयात् प्र-  
थमदर्शने<sup>(१)</sup> न व्याप्तिनिश्चयः । अथ व्यभिचारसंशयो  
नाव्यभिचारनिश्चयप्रतिबन्धकः ग्राह्यसंशयस्य निश्च-

त्वेति खं यावतां व्यभिचारि स्वाव्यापकं यावदिति यावत्, तावतां  
व्यभिचारि यत्साध्यं तत्सामानाधिकरणरूपमनौपाधिकत्वमित्यर्थः,  
व्याप्तिरित्यनुषज्यते, 'तस्य प्रथममिति तस्य साध्य-साधनसम्बन्धा-  
च्चात्कारत्वव्यापकविषयिताकत्वासम्भवादित्यर्थः । ननु उपाध्यभावतः  
साध्यस्य सामानाधिकरणरूपमनौपाधिकत्वमेव व्याप्तिः उपाध्यभा-  
वस्य व्याप्यतासम्बन्धेन प्रकृतसाधनाव्यापकाभावः स चाधिकरणौ-  
भूतसाध्यस्वरूपतया सकृदर्शनगम्य इत्यखरसादाह, 'किञ्चेति,  
'उपाध्यभावत्वं' उपाध्यभावत्वघटितं । 'विशेषणज्ञानेति इदं नैयायि-  
कमतानुसारेण, मीमांसकमते विशेषणज्ञानसाध्यासाध्यत्वादिति  
ध्येयं । 'प्रथममिति प्रथमदर्शनकाल इत्यर्थः, तथाच येन रूपेण  
ज्ञाता व्याप्तिरनुमित्यङ्गं तद्रूपविशिष्टस्य सहचारदर्शनविषयत्वनियमो  
वाधित एव, व्याप्तिस्वरूपस्य तथात्वन्तु मयापि न निवार्यते विशि-  
ष्टसामानाधिकरणस्य सामानाधिकरणानतिरेकित्वादिति परिश्रे-  
षानुमाने सिद्धसाधनमिति भावः । ननु वस्तुगत्या उपाध्यभावस्य  
ज्ञानमेव कारणं वक्तव्यं तत्र तु नोपाधिज्ञानं हेतुः प्रतियोगिज्ञा-  
नस्य तत्तदभावत्वप्रकारकज्ञानद्वारा तत्तदभावत्वप्रकारकत्ववहारं

याप्रतिबन्धकत्वात् अन्यथा संशयोत्तरं कापि निश्चयो  
न स्यादिति चेत् । न । व्यभिचारसंशयः प्रतिबन्धक इति  
ब्रूमः, किन्तु विशेषादर्शने सति सहचारादिसाधारण-

प्रत्येव हेतुत्वादित्यत आह<sup>(१)</sup>, 'यच्चेति, 'प्रथियोगिज्ञानं', 'प्रतियो-  
गिनः' उपाधेः, 'ज्ञानं', 'व्यवहारहेतुः' उपाध्यभावत्वप्रकारकउपाध्य-  
भावव्यवहारप्रयोजकं, 'नाभावज्ञाने' न स्वरूपेणोपाध्यभावज्ञाने,  
'तदभाव इति, उपाधिज्ञानं विनेत्यादिः, 'उपाध्यभावज्ञानेति,  
'उपाधिज्ञानं विनापि', भवन्मते स्वरूपत उपाध्यभाववत्ताज्ञान-  
सत्त्वात् उपाध्यभावत्वप्रकारकज्ञानं प्रत्येव उपाधिसरण-योग्या-  
नुपलक्षयोर्हेतुत्वस्य पूर्वसुकृत्वादिति भावः । 'न चैवमिति च्छेदः,  
उपाधिज्ञानं विनाप्यनुमितिर्भवतीति न चेत्यर्थः । ननु उपाध्यभा-  
वत्वरूपव्याप्तिप्रकारेण व्याप्तेः सहचारदर्शनविषयत्वनियमो मास्तु  
तथापि उपाधिसरण-योग्यानुपलक्षिसहस्रतं प्रथमदर्शनमेव तद्रूपेण  
व्याप्तिग्रहे हेतुरस्त्वित्यत आह, 'वस्तुतस्त्विति, 'व्यभिचारसंशया-  
दिति उपाधिसंशयादित्यर्थः । परमते या व्याप्तिस्तदभावस्यैव  
व्यभिचारत्वात् 'प्रथमदर्शन इति उपाधिसरणादिसहस्रतप्रथमदर्श-  
नेऽपीत्यर्थः<sup>(२)</sup>, 'न व्याप्तिनिश्चय इति न उपाध्यभावत्वरूपव्याप्ति-

(१) हेतुत्वमित्युक्तत्वादित्यत आह इति ख०, ग० ।

(२) 'प्रथमदर्शनेनेति उपाधिसरणादिसहस्रतप्रथमदर्शनेनापीत्यर्थः  
इति ख०, ग० ।

धर्मादर्शनात् संशयः स्यात् न तु संशयसामग्रीतोनि-  
श्चयइति । किञ्च यद्दीसामग्री यच्च प्रतिबन्धिका विघ्ने-  
षादर्शने तच्च तद्दीरपीति व्यभिचारसंशयोऽपि प्रति-

त्वप्रकारेण व्याप्तिनिश्चय इत्यर्थः । इदमापाततः कोटिद्वयोपस्थि-  
तेरनावश्यकत्वादुपाधिसंग्रहस्यासार्वत्रिकत्वादिति ध्येयं<sup>(१)</sup> । 'व्यभि-  
चारसंग्रहः' उपाधिसंग्रहः, 'अव्यभिचारनिश्चयेति उपाध्यभावनि-  
श्चयेत्यर्थः । परमते उपाध्यभाव एव व्याप्तिः स एवाव्यभिचार इति  
भावः । 'क्षापीति, भवति च स्थाणुर्न वेति संग्रहानन्तरं विघ्नेषादर्शने  
सति अयं स्थाणुरिति निश्चयः पर्वतो वद्धिमान्न वेत्यादिसंग्र-  
हानन्तरं पर्वतो वद्धिमानित्याद्यनुमितिः शाब्दादिश्चेति भावः ।  
'नेति 'ब्रूमइत्यनेनान्वयः, 'संग्रहः स्थादिति उभयकोटिप्रकारकज्ञा-  
नसामग्रीसत्त्वादिति भावः । 'संग्रहसामग्रीत इति संग्रहसामग्र्यां  
सत्यामित्यर्थः, 'निश्चय इति एककोटिमात्रप्रकारकज्ञानमित्यर्थः ।  
संग्रहसामग्र्याः निश्चयप्रतिबन्धकत्वमभ्युपेत्य संग्रहस्यापि प्रतिबन्धकतां  
व्यवस्थापयति, 'किञ्चेति, संग्रहानन्तरं क्षापि निश्चयो न स्यात्  
प्रतिबन्धकत्वसत्त्वाद्दत्त उक्तं 'विघ्नेषादर्शने सतीति । ननु अनुमि-  
तिसामग्री प्रत्यचे प्रतिबन्धिका नानुमितिः प्रत्यचप्रतिबन्धिकेति  
व्यभिचार इति चेत् । न । 'यद्दीत्यनेन विरोधवगादिधिक्-

वक्ष्यकः । एवं भूयोदर्शनमपि संशयकं तर्कत्वनवस्था-  
ग्रस्त एवेति कथं व्याप्तिग्रहः ।

इति श्रीमद्भक्तेशोपाध्यायविरचिते तत्त्वचिन्तामणौ  
अनुमानाख्यद्वितीयखण्डे व्याप्तिग्रहोपायपूर्वपक्षः ।

उक्त्वात्, तथाच मीमांसकमतं दुष्टं, इदानीं नैयायिकमते मीमां-  
सकः<sup>(१)</sup> शङ्कते, 'एवमिति, 'संशयकमिति, साधारणधर्मदर्शनादिति  
भावः । ननु तर्क एव शङ्काविरोधीत्यतश्चाह, 'तर्क इति, 'कथं  
व्याप्तिग्रह इति भवन्मते कथं व्याप्तिग्रह इत्यर्थः ।

इति श्रीमथुरानाथ-तर्कवागीश्वरविरचिते तत्त्वचिन्तामणिरहस्ये  
अनुमानाख्यद्वितीयखण्डरहस्ये व्याप्तिग्रहोपायपूर्वपक्षरहस्यं ।

(१) तथाचेत्यादिः मीमांसक इत्यन्तः पाठः ख-चिह्नितपुस्तके नास्ति ।

## अथ व्याप्तिग्रहोपायसिद्धान्तः ।

अत्रोच्यते व्यभिचारज्ञानविरहसहस्रतं सहचारदर्शनं  
व्याप्तिग्राहकं, ज्ञानं निश्चयः, यद्वा च सा च क्षपिदु-

## अथ व्याप्तिग्रहोपायसिद्धान्तरहस्यं ।

अत्रैव समाधानमाह, 'अत्रोच्यत इति, 'व्यभिचारज्ञानविर-  
हेति व्यभिचारज्ञानविरहः सहचारज्ञानञ्च व्याप्तिग्रहे हेतुरित्यर्थः ।  
न च व्यभिचारज्ञानाभावस्य कुतो व्याप्तिग्रहे हेतुत्वमिति वाच्यं ।  
तज्ज्ञानस्य तदभावज्ञानप्रतिबन्धकतया सति व्यभिचारज्ञाने अ-  
भिचारघटितव्याप्तिग्रहासम्भवेन तदभावहेतुत्वावश्यकत्वादिति भावः ।  
ननु तदभावस्य हेतुत्वेऽपि व्यभिचारज्ञानसत्त्वे व्याप्तिग्रहो दुर्लभ एव  
व्यभिचारज्ञानस्याव्याप्यवृत्तितया व्यभिचारज्ञाने सत्यपि घटाद्य-  
च्छेदनात्मनि तदभावसत्त्वात् । न च समवायसम्बन्धावच्छिन्नप्रति-  
योगिताकव्यभिचारज्ञानाभावसात्त्वानिष्ठतया न हेतुत्वं अपि न  
अवच्छेदकतासम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकव्यभिचारज्ञानाभावः प्र-  
तीरनिष्ठो हेतुः यथावच्छेदकतासम्बन्धेन व्याप्तिग्रहस्य च विशेषणता-  
विशेषसम्बन्धेनावच्छेदकतासम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकव्यभिचारज्ञा-  
नाभाव इति सामानाधिकरण्यं प्रत्यासत्तिरिति वाच्यं । पूर्व

पादिसन्देहात् क्वचिद्विशेषाद्दर्शनसहितसाधारणधर्म्य-  
दर्शनात् । तद्विरहश्च क्वचिद्विषयबाधकतर्कात् क्वचित्

शरीरावयववच्छेदेनोत्पद्यमानव्यभिचारज्ञानोत्पत्तिचणोत्पत्तिक -  
खण्डशरीरावच्छेदेन सति व्यभिचारज्ञाने व्याप्तिग्रहस्य दुर्वारत्वात्  
जन्यं ज्ञानं प्रति चेष्टावच्छेदेनैव शरीरस्य हेतुत्वम्<sup>(१)</sup> महाशरीरनाश्राधि-  
मक्षणे व्यभिचारज्ञानोत्पत्तौ बाधकाभावात् चेष्टावतः शरीरा-  
वयवस्यैव तत्र सत्त्वादिति चेत् । न । व्यभिचारज्ञानस्याव्याप्यवृत्तित्वे-  
ऽपि तद्विशिष्टात्मत्वस्य व्याप्यवृत्तित्वात् तदभावस्यैवात्मानिष्ठतया हेतु-  
त्वात् आत्मत्वस्य तत्र न निविद्यते किन्तु यत्तवावयवस्यैवच्छिन्नव्य-  
भिचारज्ञानविशिष्टाभावत्वेन हेतुत्वम् । एतेन द्रव्यत्वादिमादाय  
विनिगमनाविरहोऽपि प्रत्युक्तः<sup>(२)</sup> । एवं तदत्यन्ताभाव-तद्वदन्योन्या-  
भाव-तदभावव्याप्यादिनिर्णयकाले तद्विशिष्टात्मत्वमेव प्रतिबन्धकं  
तुल्ययुक्तेः<sup>(३)</sup> ।

(१) तथाच चेष्टावदन्यावयवित्वरूपशरीरत्वघटकान्यावयवित्वं प्रयोज-  
नविरहेण जन्यज्ञानत्वावच्छिन्नकार्यतानिरूपितकारणतावच्छेदककोटौ न  
निवेशनीयमिति भावः ।

(२) व्यभिचारज्ञानविशिष्टात्मत्वाभावस्य हेतुत्वे विनिगमनाविरहेण  
व्यभिचारज्ञानविशिष्टद्रव्यत्वाभावस्यापि हेतुत्वापत्तिः आत्मत्व-द्रव्यत्वयोर्द्वयो-  
रेव जातित्वाविशेषादिति समुदिततात्पर्यम् ।

(३) तदन्तर्बुद्धिं प्रति तदत्यन्ताभावादिनिश्चयमात्रस्य प्रतिबन्धकत्वे  
तदत्यन्ताभावादिनिश्चयकालेऽपि घटाद्यवच्छेदेन तावृत्तनिश्चयाभावसत्त्वात्

स्वतः सिद्ध एव, तर्कस्य व्याप्तिग्रहमूलकत्वेनानवस्थेति  
चेत्, न, यावदाशङ्कं तर्कानुसरणात् । यत्र च व्याघातेन  
शङ्कैव नावतरति तत्र तर्कं विनैव व्याप्तिग्रहः ।

इति श्रीमद्भङ्गेभोपाध्यायविरचिते तत्त्वचिन्तामणौ  
अनुमानाख्यद्वितीयखण्डे व्याप्तिग्रहोपायसिद्धान्तः ।

केचित्तु तदत्यन्ताभावनिर्णयादिखले सर्वत्र प्रतिबन्धकतावच्छे-  
दककोटौ घातत्वे तद्वैशिष्ट्यनिवेशापेक्षया लाघवात् जन्यज्ञानं  
प्रत्येव चेष्टावदन्यावयवित्वेन हेतुत्वमतो महाशरीरनाश्राग्निमक्षणे  
व्यभिचारादिज्ञानासंशवाच्चोक्तातिप्रसङ्गः । अन्यावयवित्वञ्च समवा-  
यादिसम्बन्धेन द्रव्यवद्भिन्नत्वं । न च तथापि महाशरीरनाश्राग्नि-  
मक्षणे व्यभिचारादिज्ञानोत्पत्तौ बाधकाभावेन तदग्निमक्षणोत्पन्न-  
खण्डशरीरावच्छेदेन सति व्यभिचारादिज्ञाने व्याप्यादिग्रहोदुर्वार-  
इति वाच्यम् । तत्र व्याप्यादिग्रहखण्डत्वात् क्षणैकविलम्बेन तत्र  
व्याप्यादिग्रहस्य तवापि सम्मतत्वात् । अस्तु वा शरीरस्य उक्तरूपेण  
कार्यसहवर्त्तितया जन्यज्ञानहेतुत्वं तस्मात् समानावच्छेदकत्वप्रत्या-  
सत्त्वेव व्यभिचारज्ञान-बाधज्ञानादेः प्रतिबन्ध-प्रतिबन्धकभावः । न  
चैवं यत्र परपुरप्रवेशाधीनमात्मद्वयोरेकं शरीरं तत्रैकस्मिन्नात्मनि

तदन्ताबुद्धिप्रसङ्गः अतः तदन्ताबुद्धिं प्रति तदत्यन्ताभावादिनिश्चयविशिष्टा-  
त्मत्वस्यैव प्रतिबन्धकत्वं न तु तादृशनिश्चयमात्रस्येति भावः ।

तच्छरीरावच्छेदेन व्यभिचार-बाधादिज्ञानसत्त्वेऽन्यस्मिन्नात्मन्यपि त-  
 शरीरावच्छेदेन व्याप्यादिज्ञानं न स्यादिति वाच्यम् । समवाय-  
 घटितसामानाधिकरणप्रत्यासत्त्या प्रतिबन्ध-प्रतिबन्धकभावेऽपि यत्र  
 कायव्यूहाधीनं एकस्यैवात्मनो नानाशरीरं तत्र एकशरीरावच्छेदेन  
 तदात्मनि व्यभिचारादिज्ञानेऽन्यशरीरावच्छेदेनापि तदात्मनि व्या-  
 प्यादिज्ञानं न स्यादित्यस्य दुर्बुद्धरत्वात् द्रष्टापत्तेश्चोभयत्र तुल्यत्वा-  
 दित्याहुः ।

नव्यास्तु खण्डशरीरोत्पत्तिकालोत्पत्तिकव्यभिचारादिज्ञानस्याप्य-  
 च्छेदकतासम्बन्धेन खण्डशरीरे वृत्तौ बाधकाभावान्नोक्तापत्तेः प्रसङ्गः<sup>(१)</sup> ।  
 न चावच्छेदकतासम्बन्धेन ज्ञानोत्पत्तौ तादात्म्येन सम्बन्धेन शरीरस्य  
 हेतुत्वात् खण्डशरीरावच्छेदेनाव्यवहितपूर्वकाले तादात्म्यसम्बन्धेन  
 शरीरविरहात् कथं शरीरोत्पत्तिकालोत्पत्तिकव्यभिचारादिज्ञानं  
 खण्डशरीरे स्यादिति वाच्यम् । अत्र च्छेदकतासम्बन्धावच्छिन्नोत्पत्ते-  
 रेव कार्यतावच्छेदकसम्बन्धतया समानकालोत्पन्नव्यभिचारादिज्ञा-  
 नस्य खण्डशरीरेऽवच्छेदकतासम्बन्धेनोत्पत्त्यसम्भवेऽपि तेन सम्बन्धेन  
 स्थितौ बाधकाभावात् दण्डादिशून्यदेशे संयोगेन घटादिसत्त्ववत्  
 परपुरप्रवेशस्यलेऽपीष्टापत्तिरेवेति प्राहुः ।

नवस्तु व्यभिचारज्ञानाभावस्य हेतुत्वं तथापि सहचारज्ञानस्य  
 हेतुत्वे मानाभावः । न च व्याप्तेः सहचारघटितत्वेन विशेषणज्ञानतया  
 तत् हेतुरिति वाच्यम् । व्याप्तिविशेष्यकृत्याप्तिग्रहे सहचारस्य विशेष्य-

(१) नोक्तातिप्रसङ्ग इति ख०, ग० ।



त्वात् । न च स्वतन्त्रान्वय-व्यतिरेकाभ्यां तदपि स्वातन्त्र्येण हेतुरिति वाच्यं । स्वतन्त्रान्वय-व्यतिरेकानुविधानस्यैवाप्रसिद्धेः । न हि द्वतरकारणसमवधाने सहचारदर्शनविलम्बेन क्वचिद्वाप्तिग्रहविलम्बमीचामहे । अथ विरुद्धस्थले सहचारभ्रमेण व्यापकत्वभ्रमजननात् सामान्यतः व्यापकताग्रहत्वावच्छिन्नं प्रति सहचारज्ञानस्य हेतुत्वं कल्प्यते लाघवात् अतएव व्याप्तिविशेष्यकग्रहस्थलेऽपि सहचारज्ञानमावश्यकमिति चेत् । न । विरुद्धस्थले सहचारभ्रमस्य व्यापकत्वभ्रमजनकत्वासिद्धेः पौर्वापर्यभावस्य च सामग्रीपौर्वापर्याधीनत्वात् । अत एव व्यतिरेकसहचारज्ञानेनान्वयव्याप्तिज्ञानजननात् लाघवात् सामान्यत एव सहचारज्ञानं व्याप्तिज्ञानत्वावच्छिन्नं प्रति हेतुरित्यपि परास्त्वं तस्यैवा-सिद्धेः । अन्य-व्यतिरेकसहचारज्ञाननिष्ठानुगतकारणतावच्छेदकस्य निर्वन्तुमशक्यत्वेन सामान्यतः कारणत्वावकाशेति । मैवम् । सहचारदर्शनपदस्य दृश्यतेऽनेनेति व्युत्पत्त्या सहचारेन्द्रियसन्निकर्षपरत्वात्, तद्धेतुत्वाभिधानञ्च व्याप्तिप्रत्यक्षाभिप्रायेण । यद्वा सहचारदर्शनं सहचारज्ञानमेव तद्धेतुत्वाभिधानञ्च व्याप्तेरुपनीतज्ञानाभिप्रायेण<sup>(१)</sup> तत्र उपनयविधया तस्य हेतुत्वात् । न चैवं व्याप्तिप्रत्यक्षे सहचारेन्द्रियसन्निकर्षादिवज्वाप्तिघटकपदार्थान्तरेन्द्रियसन्निकर्षादिरपि हेतुः स कथं नोक्त इति वाच्यं । स्वतन्त्रेऽस्य पर्यनुयोगानर्हत्वात् । अन्यथा व्यभिचारज्ञानविरहवज्वाप्तिघटकपदार्थान्तराभावज्ञानविरहो हेतुः स कथं नोक्त इत्यपि पर्यनुयोगापत्तेरिति ।

(१) व्याप्तेरुपनीतज्ञानाभिप्रायेणेति ख०, ग० ।

नशास्त्रु सद्धारपदमत्र हेत्वभावयोः सद्धारपरं, तज्ज्ञानञ्च  
विशेषज्ञानविधया व्याप्तिज्ञानमात्रे हेतुरिति प्राडः ।

निम्नास्तु व्याप्तिग्राहकमित्यस्य व्याप्तिप्रकारकज्ञानजनकमित्यर्थः,  
तथाच सद्धारज्ञानं विशेषज्ञानविधया हेतुरित्याडः ।

भट्टाचार्यास्तु धूनादिव्यापकवद्भिः प्रयुक्तानाधिकरणवृत्तिधूमत्वादिकं  
व्याप्तिः तादृशप्रयुक्तानाधिकरणमात्रस्य रायभादिसाधारण्यात् ।  
तथाच व्याप्तिग्रहमात्र एव सद्धारज्ञानं विशेषज्ञानविधया हेतु-  
रिति<sup>(१)</sup> मणित्तोऽभिप्राय इति प्राडः ।

ननु 'व्यभिचारज्ञानविरहेत्यत्र ज्ञानं निश्चयः प्रकृता वा नाद्यः  
व्यभिचारसन्देहसत्त्वेऽपि व्याप्तिनिश्चयापत्तेः<sup>(२)</sup>, नाप्यः व्यभिचारनिश्च-  
यसत्त्वे व्याप्तिनिश्चयोत्पत्त्यापत्तेरित्यत आह, 'ज्ञानमिति, तथाच  
व्यभिचारज्ञानसामान्याभावो हेतुरिति भावः । न च संशयसाधारण-  
व्यभिचारज्ञानाभावस्य हेतुत्वे साध्याभावांशे सन्देहाकारव्यभिचार-  
ज्ञानसत्त्वेऽपि व्याप्तिज्ञानं न सादिष्टापत्तौ च पक्षे साध्यसन्देहदृश्यायां  
व्याप्तिप्रशंसितिरिति वाच्यं । साध्याभावांशे निश्चयात्प्रक-वृत्तित्वांशे  
सन्देह-निश्चयसाधारणव्यभिचारज्ञानसामान्याभावस्य हेतुत्वात्<sup>(३)</sup>  
इदञ्च प्राचीनमतानुसारेण ।

(१) हेतुव्यापकसाध्यसमानाधिकरणवृत्तिहेतुतावच्छेदकस्य व्याप्तित्वे व्या-  
प्तिविशेष्यकज्ञानेऽपि साध्यसामानाधिकरणस्य विशेषयतयैव भगान्त्  
सर्वत्र व्याप्तिज्ञाने विशेषज्ञानविधया सद्धारज्ञानं हेतुरिति तात्पर्यं ।

(२) व्याप्तिनिश्चयानुदयादिति ख०, ग० ।

(३) तथाच साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नप्रकारत्वात्निरूपिता या साध्या-

वस्तुतस्तु ग्राह्यसंग्रहस्याप्रतिबन्धकत्वाद्बुद्धिभिचारनिर्णयाभाव एव हेतुः । न चैवं व्यभिचारसन्देहसत्त्वेऽपि व्याप्तिग्रहापत्तिरिति वाच्यं । सन्देहात्मकव्याप्तिग्रहे दृष्टापत्तेः सन्देहस्यैवोभयकोट्युपस्थितिरूपतया उभयकोटिविशिष्टबुद्धिसामग्रीसत्त्वेन तद्भावाप्रकारकतत्प्रकारकज्ञानरूपस्य तन्निश्चयस्थानुत्पत्तेः । न च यत्र व्यभिचारसंग्रहोत्पत्ति-  
 चणे तद्द्वितीयचणे वा दोषनाशस्तत्र व्यभिचारसंग्रहसत्त्वेऽपि व्याप्ति-  
 निश्चयापत्तिः दोषाभावेनोभयकोटिविशिष्टधीसामग्रीविरहादिति वाच्यम् । तादृशस्थले मानाभावात्, विषयान्तरसञ्चारादेर्विशे-  
 षदर्शनादेश्च विरहे सन्देहोत्तरं धारावाहिकसन्देहनियमस्य सर्वैरेव  
 स्वीकारादिति तत्त्वं । 'सा च शङ्का च,' 'साधारणधर्मोति उभय-  
 कोटिसहचरितधर्मोत्यर्थः । 'तद्विरहश्चेति शङ्काया अनुत्पत्तिश्चेत्यर्थः,  
 उत्पन्नशङ्कायाः खोत्तरोत्पन्नगुणादेव नाशसंभवेन तत्र तर्कसापे-  
 चाभावात् । 'विपचेति, 'विपचे' व्यभिचारग्रहे, 'बाधकात्' प्रति-  
 बन्धकात्तर्कादित्यर्थः । स च धूमो यदि वक्रिव्यभिचारी स्याद्वक्रि-  
 जन्यो न स्यात् इत्यादिरूपः, प्रतिबन्ध-प्रतिबन्धकभावश्च फलव-  
 लाद्विरोधिविषयत्वासंभवेनापि तदापादककापत्तित्वेन तद्विशिष्ट-  
 बुद्धित्वेन, तदापादककापत्तित्वन्तु धूमलिङ्गकत्वादिवक्तिर्वाच्यमिति

भावत्वावच्छिन्नप्रकारतानिरूपितविशेष्यता तदभिन्ना या निरूपितत्वसम-  
 न्धावच्छिन्नप्रकारता तन्निरूपिता या वृत्तित्वावच्छिन्नविशेष्यता तद-  
 भिन्नप्रकारतानिरूपिता या हेतुतावच्छेदकावच्छिन्नविशेष्यता तद्विशिष्ट-  
 ज्ञानाभावस्य हेतुत्वमिति भावः ।

बोधं । 'खतः सिद्ध इति तर्कं विना अन्येन प्रयुक्त इत्यर्थः, अन्यस्य संग्रहजनकदोषाभावत्कार्कतिरिक्तो वक्ष्यमाणप्रतियन्धकशेत्वन्यदेतत् ।

केचित्तु 'खतः सिद्ध इति कोटिद्वयोपस्थित्यभावप्रयुक्त इत्यर्थः । न च व्याप्तिग्रहजनये व्यभिचार-तदभावोभयकोच्युपस्थितिरावश्यकौ अव्यभिचारस्य विशेषणत्वेन तज्ज्ञानत्यावश्यकतया तस्यैवोभयकोटि-ज्ञानत्वादभावबुद्धेः प्रतियोगिविषयकत्वात् खतस्यविशेषणज्ञान-कारणत्वस्य दूर एव निरासादिति<sup>(१)</sup> वाच्यं । प्राचीननये साधारणधर्मादिदर्शनजन्यकोच्युपस्थितेरेव संग्रहजनकत्वात् न तु कोच्युप-स्थितिमात्रस्येत्याहुः ।

ननु यत्र तर्केण श्रद्धानिवृत्तिः तत्रागवत्या तर्कसूचीभूतव्याप्ति-ज्ञाने श्रद्धानिवृत्तये तर्कान्तरस्य एवं तन्नूतभूतव्याप्तिज्ञानेऽप्यपरस्य<sup>(२)</sup> अपेक्षणीयत्वादित्याशङ्कते, 'तर्कस्येति, 'व्याप्तिग्रहमूलकत्वेन' व्याप्ति-ग्रहजन्यत्वेन, 'यावदाशङ्कमिति तर्काभावेतरसकलश्रद्धाकारणं यावत्तावत्कालं, 'तर्कानुसरणात्' यत्तर्कपूर्वं तद्विघटकश्रद्धायास्त-र्काभावेतरसकलकारणसम्पत्तिस्तत्तर्कपूर्वमेव तर्कान्तराभ्युपगमादिति यावत् । 'यत्र चेति यस्य च तर्कस्य चेत्यर्थः, पूर्वमिति शेषः, 'व्याघातेन' व्याघातादेव तर्काभावातिरिक्तकारणप्रतियोगिकाभा-

(१) निराहृतत्वादित्येति ख०, ग०, घ० ।

(२) तर्कं प्रति व्यापाद्यव्याप्यापादकवत्तानिश्चयत्वेन कारणत्वात् व्यापादके व्यापाद्यव्याप्तिसंग्रहनिवृत्त्यर्थं तर्कान्तरं अपेक्षणीयं एवं तत्र तत्रापी-त्यनवस्येति भावः ।

वादेवेति<sup>(१)</sup> यावत्, तच्चातिरिक्तं संशयजनकदोषो वक्ष्यमाणप्रति-  
बन्धकाद्यभावश्च, 'शक्यैव नावतरति' तद्विघटकशक्यासाचं नावतरति,  
यत्तर्कपूर्वं तद्विघटकशक्यासान्याभावस्तर्काभावातिरिक्तकारणप्रति-  
योगिकाभावप्रयुक्तो न तु तर्कप्रयुक्त इति तु समुदितार्थः, 'तत्र'  
तर्कं, 'तर्कं विनैव व्याप्तिग्रह इति, जनक इति शेषः, तर्कं विनैव  
व्याप्तिग्रहस्तर्कजनक इत्यर्थः ।

इति श्रीमधुरानाथतर्कवागीश्वरिचिते तत्त्वचिन्तामणिरहस्ये  
अनुमानाख्यद्वितीयखण्डरहस्ये व्याप्तिग्रहोपायरहस्यं ॥०॥

(१) तर्काभावातिरिक्तं यत् संशयजनकं तद्भावादेवेत्यर्थः ।

## अथ तर्कः ।

तथाहि धूमो यदि वज्रसमवहिताजन्यत्वे सति  
वज्रसमवहिताजन्यः स्यान्नोत्पन्नः स्यादित्यप किं

## अथ तर्करहस्यं ।

यत्तर्कं विघटकश्रद्धासामान्यं तर्काभावातिरिक्तप्रतियोगिकाभा-  
वादेव पूर्वं नावतरति तं तर्कमाह, 'तथाहीति, 'धूम इति धूमो  
यदि वज्रसमवहितजन्यभिन्नत्वविशिष्ट-वज्रसमवहितजन्यभिन्नत्ववान्  
एतत् उत्पन्नाभाववान् स्यादित्यर्थः, विशिष्टान्तं द्वितीयभिन्नत्व-  
विशेषणं । जन्यं हि जगति वस्तुद्वयं वज्रसमवहितजन्यं तत्समव-  
हितजन्यं च तत्राद्यज्ञेदुभयजन्य एव न स्यात्तदा जन्य एव न  
स्यादिति भावः ।

ननु नायं वज्रि-धूमव्याप्तिग्रहोपयोगी वज्रिव्यभिचारित्वापा-  
दककर्तृत्वैव तथात्वात् । न चातथात्वेऽपि सतिविरह इति वाच्यं ।  
तादृशवज्रि-धूमव्याप्तिग्राहककर्तृक एव अनवस्थाप्रदर्शनादिति<sup>(१)</sup> चेत् ।  
न । तस्यापि परम्परया वज्रि-धूमव्याप्तिग्रहोपयोगित्वात्, तथाहि

(१) अनवस्थादानादिति ग० ।

धूमोऽवगृहेरेव भविष्यति कचिदग्निं विनापि भवि-

धूमो यदि वह्निव्यभिचारो स्यात् वह्निजन्यो न स्यादिति वह्नि-  
धूमव्याप्तिग्राहकस्वर्कस्तत्र च वह्निजन्यत्वरूपाद्यव्यतिरेकनिश्चयः<sup>(१)</sup>  
हेतुः बाधबुद्धेर्तार्किकबुद्धौ<sup>(२)</sup> हेतुत्वात् तस्मिन्साम्य-व्यतिरेकाभ्यां  
प्रत्यक्षतो वह्निजन्यत्वनिर्णये वह्निजन्यत्वप्रज्ञा विरोधिनी संशय-  
सामग्रीसम्पादकत्वात्<sup>(३)</sup> तच्छब्दाविरोधी चायं तर्क इति, अत्र च  
वह्निजन्यत्वदग्नायां वह्निमद्देशोत्पत्ते घटादौ मूलशैथिल्यवारणाय<sup>(४)</sup>  
विशिष्टान्तं द्वितीयभिन्नत्वविशेषणं, तत्प्रतियोगिविशेषणत्वे तद्दोष-  
तादवस्थ्यात्, वह्निं विनानुत्पन्नमानत्वं तदर्थः,<sup>(५)</sup> स्वसमानाधिकरण-  
वह्निमदन्यत्वाद्यवहितपूर्वचरणकं यद्यत्तदन्यत्वमिति तु निष्कर्षः,  
स्वपदमन्वत्वप्रतियोगिपरं, अन्यथा<sup>(६)</sup> दूदानीकनघटादेः सामग्री-

(१) वह्निजन्यत्वाभावरूपापाद्याभावस्य वह्निजन्यत्वात्मकस्य निश्चय इत्यर्थः।

(२) तार्किकबुद्धौ तर्कात्मकबुद्धौ इत्यर्थः।

(३) ननु संशयनाशोत्तरं वह्निजन्यत्वनिश्चय इत्यत आह संशयसामग्रीति  
संशयस्य संशयसामग्रीसम्पादकत्वादिति तदर्थः तथाच यावत् तर्का-  
दिरूपप्रतिबन्धकसमवधानं न भवति तावत् संशयधारैव उत्पत्त्यत-  
इति भावः।

(४) 'मूलं' व्याप्तिः, तस्याः 'शैथिल्यं' व्यभिचारः, तदारण्येतिवर्थः।

(५) 'तदर्थः' सत्यन्तार्थ इत्यर्थः।

(६) 'अन्यथा' सामानाधिकरण्यानिवेशे।

सति चरेत्तु एव बोध्यत्वत इति शब्दा स्यात् सर्वत्र

कालेऽपि कुत्रचित् देशे वल्लिसत्त्वेन मूलश्रैथिल्यतादवस्थान्  
महाप्रलये मानाभावात्<sup>(१)</sup> खण्डप्रलयेऽपि ब्रह्माण्डान्तरे वल्लि-  
सत्त्वात् सामग्रीमात्रस्यैव वल्ल्यधिकरणचणवृत्तित्वेनाप्रसिद्धिप्रसङ्गाच्च ।  
न तु वल्ल्यघटितसामग्र्यजन्यत्वं तत् धूमे प्राक् तदनिश्चयात्  
आपाद्यावेनापादकाभावसाधने विशेष्यविरहप्रकारकसिद्धयर्थं त-  
द्विषयत्वापेक्षितत्वात् । वल्ल्यसमवह्निताजन्ये वल्लिजन्यालोकादौ  
मूलश्रैथिल्यवारणाय विशेष्यदत्तं । न च चरमसमवहितपदं व्यर्थं  
वल्लिजन्यत्वाभावस्यैव सम्यक्त्वादिति वाच्यं । वल्ल्यजन्ये वल्लिसमव-  
धाननियतोत्पत्तिके घटादिविशेषे मूलश्रैथिल्यापत्तेः । वल्लिसमव-  
हितजन्यत्वञ्च वल्लिकात्मीनसामग्रीजन्यत्वं खसमानाधिकरणवल्लि-  
मत्त्वाव्यवहितपूर्वचणकत्वं इति तु निष्कर्षः । अन्यथा इदानी-  
न्तत्पजन्यमात्रस्यैव वल्ल्यधिकरणचणवृत्तिसामग्रीजन्यतया पचीभूत-  
धूमेऽपि<sup>(२)</sup> तादृशसामग्रीजन्यत्वनिश्चयसत्त्वेन तर्कवैफल्यापत्तेः । न तु  
वल्लिघटितसामग्रीजन्यत्वं तत् तथा सति वल्ल्यजन्ये वल्लिसमवधान-  
नियतोत्पत्तिकघटादिविशेषे मूलश्रैथिल्यापत्तेः । वल्लिसमानाधि-  
करणत्वे सतौत्यनेन चापाद्यप्रतियोगि विशेषणौच्यन्तेन वल्लिव्यधि-

(१) महाप्रलयाङ्गीकारे तु चरमध्वंसे तादृशान्यत्वप्रतियोगित्वं सम्भव-  
तीति भावः ।

(२) धूमे तादृशसामग्रीजन्यत्वं वल्लिजन्यत्वस्वरूपमेवेत्यभिप्रायः ।



स्वाप्न्यायायातः स्यात्, यदि हि गृहीतान्वय-व्यति-

करणे वङ्गिजन्यरूपादौ वङ्गिव्यधिकरणे घटादौ च मूलश्रे-  
थिल्यं । न च पक्षतावच्छेदकविशिष्टे आपाद्याभावेनापादका-  
भावसाधने नियमतो यद्गुर्मावच्छिन्नं सिद्ध्यति तद्गुर्मावच्छिन्ना-  
भावकोटिकसंश्रयं प्रत्येव तर्का विरोधौति नियमः प्रकृते तु  
धूमे उत्पन्नत्वाभावाभावेनोत्पन्नत्वेन वङ्गसमवहितजन्यभिन्नत्ववि-  
शिष्टवङ्गिसमवहितजन्यभिन्नत्वस्यापादकीभूतत्वाभावसाधने वङ्गिज-  
न्यभिन्नत्वाभावरूपस्य विशेष्याभावस्य न सिद्धिः<sup>(१)</sup> विशिष्टाभावस्या-  
तिरिक्तस्यैव सिद्धेः तथाच कथमस्य वङ्गिजन्यत्वाभावकोटिकसंश्रय-  
विरोधित्वमिति वाच्यं । विशिष्टाभावस्य विशेषण-विशेष्याभावान-  
तिरिक्ततया वङ्गिजन्यभिन्नत्वाभावरूपस्य विशेष्याभावस्य सिद्धेः ।  
अथ तथापि न वङ्गिजन्यभिन्नत्वाभावत्वरूपेण वङ्गिजन्यत्वस्य  
सिद्धिरनुमितेर्यापकतावच्छेदकप्रकारकत्वमिच्छनेन विशिष्टाभावत्वेनैव  
तत्सिद्धेः । न च विशेषणाभाववाधनिश्चयसहकाराभ्यापकतानवच्छेद-  
केनापि विशेष्याभावत्वेन तत्सिद्धिरिति वाच्यं । तथापि पक्षे विप-  
र्ययानुमाने<sup>(२)</sup> पूर्वं विशेषणाभाववाधप्रतिसन्धानानावश्यकतया निय-  
मतत्वेन रूपेणसिद्धेरिति चेत् । न । वङ्गसमवहिताजन्यत्वेन पक्षस्यापि

(१) वङ्गिजन्यभिन्नत्वाभावत्वावच्छिन्नवङ्गिजन्यत्वस्य न सिद्धिरिति ख०,  
ग०, घ० ।

(२) आपाद्याभावेनापादकाभावानुमाने इत्यर्थः ।

रेकं हेतुं विना कार्यात्पत्तिं शक्येत तदा स्वयमेव

विशेषणीयत्वात् तथाच पक्षतावच्छेदकावच्छिन्ने विपर्ययानुमाने  
पूर्वं विशेषणाभाववाधप्रतिसन्धानस्यावश्यकतया नियमतो वङ्गि-  
जन्यभिन्नत्वाभावत्वरूपेण वङ्गिजन्यत्वसिद्धिरप्रत्यूहेति सम्प्रदायविदः ।  
तदसत् वङ्गिसमवहितजन्यत्वस्यैव विशेष्यतया बाधसहकारेण  
तदभावत्वेन तदभावस्य वङ्गिसमवहितजन्यत्वरूपस्य सिद्धावपि वङ्गि-  
जन्यभिन्नत्वाभावत्वरूपेण वङ्गिजन्यभिन्नत्वाभावस्य वङ्गिजन्यत्वरूप-  
सासिद्धेर्वङ्गजन्यत्वापि वङ्गिजन्यत्वान्तरीयकस्य<sup>(१)</sup> घटादेः वङ्गिसम-  
वहितजन्यतया वङ्गिसमवहितजन्यत्व-वङ्गिजन्यत्वथोरत्यन्तं भेदात्  
वङ्गिजन्यत्वासिद्धौ च कुतोऽस्य वङ्गिजन्यत्वसंग्रहप्रतिबन्धकत्वं । न  
च धूमो यदि संयोगसम्बन्धावच्छिन्नोत्पत्तिबन्धनेन वङ्गिव्यभिचारी  
स्यात् वङ्गिसमवहितजन्यो न स्यादिति तर्को वङ्गि-धूमव्याप्तिग्रहो-  
पयोगी तत्र च बाधनिश्चयविधया वङ्गिसमवहितजन्यत्वनिश्चयो  
हेतुसामिश्चयविरोधिना वङ्गिसमवहितजन्यत्वसंग्रहस्य निवर्तकतयै-  
वास्य वङ्गि-धूमव्याप्तिग्रहोपयोगित्वसम्भवेन वङ्गिजन्यत्वसंग्रहाप्रतिब-  
न्धकत्वेऽपि न क्षतिरिति वाच्यं । स्वसमागाधिकरणवङ्गिमत्स्वाव्यव-  
हितपूर्वक्षणकत्वरूपस्य वङ्गिसमवहितजन्यत्वस्य धूमे निश्चितत्वेन  
तत्संग्रहनिवृत्त्यर्थं तर्कवैफल्यात् धूमे तन्निश्चयासत्त्वे तु वङ्गन्वय-  
व्यतिरेकानुविधायित्वनिश्चयस्य सत्यन्तद्वयसंग्रहप्रतिबन्धकत्वस्य वक्ष्य-  
माणसाधकतत्वापत्तेः निरुक्तावङ्गिसमवहितजन्यत्वस्यैव वङ्गन्वय-व्यति-

(१) वङ्गिसमवधाननियतोत्पत्तिकस्येत्यर्थः ।

धूमार्थं वद्रेः तृस्यर्पं भोजनस्य परप्रतिपत्त्यथ शब्दस्य  
चापादानं नियमतः कथं कुर्यात् ।

रेकानुविधायित्वरूपत्वात् । किञ्च पक्षतावच्छेदकविशिष्टे आपाद्या-  
भावेनापादकाभावसाधने यद्दूर्ममात्रविधेयतावच्छेदकसिद्धिर्भवति  
तद्दूर्मावच्छिन्नाभावकोटिकसंग्रहं प्रत्येव तर्का विरोधीत्येव नियमः,  
अन्यथा महत्त्व-दीर्घत्वेतरपरिमाणाभाववान् घटोयदि परिमाणवान्  
स्यात् द्रव्यं न स्यादित्यस्यापि घटो महान्न वेत्यादिसंग्रहप्रतिबन्धक-  
त्वापत्तिः । बाधसहकारेण विपर्ययाद्युद्याने महत्त्वतावच्छिन्नस्य  
दीर्घत्वतावच्छिन्नस्य च सिद्धेः, तथाच प्रकृते बाधसहकारेण व्यापक-  
तानवच्छेदकीभूतेन विशेष्याभावत्वेन सिद्धावपि न तन्मात्रप्रका-  
रेण सिद्धिः व्यापकतावच्छेदकीभूतेन विशिष्टाभावत्वेनापि विशेष-  
णाभाव-विशेष्याभावयोः सिद्धौ बाधकाभावादिति वद्विजसमवहित-  
जन्यत्वसंग्रहं प्रत्येव कुतोऽस्य प्रतिबन्धकत्वं ।

नव्यास्तु वद्विजसमवहिताजन्यः स्यादित्यत्र वद्विजसमवहितजन्यत्वं  
वद्विजन्यत्वमेव वक्तव्यं, सत्यन्तश्च आपाद्यकोटिप्रतियोगिविशेषणं  
वक्तव्यं, तथाच धूमो यदि वद्विजन्यत्वाभाववान् स्यात् वद्विजसमवहि-  
ताजन्यत्वविशिष्टस्योत्पन्नत्वस्याभाववान् स्यादित्याकारकत्वार्कः, अत्र  
घटादौ मूलश्रैथिल्यवारणायापाद्ये विशिष्टान्तं प्रतियोगिविशेषणं  
न त्वभावविशेषणं घटादौ मूलश्रैथिल्यतादवस्थापत्तेः<sup>(१)</sup> तदर्थश्च

(१) आपादके आपाद्याभाववृत्तित्वरूपस्य व्यभिचारस्य तादवस्थापत्ते-  
रित्यर्थः ।

उक्त एव, न तु वङ्गिमङ्गिजदेशोत्पत्तिकान्यत्वं तत्<sup>(१)</sup> वङ्गिमति  
 वङ्गेः पूर्वमुत्पन्ने रासभादौ व्यभिचारापत्तेः । अजन्ये मूलग्रैथिल्य-  
 वारणाय विग्रेथ्यं<sup>(२)</sup> । न च वङ्गजन्ये वङ्गिसमवधाननियतोत्पत्तिके  
 घटादिविग्रेषे मूलग्रैथिल्यमिति वाच्यं । उत्पन्नत्वं हि वङ्गसम-  
 वहितवङ्गि-तत्संयोगेतरयावत्कारणाधिकरणचरणकत्वं, नान्तरीयके  
 उक्तमूलग्रैथिल्यवारणाय वङ्गसमवहितेति चणविग्रेषणं स्वसमाना-  
 धिकरणवङ्गिमदन्यत्वं तदर्थः, वङ्गिनान्तरीयकस्य यावत्कारणा-  
 धिकरणचणसु न वङ्गिमदन्यः तथा सति वङ्गिं विनापि तदुत्प-  
 त्त्त्यापत्तेः, न हि यावत्कारणसत्त्वे कार्यविलम्बः, पक्षीभूते धूमे  
 दृष्टापत्तेः महाप्रलये मानाभावात् खण्डप्रलयेऽपि ब्रह्माण्डान्तरे  
 वङ्गिसत्त्वादसिद्धेर्वारणाय स्वसमानाधिकरणेति वङ्गिविग्रेषणं, वङ्ग-  
 समवहिताजन्यत्वविशिष्टस्य वङ्गसमवहितयावत्कारणाधिकरणच-  
 णकत्वसाप्रसिद्धत्वाद्द्वि-तत्संयोगेतरेति यावत्कारणविग्रेषणं, इत्यञ्च  
 धूमे एव प्रसिद्धिः, दण्डादियत्किञ्चित्कारणाधिकरणचणस्य वङ्गस-  
 मवहितत्वान्तरीयकघटविग्रेषादौ मूलग्रैथिल्यतादवस्थ्यात् याव-  
 दिति । न च वङ्गजन्ये वङ्गभिघातजाततण्डुलादिकर्मणि पाक-  
 जरूपादिनाशे च व्यभिचार इति वाच्यं । संयोगेन स्वसमानाधि-  
 करणस्य उत्पन्नत्वघटकवङ्गसमवहितत्वघटकतया भेदकूटस्यापाद्यस्य

(१) वङ्गसमहिताजन्यत्वमित्यर्थः ।

(२) उत्पन्नत्वमिति तदर्थः, वङ्गसमवहितजन्यभिन्नत्वविशिष्टाभावनि-  
 वेशे तादृशभिन्नत्वविशिष्टगगनत्वादिक्रमादाय व्यभिचारः स्यादत-  
 उत्पन्नत्वपदमिति भावः ।

तत्रापि सत्त्वात् । ननु तथापि आपाद्यप्रतियोगिनो विशिष्टस्या-  
 प्रसिद्धिः धूमावयव-तदुभयसंयोग-धूमप्रागभावघटिततद्भूमौययावत्-  
 कारणस्य धूमोत्पत्त्यव्यवहितप्राक्चण एव सत्त्वेन तदानीं वङ्गेरपि  
 कारणतया आवश्यकत्वेन धूमौयवङ्गि-तत्संयोगेतरयावत्कारण-  
 धिकरणचणस्यापि वङ्गसमवहितत्वाभावाद्भूमेऽपि विशिष्टप्रसिद्ध-  
 सम्भवात्<sup>(१)</sup> । न च वङ्गिविरहेऽपि तदुत्पन्नधूमद्व्यणुकानामेव परस्पर-  
 संयोगकमेण धूमोत्पादसम्भवात् न तदानीं वङ्गेरावश्यकत्वं  
 धूमनिष्ठजातिविशेषस्यैव वङ्गि-तत्संयोगजन्यतावच्छेदकतया धूमं  
 प्रति तयोर्थ्यभिचाराभावात्तथाच तादृग्धूम एव प्रसिद्धिरिति  
 वाच्यं । तादृग्धूमस्य घटादितुल्यतया तत्र सत्यन्तदलाभावेनैव  
 विशिष्टप्रसिद्धसम्भवात् । न च यावत्कारणपदेन संयोगसम्बन्धाव-  
 च्छिन्ननिष्ठजन्यताप्रतियोगिककारणताश्रयो यावान् विवचणीयः  
 भेदकूटञ्चापाद्यं तथाच धूमे एव प्रसिद्धिरिति वाच्यं । यस्य  
 नान्तरौचकस्य घटविशेषादेः संयोगसम्बन्धावच्छिन्नजन्यताप्रतियो-  
 गिककारणताश्रयो दण्डादिर्यावान् वङ्गनधिकरणकाले वर्तते केव-  
 लसमवयवसंयोगमात्रं वङ्गधिकरण एव काले जातं तादृग्गान्तरौचके  
 व्यभिचारापत्तिरिति । मैवं । यत्र धूमावयवद्वयोत्पत्तिर्वङ्गेर्नाश्रये-  
 त्येकः कालः ततो धूमावयवद्वयसंयोगः तदनन्तरं न वङ्गजन्य-  
 तावच्छेदकान्तधूमोत्पत्तिः तत्र वङ्गि-तत्संयोगयोः साक्षात्  
 हेतुत्वेन तद्विरहात् अपि तु वङ्गन्तरोत्पत्तिस्तत्संयोगोत्पत्ति-

(१) विशिष्टस्याप्रसिद्धिरिति म० ।

स्ततः पूर्वोत्पन्नधूमावयवद्वयसंयोगाद्बहिर्जन्यविलक्षणधूमोत्पत्तिस्त-  
त्रैव धूमव्यक्तिविशेषे विशिष्टप्रसिद्धिसम्भवात् धूमावयवद्वयसंयोगो-  
त्पत्तिक्षणस्यैव तदौयतादृश्यावत्कारणाधिकरणत्वेन तदानौ वज्र-  
भावस्य सत्त्वात् उत्पत्तिप्राकक्षणे च वज्रेः सत्त्वात् । न च तत्रैव  
विशिष्टप्रसिद्धौ धूममात्रस्य पक्षत्वात् धूमान्तरे अंगत इष्टापत्ति-  
रिति वाच्यं । पक्षतावच्छेदकावच्छेदेनापक्षेद्देश्यत्वादिति प्राङ्गुरिति  
संक्षेपः ।

‘अवच्छेदेवेति न विद्यते वद्विर्ध्वेति व्युत्पत्त्या स्वसमानाधिकरण-  
वद्विसिद्धिमात् क्षणादेवेत्यर्थः, अव्यवहितोत्तरत्वं पञ्चम्यर्थः, ‘कचि-  
द्विद्धिं विनापीति किं धूमः ह्यचिदव्यवहितपूर्वं स्वसमानाधिक-  
रणवद्विं विनापि भविष्यतीत्यर्थः, ‘अहेतुक इति किं धूमो  
निर्हेतुक एवोत्पत्स्यते इत्यर्थः, ‘इति शङ्का स्यादिति इति शङ्का  
विरोधिनी स्यादित्यर्थः । आद्यशङ्काद्वयस्य सम्प्रदायमते निरुक्तवज्र-  
समवहिताजन्यत्वरूपपक्षविशेषणाभावविषयकतया तर्कजनकपरामर्श-  
विघटकत्वेन तर्कविरोधित्वात् पक्षतावच्छेदकांग्रेजाहार्यपरामर्शस्यैव  
तर्कजनकत्वात् । नव्यमते तु निरुक्तवज्रसमवहिताजन्यत्वरूपापाद्य-  
प्रतियोगिविशेषणाभावविषयकतया तर्कजनकापाद्यव्यतिरेकनिर्णय-  
विघटकत्वेन तर्कविरोधित्वात् । द्वितीयायास्तु सम्प्रदायमते व्याप्यसं-  
शयविधया आपाद्याभाववत्तया निश्चिते पक्षे आपादकसंग्रयात्म-  
कानाहार्यव्यभिचारसंग्रयाधायकतया तर्कविरोधित्वात् । नव्यमते  
आश्रये च पक्षे आपाद्यप्रतियोगिकोटिविशेष्यविरोधित्वेन तर्कजन-  
कापाद्यव्यतिरेकनिश्चयविघटकतया तर्कविरोधित्वादिति भावः ।

न चाद्ययोः शङ्कयोरभेद इति वाच्यं । प्रथमा धूमत्वावच्छेदेन, द्वितीया धूमत्वसामानाधिकरणेनेति भेदात् । न चैवं धूमत्वसामानाधिकरणेन वज्रसमवहिताजन्यत्वसत्त्वेऽपि धूमत्वसामानाधिकरणेन वज्रसमवहिताजन्यत्वनिश्चये बाधकाभावात् द्वितीयसंग्रयस्य कुतन्तर्कविरोधित्वमिति वाच्यं । विग्रेथ्यतावच्छेदकसामानाधिकरणेन बाधनिश्चयस्य विग्रेथ्यतावच्छेदकसामानाधिकरणेन विशिष्टबुद्धिप्रतिबन्धकत्वेऽपि<sup>(१)</sup> विग्रेथ्यतावच्छेदकसामानाधिकरणेन बाधसंग्रयस्य संग्रयसामग्रीसम्पादकतया विग्रेथ्यतावच्छेदकसामानाधिकरणेन विशिष्टनिश्चयं प्रत्यपि प्रतिबन्धकत्वात् । 'सर्वत्रेति षष्ठ्यर्थे सप्तमी सर्वस्थाः शङ्काया इत्यर्थः, 'स्वक्रियाव्याघात इति, 'खं' तर्कप्रयोक्ता पुरुषः<sup>(२)</sup> तस्य या 'क्रिया' वज्रान्वय-व्यतिरेकानुविधायित्वज्ञानं, क्रियते प्रवर्ततेऽनेनेति व्युत्पत्तेः, तेन 'व्याघातः' तत्प्रयुक्तोऽनुत्पाद इत्यर्थः, अन्वय-व्यतिरेकाभ्यां प्रत्यक्षतो वज्रजन्यत्वनिश्चय-एवैतत्तर्कस्य सहकारितया वज्रान्वय-व्यतिरेकानुविधायित्वज्ञानस्य अवश्यं पूर्वं सत्त्वादिति भावः । अन्वय-व्यतिरेकानुविधायित्वज्ञानस्य तादृशशङ्कानुत्पादप्रयोजकत्वे मानसाह, 'यदि हीति, 'गृहीतान्वयेति तदन्वय-व्यतिरेकानुविधायित्वज्ञानसत्त्वेऽपि तदसमवहितजन्यत्वं सामान्यतोऽहेतुकत्वं वा शङ्कतेत्यर्थः, 'परप्रतिपत्त्यर्थं' परकी-

(१) अवच्छेदावच्छेदेन विशिष्टबुद्धिं प्रति सामानाधिकरणेन बाधनिश्चयस्य प्रतिबन्धकत्वमिति भावः

(२) तर्कवत्पुरुष इति क० ।

तेन विनापि तत्सम्भवात् तस्मात्तदुपादानमेव तादृ-

शब्दाद्बोधार्थं, 'उपादानं' प्रथमः, 'नियमतः' अन्वय-व्यतिरेकाभ्यां प्रत्यक्षेण धूमादिरूपेष्टसाधनतानिश्चयतः, न हि धूमादौ वज्राद्य-समवहितोत्पत्तिकत्वस्याहेतुकत्वस्य वा ग्रहस्य सामर्थ्यां सत्यां वज्रादौ धूमादिरूपेष्टसाधनतानिश्चयः सम्भवतीत्याह, 'तेनेति तादृशग्रहसामर्थीसमवधानेनेत्यर्थः, 'विनापि' विनैव, 'तत्सम्भवात्' वज्रादौ धूमादिरूपेष्टसाधनतानिर्णयसम्भवात् । ननु कार्यानुत्पादस्य कारणविरहमात्रप्रयुक्तत्वात् कथं तादृशशक्त्यानुत्पादस्य स्वक्रिया-प्रयुक्तत्वत-आह, 'तस्मादिति, प्रथमान्वयानुपपत्त्येति शेषः, 'तदुपादानमेवेति वज्रुपादानमित्यर्थः, उपादानञ्च<sup>(१)</sup> उपादत्ते प्रवर्ततेऽनेनेति कारणव्युत्पत्त्या प्रवृत्तिप्रयोजकीभूतान्वय-व्यतिरे-कानुविधायित्वज्ञानपरं ।

यत्तु भावव्युत्पत्त्या उपादानं प्रवृत्तिः पूर्वमपि स्वक्रियापदं तत्परमिति । तच्च । प्रवृत्तेः शक्ताप्रतिबन्धकत्वे मानाभावात् प्रवृत्तेः कारणताग्रहोत्तरकालीनत्वेन तत्पूर्ववर्तिशक्ताप्रतिबन्धकत्वासम्भ-वाच्च ।

केचित्तु कारणव्युत्पत्त्या उपादानपदं धूमादिसाधनतानिश्चयपरं पूर्वमपि स्वक्रियापदं तत्परमित्याहुः । तदसत् । धूमादिसा-

(१) उपादानञ्च उपादानपदश्चेत्यर्थः ।



## शशङ्काप्रतिबन्धकं शङ्कायां न नियतोपादानं निय-

धनतानिश्चयस्य तर्कान्तरकालीनत्वेन तत्पूर्ववर्तिशङ्काप्रतिबन्धकत्वा-  
भावात् ।

तस्य शङ्काप्रतिबन्धकतायामन्वय-व्यतिरेकौ दर्शयति, 'शङ्का-  
यामिति, यतः इत्यादि, यतः शङ्कायासुत्पद्यमानायां 'न निय-  
तोपादानं' नान्वय-व्यतिरेकानुविधायित्वज्ञानं, 'नियतोपादाने च'  
अन्वय-व्यतिरेकानुविधायित्वज्ञाने च, 'न शङ्का' इत्यर्थः, नियतमु-  
पादानं यथेति व्युत्पत्त्या नियतोपादानपदस्यान्वय व्यतिरेकानुविधा-  
यित्वज्ञानपरत्वात् । न च वल्लभान्वय-व्यतिरेकानुविधायित्वस्य वल्लि-  
सत्त्वे उत्पद्यमानत्वे सति वल्लिं विनानुत्पाद्यमानत्वरूपतया निरुक्त-  
वल्लभसमवहितजन्यत्वाभावघटितत्वेन तन्निश्चयस्य बाधनिश्चयतया  
प्रथमसंशयप्रतिबन्धकत्वसम्भवेऽपि विरोध्यविषयकतया कथं तृतीय-  
शङ्काप्रतिबन्धकत्वं कथं वा द्वितीयशङ्काप्रतिबन्धकत्वमपि अंशतो  
बाधनिश्चयस्य विशेष्यतावच्छेदकसामानाधिकरण्येन संशयाप्रतिब-  
न्धकतया बाधनिश्चयविधया द्वितीयशङ्काप्रतिबन्धकत्वासम्भवादिति  
वाच्यं । वल्लभान्वय-व्यतिरेकानुविधायित्वावच्छेदेन वल्लिजन्यालोकादौ  
नान्तरीयवल्लिके घटादौ च वल्लभसमवहिताजन्यत्व-सहेतुकत्वनिश्च-  
याद्वावर्त्तकधर्मदर्शनविधयेव तस्य तादृशशङ्कायामपि प्रतिबन्धकत्वात् ।  
न चांशतोबाधनिश्चयवदंशतो व्यावर्त्तकधर्मदर्शनमपि न विशेष-  
यतावच्छेदकसामानाधिकरण्येन संशयनिवर्त्तकमिति वाच्यं । बाध-  
निश्चयस्यले तथा नियमेऽपि व्यावर्त्तकधर्मदर्शनादिस्थले तथा

तेपादाने च न शक्ता, तदिदमुक्तं “तदेव ह्याशङ्कते”,

नियमविरहात् । न चैवं वङ्गन्वय-व्यतिरेकानुविधायित्वज्ञानं व्यावर्त्तकधर्षदर्शनविधया वङ्गिजन्यत्वसंशयं प्रत्येव प्रतिबन्धकमस्तु कियुक्तकर्णेति वाच्यं । अनन्यथासिद्धत्वाविशेषितस्य वङ्गन्वय-व्यतिरेकानुविधायित्वस्य नान्तरीयकवङ्गिके घटादौ वङ्गिजन्य-त्वव्यभिचारितया<sup>(१)</sup> वङ्गिजन्यत्वाभावव्यावर्त्तकत्वाभावात् तद्विशेषि-तस्य<sup>(२)</sup> वङ्गन्वय-व्यतिरेकानुविधायित्वस्य च वङ्गिजन्यत्वानति-रिक्तात् उपायान्तरस्योपायान्तरादूषकत्वाच्च । न च सर्वत्र धूमे वङ्गन्वय-व्यतिरेकानुविधायित्वज्ञानविरहाच्च तादृशज्ञानं तत्र वङ्गसमवहितजन्यत्वादिसंशयसासशवेऽपि धूमान्तरे तत्संशये किं बाध-कमिति वाच्यं । समानधर्षितावच्छेदककथावर्त्तकधर्षदर्शनस्यैव प्रतिबन्धकतया धूमत्वरूपेण यत्किञ्चिद्धूमे वङ्गन्वय-व्यतिरेका-नुविधायित्वज्ञानसत्त्वे धूमान्तरेऽपि तेन रूपेण वङ्गसमहितज-न्यत्वसंशयायोगात् गृहीतान्वय-व्यतिरेकधूमव्यक्तिविशेषस्यैव वा धूम-त्वरूपेण तर्कं पचतया धूमान्तरे तत्संशयेऽपि चतिविरहात् । न चैतावता वङ्गसमवहितजन्यत्वादिसंशयस्य तर्कतरप्रतिबन्धकवशा-त्पिष्टत्वावपि व्यभिचारसंशयनिवृत्त्यर्थमवश्यं तर्कान्तरापेक्षा पचभिन्ने आपाद्याभावविरहेऽपि आपाद्याभावांशे भ्रमात्मकस्य पचभिन्ने

(१) सर्वत्र तदव्यभिचारितधम्मस्यैव तदभावव्यावर्त्तकत्वमिति भावः ।

(२) अनन्यथासिद्धत्वविशेषितस्येत्यर्थः ।

यस्मिन्नाशङ्कमाने स्वक्रियाव्याघातो न भवतीति ।  
न हि सम्भवति स्वयं वज्रादिकं धूमादिकार्यार्थं निय-  
मत उपादत्ते तत्कारणं तन्नेत्याशङ्कते चेति । एतेन  
व्याघातो विरोधः स च सदानवस्थाननियम इति  
तत्राप्यनवस्थेति निरस्तं । स्वक्रियाया एव शङ्काप्रति-  
बन्धकत्वात् ।

व्यभिचारसंशयस्य सम्भवादिति वाच्यं । अनाद्यत्या व्यभिचारसंशयं  
प्रत्यपि तत्तदन्वय-व्यतिरेकानुविधादित्वज्ञानव्यक्तेर्विरोध्यविषयकत्वे-  
ऽपि प्रतिबन्धकत्वोपगमात् एवं क्रमेण वद्विजन्यत्वादिसंशयं प्रत्येव तस्य  
प्रतिबन्धकत्वसमावेऽप्युपायान्तरस्योपायान्तरादूषकत्वान्न तर्कवैयर्थ्यमि-  
ति भावः । खोक्ते प्राचां संवादमाह, 'तदिदमुक्तमिति, 'तदेवे-  
त्यादि 'आशङ्कते चेत्यन्तं प्राचीनग्रन्थः, 'आशङ्कते' प्रवृत्तिपूर्वं  
शङ्काविषयो भवति, 'आशङ्कमाने' प्रवृत्तिपूर्वं सन्देहविषये सति,  
'स्वक्रियेति, 'स्वक्रियायाः' स्वप्रवृत्तेः, 'व्याघातो न भवति' इत्यर्थः  
ननु धूमोऽवज्ञेरेव भविष्यतीत्यादिसंशयेऽपि प्रवृत्तिर्गानुपपन्नेत्यत-  
आह, 'न हीति, 'नियमतः' धूमादिरूपेष्टसाधनतानिर्णयतः, 'उपा-  
दत्ते' प्रयत्नविषयं दुरुते, 'तत्कारणमिति तदव्यवहितपूर्ववर्ति तन्ने-  
त्यर्थः, धूमोऽवज्ञेरेव भविष्यतीत्यादिसंशयस्यैव प्रतिबन्धकत्वात्<sup>(१)</sup> ।  
'एतेनेति 'निरस्तमित्यनेनान्वयः, 'तत्रापि' तज्ज्ञानेऽपि, स्वक्रियायाः

(१) प्रकृतत्वादिति ख०, ग०, घ० ।

अत एव “व्याघातो यदि शङ्कास्ति न चेच्छङ्का  
ततस्तराम् । व्याघातावधिराशङ्का तर्कः शङ्कावधिः  
कृतः” ॥ इति खण्डनकारमतमप्यपास्तम् । न हि  
व्याघातः शङ्काश्रितः, किन्तु स्वक्रियैव शङ्काप्रतिबन्धि-  
केति, न वा विशेषदर्शनात् क्वचित् शङ्कानिवृत्तिरेवं  
स्यात् । न चैतादृशतर्कावतारो भूयोदर्शनं विनेति  
भूयोदर्शनादरः, न तु स स्वतएव प्रयोजकः । अत एव  
तदाहितसंस्कारो न मानान्तरं तर्कस्याप्रमात्वात्, तच्च

व्याघातज्ञानं प्रतिबन्धकयुक्तं, व्याघातश्च विरोधः, विरोधश्च स्वक्रि-  
यायास्तादृशसंग्रहेण सहानवस्थाननियमः<sup>(१)</sup>, नियमश्च व्याप्तिरेवेति,  
तज्ज्ञानेऽपि व्यभिचारशङ्का विरोधिनी, तन्निवृत्तिश्च तर्कान्तरादि-  
त्यनवस्येत्यर्थः । ‘स्वक्रियाया इति स्वस्य क्रिया प्रवृत्तिर्यस्या इति  
व्युत्पत्त्या स्वक्रियाप्रयोजकीभूतनियतान्वय-व्यतिरेकादुविधायित्वबु-  
द्धेरित्यर्थः । ‘व्याघातोयदौति व्याघातो यद्यस्ति तदा शङ्काप्यवश्यम-  
स्तीत्यर्थः, स्वक्रियाप्रवृत्तिशङ्काप्रतियोगिकविरोधरूपस्य व्याघातस्य  
प्रतियोगिनीं शङ्कां विना स्यातुमशक्यत्वादित्यभिमानः । ‘न  
चेदिति न चेद्वाघातस्तदा, ‘ततः’ प्रतिबन्धकाभावतः, ‘तरां’  
सुतरां शङ्केत्यर्थः, ‘व्याघातावधिरिति, तथाचेत्यादि, ‘व्याघा-  
तावधिः’ व्याघातनिवृत्त्या व्याघातप्रतिबन्धा, ‘आशङ्का’, ‘तर्कश्च,

(१) नियतसहानवस्थानमिति ख०, ग० ।

प्रत्यक्षव्याप्तिज्ञाने हेतुः तद्भावेऽपि शब्दानुमानाभ्यां  
तद्ग्रहात् । ननु सहचारदर्शन-व्यभिचारादर्शनव-  
द्भ्यभिचारशङ्काविरहानुबूलतर्कयोर्ज्ञानं व्यभिचारि-  
साधारणमिति न ततोऽपि व्यप्तिनिश्चय इति चेत् । न ।  
स्वरूपसतोरेव तयोर्व्याप्तिग्राहकत्वात् । सत्तर्काद्याप्ति-  
प्रमा तद्भासात्तद्प्रमा विशेषदर्शनसत्यत्वासत्यत्वाभ्यां  
पुरुषज्ञानमिव ।

‘शङ्कावधिः’ शङ्कानिवर्त्तकः कुत इत्यर्थः, व्याघातसत्त्वे शङ्कायाः  
आवश्यकत्वेन व्याघातस्य शङ्कानिवर्त्तकत्वासम्भवात्, व्याघातस्य  
शङ्कानिवर्त्तकत्वाभावे शङ्कया तर्कस्यैवानवतारेण तर्कस्यापि शङ्का-  
निवर्त्तकत्वाभावादिति भावः । ‘इत्यपास्तमिति खण्डनकारमत-  
मपास्तं, क्वचित्तथैव पाठः । ‘शङ्काश्रितः’ शङ्काप्रतियोगिकः,  
प्रतिबन्धक इति शेषः । ‘स्वक्रियैवेति स्वस्य क्रिया प्रवृत्तिर्घणा-  
इति व्युत्पत्त्या स्वक्रियाप्रयोजकौभूतनियतान्वय-व्यतिरेकानुविधा-  
यित्वधीरेवेत्यर्थः । शङ्काप्रतियोगिकविरोधस्य प्रतिबन्धकत्वेऽपि  
न चतिरित्यभिप्रायेणाह, ‘न वेति, ‘विशेषदर्शनात्’ विरो-  
धिभूताद्दर्शनात्, या शङ्कानिवृत्तिः साधेवं न स्यात् विरोध-  
प्रतियोगिनीं शङ्कां विना तद्विरोधाश्रयदर्शनस्य स्यात्समग्रदयत्वादि-  
त्यर्थः । यदि च विरोधप्रतियोगिनो यदाकदाचित् यत्र कुत्रचित्<sup>(१)</sup>

(१) ‘यत्र कुत्रचित्’ इति पाठः घ० पुस्तके नास्ति ।

अपरे तु यत्र तर्को व्याख्यनुभवो मूलं तत्र तर्कान्तरा-  
पेक्षा, यत्र तु व्याप्तिसरसं हेतुः तत्र न तर्कान्तरा-  
पेक्षेति नानवस्था, अस्ति च जातमात्राणामिष्टानिष्ट-  
साधनताबुमितिहेतुव्याप्तिसरसं, तदानीं व्याख्यनु-  
भावकाभावात्, तन्मूलाबुभवमूला चाग्रेऽपि व्याप्ति-  
सरसपरस्यरेति ।

सत्त्वमात्रमपेक्षितं न तु तदा तत्र तदुत्तरं तत्सत्त्वमिति<sup>(१)</sup>  
विभाष्यते तदा तुल्यं प्रकृतेऽपीति भावः । नन्वेवं व्याप्तिज्ञानं भूयो-  
दर्शनादिति सिद्धान्तः कथं सङ्गच्छते<sup>(२)</sup> इत्यपेक्षायामाह, 'न चेति,  
वह्नि-धूमचोर्भूयःसहचारनिश्चयं विना धूमे वह्निसमवहितसामर्थ्य-  
जन्यत्वनिश्चयासम्भवात् अथमेव धूमोवह्निपूर्वक एतदन्यस्तु न, एवं  
एतद्धूमद्वयमेव वह्निपूर्वकं न त्वेतदन्य इत्यादिशङ्कासम्भवादिति  
भावः । 'भूयोदर्शनादरः' कदाचित् कुत्रचित्तदुपयोगः, 'न त्विति,  
'सः' भूयःसहचारग्रहः, 'सत एव' साचादेव, 'प्रयोजक इति व्याप्ति-  
ग्रहप्रयोजक इत्यर्थः । भूयोदर्शनस्य संस्कारद्वारा व्याप्तिग्राहकत्वे  
तदाहितसंस्कारस्य मानान्तरत्वापत्तिः यदसाधारणं सहकार्यासाद्य  
मनोवह्निर्गोचरां प्रमां जनयति तदेव प्रमाणान्तरमिति पूर्वपक्षोक्तं  
दूषयति, 'अत एवेति यत एव भूयोदर्शनजन्यसंस्कारस्त्वं एव

(१) न तु तदुत्तरं तत्र सत्त्वमितीति ग०, घ० ।

(२) संगच्छतामिति ग०, घ० ।

यत्पनादिसिद्धकार्य-कारणभावविरोधादिमूलाः  
 दोषित्तर्का इति । तन्न । तत्र प्रमाणानुयोगेऽनुमान-  
 एव पर्यवसानात् । न च व्याप्तिग्रहान्यथानुपपत्त्यैव  
 तर्कस्यानादिसिद्धव्याप्तिकत्वज्ञानमिति वाच्यम् । अनु-  
 पपत्तेरप्यनुमानत्वात् ।

प्रयोजकः न तु व्याप्तिग्रहे अत एवेत्यर्थः, 'अप्रमात्वादिति,  
 इदमापाततः तर्कस्याप्यंगतः प्रमात्वात् । वस्तुतस्तर्कस्य प्रामात्येऽपि तं  
 प्रति संस्कारो न जनकः किन्तु प्रयोजक एवेति न प्रमाणान्तरत्व-  
 मित्येव तत्त्वं । 'तच्चेति व्यभिचारसन्देहाभाववत्त्वञ्चेत्यर्थः, 'तदभावे-  
 ऽपि' व्यभिचारसन्देहाभावाभावेऽपि व्यभिचारसन्देहेऽपीति यावत्,  
 व्यभिचारसन्देहस्य योग्यतादिसन्देहरूपतया शब्दादिनार्थनिर्णये-  
 ऽधिरोधित्वादिति भावः । भ्रान्तोद्देश्यमिति, 'नन्विति, 'व्यभि-  
 चारादर्शनवदिति व्यभिचारनिर्णयाभाववदित्यर्थः<sup>(१)</sup>, यथा व्यभि-  
 चारनिश्चयाभाव-सहचारदर्शनं न व्याप्तिग्राहकं अन्यथा यत्र  
 व्यभिचारसंशयो वर्तते तत्र व्याप्तिग्रहापत्तेः तत्रापि व्यभिचारनिश्च-  
 याभाव-सहचारदर्शनयोः सत्त्वान्तथा व्यभिचारसंशयाभाव-तर्कयो-  
 र्ज्ञानं न व्याप्तिग्राहकं शङ्कासत्त्वदशायामपि व्यभिचारशङ्काविरहा-  
 सुब्रूयतर्कयोर्ज्ञानसत्त्वात् तत्र व्याप्तिग्रहापत्तेरिति<sup>(२)</sup> । 'व्यभिचारौति

(१) व्यभिचारानिश्चयवदित्यर्थ इति ग०, घ० ।

(२) यथेत्यादिः व्याप्तिग्रहापत्तेरितीत्यन्तः पाठः ग० पुस्तके नास्ति ।

अन्ये तु विपक्षबाधकतर्कादनौपाधिकत्वग्रह एव तदधीने व्याप्तिग्रह इति, तदपि न, तर्कस्याप्रमाणत्वात् । व्यभिचारादिशङ्कानिरासद्वारा प्रत्यक्षादिसङ्कारो स इति चेत् । न । अनवस्थाभयेन तर्कं विना

सन्दिग्धव्यभिचारीत्यर्थः । 'व्याप्तिग्राहकत्वात्' व्याप्तिग्रहे प्रयोजकत्वात् । ननु तथापि व्यभिचारज्ञानविरहानुबूलतर्कयोर्व्यभिचारिण्यपि सत्त्वात् कथं प्रमा-भ्रमविभाग इत्यत आह, 'सत्तर्कादिति, यद्यपि तर्कस्य सत्त्वं मूलशैथिल्यादिदोषरहितं, तद्विशिष्टत्वमेव<sup>(१)</sup> ग्राभासत्वं तच्च न प्रामाण्याप्रामाण्यप्रयोजकं वस्तुगत्या व्याप्तिमत्त्वे तादृग्दोषविशिष्टाद्भ्रमोयदि वद्विव्यभिचारी स्यात् प्रथिवी न सादित्यादितर्कादपि प्रमा-भ्रमयोस्त्यादानुत्पादाभ्यां व्यभिचारात् । एवं विशेषदर्शने सत्यत्वासत्यत्वमपि न प्रामाण्यादिप्रयोजकं विषय-साधाधितत्वेऽसत्त्वादपि विशेषदर्शनात् प्रमा-भ्रमयोस्त्यादानुत्पादाभ्यां व्यभिचारात् । न च तर्कस्य सत्त्वं वस्तुगत्या व्याप्तिमद्विषयकत्वं, ग्राभासत्वञ्च वस्तुगत्या व्याप्त्यभाववद्विषयकत्वं, एवं विशेषदर्शनस्य सत्यत्वं वस्तुगत्या पुरुषत्ववद्विषयकत्वं, वस्तुगत्या तदभाववद्विषयकत्वञ्चासत्यत्वमिति वाच्यं । तथापि स्वतःसिद्धशङ्कानिरहस्यले तर्कं विनेव व्याप्तिग्रहेण व्यभिचारान्तस्य प्रमा-भ्रमप्रयोजकत्वासम्भवात् । तथापि 'सत्तर्कात्' सत्यव्याप्तिज्ञानात्,

(१) मूलशैथिल्यादिदोषविशिष्टत्वमेवेत्यर्थः ।



व्याघातात् यच्च शङ्काविरहस्तच्च व्याप्तिग्रहे तर्कस्य  
व्यभिचारात् ।

यत्तु योग्यानामुपाधीनां योग्यानुपलब्धाभावग्रहः  
अयोग्यानान्तु साध्याव्यापकत्व-साधनव्यापकत्वसाध-

‘तदाभासात्’ तदभावात्, तथाच व्याप्तिप्रमात्वावच्छिन्नं प्रति  
व्याप्तिप्रमात्वेन हेतुत्वं समानविशेष्यत्वं प्रत्यासत्तिः । व्याप्तिभ्रम-  
त्वावच्छिन्नं प्रति विशेष्यतासम्बन्धावच्छिन्नव्याप्तिप्रमाविरहत्वेन हेतुत्वं  
विशेषणताविशेष-विशेष्यताभ्यां सामानाधिकरण्यं प्रत्यासत्तिः । सर्व-  
ज्ञान्ततोभगवद्वाप्तिप्रमैव पूर्वं सुलभेति भावः । ‘विशेषदर्शनसत्य-  
त्वासत्यत्वाभ्यां’ सत्यविशेषणज्ञान-तद्विरहाभ्यां, पुरुषत्वप्रमा-तद्विर-  
हाभ्यामिति यावत्, ‘पुरुषज्ञानमिव’ पुरुषत्वप्रमा-भ्रम इव,  
तर्कस्य शङ्कासात्रनिवर्तकत्वाद्यत्र स्वतः सिद्धः शङ्काविरहस्तत्र तर्कं  
विनैव व्याप्तिग्रहः इति नानवस्येति स्वयमुक्तं ।

प्राञ्चस्तु तर्कस्य व्याप्तिग्राहकत्वमभ्युपेत्य प्रकारान्तरेणानवस्थां  
परिहरन्ति तदेवाह, ‘अपरे त्विति, ‘यच्च तु व्याप्तिस्मरणमिति,  
व्याप्त्यनुभवं प्रत्येव तर्कस्य हेतुत्वादिति भावः । व्याप्तिस्मरणे तर्का-  
पेक्षा नास्तीत्यत्र हेतुमाह, ‘अस्ति चेति भवति चेत्यर्थः, ‘चः’ हेतौ,  
‘व्याप्तिस्मरणमिति, तर्कं विनैवेति शेषः, ‘व्याप्त्यनुभावकाभावादिति  
तर्काभावादित्यर्थः, यद्वा ननु जातमात्रस्य व्याप्तिज्ञानं स्मरणमेव  
न किन्तु अनुभवरूपमित्यत आह, ‘तदानीमिति । ननु तथापि  
विनानुभवं स्मरणायोगात् जन्मान्तरीणो व्याप्त्यनुभवो हेतुर्वाच्यस्तत्र

नादभावग्रह इत्यनौपाधिकत्वं सुग्रहमिति । तत्तुच्छम् ।  
अनुमानेन तत्साधनेऽनवस्थानात् प्रमाणान्तरस्याभा-  
वात् ।

च तर्कौ हेतुस्तत्र च तर्के व्याप्यनुभवान्तरं हेतुरिति क्रमेणानवस्था  
तदवस्यैवेत्यत आह, 'तन्मूलेति व्याप्तिस्मरणमूलकोयः प्राग्भवीयो  
व्याप्यनुभवस्तन्मूलिका, 'अग्रे' भाविजनानि, व्याप्तिस्मरणपरम्परेत्यर्थः,  
तथाच जन्मान्तरीयव्याप्तिस्मरणमूलीभूतव्याप्यनुभवमूलीभूततर्के व्या-  
प्यनुभवो न हेतुः किन्तु व्याप्तिस्मरणमिति नानवस्था कदाचित्  
अन्तरान्तरा व्याप्तिस्मरणेन विच्छेदात् तर्कधाराया अविरलत्वान्वा-  
भावादिति प्राचामाशयः । अत्रेदमस्मरसवीजं, न हि कदाचिदन्त-  
रान्तराविच्छेद एवानवस्थापरिहारः, किन्तु आत्यन्तिकविच्छेद-  
एवेति सकलसम्प्रदायसिद्धमिति ।

कार्य-कारणभावविरोधादीनामनादिप्रसिद्धिविषयत्वनिश्चय एव  
कुत्रचित्तर्के संग्रयनिवर्त्तक इति केचिददन्ति तन्मतमाश्रय्य  
निराकरोति, 'यत्त्विति, 'अनादिषिद्धेति कार्यकारणभावविरो-  
धादीनां विशेषणं, तथाच 'अनादित्वेन अनादिप्रसिद्धिविषयत्वेन,  
'षिद्धाः' निश्चिताः, कार्य-कारणभावादयः क्वचित्तर्के संग्रयनिवर्त्तका  
इति नानवस्येत्यर्थः, यथाश्रुते कार्य-कारणभावे विरोधे चाना-  
दित्वस्य दुर्वचत्वात्, 'अदिना व्याप्तिपरिग्रहः । 'तचेति कार्य-कार-  
णभावादीनामनादिप्रसिद्धिविषयत्वे इत्यर्थः, 'प्रमाणानुयोगे' प्रमा-

ये चानुक्लृप्ततर्कं विनैव सहचारादिदर्शनमात्रेण व्याप्तिग्रहं वदन्ति, तेषां पक्षेतरत्वस्य साध्यव्यापकत्व-

णप्रश्ने<sup>(१)</sup>, 'अनुमान एवेति प्रत्यक्षस्य तत्रासम्भवादित्यर्थः, तथाच तत्राप्यनुमाने तर्कापेक्षावश्यक्रीत्यनवस्था तदवस्येति भावः। व्याप्ति-  
ग्राहकतर्कमूलभूतव्याप्तिग्रहो न तर्कान्तरादपि तु व्याप्तिग्रहान्यथा-  
नुपपत्तिग्रहादेव इत्याह, 'न चेति, 'अनुमानत्वात्' व्याप्तिनिश्चया-  
धीनप्रवृत्तिकत्वात्, यथाश्रुतासङ्गतेः परैरर्थापत्तेरनुमानत्वानभ्युप-  
गमात्, तथाच तत्रापि तर्कापेक्षावश्यक्रीत्यनवस्था तदवस्येवेति  
भावः।

तदेवं व्यभिचारादर्शनसहकृतं सहचारज्ञानं व्याप्तिग्राहकं तर्कः  
शङ्कानुत्पत्तौ प्रयोजक इति व्यवस्थाप्य तर्कादनौपाधिकत्वग्रहस्त-  
तदुभाभ्यां मिलित्वा व्याप्तिग्रह इत्येकदेशिमतमाशङ्क्य दूषयति,  
'अन्ये त्वेति, 'तदधीन इति तयोरधीन इत्यर्थः। अनौपाधिकत्वग्रहे  
व्याप्तिग्रहे च तर्कः स्वतन्त्रो हेतुः, प्रमाणसहकारी वा, नाह-  
इत्याह, 'तर्कस्येति तथाच प्रमाणस्य स्वतन्त्रतया जनकत्वनियमेन  
तर्कस्य प्रमाणत्वसम्भवात् जनकत्वाभाव इत्यर्थः, द्वितीयमाशङ्कते,  
'व्यभिचारादीति, आदिपदादुपाधिपरिग्रहः। 'व्याघातात्' तर्का-  
भावातिरिक्तकारणान्तराभावात्, 'विरहः' अनुत्पादः। 'व्याप्तिग्रहे'  
अनौपाधिकत्वग्रहे।

(१) 'प्रमाणानुयोगे' प्रमाणप्रश्ने, इत्यर्थं पाठः ख०, ग०, घ० पुस्तकेषु  
नास्ति।

ग्रहेऽनुमानमात्रमुच्छिष्येत, अनुमानमात्रोच्छेदकत्वा-  
देव पक्षेत्तरो नोपाधिरिति चेत्, भ्रान्तोऽसि, न हि  
वयमुपाधित्वेन तस्य दोषत्वमात्रं ज्ञाहे, साध्यव्यापकत्वेन  
तद्भूतिरेकात् पक्षे साध्यव्यावर्तकतया व्यापकव्यतिरेके  
व्याप्यव्यतिरेकस्य वज्रलेपाच्च । अपि च कार-वह्निसं-  
योगः शक्त्यतिरिक्तातीन्द्रियधर्तृसमवायी जनकत्वा-

ग्रनौपाधिकत्वज्ञानं व्याप्तिधीजनकं तन्मतमाशङ्क्य निराकरोति,  
'यत्त्विति, 'साधनादिति अनुमानादित्यर्थः, 'ग्रनौपाधिकत्वं सुग्रह-  
मिति, तथाच तर्काहेतुकमेवानौपाधिकत्वज्ञानं व्याप्तिधीहेतुरिति  
भावः । 'ग्रनवस्थानादिति तदनुमानमूलीभूतव्याप्तिघानेऽप्यनौपा-  
धिकत्वनिश्चयस्य हेतुत्वादिति भावः ।

व्याप्तिग्रहे परम्परयापि कुत्रचित्तर्कापयोग इति मीमांसकैक-  
देशिसमतं निराचष्टे, 'ये चेति, व्यभिचारसंग्रहस्य तत्सामग्र्याश्चा-  
प्रतिबन्धकत्वादिति शेषः । 'अनुकूलेति व्यभिचारशङ्कानुत्पादानु-  
कूलेत्यर्थः, 'सहचारादीत्यादिना सम्बन्धिनः साध्यादेः परिग्रहः,  
'व्याप्तिग्रहं' सर्वत्र व्याप्तिनिश्चयं, 'साध्यव्यापकत्वग्रहे' साध्यव्यापकत्व-  
निश्चये, 'अनुमानमात्रमिति सन्दिग्धसाध्यपक्षकानुमानमात्रमुच्छि-  
ष्येतेत्यर्थः, यथाश्रुते निर्णीतसाध्यके व्यभिचारनिश्चयसत्त्वेन पक्षेतरत्वस्य  
साध्यव्यापकत्वनिश्चयासम्भवादनुमानमात्रोच्छेदाभावात् । अस्माकन्तु  
पक्षे साध्यस्य संग्रहसत्त्वे साध्ये पक्षेतरत्वव्यभिचारसंग्रहसत्त्वादनुकूल-  
तर्कं विना न साध्यव्यापकत्वनिश्चयसम्भव इति भावः । 'अनुमान-

दित्यप्यप्रयोजकत्वान्न साधकं तत्र व्याप्तस्य पक्षधर्मत्व  
किमप्रयोजकं नाम तस्माद्द्विपक्षबाधकतर्काभा-  
वान्न तत्र व्याप्तिग्रह इत्यप्रयोजकत्वमिति ।

इति श्रीमद्भगवद्गीतापाठ्यायविरचिते तत्त्वचिन्तामणौ  
अनुमानखण्डे तर्कनिरूपणं ।

मात्रेति तादृगानुमानमात्रोच्चेदकत्वज्ञानस्य प्रतिबुद्धतर्कादित्यर्थः,  
'नोपाधिः' न स्वव्यभिचारेण साध्यव्यभिचारोपायकः, 'उपाधित्वेनेति  
व्यभिचारोपायकत्वेनेत्यर्थः । 'साध्यव्यापकत्वेन' तन्निश्चयेन, 'व्यापक-  
व्यतिरेके' व्यापकव्यतिरेकज्ञाने, 'व्याप्यव्यतिरेकत्व' व्याप्यव्यतिरेक-  
ज्ञानस्य । ननु तादृगानुमानमात्रोच्चेदकत्वज्ञानमेव तत्र साध्य-  
व्यापकताभावविरोधीत्वस्य रसादाह, 'अपि चेति, 'अत्यतिरिक्तेति ।  
न चास्यन्दते साध्याप्रसिद्धिः, पररौत्वैव परं प्रत्यभिधानात्, स्वमे  
तु अत्यतिरिक्तत्ववहिर्भावेन साध्यं बोध्यं, 'न साधकं' न लिङ्गं,  
'व्याप्तस्य' व्याप्यत्वेन निश्चितस्य, 'पक्षधर्मत्वे' पक्षधर्मत्वनिर्णये, 'न  
तपेति व्यभिचारसंशयशाम्यीकत्वेन न तत्र व्याप्तिनिश्चय इत्यर्थः ।

इति श्रीमत्पुराणाथ-तर्कवागीश्वरविरचिते तत्त्वचिन्तामणिराख्ये  
अनुमानाख्यद्वितीयखण्डरहस्ये तर्करहस्यं ।

## अथ व्याख्यनुगमः ।

९५१

उक्तव्याप्तिप्रकारेष्वन्योन्याभावगर्भैव व्याप्तिरनु-  
मितिहेतुर्लाघवात् । अतो नाननुगमः ।

## अथ व्याख्यनुगमरहस्यं ।

ननूक्तव्याप्तीनां ज्ञानसमुच्चयो न हेतुरसम्भवात् न प्रत्येकं अन-  
नुगमात् कस्यपिदेव ज्ञानं तथेत्यत्र तु विनिगमकाभाव इत्यत्र आह,  
'उक्तेति, 'अनुमितिहेतुरिति ज्ञानविषयतयाऽनुमितिहेतुतावच्छे-  
दिका इत्यर्थः, 'लाघवादिति प्रतियोगितावच्छेदकतावच्छेदकसम्बन्धेन  
यत्प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नं प्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्धेन तद्व-  
द्विषयस्य हेत्वधिकरणविशेषणत्वेनात्यन्ताभावगर्भमपेक्ष्यापि लाघ-  
वादित्यर्थः । अथ अन्योन्याभावगर्भलक्षणेऽपि प्रतियोगितावच्छेदक-  
सम्बन्धेन प्रतियोगिसद्विषयत्वं हेत्वधिकरणविशेषणमावश्यकमन्यथा  
संयोगादिमदन्योन्याभावस्याव्याप्यवृत्तितानये संयोगी ब्रूयत्वादित्य-  
व्याप्यवृत्तिसाध्यकेऽव्याप्तेः, अन्योन्याभावस्य व्याप्यवृत्तितानियमनयेऽपि  
संयोगादिमद्वेदस्याव्याप्यवृत्तितानिभ्रमेण हेतुसामानाधिकरण्यभ्रमेण  
तत्रानुमित्यनुत्पादापत्तेः, तथाच क्व लाघवं । न चान्योन्याभाव-  
गर्भलक्षणे हेत्वधिकरणवृत्तित्वमेव निरवच्छिन्नत्वेन विशेषणीयं न

तु यथोक्तप्रतियोगिमद्भिन्नत्वेन हेत्वधिकरणमतोलाघवमिति वाच्यं । तथा सत्यत्यन्ताभावगर्भलक्षणेऽपि तथैव सुवचतया तत्रापि गौरवाभावादिति चेत् । न । अन्योन्याभावगर्भलक्षणे तादृशप्रतियोगिमद्भिन्नत्वेन हेत्वधिकरणविशेषणेऽपि प्रतियोगितावच्छेदकतावच्छेदकसम्बन्ध-प्रतियोगितावच्छेदकयोरप्रवेशादेव लाघवात् । वस्तुतोऽन्योन्याभावगर्भलक्षणे प्रतियोगिभिन्नत्वं हेत्वधिकरणस्य प्रतियोग्यनिरूपितत्वं वा हेत्वधिकरणवृत्तित्वस्य विशेषणं न तु यथोक्तं गौरवान्तथाचात्यन्ताभावगर्भमपेक्ष्यातीव लाघवमिति भावः ।

अत्र नव्याः अन्योन्याभावगर्भव्यापकताघटितव्याप्तिज्ञानमपि नानुमितिहेतुः, किन्तु साध्याभाववदवृत्तित्वरूपव्याप्तिज्ञानमेवानुमितिहेतुरिति लाघवात्<sup>(१)</sup> । तत्परिष्कारस्तु प्रागेवाभिहितः<sup>(२)</sup> । केवलान्वयिनि भ्रमरूपव्याप्तिज्ञानादेव सर्व्वदानुमितिः, सद्देतौ भ्रमभिन्नव्याप्तिज्ञानादेवानुमितिरिति नियमे च मानाभावः, भ्रमजनकदोषरहितस्य केवलान्वय्यनुमितिरप्रसिद्धैव । एवं द्रव्यं विशिष्टत्वादित्यादावपि भ्रमरूपव्याप्तिज्ञानादेवानुमितिः<sup>(३)</sup> । न च

(१) 'लाघवात्' साधनभेदेन कार्य-कारणभावभेदाकल्पनरूपलाघवादि-  
त्यर्थः ।

(२) व्याप्तिपञ्चरूपस्येऽभिहित इत्यर्थः ।

(३) विशिष्टसत्त्वस्य सत्त्वानतिरिक्ततया विशिष्टसत्त्वे द्रव्यत्वाभाववदवृ-  
त्तित्वरूपव्याप्तिभावात् तत्र तादृशव्याप्तिज्ञानं भ्रमरूपमेवेति । न  
च साध्याभावाधिकरणवृत्तितानवच्छेदकहेतुतावच्छेदकत्वमेव व्या-  
प्तिः तथाच विशिष्टसत्त्वे द्रव्यत्वाभावाधिकरणवृत्तित्वेऽपि विशिष्ट-

साध्याभाववदवृत्तित्वज्ञानस्यैव सर्वत्रानुमितिहेतुत्वे पृथिव्यामितर-  
भेदः हृदे धूमाभाव इत्याद्यप्रसिद्धसाध्यकानुमितिर्न स्यात् साध्य-  
स्याप्रसिद्धा तदभाववदवृत्तित्वज्ञानस्यासम्भवादिति वाच्यं । तत्र  
पृथिवीतरत्व-धूमादेरेव साध्याभावतया पृथिवीतरत्ववदवृत्तित्व-धूम-  
वदवृत्तित्वज्ञानस्यैवानुमितिहेतुत्वात् अन्यथा तवापि साध्यस्याप्रसिद्ध्या  
साध्याभावव्यापकौभूताभावप्रतियोगित्वरूपव्यतिरेकव्याप्त्यादिज्ञानस्य  
तत्रासम्भवात् । ननु साध्याभाववदवृत्तित्वज्ञानस्यैवानुमितिहेतुत्वे  
वाच्यत्वादौ वज्रादादौ वा कैवलान्वयित्वग्रहदृश्यामनुमितिर्न स्यात्  
विशेषदर्शनसत्त्वेन अभावे साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नसाध्यतावच्छे-  
दकावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वसम्बन्धेन साध्यवत्त्वज्ञानासम्भवात् व्याप-  
कव्याप्त्यानाधिकरणरूपव्याप्तिज्ञानस्य हेतुत्वे तु तदानीमप्यनुमित्यु-  
त्पादात् । न च कैवलान्वयित्वग्रहो न तावत् साध्याभाववान-  
भाव इत्याकारकोऽभावत्वावच्छेदेन साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नप्रति-  
योगिताकत्वसम्बन्धावच्छिन्नस्य साध्याभावस्य निश्चयः तादृशनिश्चयस्य  
निर्वन्धिः पर्वतोवन्धिमान् इत्यादिज्ञानवदाहार्यभ्रमरूपत्वेनाप्रति-  
वन्धकत्वात्<sup>(१)</sup> । नापि तादृशकारकोऽभावत्वव्याप्त्यानाधिकरणत्वेन

सत्तात्वे द्रव्यत्वाभावाधिकरणवृत्तित्वानवच्छेदकत्वस्य सत्त्वेन तत्र तादृ-  
शव्याप्तिज्ञानस्य कथं भ्रमत्वमिति वाच्यं । व्याप्तेः हेतुतावच्छेदकघटि-  
तत्वे साधनभेदेन कार्य-कारणभावभेदाकल्पनरूपलाघवासम्भवादि-  
ति हृदयं ।

(१) अभावः साध्याभाववान् इत्याकारकोऽभावत्वावच्छेदेन साध्यतावच्छेद-  
कावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वसम्बन्धावच्छिन्नसाध्याभावावगाहिज्ञाने



साध्यतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावे साध्यतावच्छेद-  
कावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वसम्बन्धावच्छिन्नसाध्याभावस्य निश्चयः, त-  
त्सत्त्वेऽपि अभावत्वसामानाधिकरण्येनाभावे साध्यतावच्छेदकसम्बन्धा-  
वच्छिन्न-साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वसम्बन्धेन साध्यप्र-  
कारकस्य साध्याभाववदवृत्तित्वज्ञानस्योत्पत्तौ बाधकाभावात् अंशतो  
बाधस्य विशेष्यतावच्छेदकसामानाधिकरण्येन विशेषणसिद्धविरो-  
धित्वादिति वाच्यम् । साध्यात्यन्ताभाववानभाव इत्याकारक-  
स्याभावत्वावच्छेदेनाभावे तादृशसम्बन्धावच्छिन्नसाध्यात्यन्ताभावनि-  
श्चयरूपस्य साध्यवद्भिन्नोऽभाव इत्याकारकस्याभावत्वावच्छेदेनाभावे  
साध्यवदन्योन्याभावनिश्चयरूपस्य वा केवलान्वयित्वग्रहणानाहार्य-  
स्यापि सत्त्वात्<sup>(१)</sup> अन्यन्ताभावत्वान्योन्याभावत्वादेरखण्डधर्मविशेष-  
रूपत्वेनाभावत्वाघटितत्वात्<sup>(२)</sup> वाच्यत्वाभाववान् अभाव इत्याकारक-  
स्याभावत्वावच्छेदेन वाच्यत्वतावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वसम्बन्धावच्छि-  
न्न-प्रतियोगिताकवाच्यत्वाभावत्वज्ञानस्यानाहार्यस्यासम्भवेऽपि तादृ-  
शाकारकस्याभावत्वावच्छेदेन खरूपसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वस-

विशेषणीभूतसाध्याभावकोटौ अभावांशे साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नप्र-  
तियोगिताकत्वसम्बन्धेन साध्यस्य नियमतोभानात् तादृशज्ञानस्य  
विरुद्धोभयप्रकारकत्वरूपमाहार्यत्वमिति तात्पर्यम् ।

(१) समानधर्मितावच्छेदकज्ञानस्यैव विरोधित्वादिति भावः ।

(२) अन्यथा अन्यन्ताभावत्वस्य सदातनसंसर्गाभावत्वरूपत्वे अन्योन्याभावत्व-  
स्य तादात्म्यसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभावत्वरूपत्वे अभावत्व-  
घटितत्वेन पुनरुद्घोषतादवस्थं स्यादिति भावः ।

सम्भावच्छिन्नप्रतियोगिताकवाच्यत्वाभाववत्ताज्ञानस्यानाहार्यस्यापि<sup>(१)</sup>  
सम्भावचेति चेत् । न । तादृशकेवलान्वयित्वग्रहदशायामनुमितेर-  
प्रसिद्धेः अन्योन्याभावत्वावच्छेदेन हेतुसामानाधिकरण्याभावग्रहद-  
शायामनुमित्यनुत्पादस्य त्वयापि वाच्यत्वेन कस्यचित् फलस्या-  
पत्तापत्ताविशेषात् । वस्तुतस्तु साध्याभाववदवृत्तित्वरूपव्याप्तिज्ञानहे-  
तुतायामभावत्वं न निविश्यते गौरवात् प्रयोजनाभावाच्च किन्तु  
साधीपवदवृत्तित्वज्ञानमेव हेतुः, तच्च यथोक्तकेवलान्वयित्वग्रहदश-  
ायामपि सम्भवति साध्यांशे निर्धर्यतावच्छेदकत्वात् ।

ननु तथापि साध्याभाववदवृत्तित्वज्ञानस्यैवानुमितिहेतुत्वे घटो-  
द्रव्यमित्यादिरूपा स्वरूपतो द्रव्यत्वादिविधेयकानुमितिः कदा-  
पि न स्यात् साध्याभाववदवृत्तित्वस्य द्रव्यत्वत्वादिरूपसाध्यता-  
वच्छेदकघटित्वेन द्रव्यत्वत्वाद्यवच्छिन्नविधेयकानुमितित्वस्यैव तदुद्धेः  
कार्यतावच्छेदकत्वात्, अन्यथातिप्रसङ्गात्, द्रव्यत्वत्वातिरिक्तानव-  
च्छिन्नद्रव्यत्वादिविधेयताकानुमितित्वस्य कार्यतावच्छेदकत्वे द्रव्यत्वा-  
द्यनुमितेर्निर्घमतो द्विविधविषयताकत्वप्रसङ्गात्<sup>(२)</sup> । न च यत्र

(१) तथाच व्याप्तिबुद्धौ स्वरूपसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिकत्वविशिष्ट-  
वाच्यत्वत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वस्याप्रसिद्ध्या स्वरूपसम्बन्धावच्छिन्न-  
प्रतियोगिताकत्वेन वाच्यत्वत्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकत्वेन च सम्बन्धेना-  
भावांशे वाच्यत्वस्य प्रकारत्वात् एतादृशकेवलान्वयित्वग्रहस्य प्रति-  
बन्धकत्वमिति भावः ।

(२) साध्याभाववदवृत्तित्वज्ञानस्यैवानुमितिहेतुत्वे त्रयं पृथिवीत्वादित्या-  
दौ स्वरूपतो घटोद्वयं इत्याकारकानुमितेरनुपपत्तिः व्याप्तिबुद्धौ

साध्याभाववदवृत्तित्वरूपव्याप्तिग्रहे साध्यतावच्छेदकद्रव्यत्वत्वाद्यवच्छि-  
न्नप्रतियोगिताकत्वसम्बन्धेन साध्यस्य द्रव्यत्वादेः स्वरूपतोऽभावे प्रका-  
रकत्वं तत्र स्वरूपतोद्रव्यत्वादिविधेयकानुमितिर्यत्र च तद्ग्रहे  
तादृशसम्बन्धेन द्रव्यत्वत्वादिरूपेण साध्यस्य द्रव्यत्वादेः प्रकारकत्वं  
तत्र द्रव्यत्वत्वाद्यवच्छिन्नविधेयिकेति कार्य-कारणभावभेदान् न  
नियमतो द्विविधविषयकत्वमिति वाच्यम् । अभावप्रत्ययो हि  
प्रतियोगिनि तद्दर्शवैशिष्ट्यमवगाहमान एव तद्दर्शस्यावच्छेदकत्वमव-

यद्रूपेण साध्यमभावे भासते तद्रूपेण साध्यानुमितिरिति नियमात्,  
अन्यथा अभावांशे द्रव्यत्वत्वेन द्रव्यत्वावगाहिव्याप्तिबुद्धेः घटोजातिमा-  
नित्याकारकजातित्वप्रकारकद्रव्यत्वानुमित्यापत्तिः इत्याशङ्क्य समाधत्ते  
द्रव्यत्वत्वाद्यतिरिक्तत्वादिना । तथाच द्रव्यत्वत्वाद्यतिरिक्तधर्मानव-  
च्छिन्नद्रव्यत्वादिनिष्ठविधेयताकानुमितित्वं तत्कार्यतावच्छेदकमिति  
समाधानं । अत्र तादृशविधेयतायामनवच्छिन्नान्तविशेषणानुपादाने  
जातित्वेन द्रव्यत्वानुमित्यापत्तिः । एवं द्रव्यत्वनिष्ठत्वानुपादाने सत्ता-  
साध्यकघटः सन् इत्याकारकानुमित्यापत्तिरतस्तत्र उभयोपादानं ।  
अत्रेयमनुपपत्तिः, तथा हि द्रव्यत्वत्वेन घटत्वाद्यनुमित्यसम्भवः तादृ-  
शधर्मानुमितेः द्रव्यत्वनिष्ठविधेयताकत्वासम्भवात् । अत्रेदं समाधानं  
द्रव्यत्वत्वाद्यतिरिक्तधर्मानवच्छिन्नद्रव्यत्वादिनिष्ठविधेयताकानुमिति-  
त्वपदेन किञ्चिद्धर्मानवच्छिन्नद्रव्यत्वावृत्तिविधेयताभिन्नद्रव्यत्वत्वाद्यति-  
रिक्तधर्मानवच्छिन्नद्रव्यत्वादिनिष्ठविधेयताकानुमितित्वस्य विवक्षितत्वे  
अथ वा निरवच्छिन्नत्वविशिष्टद्रव्यत्वावृत्तित्व-द्रव्यत्वत्वानवच्छिन्नत्वो-  
भयाभाववद्विधेयताकानुमितित्वस्य विवक्षितत्वे न काप्यनुपपत्तिरिति  
विभावनीयं ।

अनौपाधिकत्वन्तु तद्वत्त्वं । नन्वेवमुपाधिरसिद्ध्युप-  
जीव्यत्वेन व्यभिचारवत् ऐत्वाभासान्तरं स्यात् न तु  
व्याप्यभावत्वेनासिद्धिरिति चेत्, तज्ज्ञानमुपजीव्यमपि

गाहते न तु तदनवगाह्येति नियमात् द्रव्यत्वत्वाद्यवच्छिन्नप्रतियो-  
गिताकत्वसम्बन्धेन स्वरूपतो द्रव्यत्वादेरभावे प्रकारत्वाद्यस्यैवादिति  
चेत् । न । स्वरूपतो द्रव्यत्वादिविधेयकानुमितेरसिद्धेः अभाव-  
प्रत्ययोहीत्यादिनियमस्यैव वा असिद्धेः । यदि च तादृशानुमि-  
तिरपि प्रामाणिकी तद्विषयोऽपि च प्रामाणिकः तदान्यत्र साध्या-  
भाववदवृत्तित्वज्ञानमेव हेतुस्तादृशानुमितौ च द्रव्यान्व्यावृत्तित्वादि-  
रूपव्याप्तिज्ञानं हेतुरिति<sup>(१)</sup> प्राहुः ।

ननु अन्योन्याभावगर्भव्याप्तिज्ञानस्यैवानुमितिहेतुत्वेऽनौपाधिक-  
त्वज्ञानं अनुमितिजनकं इति प्रामाणिकप्रवादः कथमत आह,<sup>(२)</sup>  
'अनौपाधिकत्विति, 'तद्वत्त्वमिति तद्वत्त्वविधया अन्योन्याभावगर्भ-  
व्याप्तिज्ञापकमित्यर्थः, तथाच प्रामाणिकप्रवादे जनकपदं<sup>(३)</sup> प्रयोज-  
कपरमिति भावः ।

(१) तथाच अभावांशे द्रव्यत्वत्वेन द्रव्यत्वावगाहद्रव्यत्वाभाववदवृत्तित्व-  
रूपव्याप्तिज्ञानस्य कार्यतावच्छेदकं द्रव्यत्वत्वावच्छिन्नविधेयताकानुमि-  
तित्वं, भेदांशे स्वरूपतो द्रव्यत्वेन द्रव्यावगाहद्रव्यान्व्यावृत्तित्वरूपव्या-  
प्तिज्ञानस्य कार्यतावच्छेदकं स्वरूपतो द्रव्यत्वविधेयताकानुमितित्व-  
मिति न नियमतोऽनुमितेर्द्विविधविषयकत्वमिति तात्पर्यं ।

(२) अनुमितिहेतुरिति प्रामाणिकप्रवादविरोध इत्यत आहिति ग० ।

(३) हेतुपदमिति ग० ।

न स्वतोदूषकं । नान्यस्य साध्यव्यापकत्व-साधनाव्याप-  
कत्वज्ञानमन्यस्य साध्यव्याप्यत्वज्ञाने प्रतिबन्धकमतिप्र-  
सक्तोः, व्यभिचाराज्ञानस्य तद्येतुत्वात्, तद्धीस्तथा । न

ननु यद्यप्यनौपाधिकत्वं व्याप्तिज्ञानविषयतया अनुमितिकारण-  
तावच्छेदकं स्यात्तदा तदभाव उपाधिरसिद्धावेव प्रविशेत् अनुमि-  
तिजनकतावच्छेदकव्याप्तेरभावस्यैव व्याप्यत्वासिद्धत्वात्, यदि नैवं तदा  
उपाधिहेत्वाभासान्तरं स्यादित्याशङ्कते<sup>(१)</sup>, 'नन्वेवमिति, 'एवं'  
अनौपाधिकत्वरूपव्याप्तिज्ञानस्यानुमितेरहेतुत्वे, 'असिद्धिपञ्जीयत्वेनेति  
व्याप्त्यनिश्चयप्रयोजकज्ञानविषयत्वेनेत्यर्थः, इदञ्च हेत्वाभासत्वे हेतुर्न तु  
हेत्वाभासान्तरत्वे, 'हेत्वाभासान्तरं स्यात्' व्याप्यत्वासिद्धिभिन्नहेत्वा-  
भासः स्यात्, 'व्याप्त्यभावत्वेन' अनुमितिहेतुज्ञानविषयतावच्छेद-  
कव्याप्त्यभावत्वेन,<sup>(२)</sup> 'असिद्धिः' व्याप्यत्वासिद्धिः, 'उपजीयमपीति

(१) ननु यद्यप्यनौपाधिकत्वं सिद्धविषयतया अनुमितिकारणतावच्छे-  
दकं स्यात् तदा तदभाव उपाधिर्याप्यत्वासिद्धिभिन्नहेत्वाभासः स्यात्  
अनुमितिजनकतावच्छेदकव्याप्त्यनिश्चयप्रयोजकज्ञानविषयत्वेन व्यभि-  
चारवत् हेत्वाभासत्वस्यावश्यकत्वात् अनुमितिजनकतावच्छेदकव्याप्ति-  
भावत्वाभावेन व्याप्यत्वासिद्धिभावसम्भवात् अनुमितिजनकतावच्छे-  
दकव्याप्तेरभावस्य व्याप्यत्वासिद्धित्वनियमात् इत्याशङ्कते, 'नन्वेवमिति,  
इति पाठान्तरम् ।

(२) व्याप्त्यभावत्वेनेत्यत्र वैशिष्ट्यं तृतीयार्थः, तथाच व्याप्त्यभावत्वविशि-  
ष्टासिद्धिरित्यर्थः ।

प्रमौपाधिकत्वज्ञानं व्याप्तिज्ञानहेतुरित्युक्तम् । तथाच  
व्यभिचारज्ञानद्वारा स दूषकः, एवञ्च परमुखनिरौ-  
च्छयतया सिद्धसाधनवन्न पृथक् । न चैवमव्यभिचारस्य  
व्याप्तित्वे व्यभिचारस्तद्भावत्वेनासिद्धिः स्यादिति

परम्परया व्याप्त्यनिर्णयोपजीव्यमपीत्यर्थः, 'स्वतो दूषकमिति अनु-  
मिति-तत्कारणपरामर्शान्तरं प्रति साक्षात् प्रतिबन्धकमित्यर्थः,  
तपोरन्तरं प्रति साक्षात्प्रतिबन्धकं यज्ज्ञानं तद्विषय एव  
हेत्वाभास इति भावः । एतदेव स्पष्टयति, 'न अन्यत्वेति, 'तद्धेतु-  
त्वात्' व्याप्तिधीहेतुत्वात्, 'तद्धीः' व्यभिचारधीः, 'तथा' स्वतः  
प्रतिबन्धिका ।

नव्यास्तु नन्वेवमपि व्यभिचारस्य कथं हेत्वाभासत्वमत आह,  
'व्यभिचाराज्ञानत्वेति समानधर्तिकव्यभिचारज्ञानाभावस्येत्यर्थः, 'तद्धे-  
तुत्वात्' व्याप्तिधीहेतुत्वात्, व्यभिचारधीः साक्षात् प्रतिबन्धिकेति  
यद्युदितार्थः इत्याहुः<sup>(१)</sup> ।

'प्रमौपाधिकत्वज्ञानमिति उपाधिमतत्वज्ञानाभाव इत्यर्थः, येन  
उपाधिज्ञानं व्यभिचारज्ञानवत्स्वतः प्रतिबन्धकं स्यादिति भावः ।  
तत् किमुपाधिदूर्घणत्वेन न इत्यत आह, 'तथाचेति, उपसंहरति,  
'एवत्वेति, 'परमुखनिरौचकतयेति अनुमिति-तत्कारणपरामर्शा-  
न्तरप्रतिबन्धकज्ञानाविषयतयेत्यर्थः, 'सिद्धसाधनवदिति पचविशे-

(१) नव्यास्त्वित्यादिः आहुः इत्यन्तः पाठः क० पुस्तके नास्ति ।

वाच्यम् । साध्याभाववद्दृष्टित्वं हि व्यभिचारः तदभा-  
वश्च नाव्यभिचारः केवलान्वयिन्यभावात् । किन्तु  
स्वसमानाधिकरणात्यन्ताभावाप्रतियोगिसामानाधि-  
करण्यं । न चानयोः परस्परविरहत्वमिति ।

इति श्रीमद्भक्तेशोपाध्यायविरचिते तत्त्वचिन्तामणौ  
अनुमानखण्डे व्याप्त्यनुगमरहस्यं, समाप्तश्च व्याप्तिप्र-  
होपायः ॥

व्यक-साध्यनिश्चयवदित्यर्थः, हेत्वाभासत्वाभावेनेति शेषः, 'न पृथक्'  
न पृथक्हेत्वाभासः, अन्यथा अनौपाधिकत्वज्ञानस्यानुमितिहेतुव-  
पक्षेऽप्युपाधेर्हेत्वाभासान्तरत्वस्य दुर्वारत्वात्, अनौपाधिकत्वस्य पारि-  
भाधिकस्यैव निर्वचनात् उपाधेस्तदभावत्वाभावेन व्याप्यत्वाभिद्धाव-  
न्तर्भावासम्भवादिति भावः । 'सिद्धसाधनवदिति च हेत्वाभासत्वा-  
भावमात्रे दृष्टान्तः, न तु परसुखनिरीचकतायां, तत्र यथोक्तपर-  
सुखनिरीचकत्वादिति ध्येयं । 'किन्त्विति, अत्राव्यभिचार इत्यनु-  
षज्यते, 'अनयोरिति साध्याभाववद्दृष्टित्व-स्वसमानाधिकरणाभा-  
वाप्रतियोगिसाध्यसामानाधिकरण्ययोरित्यर्थः ।

इति श्रीमथुरानाथ-तर्कवागीश्वरविरचिते तत्त्वचिन्तामणिरहस्ये  
अनुमानाखण्डे द्वितीयखण्डरहस्ये व्याप्त्यनुगमरहस्यं, समाप्तश्च व्याप्तिप्र-  
होपायरहस्यं ।

## अथ सामान्यलक्षणा ।



व्याप्तिग्रहश्च सामान्यलक्षणाप्रत्यासत्त्या सकलधूमा-

## अथ सामान्यलक्षणारहस्यं ।



प्रयङ्गसङ्गत्या<sup>(१)</sup> सामान्यलक्षणायाः प्रत्यासत्तित्वं व्यवस्थापयितु-  
माह, 'व्याप्तिग्रहश्चेति महानसादौ घायमानो धूमत्वरूपेण सन्निक-  
ष्टधूमे वदित्वरूपेण सन्निकष्टवद्वेर्वाप्तिषाचात्कारश्चेत्यर्थः । 'सामा-  
न्यलक्षणप्रत्यासत्त्येति धूमत्व-वदित्व-सामानाधिकरणत्वरूपसामान्य-  
लक्षणप्रत्यासत्त्यर्थः, 'सकलधूमादीति, 'आदिपदात् सकलवद्वि-  
धूमवृत्तिसकलतत्सामानाधिकरणपरिग्रहः, 'कथमन्यथेति, 'अन्यथा'  
तस्य सकलधूमाद्यविषयकत्वे, 'पर्वतीयधूम इति पर्वते धूमत्वरूपेण  
पर्वतीयधूमवत्तानिश्चयस्य पर्वतीयधूमे व्याप्तिप्रकारकत्वासम्भवेनेत्य-  
र्थः, विशिष्टवैशिष्ट्यवद्भौ विशेषणतावद्देकप्रकारकविशेषणनिश्चयस्य  
हेतुतया व्याप्तिप्रकारेण पर्वतीयधूमज्ञानं विना पर्वते व्याप्तिवि-

(१) केचित्तु समानाधिकरणयोरेव व्याप्तिरिति पक्षे पर्वतीयधूमे वद्वि-  
व्याप्तिविशिष्टधीर्न पर्वतीयवद्विव्याप्तिग्रहं विना स च न सामान्य-  
लक्षणां विनेति कथितव्याप्तिविशिष्टत्वादिलक्षणापोद्गतोऽपीत्याह-  
रिति दीधितिज्ञतः ।



द्विविधयः, कथमन्यथा पर्वतीयधूमे व्याप्त्यग्रहे तस्मा-

ग्निष्टपर्वतीयधूमवैग्निश्चज्ञानासम्भवादिति भावः । 'तस्मादनुमिति-  
रिति पर्वते धूमत्वरूपेण तद्वत्तन्निश्चयादनुमितिरित्यर्थः, व्याप्तिवि-  
ग्निष्टवैग्निष्वावगाहिनिश्चयस्यैव लाघवादानुमितिहेतुत्वादिति भावः ।  
ननु सा किं संयोगादिलक्षणषोढाप्रत्यासत्त्यन्तर्गता तदतिरिक्ता  
वेत्यत आह, 'सा चेति, 'इन्द्रियसम्बद्धेति स्वजन्यज्ञानप्रकारत्वरूपे-  
न्द्रियसम्बन्धाश्रयस्य सामान्यस्य व्यक्तिषु धर्मिताख्यस्वरूपसम्बन्ध-  
पेत्यर्थः, स्वमिन्द्रियं, तथाच सामान्यं लक्षणं निरूपकं यस्या इति  
व्युत्पत्त्या चक्षुरादिजन्यज्ञानप्रकारीभूतधूमत्वादिसामान्यनिरूपिता  
धर्मिताख्यविशेषणतैव सामान्यलक्षणा, सा चाभावादिग्राहकचक्षुः-  
संयुक्तविशेषणतादिवद्विशेषणताप्रत्यासत्त्यन्तर्गतैव । न चैवं धूम-  
त्वादिप्रकारकशब्दबोध-स्यत्वादितः सकलधूमादिगोचरो मानसो  
बोधो न स्थान्नगोजन्यज्ञानविरहादिति वाच्यं । शब्दादेरपि  
मनोजन्यत्वात् । न च तथापि धूमत्वादिप्रकारकशब्दबोधादितो  
निखिलधूमगोचरचाक्षुषादिर्न स्यादिति वाच्यं । इष्टत्वात् प्राचीनैस्स-  
म्प्रकारकचाक्षुषादित एव सकलतदाश्रयचाक्षुषाद्युपगमात् इति  
भावः । अत्र धूमत्वादिसामान्यनिरूपितधर्मितामात्रस्य प्रत्यासत्तिने  
धूमत्वादेरज्ञानदग्नायां निर्विकल्पकतज्ज्ञानदग्नायां विशेष्यतया  
तज्ज्ञानदग्नायाश्च<sup>(१)</sup> तद्वकारेण तदाश्रयकतप्रत्यक्षापत्तिः समवा-  
याद्येकसम्बन्धेन धूमत्वादिप्रकारकज्ञानदग्नायां कालिकादिसम्बन्धेन

(१) प्रमेयमित्याकारकधूमत्वविषयकज्ञानदग्नायामित्यर्थः ।

द्वुत्तितिः, सा चेन्द्रियसम्बन्धविशेषता प्रतिरिक्तैव वा,

सकलतदाश्रयसाक्षात्कारापत्तिश्चातो भूतान्तं सामान्यविशेषणं, एवञ्च यत्सम्बन्धेन तस्य ज्ञाने प्रकारत्वं तत्सम्बन्धावच्छिन्ना तदीया धर्मिता तत्सम्बन्धेन तदाश्रयस्य प्रत्यक्षे हेतुरिति बोद्धातिप्रसङ्गः । एतेन इन्द्रियलौकिकसन्निकर्षाश्रयवृत्तित्वमेवेन्द्रियसम्बन्धोऽभिधीयतां इत्यपि निरस्तं । यथोक्तातिप्रसङ्गानां दुर्वारतापत्तेः धूमादौ धूमत्वादिप्रकारकशब्दादिज्ञानानन्तरं सकलधूमादिगोचरमानसप्रत्यक्षानुदयापत्तेश्च धूमत्वादेर्मगोलौकिकसन्निकर्षावृत्तित्वात् चचुरादिष्वितिष्ठधूमलूपटले धूमत्वभ्रमेण सकलधूमसाक्षात्कारानुदयापत्तेश्च धूमत्वमेन्द्रियसन्निकर्षावृत्तित्वात् । धूमत्वादिप्रकारककारणादितोऽपि चचुरादिवहिरिन्द्रियजन्यसकलतदाश्रयसाक्षात्कारवारणाय तादृशपरम्पराया इन्द्रियसम्बन्धत्वसम्वादाय च<sup>(१)</sup> चचुरादिजन्येति ज्ञानविशेषणं, तच्च न कार्य-कारणभावप्रविष्टं चचुरादिवहिरिन्द्रियसत्वे चचुरादिजन्यत्वनिवृत्तिसाक्षुषत्वादिजातेर्जनःसत्वे तु जन्यज्ञानमात्रस्य मनोजन्यतया ज्ञानत्वमात्रस्य कारणतावच्छेदकघटकत्वात् साधवात्, तथाच वहिरिन्द्रियसत्वे तत्पुरुषीयसाक्षुषविशिष्टधूमत्वविशिष्टधर्मितात्वेन कारणता तत्पुरुषीयधूमत्वप्रकारकधूमत्वाश्रयसुखविशेष्यकसाक्षुषत्वेन कार्यता इत्यादिक्रमेण, मनःसत्वे तु तत्पुरुषीयज्ञानविशिष्टधूमत्वविशिष्टधर्मितात्वेन कारणता तत्पुरुषी-

(१) उक्तपरम्पराया इन्द्रियावृत्तित्वे इन्द्रियसम्बन्धत्वं न सम्भवतीति भावः ।

तद्विशेष्यकप्रत्यक्षे तदिन्द्रियसन्निकर्षस्य हेतुत्वेनानाग-

यधूमत्वप्रकारकधूमत्वाश्रयसुखविशेष्यकमानसत्वेन कार्यतेत्यादिक्रमेण कार्य-कारणभावः, प्रथमवैशिष्ट्यं प्रकारतासम्बन्धेन, द्वितीयवैशिष्ट्यञ्च निरूपितत्वसम्बन्धेन, विशिष्टपूर्वसत्त्वस्थापेक्षिततया च न कालान्तरीयचाक्षुषादिमादायातिप्रसङ्गः, कालिकसामानाधिकरणमात्रञ्च प्रत्यासत्तिर्न तु विशेष्यत्वाश्रयत्वघटितदैग्निकसामानाधिकरणमपि धूमत्वादिप्रकारकज्ञानानन्तरं निरुक्तधर्मितारूपसामान्यलक्षणाप्रत्यासत्त्यातीतानागतधूमादौ कदाचित् समूहात्मनविधया धूलीपटलादौ च धूमत्वादिप्रत्यक्षोदयान्तत्र च तदानीं तादृशधर्मितारूपसामान्यलक्षणप्रत्यासत्त्या विनिगसनाविरहेण सकलधूमत्वाश्रयभानादिति निर्गर्भः(१) ।

न च यत्र विनश्यदवस्थाचक्षुःसंयोगेन यत्किञ्चिद्भूतौ धूमत्वप्रकारकचाक्षुषोत्पत्तिकाल एव चक्षुषोर्निमीलनं तत्र तदनन्तरं निमीलितनयनस्यापि तादृशधर्मितारूपसामान्यलक्षणप्रत्यासत्त्या धूमत्वप्रकारकनिखिलधूमत्वाश्रयचाक्षुषापत्तिः विनश्यदवस्थालोकसमवधानजन्यधूमत्वप्रकारकयत्किञ्चिद्भूमचाक्षुषादन्वतमसेऽपि तादृशधर्मितारूपसामान्यलक्षणप्रत्यासत्त्या

(१) सर्वत्र 'निर्गर्भः' इत्यत्र 'निर्गर्वः' इति ग० पुस्तकपाठः ।

धूमत्वप्रकारकनिखिलधूमचाचुषापत्तिः, एवं यत्र धूमत्वप्रकारकय-  
त्किञ्चिद्धूमव्यक्तिचाचुषोत्पत्तिकाले धूमत्वप्रकारकलौकिकचाचुष-  
प्रतिबन्धकदोषोत्पत्तिस्तत्र तदनन्तरं दोषसत्त्वेऽपि तादृशधर्मितास-  
त्किर्षेण धूमत्वप्रकारकनिखिलधूमत्वाश्रयचाचुषापत्तिरिति वाच्यं ।  
वह्निरिन्द्रियजनितसामान्यलक्षणाजन्यसाक्षात्कारस्य सामान्यांशे विशे-  
षीभूतयत्किञ्चिद्भ्रतृत्वे च लौकिकत्वनिश्चयाद्वह्निरिन्द्रियेण तादृ-  
शसाक्षात्कारजनने सामान्याश्रये तदनाश्रये वा यत्किञ्चिद्धर्मिणि  
लौकिकविशेष्यतया सामान्यप्रकारकतद्विन्द्रियकरणकप्रत्यक्षोत्पत्ति-  
सामर्थ्या अपि सहकारित्वस्य नव्यानव्यसकलतान्त्रिकसिद्धत्वात् ।  
अथवा वक्ष्यमाणकल्पेऽप्यगितारादिति निगमः ।

नन्वेवं ज्ञानप्रकारीभूततद्विद्विषयितधर्मितायास्तत्प्रकारकतदाश्रय-  
प्रत्यक्ष एव हेतुतया घटत्वरूपेण एकघटव्यक्तिमात्रप्रकारकज्ञानानन्तरं  
घटत्वावच्छिन्नप्रकारेण घटान्तराश्रयप्रत्यक्षं न खाद्वटान्तराश्रयस्य ज्ञा-  
नप्रकारीभूतघटव्यक्तेराश्रयत्वाभावात् । न च सामान्यतस्तत्पुरुषीय-  
चाचुषादिविशिष्टघटविशिष्टधर्मितात्वेन तत्पुरुषीयघटप्रकारकघटा-  
श्रयसुखविशेष्यकचाचुषत्वेन कालिकसामानाधिकरण्यमात्रप्रत्यासत्त्या  
कार्य-कारणभावात् ज्ञानप्रकारीभूतयत्किञ्चिद्धटव्यक्तिनिद्विषयितध-  
र्मितैव ज्ञानधिकरणीभूतघटान्तराश्रयप्रत्यक्षेऽपि हेतुरिति वाच्यं ।  
तथा सति तद्व्यक्तित्वरूपेणैव तद्वटमात्रप्रकारकज्ञानत्वदशायामपि<sup>(१)</sup>  
घटान्तराश्रयप्रत्यक्षापत्तिरिति । मैवं । घटत्वावच्छिन्नघटप्रकारक-  
तत्पुरुषीयघटाश्रयसुखविशेष्यकचाचुषं प्रति घटत्वावच्छिन्नप्रका-

(१) तद्व्यक्तित्वरूपेणैकव्यक्तिघटमात्रप्रकारकज्ञानानन्तरमपीति ख०, ग०

रतासम्बन्धेन तत्पुरुषीयघटाश्रयचाक्षुषविशिष्टेन यत्किञ्चिद्दृष्टेन विशि-  
ष्टाया धर्मिताया एव हेतुत्वात् तद्भक्तित्वरूपेण तद्भक्तिप्रकारकज्ञा-  
नस्य तद्भक्तित्वावच्छिन्नतद्भक्तिप्रकारक-तत्तद्भक्त्याश्रयप्रत्यक्षं प्रत्येव  
हेतुत्वात् एवमेव सर्वत्र सखण्डसामान्यस्थले बोधं सामान्यभेदेन  
कार्य-कारणभावभेदादिति निगमः<sup>(१)</sup> ।

नन्वत्र धर्मिताप्रवेगोव्यर्थस्तादृशविशिष्टधूमत्वत्वादिनैव हेतुत्वस्य  
सुवचत्वात्, किञ्चैवं यत्रातीतमनागतं वा सामान्यं तत्र तन्निरू-  
पितधर्मिताया अग्रतीतानागततया तत्सामान्यप्रकारकज्ञानानन्तरं  
तत्सामान्यप्रकारकनिखिलतत्सामान्याश्रयसाक्षात्कारो न स्यात् ज्ञान-  
प्रकारोभूतस्य तत्सामान्यस्य तन्निरूपितधर्मितायाश्च अव्यवहित-  
पूर्वमभावात् ! अथातीतानागतसामान्यप्रकारकज्ञानानन्तरं तादृ-  
शसामान्यप्रकारकतादृशसामान्याश्रयसाक्षात्कारोऽसिद्धः यथोक्तका-  
र्य-कारणभावस्य व्यभिचारापत्त्या तथैव कल्पनात्, किन्तु तत्र  
अतीतानागतसामान्यप्रकारकज्ञाने भावमानं साक्षात्परम्परया वा  
तत्सामान्यनिष्ठमवश्यं नित्यधर्मान्तरमप्यस्ति परम्परासम्बन्धेनावच्छि-  
न्नतादृशनित्यधर्मनिरूपितधर्मिताप्रत्यासत्त्या परम्परासम्बन्धेन तादृ-  
शनित्यधर्मप्रकारकमेव तत्सामान्याश्रयप्रत्यक्षं जायते । न च  
तादृशनित्यधर्मस्य परम्परासम्बन्धेन ज्ञानाप्रकारतया कथं तन्नि-  
रूपितधर्मिताप्रत्यासत्त्या परम्परासम्बन्धेन तादृशनित्यधर्मप्रकारकमेव  
तत्सामान्याश्रयप्रत्यक्षमिति वाच्यं । यत्किञ्चिद्विशेष्येऽतीताना-

(१) न च यत्र विनश्यदवस्थचक्षुःसंयोगेनेत्यादिः निगमं इत्यन्तः पाठः  
क्रोड़पत्रस्य इति ।

गतसामान्यप्रकारकज्ञानदृश्यामन्ततो निर्धर्मितावच्छेदकस्यापि तस्मिन् विग्रहे परम्परासम्बन्धेन तत्सामान्यवृत्तित्तादृशनिव्यधर्म-प्रकारकप्रत्यक्षसम्भवात्, यत्र च शाब्दबोधादिरूपमतीतानागत-सामान्यप्रकारकं ज्ञानं तत्रापि तदुत्तरं परम्परासम्बन्धेन तद्वृत्ति-त्तादृशधर्मप्रकारकमानसबोधकल्पनादिति चेत् । न । अनुभवापत्त्या-पादतीतानागतसामान्यप्रकारकज्ञानान्तरगततीतानागतसामान्यप्र-कारकस्यापि निखिलतदाश्रयशाचात्कारस्य सकलनैयायिकानुभव-सिद्धत्वात् परम्परासम्बन्धेनातीतानागतसामान्यवृत्तित्तादृशधर्मप्रका-रकज्ञानं विनाप्यतीतानागतसामान्यप्रकारकशाब्दादितः सकलतदा-श्रयशाचात्कारस्य सकलनैयायिकानुभवसिद्धत्वाच्च । अन्यथा अतीता-नागतसामान्यप्रकारकज्ञानान्तरं निखिलतदाश्रयशाचात्कार एवाप-त्यतां क्लिप्तावत्सुदृष्ट्या । अपिच चचुरादिजन्यज्ञानप्रकारो-भूतसामान्यनिरूपितधर्मितावास्तादृशसामान्यस्य वा प्रत्यासत्तित्वे च द्वात्रिंशदभेदेन पुरुषभेदेन च कार्य-कारणभावभेदादगन्तकार्य-का-रणभावप्रसङ्गः कारणतावच्छेदकप्रतीरगौरवञ्चेत्यक्षरयादाह, 'अति-रिक्तैव वेति संयोगादिलक्षणप्रत्यासत्तिघटकादतिरिक्तैव वेत्यर्थः, तथातिरिक्तं धूमत्वादिरूपसामान्यप्रकारकज्ञानमात्रं, षोडश परिग-णयन्तु लौकिकषड्विकर्षाभिप्रायं, सामान्यलक्षणापदस्य च सामान्यं लक्षणं विषयतया निरूपकं यस्याः सा सामान्यलक्षणेति व्युत्पत्तिः, धूमत्वादिप्रकारकशाब्द-स्यत्यादितोऽपि मानससकलधूमादिशाचा-त्कारवच्चचुरादिवहिरिन्द्रियजन्यनिखिलधूमादिशाचात्कारोऽपीष्यत-एव नातोवहिरिन्द्रियस्थलोऽपि चचुरादिभेदेन कार्य-कारणभाव-

भेदः, समवायसम्बन्धेनात्मनिष्ठतया हेतुतया च न पुरुषभेदेन कार्य-कारणभावभेद इति भावः। अत्र सामान्यमात्रस्य प्रत्यासत्तित्वेऽतीतानागतसामान्यप्रकारकज्ञानानन्तरं तत्प्रकारकनिखिलतदाश्रयसाक्षात्कारानुपपत्तिः कारणत्वेनाभिमतस्य सामान्यसाव्यवहितपूर्वमभावादतोज्ञानप्रवेशः। नन्वेतावता अनित्यसामान्यस्थले घटत्वादिनित्यसामान्यस्थले च सामान्यज्ञानं प्रत्यासत्तिरसु घटत्वत्वादिना कारणत्वकल्पनामपेक्ष्य घटत्वादिज्ञानत्वेन हेतुताया लघुत्वात्, परममहत्त्वादिनित्यगुणाद्यात्मकसामान्यस्थले घटात्यन्ताभावादिनित्याभावात्मकसामान्यस्थले च कथं ज्ञानान्भवावः सामान्यभेदेन कार्य-कारणभावभेदात्तत्र स्वरूपसतः परममहत्त्वादेरेव लाघवेन प्रत्यासत्तित्वौचित्यात्। न चैवं परममहत्त्वाद्यज्ञानदशायाऽपि तत्प्रत्यासत्त्या निखिलतदाश्रयसाक्षात्कारापत्तिरिति वाच्यं। परममहत्त्वादिप्रकारकपरममहत्त्वाश्रयप्रत्यक्षत्वस्य कार्यतावच्छेदकतया विशेषज्ञानरूपविशिष्टबुद्धिसामान्यकारणाभावादेव<sup>(१)</sup> तत्र कार्याभावादिति चेत्। न। परममहत्त्वत्वादिनिर्विकल्पकानन्तरमाद्यविशिष्टज्ञानोत्पत्तिश्च एव परममहत्त्वादिप्रकारेण निखिलतदाश्रयसाक्षात्कारापत्तेः<sup>(२)</sup> परममहत्त्वादिविशेष्यकज्ञानादपि<sup>(३)</sup> सकलतदाश्रय-

(१) विशिष्टबुद्धिसामान्यं प्रति विशेषणज्ञानस्य स्वातन्त्र्येण कारणत्वमिति भावः।

(२) निर्विकल्पकतृतीयक्षणे एव सामान्यलक्षणासन्निकर्षजन्यप्रत्यक्षस्य सर्वानुभवसिद्धतया निर्विकल्पकद्वितीयक्षणे तादृशप्रत्यक्षापत्तिरिति समुदिततात्पर्यं।

(३) विशिष्टबुद्धिसामान्यं प्रति विशेषणज्ञानस्य विशेषणविषयकत्वेनैव कारणत्वमिति विशेषणविशेष्यकज्ञानस्यापि तत्कारणत्वं सुवचमिति।

साक्षात्कारापत्तेः । न चेष्टापत्तिः, अनुभवविरोधात् । एवं समवायादि-  
यत्किञ्चित्त्वन्वयेन परममहत्त्वादिप्रकारकज्ञाने तत्रत्यासत्त्या जगत-  
एव प्रत्यक्षापत्तिः जगत एव येन केनचित् सम्बन्धेन परममहत्त्वा-  
द्याश्रयत्वात्, विना कारणतावच्छेदकप्रकारताप्रवेगं सम्बन्धभेदोपा-  
दानस्याश्रयत्वात् । न चेष्टापत्तिः, अनुभवविरोधात् परममहत्त्वादे-  
नित्यतया तदभावेन कार्यभावात् द्वाप्यभावात् स्वरूपसत्तस्य कार-  
णत्वे मानाभावाच्च । न च तथापि तावदादिच्छादिशाधारण-  
सामान्यप्रकारकमेव प्रत्यासत्तिरसु किं ज्ञानान्तर्भावेनेति वाच्यं ।  
घटत्वादिनिर्विकल्पकात्मकस्य घटत्वादिविशेष्यकज्ञानात्मकस्य वा  
विशेषणज्ञानस्य सत्त्वे<sup>(१)</sup> घटत्वादिप्रकारकेश्चादितो घटत्वादिप्रका-  
रकानुदुद्भृत्कारादितश्च निश्चितघटत्वाद्याश्रयसाक्षात्कारापत्तेः । न  
च सामान्यप्रकारकज्ञानस्यैव सामान्यलक्षणात्वे ज्ञानलक्षणा-सामा-  
न्यलक्षणयोः कार्य-कारणभावे को भेद इति वाच्यं । कारणताव-  
च्छेदकभेदेन कार्यतावच्छेदकभेदेन च भेदात्, सामान्यलक्षणायाः  
कार्य-कारणभावसु तत्तत्सम्बन्धावच्छिन्न-घटत्वादिप्रकारताशालि-  
ज्ञानत्वेन स्वरूपतत्तत्सम्बन्धावच्छिन्नघटत्वादिप्रकारिताक-तत्तत्सम्ब-  
न्धावच्छिन्न-घटत्वाद्याश्रयताशालिसुखविशेष्यकप्रत्यक्षत्वेन, यावत्तस्य  
कार्यतावच्छेदकाघटकत्वेऽपि विनिगमनाविरहेण सकलघटज्ञानं<sup>(२)</sup> ।

(१) एतेन विशिष्टबुद्धिसामान्यकारणस्य विशेषणज्ञानस्य सत्त्वं सूचित-  
मिति ।

(२) सामान्यलक्षणाया हि तत्तत्सम्बन्धावच्छिन्नघटत्वादिप्रकारिताशालि-  
ज्ञानत्वं कारणतावच्छेदकं, घटत्वादिप्रकारकतत्तत्सम्बन्धावच्छिन्न-  
घटत्वाद्याश्रयताशालिसुखविशेष्यकप्रत्यक्षत्वं कार्यतावच्छेदकं,  
एकसम्बन्धेन घटत्वादिप्रकारकज्ञाने सम्बन्धान्तरेण घटत्वाद्याश्रयस्य  
प्रत्यक्षानुदयात् तत्तत्सम्बन्धावच्छिन्नेति इति ग० ।



समवायसम्बन्धेन घटत्वप्रकारकज्ञानानन्तरं कालिकादिसम्बन्धेन घटत्वप्रकारकनिखिलघटविषयकप्रत्यक्षस्य समवायसम्बन्धेन घटत्वप्रकारेण घटत्ववतः कालादेः प्रत्यक्षस्य च वारणाय सम्बन्धान्तर्भावः। घटत्वादिप्रकारकज्ञानं विनापि द्रव्यत्वादिषामान्यलक्षणया जायमाने द्रव्यत्वादिप्रकारकघटादिमुख्यविशेष्यकप्रत्यक्षे व्यभिचारवारणाय कार्यतावच्छेदके घटत्वप्रकारिताकोति । प्रकारित्वञ्चालौकिकं ग्राह्यं<sup>(१)</sup> तेन घटत्वप्रकारकज्ञानं विनापि द्रव्यत्वादिविशिष्टबुद्ध्यात्मक-

(१) अथ प्रकारतायामलौकिकत्वनिवेशनं व्यर्थं घटत्वाद्याश्रयताशालि-  
निष्ठमुख्यविशेष्यताया अपि अलौकिकत्वस्याग्रे निवेशनीयतया  
तादृशविशेष्यतायां घटत्वप्रकारतानिरूपितत्वनिवेशनेनैव निरुक्तव्य-  
भिचारवारणसम्भवात् तथाहि निरुक्तज्ञानस्य सन्निकृष्टघटविशेष्यक-  
घटत्वप्रकारकस्य घटत्वप्रकारतानिरूपिता घटनिष्ठलौकिकमुख्यवि-  
शेष्यता या तु अलौकिकविशेष्यता सा न घटत्वप्रकारतानिरूपिता  
किन्तु द्रव्यत्वप्रकारतानिरूपितेति, आवश्यकञ्च विशेष्यतायां प्रका-  
रतानिरूपितत्वनिवेशनं अन्यथा कालिकसम्बन्धावच्छिन्नघटत्वप्रका-  
रताकसमवायसम्बन्धावच्छिन्नद्रव्यत्वप्रकारताकज्ञानानन्तरं घटाग्रे  
लौकिकसन्निकर्षानन्तरञ्च जायमाने द्रव्यत्वप्रकारतानिरूपितघटनि-  
ष्ठा लौकिकविशेष्यताक-घटत्वनिष्ठलौकिकालौकिकोभयप्रकारतानि-  
रूपितलौकिकविशेष्यताकप्रत्यक्षे व्यभिचारापत्तेः । न च तादृशप्र-  
त्यक्षं नेष्यत एवेति वाच्यं । कार्य-कारणभावस्य साधवसत्त्वे उभय-  
त्रालौकिकत्वनिवेशेन गौरवस्यान्याय्यतया फलापलापस्यान्याय्यत्वात्  
इति चेत् । न । तत्रापि यथा लौकिकसन्निकर्षमर्थ्यादया सन्निकृष्ट-  
घटे घटत्वस्य भानं तथा असन्निकृष्टघटेऽपि । न चासन्निकृष्टघटे  
सन्निकर्षाभावात् कथं तस्य भानमिति वाच्यं । असन्निकृष्टघटे इव

त्वसामान्यलक्षणया यथा द्रव्यत्वं भासते तथा घटत्वमपि, लौकिक-  
सन्निकृष्टघटत्वस्य द्रव्यत्वसामान्यलक्षणासन्निकृष्टघटे भानस्य केनाप्य-  
निराकरणीयत्वात् तथाच उपदर्शितज्ञाने द्रव्यत्वप्रकारतानिरूपिता  
यावद्द्रव्यनिष्ठालौकिकविशेष्यता एका, अन्यथा च घटत्वप्रकारतानि-  
रूपिता घटनिष्ठालौकिकी विशेष्यता, अपरा च घटत्वप्रकारतानि-  
रूपिता सन्निकृष्टघटनिष्ठा लौकिकी विशेष्यता इति भवत्येव घट-  
त्वप्रकारकज्ञानस्य कार्यतावच्छेदकावच्छिन्नं तादृशज्ञानं तस्य घटत्व-  
प्रकारतानिरूपितघटत्वाश्रयताशालिनिष्ठालौकिकमुख्यविशेष्यताक-  
त्वादिति सर्व्वं सुसमञ्जसमित्यसङ्गुचरणाः ।

केचित्तु तत्प्रकारतानिरूपितविशेष्यताकत्व-विशेष्यतानिरूपित-  
तत्प्रकारताकत्वयोर्द्वयोर्विनिगमनाविरहेण निवेशे कार्य-कारणभाव-  
द्वयापत्तिरिति लाघवेन तत्प्रकारताकत्व-तद्विशेष्यकत्वयोर्द्वयोरेकत्र  
द्वयमिति रीत्या निवेशे न कार्यकारणभावद्वयापत्तिर्न वा निरुक्तस्थले  
फलापलाप इति न व्यभिचारः इति । न च व्यासज्यवृत्तिकार्यता-  
वच्छेदकत्वस्यापसिद्धान्ततया तत्प्रकारकत्वविशिष्टतद्विशेष्यकत्व-तद्वि-  
शेष्यकत्वविशिष्टतत्प्रकारकत्वद्वयोः परस्परं विनिगमनाभावेन  
कार्य-कारणभावद्वयापत्तिर्भवतामपीति वाच्यं । व्यासज्यवृत्तिकार्य-  
तावच्छेदकत्वमत एव तद्ग्रन्थनिर्व्वचनात् । वस्तुतस्तु उक्तस्थले फला-  
पलापस्यान्याय्यतया विशेष्यतायां तत्प्रकारतानिरूपितं निवेश्यं अलौ-  
किकत्वं प्रकारतायां न देयं भट्टाचार्य्येणापि तथैव लिखितमिति  
सुत्तयं । यदि चालौकिकमुख्यविशेष्यतायां लौकिकप्रकारतानिरू-  
पितत्वस्वीकारे तु प्रकारतायामलौकिकत्वं अवश्यं देयं, अन्यथा घट-  
त्वनिर्व्विकल्पकालकसमवायावच्छिन्नद्रव्यत्वप्रकारकज्ञानोत्तरं जाय-  
माने एकत्र द्वयमिति रीत्या घटोद्भवमित्याकारकज्ञाने व्यभिचारः ।  
न चालौकिकविशेष्यतायां लौकिकप्रकारतानिरूपितत्वस्वीकारे  
मानाभाव इति वाच्यं । मुख्यविशेष्यतायां अलौकिकत्वनिवेशना-

घटत्वनिर्विकल्पकोत्तरं द्रव्यत्वसामान्यलक्षणया जायमाने यावद्घट-  
 मुख्यविशेष्यकप्रत्यक्षे लौकिकसन्निकर्षमर्यादया घटत्वप्रकारके न  
 व्यभिचारः । न च तथापि कालिकादिसम्बन्धेन स्वरूपतो घटत्वादि-  
 प्रकारकबुद्ध्यात्मकगवादिविशेष्यकसमवायसंसर्गकद्रव्यत्वप्रकारकस्मर-  
 णोत्तरं द्रव्यत्वसामान्यलक्षणया जायमाने यावद्घटमुख्यविशेष्यक-  
 प्रत्यक्षे उपनयमर्यादया समवायसम्बन्धेन स्वरूपतो घटत्वप्रकारके  
 व्यभिचार इति वाच्यं । यथोक्तकार्य-कारणभावस्यैव बाधकत्वेन  
 तत्र समवायसम्बन्धेन घटत्वस्याप्रकारत्वात् । अत्र घटत्वप्रकारकज्ञानं  
 विनापि जातित्वरूपेण गोत्वादिजात्यन्तरप्रकारकज्ञानाज्जायमाने  
 जातित्वरूपेण घटत्वादिनिखिलजातिप्रकारकनिखिलजात्याश्रयप्रत्यक्षे  
 व्यभिचारवारणाय स्वरूपत इति घटत्वादिप्रकारिताविशेषणं, यथोक्त-  
 कार्य-कारणभावस्यैव बाधकत्वेन तत्र स्वरूपतो घटत्वादेरप्रकारत्वात् ।  
 अत्र घटत्वादिविशेष्यकस्मरणादितो जायमाने विशेष्ये विशेषणमिति  
 रीत्या समवायसम्बन्धेन स्वरूपतो घटत्वादिप्रकारक-घटवदिदमित्या-  
 द्युपनीतभाने व्यभिचारवारणाय मुख्यविशेष्यत्वप्रवेशः, उपनीतभाने च

या लौकिकप्रकारतानिरूपितत्वस्यालौकिकविशेष्यतायां मधुराना-  
 येन खोद्यततया तुल्ययुक्त्या लौकिकप्रकारतानिरूपितत्वस्यालौकिक-  
 विशेष्यतायां स्वीकारस्य न्याय्यत्वादित्युच्यते, तदा न कोऽपि दोषः ।  
 न च कालिकादिसम्बन्धेन द्रव्यमित्याकारकज्ञानोत्तरं एकत्र द्वयमिति  
 रीत्या जायमाने समवायसम्बन्धेन घटत्वप्रकारक-घटोद्भवमित्याका-  
 रकज्ञाने व्यभिचार इति वाच्यं । एतादृशकार्य-कारणभावबाधक-  
 वलादेव तादृशज्ञानस्यैवासम्भवात् इति निगमः ।

घटो न मुख्यविशेष्यः वहिरिन्द्रियस्थले उपनीतं विशेषणतयैव भासते, इति नियमात् । मुख्यविशेष्यत्वमप्यलौकिकरूपं ग्राह्यं तेन कालिकादिसम्बन्धेन स्वरूपतो घटत्वस्मरण-लौकिकसन्निकर्षाभ्यां जायमाने लौकिकालौकिकोभयघटत्वप्रकारिताशालिनि अयं घट इति मुख्यविशेष्यकलौकिकप्रत्यये न व्यभिचारः । अथ तथापि कालिकादिष्वप्यन्वेन स्वरूपतो घटत्वप्रकारक-घटविशेष्यकस्मरणज्जायमाने समवायसम्बन्धेन घटत्वप्रकारक-घटमुख्यविशेष्यकमानसोपनीतभाने व्यभिचारः मानसे उपनीतं विशेषणतयैव भासते इति नियमाभावात्, तत्र कालिकादिसम्बन्धेनैव घटत्वप्रकारकघटप्रत्ययं न तु समवायसम्बन्धेनेत्युक्तावपि घटवदितिघटत्वादिस्मरणोत्तरं जायमाने परम्परासम्बन्धेन घटप्रकारकमानसोपनीतभाने व्यभिचारो दुर्वारः तदनभ्युपगमे तादृशस्मरणोत्तरं निखिलघटाश्रयसाक्षात्कारानुपपत्तेः द्रव्यप्रकारकज्ञानस्याप्रत्यासत्तित्वादिति चेत् । न। लाघवाद्यथोक्तरूपेण सामान्यलक्षणायाः कार्य-कारणभावकल्पने यथोक्तमानसे घटादिर्न मुख्यविशेष्यः किन्तु चक्रव्यूहवत् घटत्वपुटितो भवन्नेव भासते इत्येव कल्पते यथोक्तकार्य-कारणभावस्यैव बाधकत्वात् तत्तदनन्तोपनीतभानान्यत्वप्रवेशे गौरवात् सर्वत्रैव मानसोपनीतभाने च उपनीतमवश्यं मुख्यविशेष्यतया भासते इति नियमे मानाभावात्, असति बाधक एव मानसोपनीतभाने उपनीतस्य प्रकारत्व-मुख्यविशेष्यत्वलक्षणद्विविधविषयत्वाभ्युपगमात्, एवं खण्डग्रो दण्ड-पुरुषोभयविषयकसमूहालम्बनस्मरणोत्तरं जायमाने दण्डप्रकारकदण्डाश्रयपुरुषप्रत्ययेऽपि पुरुषो न दण्डांगे मुख्यविशेष्यतया भासते अपि तु चक्र-

व्यूहवत् दण्डपुटितः पुरुषः पुरुषपुटितश्च दण्डो भासते इति कल्पते ।  
 न च तथापि योगजविशिष्टज्ञाने विशेषणज्ञानस्याहेतुत्वनये सामा-  
 न्यज्ञानं विनापि जायमाने सासान्यप्रकारकसामान्याश्रयमुख्यविशेष्य-  
 कप्रत्यचे व्यभिचारः, योगजविशिष्टज्ञानं प्रत्यपि विशेषणज्ञानस्य हेतु-  
 त्वनयेऽपि योगजधर्मेण सामान्य-तदाश्रयोभयनिर्विकल्पकं जनयित्वा  
 धनिते सामान्यप्रकारक-सामान्याश्रयमुख्यविशेष्यकप्रत्यचे व्यभिचार-  
 इति वाच्यं । योगजधर्मजन्यतावच्छेदकतत्तज्जात्यवच्छिन्नान्यत्वेन  
 प्रत्यक्षविशेषणात् तादृशयोगजधर्मज्ञानेऽपि सामान्याश्रयमुख्यविशेष्य-  
 तथा भाने मानाभावाच्च । अपि तु चक्रव्यूहवत् स्वप्रकारीभूते  
 सामान्ये प्रकारीभूयैव भासते लाघवात् तथैव कल्पनात्, अत एव  
 कात्तिकादिसम्बन्धेन स्वरूपतो घटत्वादिप्रकारकस्वरणोत्तरं विशेष्ये  
 विभे मिति रीत्या कात्तिकादिसम्बन्धेनैव घटत्वादिप्रकारकं  
 घटवदिदमित्युपनीतभानं जायते न तु समवायसम्बन्धेन घटत्व-  
 प्रकारकमित्युक्तावेव व्यभिचारवारणसम्भवात् किं जात्यादिसामान्य-  
 लक्षणायाः कार्यतावच्छेदके स्वरूपतः प्रकारताघटितमुख्यविशेष्य-  
 त्वप्रवेगेन । न च तथाप्यत्र घटत्वमिति समवायसम्बन्धेन घटत्वविशेष्य-  
 कस्वरणोत्तरं जायमाने विशेष्ये विशेषणमिति रीत्या घटत्वप्रकारके  
 घटवदिदमित्याद्युपनीतभाने व्यभिचारवारणाय तदवश्यं निवेशनीय-  
 मिति वाच्यं । स्वरूपतो घटत्वविशिष्टवुद्धिं प्रति स्वरूपतो विशेषणी-  
 भूतघटत्वविषयकज्ञानस्य हेतुतया तादृशस्वरणोत्तरं तादृशोपनीत-  
 भानासम्भवात् घटत्वत्वघटकतयैव स्वरूपतो घटत्वज्ञानाभ्युपगमे<sup>(१)</sup>

(१) घटत्वत्वस्य घटेतरावृत्तित्वविशिष्टसकलघटवृत्तित्वरूपतया घटत्व-

व्यभिचारस्यापि विरहादित्यसत्पूर्वपक्षोऽपि निरस्तः घटवदिति  
 स्मरणोत्तरं जायमाने परम्परासम्बन्धेन घटत्वप्रकारकमानसोप-  
 नीतमाने यथोक्तरीत्या योगजधर्माजन्ये घटत्वप्रकारकघटविशेष-  
 यकप्रत्यक्षे च व्यभिचारवारणाय तत्प्रवेशस्यावश्यकत्वात् । एतेना-  
 भावत्वाद्यखण्डोपाधिरूपसामान्यलक्षणायाः कार्य-कारणभावो व्या-  
 ख्यातः, जात्यखण्डोपाध्यतिरिक्तपदार्थज्ञानञ्च प्रत्यासत्तिरेव नेति  
 सामान्यपदार्थनिर्वचन एव प्रतिपादितं । नन्वेवंरूपेण कार्य-कारण-  
 भावे जातित्वरूपेणैव जातिव्यक्तिमात्रप्रकारकज्ञानानन्तरं जाति-  
 त्वावच्छिन्नजातिसत्त्वप्रकारेण निखिलजात्याश्रयप्रत्यक्षं कथं स्यात्  
 जात्यन्तराश्रयस्य ज्ञानप्रकारीभूतजातिव्यक्तिराश्रयत्वाभावात् स्वरू-  
 पतो घटत्वादिप्रकारकत्वस्य कार्यतावच्छेदकत्वाच्चेति चेत् । न ।  
 जातित्वरूपेण जातिप्रकारकलौकिकप्रत्यक्षदृश्यामन्ततो निर्द्विर्मि-  
 तावच्छेदकस्यापि परम्परासम्बन्धेन जातित्वघटकनित्यत्वादिघटकी-  
 भूतध्वंसत्वाद्यखण्डोपाधिप्रकारकज्ञानस्यावश्यकतया<sup>(१)</sup> तत एव सामा-  
 न्यज्ञानाज्जातित्वावच्छिन्नजातिसत्त्वरूपेण निखिलजात्याश्रयस्य सा-  
 चाकारात् जात्यन्तराश्रयस्यापि परम्परासम्बन्धेन तदाश्रयत्वात् ।

त्वज्ञानस्य इतरत्वप्रतियोग्यंश्चे स्वरूपतो घटत्वावगाहितनियम-  
 इति भावः ।

(१) जातित्वस्य नित्यानेकसमवेतत्वरूपस्य घटकीभूतनित्यत्वस्य प्रागभा-  
 वाप्रतियोगित्वविशिष्टध्वंसाप्रतियोगित्वरूपतया नित्यत्वस्य जातित्व-  
 घटकत्वं ध्वंसत्वस्य नित्यत्वघटकत्वश्चेति भावः ।

यत्र जातिस्वरूपेण यत्किञ्चिज्जातिमात्रप्रकारकशाब्द-सद्व्यादिधौ-  
स्तत्रापि मध्ये परम्परासम्बन्धेन ध्वंसत्वादिप्रकारकमानसोपनीतभाना-  
न्तरमेव, जातिमतः सर्वस्य प्रत्यक्षाभ्युपगमात् चणविलम्बे चतिविर-  
हात् । न च परम्परासम्बन्धेन ध्वंसत्वप्रकारकज्ञानस्यैव तत्र प्रत्या-  
सत्तित्वे ध्वंस इत्यादिरेव तत्फलं स्यात्<sup>(१)</sup> न तु जातिमदिति सामा-  
न्यप्रकारकज्ञानस्य मुख्यविशेष्ये सामान्यप्रकारकज्ञानजनकत्वनिश्चया-  
दिति वाच्यं । विशेषणज्ञानार्थं जातिस्वसामान्यलक्षणाया मध्ये सकल-  
जातिसुखविशेष्यकज्ञानस्यावश्यकत्वात् ज्ञानलक्षणायाः जातिमदिति  
फलस्यापि सम्भवात् द्विविधविषयत्वस्येष्टत्वात्, एवं तद्व्यक्तित्वरूपेण  
घटत्वादिप्रकारकज्ञानान्तरं जायमाने तद्व्यक्तित्वरूपेण घटत्वादिप्र-  
कारक-तदाश्रयप्रत्यक्षेऽपि परम्परासम्बन्धेन तत्तद्व्यक्तित्वप्रकारकज्ञान-  
मेव प्रत्यासत्तिरतोऽपि घटत्वादिसामान्यलक्षणायाः कार्यदिशि  
तदसंग्रहोऽपि न दोषाचेति भट्टाचार्यानुयायिनः ।

सम्प्रदायविदस्तु स्वरूपतोघटत्वादिप्रकारकनिखिलघटत्वाद्या-  
श्रयप्रत्यक्षं प्रति घटत्वादिसामान्यलक्षणाया यथोक्तत्वरूपेणैव कार्य-  
कारणभावः जातिस्वरूपेण घटत्वादिप्रकारकनिखिलघटत्वा-  
श्रयप्रत्यक्षं प्रति तु जातिस्वरूपेण यत्किञ्चिज्जातिप्रकारकज्ञानमेव  
हेतुः किं परम्परासम्बन्धेन जातिस्वरूपेण घटकध्वंसत्वादिप्रकारकज्ञान-  
नकल्पनया फलीभूतसाक्षात्कारस्य द्विविधविषयत्वकल्पनया वा  
ज्ञानलक्षणायाः कारणतावच्छेदकन्तु सामान्यतः संसर्गावच्छिन्नघट-  
त्वादिविषयताशालिज्ञानत्वं घटत्वादिप्रकारकज्ञानादिव घटत्वादि-

(१) ध्वंसत्ववदित्यादिरेव तत्र भानं स्यादिति घ० ।

विशेष्यकज्ञानादपि घटत्वादिप्रकारकोपनीतभानोदयात् विनश्यद-  
वस्यलौकिकसन्निकर्षजन्यघटत्वादिनिर्विकल्पकानन्तरमपि घटत्वादि-  
प्रकारकप्रत्यक्षापत्तिवारणाय संसर्गावच्छिन्नेति विषयताविशेषणं ।

केचित्तु<sup>(१)</sup> ज्ञानलक्षणायाः सप्रकारकघटत्वादिज्ञानत्वं कारण-  
तावच्छेदकं । न चैवं विनश्यदवस्यलौकिकसन्निकर्षजन्यद्रव्यत्वा-  
दिविशिष्टबुद्ध्यात्मक-घट-घटत्वादिनिर्विकल्पादपि घटत्वादिप्रत्य-  
क्षापत्तिरिति वाच्यं । दृष्टत्वात् सर्वांगे निर्विकल्पकस्य प्रत्यासत्ति-  
त्वानभ्युपगमादित्याहुः । तदसत्<sup>(२)</sup> तथा सति सर्वांगे निर्विक-  
ल्पादपि दृष्टापत्तेः सुकरतया सप्रकारत्वोपादानस्यापि कारणताव-  
च्छेदके व्यर्थत्वापत्तेः सविशेष्यकत्वसंयोगिकविषयताशालित्वमादाय  
विनिगमनाविरहेण कार्य-कारणभावत्रयापत्तेश्च । ज्ञानलक्षणायाः  
कार्यतावच्छेदकञ्च घटत्वादिप्रकारकप्रत्यक्षत्वं, घटत्वादिज्ञानं वि-  
नापि प्रायमाने प्रत्येकत्वादिसामान्यलक्षणाजन्यघटत्वादिमुख्यवि-  
शेष्यकप्रत्यक्षे व्यभिचारवारणाय विषयित्वमपहाय प्रकारिताप्रवेगः,  
प्रकारिता अलौकिकी ग्राह्या तेन निर्विकल्पकजन्यप्राथमिकतद्विशि-  
ष्टलौकिकप्रत्यक्षे न व्यभिचारः । न चैवं यत्र ज्ञानलक्षणासन्निकर्षी  
लौकिकसन्निकर्षश्च द्वयमेव वर्तते तत्र कीदृक्ज्ञानं स्यादिति वाच्यं ।  
तत्र लौकिकालौकिकोभयप्रकारिताकस्यैकस्यैव प्रत्यक्षस्यैवोत्पत्तेः विष-  
यितायाः साकार्यत्वादोषत्वात्<sup>(३)</sup> । न च तत्रकारकज्ञानं विनापि

(१) उच्छृङ्खलास्त्विति घ० ।

(२) तदुच्छ्रमिति घ० ।

(३) लौकिकालौकिकविषयत्वयोर्मिथः सामानाधिकरण्यादोषत्वादि-  
त्यर्थः ।



जायमाने योगजधर्माजन्यतत्प्रकारकप्रत्यचे व्यभिचार इति वाच्यं । योगजधर्माजन्यतावच्छेदकतत्तज्जात्यवच्छिन्नान्यत्वेन प्रत्यक्षादिविशेषणात् । न चैवं तत्प्रकारकप्रत्यच एव तज्ज्ञानस्य हेतुतया इदं रजतमिति शुक्तिमुख्यविशेष्यकमानसभ्रमे शुक्तिज्ञानस्याहेतुतया शुक्तिज्ञानं विनापि तादृशभ्रमापत्तिरिति वाच्यं । इदं रजतमिति शुक्तिमुख्यविशेष्यकमानसभ्रमस्यापि शुक्तिज्ञानात्मकशुक्तिविशिष्टधीकारणसत्त्वेन यत्र कुत्रचित् धर्माणि शुक्तिप्रकारकत्वनियमात् शुक्तिज्ञानविरहस्थले शुक्तिप्रकारकज्ञानसामान्यकारणविरहादेव तदभावात् विशेषसामग्रीसहिताया एव सामान्यसामग्र्याः फलोपधायकत्वात् । न चेदं रजतमिति शुक्तिमुख्यविशेष्यकमानसभ्रमस्य न शुक्तिप्रकारकत्वनियमः शुक्तिप्रकारकज्ञानप्रतिबन्धकदोषसत्त्वे तत्र तस्याप्रकारत्वादिति वाच्यं । शुक्तिमुख्यविशेष्यकतादृशमानसभ्रमस्थले तादृशदोषे मानाभावात् लाघवात् यथोक्तरूपेण ज्ञानलक्षणायाः कार्य-कारणभावकल्पने फलबलेन तथैव कल्पनात् । न चैवं मानसोपनीतभाने उपनीतस्य मुख्यविशेष्यतया भाने मानाभावः मुख्यविशेष्यत्वस्य कार्यतानवच्छेदकतया सामग्र्यास्तत्रानियमकत्वात्तादृशमानसत्वासक्षवादिति वाच्यं । मुख्यविशेष्यकत्वस्य इतरकारणनियम्यतया बाधकासत्त्व एव मुख्यविशेष्यतया भानावश्यकत्वात् । न चैवं मानसोपनीतवद्वहिरिन्द्रियजोपनीतभानेऽप्युपनीतस्य प्रकारत्व-मुख्यविशेष्यत्वलक्षणद्विविधविषयतापत्तिरिति वाच्यं । सामान्यलक्षणा-लौकिकसन्निकर्षजन्यातिरिक्तस्य बहिरिन्द्रियगततन्मुख्यविशेष्यकप्रत्यचस्यानुभवाभिद्वेनेनालीकतया यावद्विशेषसामग्री-

तादौ संयोगादेरभावादिति वदन्ति, तदपरे न मन्यन्ते,  
तथाहि धूमत्वावच्छिन्ना व्याप्तिः सन्निवृष्टधूमविषये  
धूमत्वेन प्रत्यक्षेण ज्ञायते ततः स्मृता सा तृतीयलिङ्ग-  
परामर्शे पञ्चनिष्ठधूमवृत्तितया ज्ञायते ततोऽनुमितिः  
तदनभ्युपगमेऽपि सन्निवृष्टधूमविषये धूमत्वेन धूमे-

वाधादेव तद्वाधात्, मानसस्य तु तदतिरिक्तस्यापि इदं रजतमित्या-  
द्युपनीतविशेष्यकध्रमस्य उपनीतशुक्लादिसुख्यविशेष्यत्वमनुभवसिद्ध-  
मतो नालौकिकत्वं । न च तथापि घट-घटत्वनिर्व्विकल्पकोत्तरं जाय-  
मानेऽयं घट इत्यादिविशिष्टप्रत्यक्षे घटत्वादेर्मुख्यविशेष्यत्वापत्तिः  
लौकिकसन्निकर्षरूपविशेषयामग्रीयत्त्वादिति वाच्यं । तत्राप्यसति  
वाधके घटाद्यंगे घटत्वादेः प्रकारत्ववन्मुख्यविशेष्यत्वस्यापीष्टत्वात् इति ।

केचित्तु संसर्गावच्छिन्न-तद्विषयताशालिज्ञानत्वेन कारणता  
योगजधर्माजन्यसामान्यप्रत्यासत्त्यजन्यतद्विषयकप्रत्यक्षत्वेन कार्यता,  
तद्विषयिता चालौकिकी ग्राह्या, तेन तल्लौकिकप्रत्यक्षे न व्यभि-  
चारः, एवञ्च<sup>(१)</sup> तद्विषयकप्रत्यक्षत्वभात्रस्य कार्यतावच्छेदकतया इदं  
रजतमिति शुक्तिविशेष्यकमानसध्रमोऽपि न शुक्तिज्ञानं विना<sup>(२)</sup>  
इत्याहुरिति संक्षेपः । विस्तरस्तु अस्मत्कृतसिद्धान्तरहस्येऽनुसन्धेयः ।

(१) तथाचेति ग०, घ० ।

(२) अत्र “वहिरिन्द्रियजोपनीतभाने उपनीतस्य मुख्यविशेष्यत्वनिरासश्च  
उक्तकमेव” इत्यधिकः पाठः घ०चिह्नितपुस्तके वर्तते ।

ननु महानसादौ वङ्गि-धूमव्याप्तिप्रत्यचदशायां महानसीयधू-  
मादिनिष्ठलौकिकसन्निकर्षादेव पर्वतीयधूमांगेऽपि लौकिकमात्मा-  
ल्लारात्मकोव्याप्तिग्रहः स्यात् किं सामान्यलक्षणायाः प्रत्यासत्तित्वेन  
इत्यत आह, 'तद्विशेषकप्रत्यच इति तल्लौकिकप्रत्यच इत्यर्थः,  
'तदिन्द्रियसन्निकर्षयेति तन्निष्ठलौकिकसन्निकर्षस्येत्यर्थः, 'अनागता-  
दाविति अनागतादिरूपे पर्वतीयधूम इत्यर्थः, 'आदिपदात् यव-  
हितातीतपरिग्रहः, 'संयोगादेः' महानसीयधूमादिनिष्ठचतुःसंयो-  
गादेः, 'आदिपदात् संयुक्तमवायादेः परिग्रहः, 'अभावात्'  
लौकिकप्रत्यचजनकत्वासम्भवात्, तथाच लौकिकसन्निकर्षस्य विषय-  
घटितसामानाधिकरणप्रत्यासत्त्या हेतुतया<sup>(१)</sup> अन्यनिष्ठलौकिकस-  
न्निकर्षतो न पर्वतीयधूमलौकिकप्रत्यचसम्भव इति भावः। 'इति  
वदन्ति' इति नैयायिका वदन्तीत्यर्थः। 'तत्' नैयायिकवचनं,  
'अपरे' मीमांसकाः, 'न मन्यन्ते' न प्रमाणत्वेन मन्यन्ते, 'तथाहीति  
तन्नते हीत्यर्थः, 'धूमत्वावच्छिन्ना' सामानाधिकरणसम्बन्धेन  
धूमत्वविशिष्टा धूमनिष्ठेति यावत्, 'व्याप्तिः' वङ्गिव्याप्तिः, रूपादि-  
निष्ठवङ्गिव्याप्तेः सन्निकर्षधूमे प्रत्यचाभ्युपगमेऽन्यथाख्यात्यापत्तिरत-  
स्तद्व्यवहारेण धूमनिष्ठेत्युक्तं, 'सन्निकर्षधूमविषय इति सन्निकर्ष-  
धूमरूप एव विशेष्ये इत्यर्थः, 'धूमत्वेन' धूमत्वप्रकारेण, 'ततः'  
तदनन्तरं, 'स्यता चेति धूमत्वरूपेण सन्निकर्षधूम एव स्यता सेत्यर्थः,

(१) 'विषयघटितसामानाधिकरणप्रत्यासत्त्या' विषयान्तर्भावित्वात् सामा-  
नाधिकरणप्रत्यासत्त्येत्यर्थः तथाच विषयतासंसर्गेण लौकिकप्रत्यचं  
प्रति यथायथं समवायादिसंसर्गेण सन्निकर्षस्य हेतुत्वमिति भावः।

वह्न्याप्य इत्यनुभवस्तथैव व्याप्तिस्वरूपं ततो धूमवान-  
यमिति व्याप्तिसृतिप्रकारेण धूमत्वेन पक्षवृत्तिधूम-  
ज्ञानादनुमितिः व्याप्त्यनुभव-तत्स्वरूप-पक्षधर्मताज्ञा-

‘तृतीयलिङ्गपरामर्श इति पक्षविशेषकव्याप्तिविशिष्टवैशिष्ट्यावगाहि-  
प्रत्यक्ष इत्यर्थः, तस्य सन्नित्यधूमविशेषकव्याप्तिप्रत्यक्षापेक्षया  
तृतीयत्वात्, ‘पक्षनिष्ठधूमवृत्तितया ज्ञायत इति लौकिकसन्निक-  
र्षणार्थात् पक्षविशेषणत्वेन भासमानस्य पक्षनिष्ठधूमस्य विशेषणतया  
भासत इत्यर्थः, विशेषणतावच्छेदकांशे सधर्मितावच्छेदकविशिष्ट-  
वैशिष्ट्यबोधं प्रति तद्धर्मितावच्छेदकप्रकारेण यत्किञ्चिद्धर्मिणि  
विशेषणतावच्छेदकप्रकारकनिश्चय एव हेतुर्न तु तद्धर्मितावच्छेदक-  
प्रकारेण विशेषणीभूतव्यक्तौ विशेषणतावच्छेदकप्रकारकनिश्चय एव  
सर्वत्र हेतुर्गौरवादिति भावः । यद्यप्येवमपि व्याप्तेः सामानाधिकर-  
णरूपतया तस्य च प्रतिव्यक्तिभिन्नतया सन्नित्यधूमे साक्षात्तव्याप्तेः  
कथं पक्षवृत्तिधूमे भानं तस्यास्तत्र बाधितत्वात् अन्यथाख्यातिप्र-  
सङ्गाच्च । तथापि व्याप्तेः सामानाधिकरणरूपत्वेऽपि सिद्धान्तलक्ष-  
णोक्तयुक्ता व्याप्यतावच्छेदकीभूतधूमत्वादिस्मन्धेनैव हेतौ तत्र-  
कारकं ज्ञानमनुमितिहेतुर्न तु साक्षात्सम्बन्धेन, तथाच महान-  
सौधधूमवृत्तिसामानाधिकरणस्यापि धूमत्वसम्बन्धेन पक्षनिष्ठधूमे  
सत्त्वात् न बाध इत्यभिप्रायः, साधवात् साध्यवदन्यावृत्तित्वमेव  
व्याप्तिः सा च पर्वतीयधूमसाधारणी एकैवेत्यभिप्रायो वा । ननु

नानामेकप्रकारकत्वेनानुमितिहेतुत्वात् । गवादिपदे-  
 ष्वपि शक्त्यनुभव-तत्स्मरण-वाक्यार्थानुभवानामेकप्रका-  
 रकत्वेन हेतु-हेतुमद्भाव इत्यपूर्वे वक्ष्यते, तत्र योग्य-

मीमांसकैरूपनीतभानानभ्युपगमादुक्तरूपेण तन्नये प्रत्यक्षतो वि-  
 शिष्टपरासर्गासम्भव इत्यत आह, 'तदनभ्युपगमेऽपीति उक्तारूपेण  
 प्रत्यक्षतो विशिष्टपरासर्गानभ्युपगमेऽपीत्यर्थः, 'तथैव' धूमत्वरूपेण  
 सन्नित्यष्टधूम एव, पचवृत्तिधूमज्ञानात् पचविशेष्यकधूमज्ञानात् ।  
 ननु व्याप्तिविशिष्टवैशिष्ट्यावगाहिज्ञानस्यैवानुमितिहेतुत्वात् कथं  
 तादृशज्ञानदद्यादनुमितिरित्यत आह, 'व्याप्त्यनुभव-तत्स्मरणेति  
 स्मरणानुभवसाधारणव्याप्तिज्ञानसामान्येत्यर्थः, यथाश्रुते सृष्टिज-  
 नकीभूतव्याप्त्यनुभवस्य पृथगहेतुतया पृथक् तदुत्कीर्तनानौचि-  
 त्यादिति ध्येयं । 'एकप्रकारकत्वेनेति यद्भ्रमविच्छिन्नविशेष्यताक-  
 व्याप्तिज्ञानं तद्भ्रमप्रकारेण हेतोः पचधर्मताज्ञानस्यैवानुमितिहेतुत्वा-  
 दित्यर्थः, न तु नियमतो व्याप्तिविशिष्टवैशिष्ट्यावगाहिज्ञानमेव का-  
 रणमिति भावः । ननु सामान्यतत्त्वज्ञानाः प्रत्यासत्तित्वानभ्युपगमे  
 गोत्वरूपेण सन्नित्यष्टगोव्यक्तिं पचयित्वा व्यवहारविषयत्वेन हेतुना  
 शक्तिसम्बन्धेन गोपदवत्तासाधने व्यक्त्यन्तरेषु सन्निकर्षाभावेन परा-  
 मर्शाभावादनुमित्यनुत्पादाद्गोपदश्रवणानन्तरं व्यक्त्यन्तरान्वयवोधो  
 न स्यात् तत्र शक्तिसम्बन्धेन गोपदवत्ताज्ञानाभावात् । न च परा-  
 मर्शानुमित्योः समानप्रकारकत्वेनैव कार्य-कारणभावात् गोत्वरूपेण

ताद्विषयादपूर्वव्यक्तिसाधोऽनुमाने तु पक्षधर्मताव-  
लात्<sup>१)</sup> धूमोवह्निव्याप्य इत्यनुभवो न तु सर्वोधूमो-  
वह्निव्याप्य इति येन सर्वभानार्थं तत्स्वीकारः ।

सन्नित्तष्टगोव्यक्तिविशेष्यकपराभग्रादेव व्यक्त्यन्तरेष्वपि अनुमितिरिति  
वाच्यं । तथा सति द्रव्यस्वरूपेण पर्वते वह्नियव्याप्यवत्ताज्ञानात्  
जलेऽपि वह्न्यनुमित्वापत्त्यान्वयात्पात्यापत्तेः । किञ्च सामान्यलक्ष-  
णायाः प्रत्यासत्तित्वानभ्युपगमे चत्त पुरुषस्यानुमानादिना गोत्वा-  
दिना सकलगवाननुभवः तत्पुरुषस्य गोपदश्रवणानन्तरं द्वीपान्त-  
रीयगवादेरन्वयबोधो न स्यात् तद्गोचरसंस्काराभावेन गोपदात्  
तस्य स्मरणसत्त्वात्, सामान्यलक्षणाभ्युपगमे तु सन्नित्तष्टगोव्यक्तियु-  
द्वितीयादिविशिष्टप्रत्यक्षदशायाज्ञेव गोत्वसामान्यलक्षणाप्रत्यासत्त्या  
सकलगवानुभवेन सकलगोचरसंस्कारसत्त्वात् इत्यत आह, 'गवादि-  
पदेऽप्यपीति गवादिपदोच्चारणेऽप्यपीत्यर्थः, जायमानानामिति शेषः,  
'शक्त्यनुभवेति शक्तिज्ञानेत्यर्थः, 'तत्कारणेति तस्मात् स्मरणमिति  
व्युत्पत्त्या तद्व्यन्यपदार्थस्मरणेत्यर्थः, यथाश्रुते शक्त्यनुभव-शक्तिस्मर-  
णयोः पृथगहेतुतया पृथक् तदुत्कीर्तनस्यासङ्गतत्वापत्तेः स्मरणानु-  
भवपौरपि समानप्रकारकत्वेनैव हेतु-हेतुमद्भावे स्मृतेरगृहीतया-  
द्विनेन प्रामाण्यपत्तेः । 'एकप्रकारकत्वेनेति गवादिपदस्य जाता-  
वेव शक्ततया गोपदविशेष्यकशक्तिसंघर्षक-गोत्वप्रकारकज्ञानं गोत्व-  
प्रकारक-गोविशेष्यकसमवायसंघर्षकस्मरणे हेतुः समवायसंघर्षक-

(१) पक्षधर्मतावशादिति ख० ।

अथ वह्निमानयमित्यनुमितिर्विशेषणज्ञानसाध्या  
विशिष्टज्ञानत्वादिति पर्व्वतीयवह्निभानार्थं तत्कल्पने  
धूमेऽपि तथा क्षचिद्भूमस्यापि व्यापकत्वादिति चेत् ।

गोत्वप्रकारकस्मरणं समवायसंसर्गक-गोत्वप्रकारकगोशाब्दबोधे हेतु-  
रिति क्रमेण हेतु-हेतुमद्भावो न तु गोत्वप्रकारक-तद्भक्तिविशेष्यक-  
गोपदशक्तिज्ञानं गोत्वप्रकारक-तद्भक्तिविशेष्यकस्मरणे हेतुः गोत्व-  
प्रकारक-तद्भक्तिविशेष्यकस्मरणं गोत्वप्रकारक-तद्भक्तिविशेष्यकशाब्द-  
बोधे हेतुरिति समानविशेष्यकत्व-समानप्रकारकत्वोभयान्तर्भावेण  
कार्य-कारणभाव इत्यर्थः, तथाच व्यह्वन्तरे गोपदशक्त्यनुमित्य-  
भावेऽपि गोपदविशेष्यकगोत्वशक्तिज्ञानादेव सन्निरुद्धव्यक्तियद्ब्रह्मन्त-  
रस्यापि शाब्दबोधः, एवं द्वीपान्तरौद्यगवादेः संस्काराभावेन  
स्मरणसम्भवेऽपि गोत्वप्रकारेण सन्निरुद्धगोव्यक्तीनां स्मरणदेव  
द्वीपान्तरौद्यगवादीनामपि शाब्दबोधः इति भावः । 'इत्यपूर्वं  
वक्ष्यत इति इत्यत्र विनिगमकमपूर्ववादे वक्ष्यत इत्यर्थः । लाघ-  
वात् समानप्रकारकत्वावश्यकत्वाच्चेति भावः । इदमुपलक्षणं  
गवादिपदस्य गोत्वादिजातावेव शक्ततथा व्यक्तौ शक्तिविरहेषु  
शक्तिज्ञानस्य समानविशेष्यकत्वेन हेतुत्वासम्भवाच्च ।

केचित्तु 'एकप्रकारकत्वेन हेतु-हेतुमद्भाव इत्यस्य गोत्व-  
विशेष्यकशक्तिज्ञानं गोत्वप्रकारक-गोविशेष्यक-समवायसंसर्ग-  
कस्मरणे हेतुः समवायसंसर्गक-गोत्वप्रकारकस्मरणं समवायसंसर्गक-  
गोत्वप्रकारकगोशाब्दबोधे हेतुरिति क्रमेण हेतु-हेतुमद्भावो न तु

न। विशिष्टवैशिष्ट्यज्ञाने विशेषणतावच्छेदकप्रकारक-  
ज्ञानस्यावश्यकत्वेन हेतुत्वात्, तच्च वृत्तमेव न तु विशेष-  
णज्ञानमपि तथा गौरवात्। गौरयमिति विशिष्ट-

यथोक्तक्रमेण समानविशेष्यकत्वस्याप्यन्तर्भाव इत्याहुः। तदसत्।  
परनये व्यक्तौ शक्त्यभ्युपगमे जातिशक्तिवादविरोधः तदनभ्युपगमे  
चान्यथाख्यात्यापत्त्या गोत्वावच्छिन्नविशेष्यकशक्तिज्ञानस्यैवासम्भवात्  
कथं तादृशशक्तिज्ञानस्य हेतुत्वाभ्युपगम इत्युभययैवासङ्गतत्वापत्तेः।  
न च परनयेऽपि जातौ व्यक्तौ च शक्तिः परन्तु गोत्वजातिप्रकारेण  
यत्किञ्चिद्गोत्वनिष्ठशक्तिज्ञानादेव व्यक्त्यन्तरस्यापि स्वरणमनुभव-  
शैत्येव जातिशक्तिवादार्थं इति वाच्यं। साधवात् गवादिपदस्य  
गोत्वादिजातावेव निरवच्छिन्नशक्तिः शक्तिशब्देन खरूपतो गोत्वा-  
दिजातिप्रकारक-गोपदादिविशेष्यकज्ञानमेव गोत्वादिजातिप्रका-  
रकशक्तिस्वरणे तादृशव्यक्त्यनुभवे च हेतुरित्यस्यैव जातिशक्तिवादार्थ-  
त्वेन शब्दपरिच्छेदेऽभिधानादिति ।

ननु पदानुपस्थितस्य अर्थस्य न शाब्दबोधविषयत्वमिति  
निबन्नादस्यतत्तत्तः कथं शाब्दबोधे भानमित्यत आह, 'तचेति  
गवादिपदजन्यशाब्दबोधइत्यर्थः, 'योग्यतादिवशादिति<sup>(१)</sup> 'आदि-  
पदात् तात्पर्यपरिग्रहः, 'अपूर्वव्यक्तौति पदात् पूर्वानुपस्थि-

(१) 'योग्यतादिवशादित्यपि कस्यचिन्मूलपुस्तकस्य पाठः ।



ज्ञाने युगपद्विषये विषेषणे सन्निकर्ष एव कारणं न तु  
निर्विकल्पकं मानाभावात् । विशिष्टज्ञानत्वमेव मान-  
मिति चेत् । न । दृष्टान्ताभावात् दण्डी पुरुष इत्यत्र

ताया अपि व्यक्तेर्भानमित्यर्थः । 'अनुमाने त्विति, 'तुः' इति,  
यथा व्यापकतावच्छेदकत्वेनागृहीतस्य धर्मस्य नानुमितिविधेय-  
तावच्छेदकत्वमिति नियमं परिभूय बाधसहकारात्<sup>(१)</sup> व्यापकता-  
वच्छेदकत्वेनागृहीतस्यानुमितौ विधेयतावच्छेदकत्वं तथेहापि यथो-  
क्तनियमं परिभूय पदानुपखितस्यापि शाब्दबोधविषयत्वमि-  
त्यर्थः । ननु महानसादौ वङ्गि-धूमव्याप्तिप्रत्यक्षदशायां सर्वधूमो  
वङ्गिष्याप्य इत्यनुभवो जायतेऽतः सर्वधूमभानार्थमवश्यं धूमत्व-  
सामान्यलक्षणायाः प्रत्यासत्तित्वं स्वीकरणीयमित्यत आह, 'धूम इति,  
'सर्वभानार्थं' सर्वधूमभानार्थं, 'तत्स्वीकारः' धूमत्वसामान्यलक्षणायाः  
प्रत्यासत्तित्वस्वीकारः ।

धूमत्वसामान्यलक्षणायाः प्रत्यासत्तित्वे मानमाशङ्कते, 'वङ्गिमा-  
नयमितीति, 'विशेषणज्ञानसाध्या' पर्वतीयवङ्गिज्ञानसाध्या, यथाश्रुते  
पक्षतावच्छेदक-साध्यतावच्छेदकज्ञानजन्यतया सिद्धसाधनापत्तेः,  
मध्यत्वञ्च अव्यवहितोत्तरवर्तित्वं तेन ज्ञानत्वादिना कार्यत्वावच्छिन्नं  
प्रति स्वरूपयोग्यत्वमादाय नार्थान्तरं, पर्वतीयवङ्गिज्ञानत्वावच्छिन्न-

(१) इतरबाधसहकारादिति घ० ।

विशेषलक्षणीजन्यत्वानभ्युपगमात् विशिष्टवैशिष्ट्यज्ञान-  
त्वात् । अपि च प्रमेयत्वेन व्याप्तिं परिच्छिन्दन् सर्वज्ञः  
स्यात्, तथाच परतीयज्ञानविषये घटत्वं न वेति

कारणकत्वस्य साध्यत्वेऽप्रसिद्धापत्तेः, पर्वतीयवद्विद्विज्ञानानुमितिं  
प्रत्यपि पर्वतीयवद्विद्विषयकव्याप्तिज्ञानत्वेन ज्ञानत्वेनैव वा हेतुत्वा-  
दिति श्रेयं । 'विशिष्टज्ञानत्वात्' पर्वतीयवद्विद्विज्ञानत्वात्,  
पर्वतीयवद्विद्विज्ञान इत्यनुमितिर्दृष्टान्तः, 'तत्कल्पन इति वद्वित्व-  
ज्ञानस्य सामान्यतः सामान्यलक्षणात्वेन प्रत्यासत्तित्वकल्पने इत्यर्थः,  
'तथा' धूमत्वज्ञानस्य प्रत्यासत्तित्वं बोध्यं, सामान्यतः सामान्यप्र-  
कारकज्ञानत्वेन कारणत्वं सामान्याश्रयसुखविशेषकप्रत्यक्षत्वावच्छिन्नं  
प्रति, तथाच धूमत्वादिप्रकारकज्ञानस्यापि प्रत्यासत्तित्वमायातमिति  
भावः । ननु तथापि सामान्यलक्षणात्वं न प्रत्यासत्तित्वावच्छेदकं  
सामान्याश्रयत्वस्य केवलान्वयितया एकस्य सामान्यस्य ज्ञाने जगत  
एव प्रत्यक्षापत्तेः अतो विशिष्टैव सा वाचा तथाच वद्वित्वसामान्य-  
लक्षणायाः प्रत्यासत्तित्वसिद्धावपि धूमत्वसामान्यलक्षणायाः प्रत्यास-  
त्तित्वे मानाभावः इत्युच्यते, 'दाचिदिति, 'व्यापकत्वात्' साध्यत्वात्,  
तथाच पर्वतो धूमवानित्यसन्नित्यधूमसाध्यकानुमितेर्विशेषणज्ञान-  
जन्यत्वानुरोधेन धूमत्वसामान्यलक्षणायाः प्रत्यासत्तित्वमावश्यकमिति  
भावः । ननु कानुमाने नियमग्राहकानुकूलतर्कत्वावद्विशिष्टवैशिष्ट्यज्ञानं  
प्रति विशेषणतावच्छेदकप्रकारकविशेषणज्ञानत्वेन हेतुतायह एव

संशयो न स्यात् प्रमेयत्वेन तदन्यतरनिश्चयात् । प्रमेय-  
त्वेन घटं जानात्येव घटत्वं तस्य न जानाति इति चेत् ।  
न । तत् किं घटत्वं न प्रमेयं येन तन्न जानीयात् सक-  
लघटवृत्तिधर्मस्य प्रमेयत्वेन तदज्ञानासम्भवात् ।

वाच्यः स एव नास्तीत्याह, 'विशिष्टवैशिष्ट्येति वङ्गित्व-धूमत्व-  
विशिष्टवैशिष्ट्यज्ञाने वङ्गित्व-धूमत्वप्रकारकज्ञानस्यैवेत्यर्थः, 'विशेषण-  
ज्ञानमपि' पर्वतीयवङ्गित्व-पर्वतीयधूमज्ञानमपि, 'तथा' पर्वतीय-  
वङ्गित्व-पर्वतीयधूमविशिष्टबुद्धौ हेतुः, 'गौरवादिति, तथाचोक्तानु-  
मानमप्रयोजकमिति भावः । ननु गौरवात् पर्वतो वङ्गित्वान्  
दृष्ट्याचनुमितेः पर्वतीयवङ्गित्वज्ञानजन्यत्वानभ्युपगमे गौरयमिति  
विशिष्टप्रत्यक्षेऽपि गोत्वज्ञानस्याहेतुत्वापत्तिस्तथाच नायातं निर्विक-  
ल्पकेन तत्रेष्टापत्तिमाह, 'गौरयमितीति, 'मानाभावात्' मध्ये  
निर्विकल्पके मानाभावात्, क्षणविलम्बस्य अपथनिर्णयत्वादिति  
भावः । पूर्वाक्तगौरवमश्रुत्वैव तटस्थः शङ्कते, 'विशिष्टज्ञानत्वमेवेति  
गोत्वविशिष्टज्ञानत्वमेवेत्यर्थः, 'मानं' निर्विकल्पके मानं, गौरयमिति  
प्राथमिकविशिष्टधीः गोत्वज्ञानत्वावच्छिन्नकारणताप्रतियोगिनौ  
गोत्वविशिष्टज्ञानत्वादित्यनुमानात् प्राथमिकविशिष्टज्ञानात् पूर्वं  
गोत्वज्ञानं सिद्धं पचधर्मातावलात् निर्विकल्पकरूपमेव सिद्धति  
तत्पूर्वमपि विशेषणज्ञानाभावेन विशिष्टबुद्ध्यात्मकस्य तस्यासम्भवा-  
दिति भावः । 'दृष्टान्ताभावादिति, द्वितीयविशिष्टज्ञानेऽपि

उक्तज्ञानस्य हेतुत्वादिद्वेः गोत्वलिङ्गक-गोत्वसाध्यकानुमितावपि  
 गोत्वविषयकव्याप्तिज्ञानत्वेन ज्ञानत्वेनैव वा कारणतया<sup>(१)</sup> उभयथापि<sup>(२)</sup>  
 गोत्वज्ञानत्वेन हेतुत्वादिद्वेषु, तथाच साध्याप्रसिद्धिरिति भावः ।  
 ननु यत् यद्विशिष्टज्ञानं तत् तज्ज्ञानत्वावच्छिन्नकारणताप्रतियोगीति  
 सामान्यतो दण्डी पुरुष इति ज्ञानं दृष्टान्तः स्यादित्यत आह, 'दण्डी  
 पुरुष इति, 'विशेषणधीति दण्ड-दण्डत्वादिज्ञानत्वेन कारणतानभ्यु-  
 पगमादित्यर्थः, 'विशिष्टवैशिष्ट्येति दण्डत्वविशिष्टवैशिष्ट्यज्ञानत्वादि-  
 त्यर्थः'<sup>(३)</sup> । न च गोत्वज्ञानाव्यवहितोत्तरवर्त्तित्वमेव साध्यं तथाच गोत्व  
 साध्यकानुमितिरेव दृष्टान्त इति वाच्यं । तथाप्यप्रयोजकत्वात् गोत्व-  
 विशिष्टबुद्धौ गोत्वज्ञानत्वेन हेतुत्वस्य गौरवेण मानाभावेन चासिद्ध-  
 त्वादिति भावः । सामान्यलक्षणायाः प्रत्यासत्तित्वे साधकाभावयुक्ता  
 बाधकमप्याह, 'अपिचेति, 'प्रमेयत्वेनेति संयोगादिसम्बन्धेन प्रमेयहेतुके  
 पर्यन्तः कपिसंयोगाभाववान् प्रमेयादित्वादौ महानसादिषु सच्चिदृष्ट-  
 प्रमेये प्रमेयत्वरूपेण व्याप्तिप्रत्यक्षदग्नायां प्रमेयत्वसामान्यलक्षणप्रत्या-  
 सत्या पचवृत्तिप्रमेयेऽपि व्याप्तिं गृह्यन् पुरुष इत्यर्थः, 'सर्वज्ञः स्यादिति

(१) परामर्शस्य कारणतयैव व्याप्तिज्ञानासत्त्वे अनुमित्यापत्तिवारण-  
 सम्भवे परामर्शस्य व्यापारतारक्षार्थं व्याप्तिज्ञानस्य ज्ञानत्वेनैव कार-  
 णत्वं न तु तत्र व्याप्तिविषयकत्वं कारणतावच्छेदकमिति भावः ।

(२) तत्रापीति ख०, ग० ।

(३) तथाच विशिष्टवैशिष्ट्यबुद्धौ विशेषणतावच्छेदकप्रकारकज्ञानमेव  
 हेतुरित्यभिप्रायः ।

इति श्रीमद्भद्रेशोपाध्यायविरचिते तत्त्वचिन्तामणौ  
अनुमानाख्यद्वितीयखण्डे सामान्यलक्षणापूर्वपक्षः ।

खल्वृत्तिसकलधर्मप्रकारेण सर्वेषां पदार्थानां ज्ञानवान् स्यादित्यर्थः,  
प्रमेयत्वसामान्यलक्षणप्रत्यासत्त्या पक्षवृत्तिप्रमेये व्याप्तिप्रत्यक्षदशायां  
तथा प्रत्यासत्त्या प्रमेयमात्रस्यैव ज्ञानात्तदवन्तरं प्रमेयं प्रमेयवदित्या-  
कारकसकलपदार्थविशेष्यक-खल्वृत्तिसकलधर्मप्रकारकोपनीतभावे  
बाधकाभावादिति भावः। नन्वस्तु सर्वज्ञत्वं किं नश्चिन्नमित्यत आह,  
'तथाचेति, 'परकीयज्ञानविषये' विशिष्य खज्ञानाविषये, खस्य ख-  
रूपतो घटत्वप्रकारवेदान्धर्मितावच्छेदकज्ञानाविषय इति यावत्,  
'तस्य' पुरुषस्य<sup>(४)</sup>, 'तदन्यतरेति घटत्व-तदभावयोरन्यतरनिश्चयादि-  
त्यर्थः, एतच्च समानविषयकनिर्णयमात्रस्यैव विरोधित्वमित्यभि-  
मानेन । शङ्कते, 'प्रमेयत्वेनेति, 'तदज्ञानेति घटत्वाज्ञानेत्यर्थः ।

इति श्रीमथुरानाथ-तर्कवागीश्वरविरचिते तत्त्वचिन्तामणिरहस्ये  
अनुमानाख्यद्वितीयखण्डरहस्ये सामान्यलक्षणापूर्वपक्षरहस्यं ।

(४) "तथाच परकीयज्ञानविषये घटत्वं वर्तते न वेति तस्य संग्रथो न  
स्यात्" इति कस्यचिन्मूलपुस्तकस्य पाठमनुसृत्य 'तस्येति मूलपाठो  
घटतो व्याख्यातश्च रहस्यज्ञतेति ।

## अथ सामान्यलक्षणासिद्धान्तः ।



उच्यते यदि सामान्यलक्षणा नास्ति तदानुसूत-  
तर्कादिकं विना धूमादौ व्यभिचारसंशयो न स्यात्

## अथ सामान्यलक्षणासिद्धान्तरहस्यं ।

‘यदीति, ‘सामान्यलक्षणा नास्तीति सामान्यलक्षणायाः प्रत्यासत्ति-  
ता नास्तीत्यर्थः, ‘अनुसूततर्कादिकं विनेति व्यभिचारज्ञानप्रतिबन्धक-  
तर्काद्यभावदशायामित्यर्थः, ‘व्यभिचारसंशयः’ धूमो वद्विव्यभिचारौ  
न वेत्यादिव्यभिचारसंशयः, ‘प्रसिद्धधूमे’ सकलपौकिकसन्निह्यधूमे,  
‘वद्विसम्बन्धज्ञानात्’ (१) वद्विव्याप्यत्वनिश्चयात्, ‘मानाभावेन’ सन्नि-  
कर्षाभावेन, ‘अज्ञानादिति संशये विमोक्षतया भागासम्भवादित्यर्थः,  
परमये नव्यनैवाधिकनये च धर्माज्ञानस्य संशयादेतुत्वेऽपि संशयस्य  
धर्म्ये प्रत्यक्षरूपतया धर्माद्विचयपरिकर्षत्वावश्यं हेतुत्वादिति भावः ।  
‘सामान्येन तु’ धूमत्वसामान्यलक्षणपरिकर्षणे तु, ‘सकलधूमोपस्थितौ’  
सकलधूमप्रत्यक्षस्वीकारे, ‘धूमान्तरे’ कालान्तरीय-देशान्तरीय-

(१) ‘वद्विसम्बन्धज्ञानात्’ इति टीकाकारस्य पाठधारणेन कस्यचिन्मूल-  
पुस्तकस्य ‘वद्विसम्बन्धाव्यामात्’ इत्यत्र ‘वद्विसम्बन्धज्ञानादिति  
पाठोऽनुमीयते ।

प्रसिद्धधूमे वह्निसम्बन्धान्नात् कालान्तरीय-देशान्त-  
रीयधूमस्य मानाभावेनाज्ञानात् सामान्येन तु सकल-  
धूमोपस्थितौ धूमान्तरे विशेषाद्दर्शनेन संशयो युज्यते ।

धूमे, 'विशेषाद्दर्शनेन' व्याख्याननिश्चयेन । एतच्चापाततः प्रसिद्धधूमे  
धूमत्वेन व्याप्तिनिश्चयः तद्भूमत्वेन वा अथ सामान्यलक्षणास्वी-  
कारेऽपि संग्रहोऽसिद्ध एव समानधर्मितावच्छेदकभिन्नधर्मिक-  
निश्चयस्यापि प्रतिबन्धकत्वात् । द्वितीये धूमत्वप्रकारेण तत्रैव संग्रहः  
स्यात् समानप्रकारकनिश्चयैव विरोधात्<sup>(१)</sup> । न च मासु संग्रह-  
न्यथानुपपत्त्या सामान्यलक्षणायाः प्रत्यासत्तित्वस्वीकारः तथापि  
यत्किञ्चिद्भूमादौ धूमत्वादिप्रकारकज्ञानानन्तरं धूमत्वप्रकारेण सक-  
लधूमविषयकप्रत्यक्षमनुभवसिद्धमिति तदनुरोधादवश्यं सामान्यलक्ष-  
णा स्वीकरणीयेति वाच्यं । तादृशानुभवस्यैवासिद्धेः तादृशानुभवस्य  
प्रामाणिकत्वे विवादस्यैवापर्याप्तिः<sup>(२)</sup> इति संक्षेपः । विस्तरस्तु अस-  
त्तत्पिदान्तरस्येऽनुसन्धेयः ।

स्वीकारणीकारमतमाशङ्कते, 'यत्चित्ति, सामान्यलक्षणायाः  
प्रत्यासत्तित्वानभ्युपगम इति शेषः, 'पाकादौ चिकीर्षति पा-  
कादिविशेषकवर्तमानकतिषाध्यत्वप्रकारकेऽप्येत्यर्थः, 'सुखादाकि-  
रति सुखादिविशेषक-सुखत्वादिप्रकारकेऽप्येत्यर्थः, 'इच्छाकिर-

(१) विरोधित्वादिति ख० । संग्रहविरोधित्वादिति ग० ।

(२) विवादस्यैवाप्रसङ्गेऽप्येत्यर्थः, कश्चित्तथैव पाठः ।

यत् पाकादौ चिकीर्षा सुखादौ इच्छा न स्यात् सिद्धे  
इच्छापिरघात् अतिप्रसङ्गात् तस्मात् सुखात्वादिना

हात् इच्छोत्पादासम्भवात्, 'असिद्धस्याज्ञानादिति, तद्विषयके-  
च्छायां तद्विषयकज्ञानस्य हेतुतया ज्ञानं विना इच्छाया असम्भवा-  
दिति भावः । 'सुखात्वादिना' सुखात्वादिज्ञानस्वरूपसामान्यलक्षण-  
प्रत्यासत्त्या । 'इच्छा-प्रवृत्तित्वाभावात्' इच्छात्व-प्रवृत्तित्वावच्छिन्नं  
प्रति सामान्यतोऽज्ञानत्वेनैव कारणत्वादित्यर्थः । 'अतिप्रसङ्ग इति  
घटत्वप्रकारकघटज्ञानात् पटत्वप्रकारकपटेच्छा-प्रवृत्तिप्रसङ्ग इत्यर्थः,  
'समानप्रकारकत्वेन' समानप्रकारकत्वसम्बन्धेन । ननु समानप्रकारकत्वं  
सम्बन्धः समानविशेषकत्वं वा इत्यत्र विनिगमकाभावेन द्वयोरेव-  
सम्बन्धत्वादपि सुखाज्ञाने कथमसिद्धे इच्छेत्यत आह, 'न तु समा-  
नविषयत्वेनापीति न तु समानविशेषकत्वसम्बन्धेनापीत्यर्थः । नन्व-  
न्यायकल्पनेऽपि सुखात्वादिप्रकारकसुखादिज्ञानात् सुखात्वादि-  
प्रकारक-सुखादीश्रोत्वन्तिसत् एव विनिगमकाभावात्तस्य सम्ब-  
न्धत्वं कल्पनीयं इत्यत आह, 'समानविषयत्वे सत्यपीति, 'इच्छा-  
त्त्वात्तोरभावादिति गुणत्वादिप्रकारक-सुखादिज्ञानात् सुखात्वादि-  
प्रकारकसुखादिगोचरेच्छा-त्त्वात्तोरभावादित्यर्थः । न च घटत्वप्रका-  
रक-चक्तिचिद्वटज्ञानाद्घटत्वप्रकारेण घटान्तरे इच्छोत्पादवारणाय  
समानविषयकत्वमप्यावश्यकमिति वाच्यं । प्रकृतवत्तत्त्वापीष्टत्वात् । न  
च तथापि पाकत्वप्रकारक-चिद्रूपाकज्ञानात् कथमसिद्धे पाके  
चिकीर्षा वर्तमानत्वात्तत्तिषाध्यत्वस्य सिद्धपाके बाधितत्वेनान्यथा-



ज्ञातेषु सर्वेषु सिद्धं विहायासिद्धे इच्छा भवतोत्यभ्युपेयं ।  
तन्न । असिद्धस्याज्ञानेऽपि सिद्धगोचरज्ञानादेव इच्छा-  
प्रवृत्तिस्वाभाव्यादसिद्धे तयोस्त्यक्तेः<sup>(१)</sup> । न चातिप्रसङ्गः

ख्यात्यापत्त्या तत्र तत्प्रकारकज्ञानासम्भवाद्सिद्धपाके च मन्निकर्षाभावेन  
तत्प्रकारकज्ञानासम्भवादिति वाच्यं । पाकादौ वर्तमानखल्वतिसाध्यता-  
प्रकारकज्ञानं हि नेन्द्रियेण तस्यातीन्द्रियत्वात् किन्तु अनुमानेन  
तथाच पाकत्वप्रकारक-सिद्धपाकज्ञानादेव पाकत्वप्रकारेणसिद्धपाके  
यथाकथञ्चित्प्रसिद्धस्य वर्तमानखल्वतिसाध्यत्वस्यानुमानं पक्षधर्मताज्ञा-  
नानुमित्योरपि समानप्रकारकत्वेनैव कार्य-कारणभावात् । न च  
वर्तमानखल्वतिसाध्यतिरेकप्रयुक्तव्यतिरेकप्रतियोगित्वाद्दिरूपस्य वर्त-  
मानखल्वतिसाध्यत्वानुमापकलिङ्गस्य सिद्धपाके बाधादसिद्धपाके च  
विना सामान्यलक्षणां ज्ञातुमशक्यत्वात् परामर्शासम्भवेन कथमनु-  
मितिरपीति वाच्यं । स्वाश्रयवृत्तिपाकत्ववत्तात्मकपरम्परासम्बन्धेन  
पाकत्वप्रकारेण सिद्धपाक एव तादृगलिङ्गवत्तापरामर्शसम्भवात्  
परामर्शानुमित्योरपि समानविशेष्यतावच्छेदकत्वेनैव कार्य-कारण-  
भावात्, येन सम्बन्धेन व्याप्यताग्रहः तेनैव सम्बन्धेन हेतुमत्ता-  
ज्ञानमनुमितिहेतुरिति नियमश्च परेषामसिद्धः किन्तु येन सम्बन्धेन  
व्याप्यताग्रहस्तेन सम्बन्धेन हेतुमत्ताज्ञानमिव येन सम्बन्धेन व्याप्यता-  
ग्रहस्तेन सम्बन्धेन यत्त्वाधिकरणं तद्वृत्तिपक्षतावच्छेदकवत्त्वसम्बन्धेन

(१) तयोस्त्यक्तेरिति ख०, ग० ।

समानप्रकारकत्वेन ज्ञानेच्छा-वृत्तीनां कार्य-कारण-  
भावात् न तु समानविषयत्वेनापि कश्चिद्व्यवहृत्यनात्

हेतुसत्ताज्ञानमपि अनुमितिहेतुः स्वपदं हेतुपरं । न चैवं संयोगादि-  
सम्बन्धेन वज्रादिव्याप्यतया गृहीतस्य धूमादेः स्वाश्रयवृत्तिद्रव्यत्व-  
सम्बन्धेन द्रव्यत्वरूपेण हृदादौ परामर्शात् तादृग्धूमादेः संयोगसम्बन्धेन  
द्रव्यत्वरूपेण पर्वते परामर्शाच्च द्रव्यत्वरूपेण हृदादौ वज्राद्यनुमित्या-  
पत्यान्वयाख्यात्यापत्तिः परामर्शानुमित्योः समानविश्लेष्यतावच्छेदकत्वे-  
नैव कार्य-कारणभावादिति वाच्यं । न्यायनये प्रमाणाभान्यं प्रति जन-  
कस्य विषयाबाधस्य परनये साधवादिशिष्टबुद्धिसामान्यं प्रत्येव जनक-  
तया हृदादौ वज्राद्यनुमित्यनुभवादात् । अतएव परनये साध्यताव-  
च्छेदकरूपेण यत्किञ्चित्साध्यव्याप्तिज्ञानादेव साध्यतावच्छेदकरूपेणा-  
प्रसिद्धसाध्यस्यापि भानानुपगमेऽपि वज्रिव्याप्यधूमवान् पर्वत इति  
परामर्शान्न वज्रित्वरूपेण पर्वते महानशीचवज्रादेर्भानं, कार्य-कारण-  
भावस्तु मतद्वय एव ज्ञानत्वेन तद्वाधाभावत्वेन, न्यायनये यत्र तद्विश्लेष-  
विश्लेष्यतासम्बन्धेन ज्ञानोत्पत्तिसूत्रेण विश्लेषणताविश्लेषसम्बन्धेन तद्वाधा-  
भाव इति विश्लेष्यघटितसामानाधिकरण्यं प्रत्यासत्तिः, परनये च  
यत्र तद्विश्लेषप्रकारतानिरूपितविश्लेष्यतासम्बन्धेन ज्ञानोत्पत्तिसूत्रेण  
विश्लेषणताविश्लेषसम्बन्धेन तद्वाधाभाव इति विश्लेष्यघटितसामाना-  
धिकरण्यमेव प्रत्यासत्तिर्लाघवात् भ्रमानुपगमेन व्यभिचारविरहात्,  
नातो विषयाबाधस्य परनयेऽपि गुणत्वं तद्विश्लेषविश्लेष्यतासम्बन्धावच्छि-  
न्नकार्यतानिरूपितकारणताश्रयत्वस्यैव गुणत्वरूपत्वात् । न च न्याय-

समानविषयकत्वे सत्यपि समानप्रकारकघानाभावेवे-  
च्छा-द्वयोरभावात् तस्यावश्यकत्वेन गौरवादेति पा-

नये परनये वा कथं विषयवाधाभावस्य विषयरूपस्य निरवच्छि-  
द्यत्वघटितमामानाधिकरणप्रत्यासत्त्या जनकत्वं पाकरमाघटादौ  
श्यामादिप्रमायासुपनीतभानानुमित्यादिरूपायां व्यभिचारादिति  
वाच्यं । विषयवाधस्य हि निरवच्छिन्नाधारतासम्बन्धेनाभावः<sup>(१)</sup> न  
विषयरूपः किन्त्वतिरिक्तः विषयस्यातीतत्वादिदृश्यामपि विषय-  
वति तस्यत्वात् । न च तथापि केवलान्वयिधर्मप्रमायां विषयवाध-  
स्याप्रसिद्धतया तदभावस्य जनकत्वासम्भव इति वाच्यं । तत्र तथा-  
जनकत्वेऽपि चतविरहात् तदभाववतोऽप्रसिद्धत्वेनापत्तिविरहात् ।  
अस्तु वा विषयवाधस्य विषयवाधाभावत्वेन न जनकत्वमपि तु  
सामान्यतोऽभावत्वेन, यत्र तद्विषयविशेष्यतासम्बन्धेन तद्विषयकार-  
तागिरूपितविशेष्यतासम्बन्धेन वा ज्ञानोत्पत्तिः तत्र तद्विषयविशे-  
षणतासम्बन्धेनाभाव इति सामानाधिकरण्यं प्रत्यासत्तिः । न च  
भावत्वमादाय विनिगमनाविरहः, भावत्वस्याभावभेदत्वादिरूपतया  
गुणत्वात् । न च संयोग-समवायादिसम्बन्धेन घटादिप्रमायां द्रव्य-  
गुणत्वादिसादाय विनिगमनाविरह इति वाच्यं । अतीतानागत-  
धिकरणेषु संयोगादिसम्बन्धेन घटादिप्रमायां व्यभिचारात् अतीत-  
त्वादिदृश्यायां अतीताद्यधिकरणे द्रव्यादिमत्त्वविरहात् अभाववत्त्व

(१) निरवच्छिन्नविशेषणतासम्बन्धेनाभाव इति घ० ।

तु तदानीमपि तत्र सत्त्वात् । अतएव न्यायनये भ्रमं प्रत्यपि  
विषयबाधस्य न विषयदाधत्वेन जनकत्वं अतीताद्यधिकरणे घटा-  
भावादिभ्रमे व्यभिचारात् किन्त्वभावत्वेन, यत्र विशेष्यतासम्बन्धेन  
तद्भ्रमस्य तद्दृष्टिर्विशेषणतासम्बन्धेनाभाव इति सामानाधिकरण्यं  
प्रत्यासत्तिः । न च तथाप्यधिकरणतात्व-प्रतियोगितात्वादेरखण्डा-  
तिरिक्तपदार्थत्वनये तस्मादाय विनिगमनाविरह इति वाच्यं ।  
तथाखण्डातिरिक्तपदार्थत्वनये तेनापि रूपेण कारणत्वस्येष्टत्वात्  
धर्मत्रय-चतुष्टयानामेव तादृशानां सत्त्वेनावन्तकार्य-कारणभावा-  
भावात् । वस्तुतस्तु न्यायनये प्रमासामान्यं प्रति ज्ञानसामान्यमेव  
गुणः तद्विनिष्ठविषयतासम्बन्धेन सामानाधिकरण्यं प्रत्यासत्तिः, वस्तुपदा-  
दिजन्यवस्तुमात्रविषयकशाब्दबोध-वस्तुत्वादिप्रकारकवस्तुमात्रविषय-  
कानुमिति-वस्तुत्वादिप्रकारकवस्तुमात्रविषयकारणादिरूपस्य यत्कि-  
ञ्चिज्ज्ञानस्यानन्तसंसारेऽवश्यं कस्यचित् पुरुषस्य सर्वत्र सर्वदा विष-  
यतासम्बन्धेन सत्त्वेन अन्ततो भगवज्ज्ञानस्यैव तेन सम्बन्धेन सर्वत्र  
सर्वदा सत्त्वेन च व्यभिचाराभावात् तदेव च लाघवात्, परनयेऽपि  
तथा प्रत्यासत्त्या विनिष्ठबुद्धिसामान्यं प्रति हेतुः यत्र तन्निष्ठप्रकार-  
तागिरूपितविशेष्यतासम्बन्धेन ज्ञानोत्पत्तिः तत्र तद्विनिष्ठविशेष्यता-  
सम्बन्धेन ज्ञानमिति सामानाधिकरण्यं प्रत्यासत्तिः भ्रमानभ्युपगमेन  
तत्र व्यभिचारविरहात् । भगवदनभ्युपगमेऽपि संसारस्यानादितया  
सर्वदैव सर्वत्र विशेष्यतासम्बन्धेनावश्यं कस्यचित् पुरुषस्य वस्तुपदादि-  
जन्यवस्तुत्वादिप्रकारकवस्तुमात्रविषयकशाब्दबोधादिसत्त्वेनाद्यप्रमाया-  
मपि व्यभिचारविरहाच्च । ननु तथापि परनये समानप्रकारकत्वेन

सिद्धान्तात् । न च सर्वज्ञत्वे संशयो न स्यादिति दोषः,  
घटः स इति घटत्वप्रकारकं हि ज्ञानं संशयविरोधि

ज्ञानेच्छयोः कार्य-कारणभावे सुखत्वादिप्रकारक-सिद्धसुखादि-  
ज्ञानादनुपस्थितासिद्धसुखादाविवानुपस्थिते पदार्थान्तरेऽपि सुख-  
त्वादिप्रकारकेच्छापत्तिः । न च पदार्थान्तरे सुखत्वाद्यसंसर्गाग्रहासत्त्वात्  
तत्रेच्छेति वाच्यं । अनुपस्थितेऽसंसर्गाग्रहस्य सुतरां सत्त्वात् । न च  
तत्प्रकारकज्ञानत्वेन तत्प्रकारकतदाश्रयविषयकेच्छात्वेन कार्य-कार-  
णभावो न तु समानप्रकारकत्वं प्रत्यासत्तिरिति वाच्यं । रजतत्वा-  
दिप्रकारकज्ञानाद्भ्रमस्थले शुद्ध्यादौ रजतत्वादिप्रकारकेच्छानुपपत्तेः ।  
न च परस्य तत्रेच्छानुपपत्तिः, शुद्धौ रजतार्थिप्रवृत्त्यनुरोधेन  
तेनापि तदङ्गीकारात् तस्मादनुपस्थिते उपस्थितेष्टभेदाग्रहादिच्छेति  
परेणाभ्युपेयं । अतएव इदन्त्वादिना उपस्थिते शुद्ध्यादौ रजतत्वे-  
नेच्छा तथाच भाविनि विषये ज्ञात एवेच्छेति तदर्थमवश्यं  
सामान्यलक्षणा स्वीकरणीयेति चेत् । न । समानप्रकारकत्वप्रत्यासत्त्या  
ज्ञानत्वेनेच्छात्वेन समवायघटितसामानाधिकरण्यप्रत्यासत्त्या तत्प्र-  
कारकज्ञानत्वेन तत्प्रकारकेच्छात्वेनैव सामान्यकार्य-कारणभावः,  
विशेषतस्तु रजते रजतत्वप्रकारकेच्छायां दोषाभावः, अरजते  
रजतत्वप्रकारकेच्छायाञ्च रजतेन सममगृहीतभेदस्य रजतस्य ज्ञानं  
हेतुरिति<sup>(१)</sup> परसिद्धान्तात् । न च तथापि परसिद्धान्तो यथा

(१) रजतेन समं भेदाग्रह एव हेतुरिति चेत् ।

तच्च न वृत्तं स्वसामग्रीविरहात्, अतो घटत्वादिसकल-  
विशेषज्ञानेऽपि स घटो न वेति संशय इति ।

तथास्तु स्वमते भेदाग्रहमपेक्ष्य लाघवात्तद्विशेष्यक-तत्प्रकारक-  
ज्ञानस्य तद्विशेष्यक-तत्प्रकारकेच्छां प्रति हेतुतया सुखत्वादि-  
रूपेणसिद्धसुखादाविद्धानुरोधेन सामान्यलक्षणावश्यकीति वाच्यं ।  
स्वमतेऽपि सुखत्वादिरूपेण सिद्धसुखादावेवेच्छोत्पद्यते असिद्धसुखे  
इच्छानुत्पादेऽपि चतिविरहात् । एवं चिकीर्षापि पाकत्वादिरूपेण  
वर्तमानखलुतिषाध्यत्वभ्रमात् सिद्धपाकादावेवोत्पद्यते नासिद्धपाके  
चिकीर्षाया अयथार्थत्वेऽपि<sup>(१)</sup> चतिविरहात् तत्तत्पाकत्वरूपेणैव  
विशेषदर्शनसत्त्वेन भ्रमोत्पत्तावपि बाधकाभावाच्चेत्यस्य सुवचत्वात् । न  
चतत्र सिद्धत्वज्ञानं विरोधीति वाच्यं । तद्वच्छेदेनासिद्धत्वज्ञानस्यैव  
तत्प्रकारकेच्छां प्रति विरोधित्वात् । न च सुखत्वाद्यवच्छेदेन सिद्धत्व-  
ज्ञानं, प्रकृते तत्सत्त्वे इच्छोत्पत्तेः केनाप्यनङ्गीकारात् । वस्तुतस्तु सामा-  
न्यलक्षणां विनापि अयं कालः सुखोत्पादकालीनध्वंसप्रतियोगी  
अयं कालः पाकोत्पादकालीनध्वंसप्रतियोगी सृष्टिकालत्वादित्याद्य-  
नुमानात् पचधर्मतावलेनासिद्धसुखादेरसिद्धपाकादेश्च ज्ञानसम्भवः  
सामान्यलक्षणानभ्युपगमे विशिष्टबुद्धिसामान्यं प्रति विशेषणज्ञानस्या-  
पि हेतुत्वानभ्युपगमेन पचधर्मतावलम्ब्यासिद्धसुखादेर्ज्ञानविरहेऽपि  
चतिविरहात् ज्ञाते च सिद्धपाके ज्ञानलक्षणाप्रत्यासत्त्यैव तत्र स्वमते

(१) अनुत्पादेऽपीति क० ।

मनसा वर्तमानस्य जितियाथत्वज्ञानस्य चिकीर्षासम्भवात् सामान्यलक्षणायाः प्रत्यासत्तित्वानभ्युपगमेऽपि ज्ञानलक्षणायाः समते प्रत्यासत्तित्वावश्यकत्वादित्यास्तां विस्तरः। 'न चेति, सामान्यलक्षणायाः प्रत्यासत्तित्वस्वीकार इति शेषः, 'संग्रहविरोधीति घटो न वेति संग्रहविरोधीत्यर्थः, सजानाकारो हि निश्चयः संग्रहविरोधी अत एव जातित्वानित्यादिनिश्चयेऽपि घटो न वेति संग्रहः, प्रकृते तु घटो न वेति संग्रहः कोटितावच्छेदकघटत्वांग्रे निष्प्रकारकः, प्रमेयवन्त इति सामान्यलक्षणाजन्यप्रत्ययस्तु न तथेति भावः। 'खसामग्रीविरशादिति, घटत्वांग्रे, निष्प्रकारकं<sup>(१)</sup> घटत्वविशिष्टज्ञानं प्रति घटत्वांग्रे निष्प्रकारकं<sup>(२)</sup> ज्ञानमेव हेतुः अन्यथा जातित्वादिरूपेण घटत्वप्रकारकघटज्ञानेऽपि भूतत्वं घटवदिति घटत्वांग्रे अन्याप्रकारकघटत्वप्रकारकघटत्वविशिष्टबुद्ध्यापत्तेः जातित्वरूपेण घटत्वज्ञानेऽप्यथं घट इति विशिष्टबुद्ध्यापत्तेश्च तादृशविलक्षणविषयताया भूतत्वं घटाभाववदिति बाधनिश्चयाभावस्यायं न घट इति भेदग्रहाभावश्च कार्यतावच्छेदकत्वेन सामान्यज्ञानग्रीमर्त्याद्यैव तद्वच्छिन्नापादनसम्भवात्। न च तदानीं घटत्वांग्रे जातित्वप्रकारकज्ञानस्यापि सामग्रीसत्त्वात् घट इति घटत्वांग्रे निष्प्रकारकं<sup>(३)</sup> ज्ञानमिति वाच्यं। जातित्वादिप्रकारकज्ञानसामग्र्यास्तादृशविलक्षणविषयताश्लिष्टज्ञानं प्रत्यप्रतिबन्धकत्वेन तदुत्पत्तावपि बाधकाभावात्, अन्यथा

(१) निर्विकल्पकात्मक० इति ग० घ० ।

(२) निर्विकल्पकात्मकमिति ग० घ० । (३) निर्विकल्पकमिति घ० ।

इति श्रीमहामहोपाध्यायविरचिते तत्त्वचिन्तामणौ  
अनुमानाख्यद्वितीयखण्डे सामान्यलक्षणासिद्धान्तः ।

जातिमान् घट इति द्विविधविषयताग्राह्यज्ञानानुपपत्तेः तदानीं  
जातित्वप्रकारेण ज्ञानसामग्र्या आवश्यकत्वात्, एवञ्च प्रकृते प्रमेयत्व-  
सामान्यलक्षणाजन्यघटत्वज्ञानस्य घटत्वांग्रे प्रमेयत्वप्रकारकत्वनियमान्न  
ततो घटः स इति धीयश्वव इति दिक्<sup>(१)</sup> ।

इति श्रीमथुरानाथतर्कवागीश्वर-विरचिते तत्त्वचिन्तामणिरहस्ये  
अनुमानाख्यद्वितीयखण्डरहस्ये<sup>(२)</sup> सामान्यलक्षणरहस्यं ।

(१) इति भावः इति दिगिति ग०, घ० ।

(२) महामहोपाध्यायश्रीश्रीमथुरानाथतर्कवागीश्वरभट्टाचार्यविरचित-  
मनुसावरहस्ये सामान्यलक्षणरहस्यं संपूर्णमिति क० । सामान्य-  
लक्षणरहस्यं इति ग० । इति महामहोपाध्यायश्रीमथुरानाथ-  
तर्कवागीश्वरभट्टाचार्यविरचितानुमानान्तर्गतसामान्यलक्षणाटिप्पणी  
समाप्तेति घ० ।



## अथोपाधिवादः ।

उपाधिज्ञानाद्यभिचारज्ञाने सति न व्याप्तिनिश्चय-  
इत्युपाधिर्निरूप्यते ।

तत्रोपाधिः साध्यत्वाभिमतव्यापकत्वे सति साध-

## अथोपाधिवाद्दर्हस्यं ।

प्रसङ्गसङ्गत्या उपाधिं निरूपयितुं निरूपणप्रयोजनं दर्शयन्  
श्रित्यावधानाय प्रतिजानीते<sup>(१)</sup> 'उपाधीति, तथाच परस्थापनायां'  
व्याप्तिनिश्चयप्रतिबन्धाय उपाधिरुद्धाव्यः स्वस्थापनायां व्याप्ति-  
निश्चयाय उपाधिर्निरस्यः स च उपाधिज्ञानं विना न सम्भवतीति  
तन्निरूपणमिति भावः ।

पितृचरणास्तु व्याप्तिग्रहोपाधिनिरूपणानन्तरं उपाधिं निरूपयितुं  
व्याप्तिग्रहोपायेन सहैककार्यानुबन्धत्वसङ्गतिं दर्शयन् श्रित्यावधानाय  
प्रतिजानीते 'उपाधिज्ञानादिति परप्रयुक्तहेतावुपाधुद्भावेन उपाधि-

(१) अत्र प्रतिज्ञा अथवहितोत्तरकालकर्तव्यत्वप्रकारकबोधानुभूतो व्या-  
पारः, स च 'उपाधिज्ञानादित्यादिः 'निरूप्यते' इत्यन्तो मूलग्रन्थः,  
निरूप्यत इत्यत्र वर्तमानसामीप्यार्थकलट्प्रत्ययेन निरूपणस्य वर्त-  
मानकालाव्यवहितोत्तरकालीनत्वेन प्रतीयमानत्वादिति भावः ।

(२) परकीयहेताविति ग० ।

नत्वाभिमतव्यापकः, अनौपाधिकत्वज्ञानञ्च न व्याप्ति-  
ज्ञानेहेतुरतो व्यापकत्वादिज्ञाने नान्योन्याश्रयः ।

ज्ञानादित्यर्थः, तथाच यथा स्वीयहेतौ व्याप्तिग्रहोपायसत्त्वे व्याप्ति-  
निश्चयाद्विजयः, तथा परप्रयुक्तहेतावुपाध्युद्भावनेऽपि उपाधिज्ञाना-  
द्विजय इति विजयलक्षणेककार्यानुकूलत्वमेव सङ्गतिरिति भाव-  
इति प्राङ्गः ।

मिश्रास्तु व्याप्तिग्रहोपायोपपादकत्वलक्षणोपोद्घात एव व्याप्ति-  
ग्रहोपायनिरूपणानन्तरं उपाधिनिरूपणे सङ्गतिः, उपाधिज्ञाने तद-  
भावज्ञानं तदभावज्ञाने च तद्भाष्यस्य व्यभिचारस्याभावज्ञानं तज्ज्ञाने  
च प्रतिबन्धकसत्त्वान्न व्यभिचारज्ञानमिति क्रमेणोपाधेर्याप्तिग्रहो-  
पायव्यभिचारज्ञानविरहं प्रत्युपपादकत्वात्, तथाच मूले उपाधि-  
ज्ञानान्न व्यभिचारज्ञाने व्याप्तिनिश्चय इति योजना, 'न व्यभिचार-  
ज्ञान इत्यस्य व्यभिचारज्ञानाभावे सतीत्यर्थः । न च नञर्थे अभावे  
प्रतियोगितया प्रथमेतरविभक्त्यन्तार्थस्य नान्वय इति व्युत्पत्त्या सप्त-  
म्यन्तार्थस्य व्यभिचारज्ञानस्य कथं नञर्थेऽन्वय इति वाच्यं । तादृश-  
व्युत्पत्तौ मानाभावात्, "तेषां मोहः पापीयान्मूढस्येतरौत्पत्ते-  
रिति न्यायसूत्रे पञ्चम्यन्तार्थस्याप्युत्पादस्य नञर्थेऽन्वयदर्शनात्, 'तेषां'  
राग-द्वेष-मोहानां चयाणां मध्ये, 'मोहः पापीयान्' मोहः श्रेष्ठ-  
तमोदोषः, 'अमूढस्य' मोहरहितस्य पुरुषस्य, 'द्वतरयोः' रागद्वेषयो-  
रुत्पत्तेरभावादिति तदर्थादिति प्राङ्गः ।

'तत्र' करणीये निरूपणे, विषयत्वं सप्तम्यर्थः, तथाच निरूपण-

यद्वा व्यापकत्वं तद्वन्निष्ठात्यन्ताभावाप्रतियोगित्वं,  
तत्प्रतियोगित्वञ्चाव्यापकत्वं, प्रतियोगित्वञ्च तदधिकर-

विषयौभूत उपाधिरीदृशो धर्म इत्यन्वयः । 'साध्यत्वाभिमतं  
अत्र सत्यन्तदलानुपादाने वन्निमान् धूमादित्यादौ पर्वतत्वादा-  
वतिव्याप्तिरिति तदुपादानं, तन्नात्रोपादाने च द्रव्यत्वादावति-  
प्रसङ्ग इति विशेष्यदत्तं, साध्यत्व-साधनत्वे व्यापकत्व-व्याप्यत्वे सोपाधौ  
वस्तुतो न स इत्युभयत्राभिमतपदं । ननु साध्यव्यापकत्वं साध्यनिष्ठ-  
व्याप्तिनिरूपकत्वं तच्च साध्ये उपाधिव्याप्तौ गृहीतायामेव ग्राह्यं  
सा चानौपाधिकत्वज्ञानादेव ग्राह्या अनौपाधिकत्वञ्च प्रकृते साध्यस्य  
यावदुपाधिव्यापकव्यापकत्वं उपाधिव्यापकेषु यावत्सु साध्यनिष्ठ-  
व्याप्तिनिरूपकत्वं पर्यवसितं तथाच साध्ये उपाधिव्याप्तौ गृहीताया-  
मेव उपाधौ साध्यनिष्ठव्याप्तिनिरूपकत्वज्ञानं उपाधिव्यापकयाव-  
दन्तर्गते उपाधौ साध्यनिष्ठव्याप्तिनिरूपकत्वज्ञाने च साध्ये उपाधि-  
व्याप्तिज्ञानं तस्यानौपाधिकत्वघटकत्वादित्यन्योन्याश्रयः । न च  
साध्योपाध्योरन्योन्याभावाच्चेकतरगर्भव्याप्तिज्ञानं प्रति अत्यन्ताभावा-  
च्चेकतरगर्भव्याप्तिघटितानौपाधिकत्वज्ञानं कारणमतो नान्योन्या-  
श्रय इति वाच्यं । तथासत्यनवस्थापत्या तथा वस्तुमशब्दत्वादित्यत-  
आह, 'अनौपाधिकत्वेति, 'व्यापकत्वादीत्यादिपदेन साधननिष्ठ-  
व्याप्तिनिरूपकत्वाभावरूपसाधनाव्यापकत्वपरिग्रहः ।

व्याप्तिनिरूपकत्वापेक्षया लाघवादाह, 'यद्देति, तथाच साध्य-  
वन्निष्ठात्यन्ताभावाप्रतियोगित्वे सति साधनवन्निष्ठात्यन्ताभावप्रति-

योगित्वमुपाधिलमिति फलितं<sup>(१)</sup> । नन्वेवं धूमवान् वक्रेरित्यादा-  
 वार्द्रैन्वनादावव्याप्तिः तादृशाप्रतियोगित्वस्यैवाधिद्धेः । न च तादृश-  
 प्रतियोगितानवच्छेदकधर्मावत्त्वे सतीति सत्यन्तार्थ इति वाच्यं ।  
 वक्रिमान् धूमादित्यादौ वक्रिसामग्रीन्वनादौ तादृशप्रमेयत्वादि-  
 मत्त्वेन महानसत्त्वादौ चातिव्याप्तेरिति चेत् । न । साध्यवन्निष्ठाभाव-  
 प्रतियोगितानवच्छेदकः सन् चः साधनवन्निष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगि-  
 तावच्छेदको धर्मास्तद्वत्त्वं तेन रूपेण उपाधिलमित्युक्तत्वात् । एवं  
 प्रतियोगितयोः उपाधितावच्छेदकसमन्वावच्छिन्नत्वमपि बोध्यं तेन  
 धूमवान् वक्रेरित्यादावार्द्रैन्वनत्वादेः समवायादिना धूमवन्निष्ठा-  
 भावप्रतियोगितावच्छेदकत्वेऽपि न चतिः न वा वक्रिमान् धूमादि-  
 त्यादौ साध्यव्यापकतावच्छेदकस्य वक्रिल-वक्रिसामग्रीत्वादेः समवा-  
 यादिना साधनवन्निष्ठाभावप्रतियोगितावच्छेदकत्वेऽप्यतिव्याप्तिः ।  
 नन्वेवं द्रव्यं सत्त्वादित्यादावव्याप्यवृत्तिसंयोगाद्युपाधावव्याप्तिः तस्य  
 यथोक्तसाध्यव्यापकत्वविरहात्, एवं गुणः सत्त्वादित्यादौ संयोगा-  
 भावादावतिव्याप्तिरपि यथोक्तसाधनाव्यापकत्वात् इत्यत आह,  
 'प्रतियोगित्वञ्चेति प्रतियोगित्वञ्च प्रतियोगिनोः निष्ठताप्रतियोगिनोः  
 साध्यवत्-साधनवतोर्धर्माच्च साध्यवत्-साधनवतोर्विशेषणञ्चेति यावत्,  
 'तदधिकरणेति, 'तदधिकरणं प्रतियोगितावच्छेदकस्याधिकरणं  
 प्रतियोगितावच्छेदकावच्छिन्नमिति यावत्, तदनधिकरणत्वमित्यर्थः,  
 पूर्वमप्रसिद्धादिवारणाय प्रतियोगित्वपदस्य प्रतियोगितावच्छेदक-  
 परत्वावश्यकतया तच्छब्देन तस्यैव परामर्शात् । प्रतियोगितावच्छेद-

(१) निर्युद्धमिति ग० ।

कावच्छिन्नेत्युपादनात् द्रव्यं सत्त्वादित्यादौ विशिष्टसत्त्वे नाव्याप्तिः  
 नवा सत्तावान् जातेरित्यादौ विशिष्टसत्त्वे अतिव्याप्तिरिति भावः ।  
 वस्तुतस्तु ननु वस्तुमात्रस्यैव वैशिष्ट्य-व्यासज्यवृत्तिधर्मवच्छिन्नाभावस्य  
 साध्यवति सत्त्वेन तद्वन्निष्ठात्यन्ताभावाप्रतियोगित्वस्याप्रसिद्धत्वात् कथं  
 तस्य साध्यव्यापकत्वरूपत्वमिति यथाश्रुतलक्षणोपरि शङ्कायामाह,  
 'प्रतियोगित्वञ्चेति तद्वन्निष्ठात्यन्ताभावप्रतियोगित्वञ्चेत्यर्थः', 'तदधि-  
 करणानधिकरणत्वं' तदधिकरणानधिकरणकत्वं स्वानधिकरणतद-  
 धिकरणकत्वमिति यावत्, 'तत्पदं साध्यपरं', तथाच स्वानधिकरण-  
 साध्याधिकरणकं यद्यत्तदन्यत्वं साध्यव्यापकत्वमिति फलितं, एवं  
 साधनवन्निष्ठाभावप्रतियोगित्वमपि स्वानधिकरणसाधनाधिकरणकत्वं  
 वक्तव्यं, अन्यथा वङ्गिमान् धूमादित्यादावपि साध्यव्यापकस्य  
 द्रव्यत्वाद्देर्धूमवन्निष्ठोभयाभाव-वैशिष्ट्याद्यवच्छिन्नाभावप्रतियोगित्वाद्-  
 पाधितापत्तेः । न चैवं धूमवान् वङ्गेरित्यादावयोगोलकभेदादिरूपै-  
 ककृत्युपाधौ लक्षणसम्भवेऽप्यार्द्रन्धनादिरूपनानाव्यक्त्युपाधावव्याप्तिः ।  
 चालनीन्यायेन सर्व्वासासैवार्द्रन्धनव्यक्तीनां स्वानधिकरणसाध्याधि-  
 करणकतया साध्यव्यापकत्वविरहादिति वाच्यं । स्वावच्छिन्नानधि-  
 करणसाध्याधिकरणकं यद्यत्तदन्यत्वे सति स्वावच्छिन्नानधिकरण-  
 साधनाधिकरणको यो धर्मस्तद्वत्त्वं तेन रूपेण उपाधित्वमिति  
 विवचितत्वात्, प्रथमस्वपदं अन्यत्वप्रतियोगिपरं, द्वितीयञ्चोपाधि-  
 तावच्छेदकपरं, अतएव द्रव्यं सत्त्वात् गुणः सत्त्वादित्यादौ संयोग-  
 तदभावयोरपि नाव्याप्यतिव्याप्यवकाश इत्येव तत्त्वं ।

प्राञ्चस्तु 'तदधिकरणानधिकरणत्वमित्यत्र 'तत्पदं अभावपरं,

ज्ञानधिकरणत्वमिति वदन्ति । तन्न । साधन-पक्षधर्मा-  
वच्छिन्नसाध्यव्यापदोषाध्यव्याप्तेः । न च तयोरनुपा-

तथाचात्र प्रतियोगित्वं न स्वरूपसम्बन्धविशेषः किन्तु अभावाधि-  
करणावृत्तित्वं, अतो न द्रव्यं सत्त्वात् गुणः सत्त्वादित्यादौ संयोग-  
तदभावयोरव्याप्त्यतिव्याप्त्यवकाश इति भाव इत्याहुः । तदसत् ।  
तादृशप्रतियोगित्वं व्यापकतादलमात्रे विवक्ष्यते साधनाव्यापकत्वदल-  
मात्रे वा उभयदल एव वा, आद्ये साध्यवन्निष्ठाभावाधिकरणावृत्तिभि-  
न्नत्वं साध्यव्यापकत्वं फलितं तथाच वक्षिमान् धूमादित्यादिसद्धेता-  
वपि साधनाव्यापके घटादावतिव्याप्तिः तस्यापि साध्यवन्निष्ठजलत्वाद्य-  
भावाधिकरणावृत्तितया साध्यव्यापकत्वात्, द्वितीये साधनवन्निष्ठा-  
भावाधिकरणावृत्तित्वं साधनाव्यापकत्वं फलितं तथाचासम्भवः धूमवान्  
वक्षेरित्यादावयोगोलकान्वत्वादेरपि साधनवन्निष्ठजलत्वाद्यभावाधि-  
करणावृत्तितया साधनाव्यापकत्वविरहात्, अतएव न तृतीयोऽपि ।  
न च साध्यवन्निष्ठस्वाभावाधिकरणावृत्तिद्यत्तदन्यत्वं साध्यव्यापकत्वं  
विवक्षितमिति वाच्यं । अव्यापकत्वदले प्रतियोगित्वस्य स्वरूपसम्बन्ध-  
विशेषरूपत्वे द्रव्यं पृथिवीत्वादित्यादौ संयोगादौ अतिव्याप्तिः,  
यदिच साधनाव्यापकत्वमपि साधनवन्निष्ठस्वाभावाधिकरणावृत्तित्वं  
तदा द्रव्यं सत्त्वादित्यादौ संयोगादौ अव्याप्तिः तस्य सत्तावन्निष्ठस्वा-  
भावाधिकरणद्रव्यवृत्तितया साधनाव्यापकत्वविरहात् । न च साध्यव्या-  
पकत्वं साध्यवन्निष्ठस्वाभावाधिकरणावृत्तिभिन्नत्वं, साधनाव्यापकत्वञ्च  
साधनवन्निष्ठयत्किञ्चिदभावाधिकरणावृत्तित्वं अतो न द्रव्यं सत्त्वा-

धित्वं, दूषकतापीयसात्वात् । मित्रातनयत्वेन श्याम-  
त्वसाधने शाकापाकजत्वस्य प्रत्यक्षस्पर्शाश्रयत्वेन वायोः  
प्रत्यक्षत्वे साध्ये उद्भूतरूपवत्त्वस्य च शास्त्रे प्रयोजकत्वे-

दित्यादौ संयोगादावध्याप्तिः द्रव्यं पृथिवीत्वादित्यादौ संयोगादा-  
वतिव्याप्तिर्वा इति वाच्यं । तथापि द्रव्यं पृथिवीत्वादित्यादौ त-  
त्तत्संयोगव्यक्तावतिव्याप्तेर्दुर्भारत्वादिति दिक् ।

‘साधन-पचधर्मेति वायुः प्रत्यक्षः प्रत्यक्षविषयाश्रयत्वादित्यादौ  
पचधर्मवह्निर्द्रव्यत्वावच्छिन्नप्रत्यक्षत्वव्यापके उद्भूतरूपवत्त्वे काकः श्यामो  
मित्रातनयत्वादित्यादौ साधनावच्छिन्नसाध्यव्यापके शाकापाकजत्वे  
चाव्याप्तिरित्यर्थः, तयोः साध्यवशिष्टाभावाप्रतिषेधित्वाभावादिति  
भावः । ‘तयोः’ पचधर्म-साधनावच्छिन्नसाध्यव्यापकयोः, ‘दूषकतेति,  
वक्ष्यमाणरीत्या उभयत्रैव व्यभिचारोन्नायकत्वसत्त्वादिति भावः ।  
तयोरुपाधित्वानङ्गीकारे सिद्धान्तविरोधमप्याह, ‘मित्रेति, काका-  
देरित्यादि, ‘प्रत्यक्षस्पर्शाश्रयत्वेनेति प्रत्यक्षस्य स्पर्शः विषयतारूपः  
सम्बन्धः यत्रेति व्युत्पत्त्या प्रत्यक्षविषयाश्रयत्वेनेत्यर्थः, तथाचादे  
साधनावच्छिन्नसाध्यव्यापकत्वं द्वितीये पचधर्मावच्छिन्नसाध्यव्यापक-  
त्वमिति भेदेनोदाहरणद्वयमिति श्लेषं<sup>(१)</sup> । ‘प्रयोजकत्वेन’ व्यभि-  
चारानुमानप्रयोजकत्वेन, ‘पचेतर इति पर्वतो धूमवान् वक्षेरि-  
त्यादौ पर्वतेतरादावित्यर्थः । न च पचेतरस्य प्रमेयत्वादेः सर्वत्र  
सत्त्वेन साधनव्यापकतया कथमतिव्याप्तिरिति वाच्यं । तादात्म-

(१) इति भाव इति ख०, ग० ।

नोपाधित्वस्वीकाराच्च पक्षे तरेऽतिव्याप्तेश्च । न च व्यतिरेके पर्यन्तेतरान्यत्वादित्यत्र इतरान्यत्वस्यासिद्धिवार-

सम्बन्धेन तस्य साधनाव्यापकत्वात् । न च तथापि पक्षे तादात्म्यसम्बन्धेन साध्याव्यापकतया कथमतिव्याप्तिरिति वाच्यं । 'अतिव्याप्तेरित्यस्य उक्तदूषणौपधिकत्वरूपघानस्य अतिप्रसङ्गेरित्यर्थात् पक्षातिरिक्त एव साध्यव्यापकत्वस्य साध्यात्वादन्यथा साध्यसन्देहदृग्भावामुपाधित्वग्रहः कुत्रापि न स्यादिति भावः । न चैतरशब्दस्य सर्वनामतया सर्वनामकार्थ्यापत्तिरिति वाच्यं । पक्ष इतरो यस्यादिति वञ्चीहि-यमावात् "न वञ्चीहावित्यनेन सर्वनामकार्थ्यनिषेधात् । 'व्यतिरेक-इति साध्यव्यतिरेके साध्य इत्यर्थः, 'इत्यत्र' हेतौ, 'इतरान्यत्वस्येति, वस्तुमात्रस्यैव किञ्चिदपेक्षया इतरत्वादिति भावः । 'व्यतिरेके व्यर्थविशेषणत्वादिति सव्यतिरेकेण साध्यव्यतिरेके साध्ये व्यभिचारा-वारकविशेषणत्वादित्यर्थः, 'न स इति, तथाच येन रूपेण साध्य-व्यापकता तद्रूपावच्छिन्नत्वाभावेन साध्याभावसाधने व्यभिचारा-वारकविशेषणशून्यत्वे सतीति विशेषणं देयमिति भावः । 'बाधोच्चीतस्येति बाधोच्चीतत्वं 'बाधेन पक्षे साध्यबाधेन, साध्य-व्यापकतया प्रमितत्वं, वञ्चिउरनुष्णः एतत्कत्वादित्यादौ वञ्चीतरत्व-स्येत्यर्थः, 'न चेष्टापत्तिरिति, व्यभिचारावारकविशेषणत्वेन व्यर्थ-विशेषणतया यत्रतिपत्तोपायकत्वस्योपाधेर्दूषकतावीजस्य तत्राभावा-दिति भावः । 'विशेषणं विनेति वज्रादिविशेषणं विनेत्यर्थः, 'व्याप्त्यग्रहेणेति व्याप्तिग्रहसम्भवेनेत्यर्थः, 'तत्कार्यकत्वादिति वज्रा-



णार्थं पर्वतपदं विशेषणमिति व्यतिरेके व्यर्थविशेषण-  
त्वान्न स उपाधिः, बाधेऽनीतस्याप्यनुपाधितापत्तेः ।

दिविशेषणे दूषणावहस्य व्याप्तिग्रहानुपयुक्तत्वरूपवैयर्थ्यस्याभावादित्यर्थः, तथाच उपाधिलक्षणघटकतया त्वदभिमतस्य वैयर्थ्याभावात् तत्रासत्त्वेऽपि दूषणावहस्य वैयर्थ्यस्याभावात् सत्प्रतिपक्षोन्नयनसम्भवेन तस्यानुपाधिले दृष्टापत्त्यसंभव इति भावः । आशयमविदित्वा गङ्गते, 'वस्तुगत्येति, पर्वतो धूमवान् वज्जेरित्यादौ पर्वतेतरस्य न तथेति भावः । भावमुद्घाटयति, 'पक्षातिरिक्त इति, सहचारज्ञानेनेति शेषः, 'तच्च' तादृशसाध्यव्यापकताज्ञानञ्च, 'तत्रापीति बाधानुनीत-पक्षेतरत्वेऽपीत्यर्थः, इति साम्प्रदायिकाः ।

नव्यास्तु अत्र साध्यव्यापकत्वं पक्षेतरौयत्वावच्छिन्नसाध्यनिरूपित-मुक्तं साध्यसामान्यनिरूपितं वा, आद्ये आह, 'पक्षेतर इति, इद-मुपलक्षणं पक्षमात्रवृत्तिसाध्यकेऽव्याप्तेरित्यपि द्रष्टव्यं, अन्यमाशङ्कते, 'वस्तुगत्येति, इति ग्रन्थं योजयन्ति ।

ननु पक्षे साध्यसन्देहसत्त्वे व्यभिचारसंग्रहसत्त्वात् पक्षातिरिक्त-स्थले सहचारज्ञानमात्रात् साध्यव्यापकत्वग्रहः तत्र कथं स्यादित्यत आह, 'अन्यथेति, 'अनुपाधिल इति साध्यव्यापकताया अनिश्चय-इत्यर्थः, 'उपाधिमात्रमिति पक्षे साध्यसन्देहदृष्ट्यायां पक्षावृत्तित्वेन गृहीतस्य उपाधिमात्रस्य साध्यव्यापकत्वनिश्चय उच्छिद्येतेत्यर्थः, यथाश्रुते पक्षवृत्तित्वेन निश्चितानामेवोपाधीनां पक्षे साध्यसन्देह-

न चेष्टापत्तिः, इतरान्यत्वस्याप्रसिद्ध्या विशेषणं विना  
व्याप्यग्रहेण तत्सार्यकत्वात् । वस्तुगत्या साध्यव्यापकः  
पक्षेतर उपाधिरिति चेत्, अस्तु तथा, तथापि पक्षा-

सत्त्वेऽपि साध्यव्यापकत्वनिश्चयसम्भवात् असङ्गतेः । तथाच पक्षे  
साध्यसन्देहस्तदाहितव्यभिचारसंग्रयो वा न साध्यव्यापकतानिश्चय-  
परिपन्थीति त्वयाप्येष्टव्यमिति भावः । 'विपक्षाव्यावर्त्तकेति 'वि-  
पक्षः' साध्याभाववान्, तदव्यावर्त्तकं तन्निष्ठाभावप्रतियोगिताव-  
च्छेदकत्वासम्पादकं यद्विशेषणं सखन्धसामान्येन तच्छून्यत्वं साध्य-  
व्यापकत्वं साधनाव्यापकतावच्छेदके विशेषणमित्यर्थः । तथाच विप-  
क्षनिष्ठाभावप्रतियोगितावच्छेदकत्वासम्पादकविशेषणशून्यसाध्यव्याप-  
कतावच्छेदकसाधनाव्यापकतावच्छेदकधर्मवत्त्वमुपाधित्वमिति भावः ।  
सम्पादकत्वञ्चास्यैतन्निष्ठाभावप्रतियोगितावच्छेदकत्वमेतद्धीनमिति  
प्रतीतिसिद्धः स्वरूपसखन्धविशेषः, विपक्षव्यावर्त्तकविशेषणवद्यत्सा-  
ध्यव्यापकतावच्छेदकं साधनाव्यापकतावच्छेदकं तद्वत्त्वमित्युक्तौ ह्र-  
देतरत्वविशिष्टपर्वतेतरत्व-पर्वतेतरत्वविशिष्टह्रदेतरत्वादावतिप्रसङ्ग-  
इत्यतो निषेधद्वयगर्भता, 'बाधोक्षीतेति वङ्गिरनुष्णः कृतकत्वादित्य-  
त्र वङ्गीतरत्वस्य परिग्रह इत्यर्थः, 'पक्षस्यैव विपक्षत्वादिति,  
पक्षस्यैव विपक्षतया वङ्गिविशेषणस्येतरत्वनिष्ठविपक्षनिष्ठाभावप्रतियो-  
गितावच्छेदकत्वसम्पादकत्वादिति भावः । 'न तु पर्वतेतरत्वादेरिति  
न तु पर्वतो वङ्गिमान् धूमादित्यादौ पर्वतेतरत्वादेः परिग्रह इत्यर्थः,  
तत्र पर्वतविशेषणस्येतरत्वे पर्वतनिष्ठाभावप्रतियोगितावच्छेदकत्वस-

तिरिक्ते साध्यव्यापकताग्रहादुपाधेर्दूषकत्वं, तच्च तच्चा-  
प्यस्ति, अन्यथा पक्षे साध्यसन्देहादनुपाधित्वे उपा-  
धिमात्रमुच्छिद्येत । विपक्षाव्यावर्तकविशेषणशून्यत्वं

स्यादकत्वेन विपक्षनिष्ठाभावप्रतियोगितावच्छेदकत्वासम्पादकत्वादिति  
भावः । आदिपदात् पर्वतावयववृत्त्यन्यत्व-पर्वतेतरद्रव्यत्व-हृद-पर्वत-  
संयोगानाधारत्व-हृदेतरत्वविशिष्टपर्वतेतरत्व-पर्वतेतरत्वविशिष्टहृदे-  
तरत्वादेः परिग्रहः । 'न हीति, 'वस्त्विति प्रथमान्तं 'शून्यमित्यन्वयि,  
'तत्र' विपक्षाव्यावर्तकविशेषणे, 'उपात्तेतीति खघटकीभूतविशेषणे  
इत्यर्थः, खपदं उपाधितावच्छेदकपरं, तथाच खघटकीभूतविपक्षाव्या-  
वर्तकविशेषणशून्यं यत्साध्यव्यापकत्व-साधनाव्यापकत्वावच्छेदकं तद्वत्त्व-  
सुपाधित्वमिति फलितमिति भावः । 'सिद्धसिद्धीति खघटकी-  
भूततादृशविशेषणं प्रसिद्धमप्रसिद्धं वा उभयथापि तादृशविशेषण-  
शून्यत्वस्योपाधितावच्छेदके व्याघात इत्यर्थः । ननु तादृशविशेषण-  
घटितं यत्साध्यव्यापकतावच्छेदक-साधनाव्यापतावच्छेदकं तद्वत्त्वं  
तादृशविशेषणानवच्छिन्नसाधनसमानाधिकरणाभावप्रतियोगिताया-  
अवच्छेदकं यत्साध्यसमानाधिकरणाभावप्रतियोगिताया अनवच्छेदकं  
तद्वत्त्वं वा उपाधित्वं विवक्षितमित्यखरसादूषणान्तरमाह, 'तथापि  
चेति, साध्यव्यापकत्व-साधनाव्यापकत्व इति साध्यव्यापकत्व-साधना-  
व्यापकत्वज्ञाने इत्यर्थः, 'तत्र' पक्षेतरत्वे, 'तज्जावृत्त्या' तज्जावृत्तिज्ञानेन,  
'पक्षे' हेतुमति पक्षे, 'साध्यव्यावृत्तिः' साध्यव्यावृत्तिनिश्चयः, 'व्यभि-  
चारएवेति व्यभिचारज्ञानमेवेत्यर्थः, 'व्यभिचारे चेति व्यभिचारज्ञाने

विशेषणं तेन बाधोन्नीतपक्षेतरस्य परिग्रहः, तत्र पक्ष-  
स्यैव विपक्षत्वात्, न तु पर्वतेतरत्वादेरिति चेत् । न ।  
न हि वस्तु विपक्षाव्यावर्तकविशेषणशून्यं, सर्वत्र  
प्रमेयत्वादेः सत्त्वात् । तत्रोपात्तेतिविशेषणे सिद्धसि-  
द्धिव्याघातः । तथापि च साध्यव्यापकत्व-साधनाव्या-  
पकत्वे तत्र स्त इति तद्भाष्येण पक्षे साध्यव्यावृत्तिरतो  
हेतोर्व्यभिचार एव व्यभिचारे चानवश्यतुपाधिरिति  
पक्षेतर एव तत्रोपाधिः स्यात् तावन्मात्रस्यैव दूषक-

चेत्यर्थः, 'अवश्यतुपाधिरिति अवश्यं पक्षेतर उपाधिः, व्यभिचारो-  
न्नायकत्वस्य उपाधेरुपकृतावौजस्य यत्त्वादित्यर्थः, तथाच त्वया पक्षेतरो  
नोपाधिरभ्युपेक्षत इति जयातिव्याप्तिरापादिता । वस्तुतो दूषक-  
तावौजसत्त्वेन तदुपाधिर्भवत्येवेति भवतस्तत्रानुपाधिताभ्युपगमोऽयुक्त-  
इति भावः । किञ्च विशेषणमपि व्यर्थमित्याह, 'पक्षेतर एवेति  
पक्षेतरस्तत्रोपाधिः स्यादेवेत्यर्थः, अत इति शेषः, 'तावन्मात्रस्येति  
साध्यव्यापकतामात्रस्येत्यर्थः, मात्रपदादुक्तविशेषणव्यवच्छेदः, 'दूषक-  
त्वाच्चेति दोषोच्चवनोपयोगित्वाच्चेत्यर्थः, 'चकारः 'व्यर्थं' विशेषण-  
मित्यनन्तरं चोच्यः । न च न देवमेव विशेषणमिति वाच्यं । भवत-  
स्तत्रानुपाधिताभ्युपगमेन विशेषणादाने अतिव्याप्यापत्तेरिति भावः ।  
'अनुमानमात्रेति अनिश्चितसाध्यकानुमानमात्रोच्छेदकतयेत्यर्थः,  
'जातित्वादिति जात्युत्तरकत्वादित्यर्थः, उपाधिव्यभिचारेण साध्य-

त्वाच्च व्यर्थं विशेषणम् । अतएवानुमानमात्रोच्छेदक-  
तया जातित्वान्न पक्षेतर उपाधिरित्यपास्तं दूषण-  
समर्थत्वेन जातित्वाभावात् । एतेन पक्षेतरव्यावृत्त्यर्थं  
प्रकारान्तरमपि निरस्तम् उपाधित्वाभावेऽपि दूषण-  
समर्थत्वात् । अथोपाधिः स्वव्यतिरेकेण सत्प्रतिपक्ष-  
तया दूषणं पक्षेतरत्वव्यतिरेकश्च न साध्याभावसाध-

व्यभिचारानुमाने कर्त्तव्येऽपि पक्षेतरयोपाधित्वेनोद्भावनीयतया  
“स्वव्याघातकमुत्तरं जातिरिति जातिखचणसत्त्वादिति भावः ।  
'न पक्षेतर इति, तथाच विशेषणं सार्थकमेवेति भावः ।  
'दूषणसमर्थेति दूषणासमर्थमुत्तरं जातिरित्यस्यैव जातिखचणत्वात्,  
पक्षेतरस्य व्यभिचारोन्नयनसमर्थ एवेति भावः । 'प्रकारान्तरमिति  
बाधानुचीतपक्षेतरभिन्नत्वादिकमित्यर्थः, 'उपाधित्वाभावेऽपीति तया  
उपाधित्वानङ्गीकारेऽपीत्यर्थः, तथाच व्यर्थविशेषणमिति भावः ।  
दूषकतावीजसत्त्वे एव तस्यानुपाधित्वाभ्युपगमस्तद्वारणाय विशेषण-  
प्रक्षेपश्चानुचितस्तदेव च नास्तीत्यभिप्रायेण आशङ्कते, 'अथेति,  
'सत्प्रतिपक्षतया' साध्याभावसाधकतया, 'असाधारणत्वादिति सपक्ष-  
विपक्षव्यावृत्तत्वादित्यर्थः । ननु व्यभिचारानुमापकतया उपाधिर्दीर्घ-  
तत्र च नासाधारणमित्याशङ्क्य निराकरोति, 'न त्विति, 'उपाध-  
व्याप्यतयेति उपाधिव्यभिचारितयेत्यर्थः, 'साध्याव्याप्यत्वं' साध्यव्यभिचा-  
रित्वं, अनुमेयमिति शेषः, 'न साध्यव्यापकत्वमिति साध्यव्यापकत्वाभा-  
वोऽपि सिद्धेदित्यर्थः, हेतावुपाधिव्यभिचारित्वे ज्ञायमाने उपाधावपि

कोऽसाधारणत्वात्, न तु व्यभिचरोन्नायकतया दूषणं  
यथाहि साध्यव्यापकोपाध्यव्याप्यतया हेतोः साध्या-  
व्याप्यत्वं तथा साध्यव्याप्यहेत्वव्यापकतयोपाधेर्न  
साध्यव्यापकत्वमपि सिध्येत् व्याप्तिग्राहकस्योभयत्रापि  
साध्येन विनिगमकविरहात् । तस्माच्चया साध्यव्या-  
प्येन हेतुना साध्यं साधनीयं तथा साध्यव्यापकोपा-  
धिव्यावृत्त्या साध्याभावोऽपि साधनीयो व्याप्तिग्रह-  
तौत्वादिति दूषकतावीजं । सोऽयं सत्प्रतिपक्षश्चेति

हेत्वव्यापकत्वज्ञानसावश्यकत्वात् समानसंबन्धित्ववेद्यत्वादिति भावः ।  
ननु हेतावुपाधिव्यभिचारित्वग्रहदशायां उपाधावपि हेत्वव्यापकत्व-  
ज्ञानसावश्यकत्वेऽपि हेतौ साध्यव्याप्तिनिश्चयाभावाच्च तद्व्यापकत्वेन  
साध्यव्यापकत्वज्ञानं, उपाधौ तु साध्यव्यापकतानिश्चयसत्त्वेन तद्व्यभि-  
चारित्वेन साध्यव्यभिचारित्वग्रह इत्यत आह, 'व्याप्तीति यथा साध्यस्य  
उपाधिव्याप्यताग्राहकव्यभिचारादर्शन-सहचारदर्शने स्तः तथा हेता-  
वपि साध्यव्याप्यताग्राहके ते स्त इत्यर्थः, न हि तदानीं हेतौ साध्य-  
व्यभिचारज्ञानमप्यस्ति, स्फुटे व्यभिचारे उपाध्युपन्यासस्य वैयर्थ्यादिति  
भावः । इदमापाततः चदा उपाधौ साध्यव्यापकताग्रहेऽनुकूलतर्का-  
वतारादुपाधौ साध्यव्यापकतानिश्चयो जातः हेतौ तु साध्यव्याप्यताग्रहे  
अनुकूलतर्कानवतारात्तत्र साध्यव्याप्यतानिश्चयो न जातः तदैव व्यभि-  
चारानुमानसम्भवात् । 'तस्मादिति । न च साध्यव्याप्यहेत्वव्यापक-  
तयोपाधेः साध्याव्यापकत्वज्ञानात् कथं तद्व्यतिरेकेण सत्प्रतिपक्षस्यैव

चेत् । मैवं । एवं हि सत्प्रतिपक्षे उपाध्युद्भावनं न स्यात्  
सत्प्रतिपक्षान्तरवत् । किञ्चैवं बाधोन्नीतोऽपि पक्षेतरो  
नोपाधिः स्यात् व्यतिरेकेऽसाधारण्यात् । ननु बाधे  
नोपाधिनियमः धूमेन हृदे वह्निसाधने तदभावात्  
न तु हेतुमति पक्षे बाधे पक्षेतरोपाधिनियमः प्रत्यक्षे

सशक्य इति वाच्यं । सत्प्रतिपक्षोन्नायकतया दूषकत्वपक्षे हेतौ उपा-  
धिव्यभिचारित्वज्ञानस्थानपेक्षितत्वेन तुल्यवित्तिवेद्यतया उपाधौ  
साधनाव्यापकत्वज्ञानसाध्यनावश्यकत्वात्, यदा उपाधौ हेत्वव्यापकता-  
ज्ञानं नास्ति तदैव सत्प्रतिपक्षवत्त्वादिति भावः । 'सत्प्रतिपक्षान्तर-  
दिति, यथा सत्प्रतिपक्षे सत्प्रतिपक्षान्तरं नोद्भाव्यते तत्र एकेनापि  
भूषणं प्रतिबन्धात् सत्प्रतिपक्षवाच्यत्वात्प्रयोजकत्वात् तथा सत्प्रति-  
पक्षे उपाध्युद्भावनमपि न स्यात् भवन्मते उपाधियुद्भाव्य सत्प्रतिपक्ष-  
ान्तरत्वेव करणीयत्वात् तस्य चाप्रयोजकत्वादिति भावः । दूषणान्तर-  
माह, 'किञ्चेति, 'एवं' सत्प्रतिपक्षोन्नायकतया दोषत्वे, 'बाधोन्नी-  
तोऽपीति वदिरनुष्णः एतत्कत्वादित्यत्र वद्वीतरोऽपीत्यर्थः, 'व्यतिरे-  
केऽसाधारणादिति साध्याभावसाधने तद्व्यतिरेकसाधारणादि-  
त्यर्थः, पक्षमात्रवृत्तिहेतुरसाधारण इत्यभिमानेनेदं । ननु मासु बाधो-  
न्नीतपक्षेतरोऽप्युपाधिरित्याशयेनाशङ्कते, 'नन्विति, 'नोपाधिनियम-  
इति न पक्षेतरोपाधिनियम इत्यर्थः, यथाश्रुते तादृशसामान्यनियम-  
सत्त्वेऽपि पक्षेतरोपाधित्वानावश्यकत्वात् तद्विराकरणस्थानुपपन्न-

वज्ञौ हतकत्वेनानुष्णत्वे साध्योऽतेजस्वादेरुपाधित्वसम्भ-  
वादिति चेत् । न । तेजोमात्रपक्षत्वेऽतेजस्वं विना-

प्रसङ्गात् । अत एवाग्रे 'पचेतरोपाधिनिश्चय इत्यपि सङ्गच्छते । 'हेतु-  
मतौति साध्यमानाधिकरणहेतुमतौत्यर्थः, तेन समवायादिसम्बन्धेन  
घटो गगनवान्द्रव्यत्वादित्यादौ न व्यभिचारः । न चाव्याप्यवृत्तिसाध्य-  
कषट्केतौ व्यभिचार इति वाच्यं । निरवच्छिन्नसाध्याभावाधिकरणत्वस्य  
वाधपदार्थत्वात् । न च तथाप्येतद्गन्धप्रागभावकालीनैतद्घटोगन्धवान्  
पृथिवीत्वादित्यादावपक्षीर्णवाधस्यले व्यभिचारस्तत्र पक्षतावच्छेदके  
एतद्गन्धप्रागभावकालावच्छिन्नत्वविशिष्टसमवायावच्छिन्नप्रतियोगिता-  
कसाध्याभावस्य निरवच्छिन्नाधिकरणत्वस्यापि पक्षे यत्त्वादिति वाच्यं ।  
तेन सम्बन्धेन साध्यत्वे तत्रापि पचेतरस्योपाधित्वादिति भावः । तादृश-  
निश्चयमःपुपेत्यैवाह, 'प्रत्यक्ष इति, 'अतेजस्वादेरिति धर्मिपरो निर्देशः  
तेजःसामान्येतरादिरूपस्यैव पचेतरस्येत्यर्थः, तद्व्यतिरेकस्य साध्याभाव-  
साधनेऽसाधारण्यभावात् सपक्षे यौरालोकादावपि वृत्तेरिति भावः ।  
तथाच वक्ष्यीतरत्वेन वक्ष्यीतरस्यानुपाधित्वेऽपि तादृशनिश्चयो नानुपप-  
न्नइति इदं, हेतुमतौत्यादिनिश्चयमाभ्युपगमेनैव दूषयति, 'तेजोमात्रेति  
तेजोऽनुष्णं हतकत्वादित्येत्यर्थः, 'अतेजस्वं विनेति धर्मिपरो निर्देशः  
तेजःसामान्येतरादिकं विनेत्यर्थः, आदिना भास्वरूपवदितरवक्ष्यी-  
तरादेः परिग्रहः, 'अन्यस्येति, पचेतरस्येति शेषः, तेजःसामान्येतरा-  
दित्यतिरेकस्य साध्याभावसाधनेऽसाधारणं द्रव्येतरादिकञ्च न साध्य-  
यापकमिति भावः । 'अन्यस्योपाधेरभावादिति यथाश्रुतं न सङ्ग-



न्यस्य उपाधेरभावात् । किञ्च पर्वतावयववृत्त्यन्यत्वं पर्वतेतरद्रव्यत्वं हृद्-पर्वतसंयोगानाधारत्वं हृद्-पर्वतान्यत्वादिक्लमुपाधिः स्यादेव व्यतिरेकेऽसाधारण्याभावात् व्यतिरेकिणा सत्यतिपक्षसम्भवाच्च । न चासा-

च्छते व्यतिरेकेऽसारण्याभावतोऽपि गुरुत्वादेरूपवत्त्वावच्छिन्नसाध्यव्यापकतयोपाधित्वात् ।

भट्टाचार्यास्तु 'अतेजस्वं विना' अतेजस्वसमग्रीलं विना, असाधारणव्यतिरेकप्रतियोगिनं विनेति यावत्, तेन भास्वरूपवदितरवङ्गीतरादेः परिग्रहः, 'अन्यस्योपाधेरभावादिति अन्यस्य शुद्धसाध्यव्यापकस्योपाधेरभावादित्यर्थः, तेन विशिष्टसाध्यव्यापकस्योपाधेः सत्त्वेऽपि न चतिरित्याहुः ।

ननु पक्षमात्रवृत्तित्वं नासाधारणं किन्तु यावत्सपक्ष-विपक्षव्यावृत्तत्वं तेजःसामान्येतरादिव्यतिरेकस्यानुष्णत्वाभावे साध्ये न तथा पक्षे साध्यासिद्धौ सपक्षाभावात् साध्यसिद्धौ तु तत्रैव पक्षे वर्तमानत्वादित्यस्वरसादाह, 'किञ्चेति, 'हृदेति, हृद्संयोगिपर्वते यत्र वङ्गिः साध्यते तत्रायमुपाधिर्विध्यः अन्यथा साधनव्यापकत्वादानुपाधितापत्तेः । 'हृद्-पर्वतान्यत्वेति हृदेतरत्वविशिष्टपर्वतेतरत्वादिकमित्यर्थः, 'व्यतिरेक इति, उक्तोपाधीनां व्यतिरेकस्य पर्वतावयववृत्तिगुणादौ द्रव्यान्यपदार्थमात्रे हृदे च विपक्षे यथाक्रमं वृत्तेः तथाच बाधानुन्नीतपक्षेतरवारणाय विपक्षाव्यावर्तकेत्यादिविशेषणदाने तत्रैवाव्याप्तिरिति भावः । हेतोः सपक्ष-विपक्षव्यावृत्तत्वम-

धारण्यं, तस्यापि सत्प्रतिपक्षोत्थापकतया दोष-  
त्वात् । तस्मादुभयोरपि व्याप्तिग्राहकसाध्ये विरोधान्न  
व्याप्तिनिश्चयः, किन्तुभयत्र व्यभिचारसंशयः, तथाच

साधारण्यं तत्र सपक्षव्यावृत्तत्वांग्रज्ञानं हेतौ साध्याभावव्यतिरेक-  
सहचारज्ञानरूपतया हेतौ साध्यव्यापकीभूताभावप्रतियोगित्वरूप-  
साध्याभावव्यतिरेकव्याप्तिज्ञानजनकं, विपक्षव्यावृत्तत्वांग्रज्ञानजनकञ्च  
हेतौ साध्यव्यतिरेकसहचारज्ञानरूपतया हेतौ साध्याभावव्यापकी-  
भूताभावप्रतियोगित्वरूपसाध्यव्यतिरेकव्याप्तिज्ञानजनकं, तथाचा-  
साधारण्यज्ञानं साध्य-तदभावोभयव्याप्यप्रकृतहेतुमत्तापरामर्शरूप-  
सत्प्रतिपक्षद्वारानुमितावेव प्रतिबन्धकमिति स्वमतेन दूषणान्तर-  
माह, 'व्यतिरेकिणेति, 'व्यतिरेकिण' पर्वतेतरादिनिष्ठव्यतिरेक-  
प्रतियोगिनापि, पर्वतेतरान्यत्वादिनेति शेषः । 'न चासाधा-  
रण्यमिति, सत्प्रतिपक्षे प्रतिबन्धकमिति शेषः । 'तस्यापि' सपक्ष-  
विपक्षव्यावृत्तत्वरूपासाधारण्यज्ञानस्यापि, 'सत्प्रतिपक्षोत्थापकतयेति  
साध्यव्यापकीभूताभावप्रतियोगित्वरूपसाध्याभावव्यतिरेकव्याप्ति-सा-  
ध्याभावव्यापकीभूताभावप्रतियोगित्वरूपसाध्यव्यतिरेकव्याप्योर्ग्रहद्वारा  
साध्य-तदभावोभयव्याप्यप्रकृतहेतु मत्तापरामर्शरूपसत्प्रतिपक्षजनकत-  
येत्यर्थः, 'दोषत्वादिति अनुमितावेव प्रतिबन्धकत्वादित्यर्थः, तथा-  
चासाधारण्येऽपि सत्प्रतिपक्षसम्भवात् पक्षेतरोऽप्युपाधिरेवेति तस्या-  
नुपाधितानभ्युपगमः वारणाय तस्य विशेषणोपादानञ्च द्वयमप्ययुक्त-  
मिति भावः ।

व्यभिचारसंशयाधायकत्वेनोपाधेर्दूषकत्वं, तच्च पक्षेत्तरे-  
 प्यस्ति, तदुक्तमुपाधेरेव व्यभिचारश्चेति । भवतु  
 बोक्तव्यायेन सकलानुमानभङ्गभिया पक्षेत्तरोऽनुपाधिः,  
 तथापि लक्षणमतिव्यापकम् । नापि साध्यसमव्याप्तत्वे  
 सति साधनाव्यापकत्वमुपाधित्वं, दूषकतावोजस्य व्य-

केचित्तु 'व्यतिरेकिणा, व्यतिरेकव्याप्त्या, पर्वतेतरान्यत्वादि-  
 नापीति शेषः । 'न चासाधारण्यमिति, व्यतिरेकव्याप्त्या सत्प्रति-  
 पक्षेऽपि प्रतिबन्धकमिति शेषः । 'तस्यापि, असाधारण्यज्ञानस्यापि,  
 'सत्प्रतिपक्षोत्थापकतयेति अन्वयसहचारग्रहप्रतिबन्धकतया वेति  
 शेषः । 'दोषत्वादिति अनुमितावन्वयव्याप्तिग्रहे वा प्रतिबन्धक-  
 त्वादित्यर्थः, यदि सपक्ष-विपक्षव्यावृत्तत्वं असाधारण्यं तदा तज्ज्ञान-  
 युक्तक्रमेण सत्प्रतिपक्षजनकतयानुमितावेव प्रतिबन्धकं, यदि  
 च हेतोः साध्यवद्वृत्तित्वमसाधारण्यं तदा तज्ज्ञानं अन्वयसहचार-  
 ग्रहप्रतिबन्धकद्वारा अन्वयव्याप्तिग्रह एव प्रतिबन्धकं न तु कदा-  
 चिदपि व्यतिरेकव्याप्त्या सत्प्रतिपक्षे प्रतिबन्धकमिति भाव इति  
 व्याचक्रुः ।

ननु व्यभिचारोन्नायकतया दूषकत्वं मया प्रागेव दूषितं यदि  
 सत्प्रतिपक्षतया दोषत्वमपि त्वया दूषितं तदा यत्र हेतुपाधोर्दोषा-  
 ग्राहकसाम्यं तत्र कथमुपाधिर्दोष इत्यत आह, 'तस्यादिति,  
 'उभयोः' साध्य-साधनयोः साध्योपाधोः, 'विरोधादिति विरोधः  
 साध्यव्याप्यत्व-साध्यव्यापकाव्याप्यत्वयोः साध्यव्यापकत्व-साध्यव्याप्याव्या-

भिन्नारोपयनस्य सत्त्वतिपद्यस्य वा साध्येन विषम-  
व्याप्तस्याप्युपाधित्वात् तथा दूषकतायां साध्यव्याप्यत्व-  
स्याप्रयोजकत्वात् । अथ साध्यप्रयोजको धर्म उपाधिः  
प्रयोजकत्वञ्च न न्यूनाधिकदेशवृत्तेः तस्मिन् सत्य-  
भवतस्तेन पिनापि भवतस्तदप्रयोजकत्वात्, अन्यथा

पकत्वयोश्चेत्यर्थः । उपाधेर्यभिचारग्रन्थाधायकत्वेन दोषत्वे आचार्य-  
संवादमाह, 'तदुक्तमिति, 'उपाधेरेवेति, एवकारः भिन्नक्रमे  
उपाधेर्यभिचारग्रन्थैवेत्यर्थः, चचोभवत्याप्तिग्राहकसाम्यं तच्चेत्यादि-  
यकसानुमानोच्चेदापत्तिभवेन पचेतरखोपाधित्वं परैर्निरस्यते  
तदभ्युपेत्य पूर्वपक्षमाह, 'भवतु वेति, 'तथापीति । न च  
विपचाव्यावर्तकविशेषणानवच्छिन्नेतिविशेषणदानादेव नातिव्याप्ति-  
रिति वाच्यं । तथापि अन्याणवः सकर्तृकाः कार्यत्वादित्या-  
दावणुभिन्नादौ पचेतरेऽतिव्याप्तेः तत्राणुविशेषणेन विपचस्य  
परमाणोरपि व्यावर्तनादिति भावः । आचार्य्यलक्षणं दूषयति,  
'नापीति, पचेतरस्तु साध्यविपक्षवापकत्वाजोपाधिरिति भावः ।  
अवच्छिन्नसाध्यवापकोपाधावव्याप्तौ सत्यानेव दूषणान्तरमाह,  
'दूषकतेति, 'विपक्षवाप्त्यापीति, तथाच तत्राव्याप्तिरिति भावः ।  
'तथा दूषकतायामिति सत्यभिचारेण साध्यभिचारोपयक-  
तया सत्यतिरेकेण साध्यतिरेकोपयकतया वा दूषकतायामित्यर्थः,  
साध्यवापकतादसत्त्वानुपपत्तर्कविधवैवोपयोगादिति भावः । अथा-

पक्षेतरस्याद्युपाधित्वप्रसङ्ग इति चेत् । न । दूषणौपयिकं हि प्रयोजकत्वमिह विवक्षितं तच्च साध्यव्यापकत्वे सति साधनाव्यापकत्वमेवेति, तदेव प्रयोजकं न त्वधिकं व्यर्थत्वात् । ननूपाधिः<sup>(१)</sup> स उच्यते यद्यस्मीऽन्यत्र प्रति-

श्रितिनिरासाय विषमव्याप्त्यालक्ष्यत्वे विनिगमकमाह, 'अथेति, 'साध्य-  
प्रयोजको धर्मः' साध्यप्रयोजकीभूतधर्म एव, 'उपाधिः' शास्त्रीयो-  
पाधिव्यवहारविषयः, साध्यप्रयोजकधर्मत्वं शास्त्रीयोपाधिव्यवहार-  
विषयत्वव्यापकं इति यावत्<sup>(२)</sup> लक्षणपक्षे यद्देतावपि साध्यसमव्याप्तेः-  
तिव्याप्त्यापत्तेः, 'प्रयोजकत्वञ्चेति, साध्यान्वय-व्यतिरेकोन्नायकान्वय-  
व्यतिरेकप्रतियोगित्वस्य प्रयोजकतारूपत्वादिति भावः । 'अभवतः'  
असतः, 'भवतः' सतः, 'तदप्रयोज्यत्वादिति<sup>(३)</sup> तदन्वय-व्यतिरेकोन्ना-  
यकान्वय-व्यतिरेकाप्रतियोगित्वादित्यर्थः, तथाच विषमव्याप्तेर्दूषकता-  
वीजसत्तेऽपि शास्त्रीयोपाधिव्यवहाराभावान्न लक्ष्यत्वमिति भावः ।  
'अन्यथेति न्यूनाधिकदेशवृत्तेरपि प्रयोजकत्वे इत्यर्थः, 'उपाधिल-  
प्रसङ्गः' शास्त्रे उपाधिव्यवहारप्रसङ्ग इत्यर्थः<sup>(४)</sup>, 'इह' उपाधिव्यव-

(१) अथोपाधिरिति क० ।

(२) इति भाव इति ख० ।

(३) 'तदप्रयोज्यत्वात्' इत्यत्र 'तदप्रयोजकत्वात्' इति कस्यचिन्मूलपुस्तकस्य  
पाठः परन्तु तादृशपाठस्यापि रहस्यलक्षणाख्यातार्थ एवार्थ इति ।

(४) शास्त्रे उपाधिव्यवहारविषयत्वप्रसङ्ग इति ग० ।

विश्वते यथा जवाकुसुमं स्फटिकलौहित्य उपाधिः,  
तथावोपाधिवृत्तिव्याप्यत्वं हेतुत्वाभिमतं चकास्ति  
तेनासावुपाधिः । न च व्याप्यत्वमात्रेण दूषकत्वमिति,  
साध्यव्यापकतापीष्यते, तथाच समव्याप्त एवोपाधि-

हारविषयताव्यापकौभूतधर्मैः, 'तच्च' दूषणौपचिकञ्च, 'प्रयोजकं'  
प्रयोजकत्वं, 'न त्वधिकं' न तु व्याप्यत्वपर्यन्तं, 'व्यर्थत्वादिति ।  
न चैवं पचेतरेऽतिप्रसङ्गः, तथापि पचेतरत्वविशिष्टसाध्यव्याप्यत्वादावति-  
प्रसङ्गादिति भावः । विषमव्याप्तव्याप्यत्वे विनिगमकान्तरमाशङ्कते,  
'नन्विति, 'प्रतिविश्वते' भ्रमविषयो भवति, उप समीपे आद-  
धाति खनिष्ठधर्मं संक्रामयतीत्युपाधिपदावयवव्युत्पत्तेरिति भावः ।  
'स्फटिकलौहित्य इति लौहित्यभ्रमविषयीभूतस्फटिक इत्यर्थः,  
'व्याप्यत्वं' साध्यव्याप्यत्वं, 'चकास्ति' भ्रमविषयो भवति, 'असा-  
वुपाधिः' असावेव उपाधिपदवाच्यः, साध्यव्याप्य एव उपाधिपद-  
वाच्य इति यावत् । नन्वेवं धूमवान् वस्त्रेरित्यादौ मर्यादसत्त्वादेर-  
युपाधिपदवाच्यत्वापत्तिरित्यत आह, 'न चेति, 'इद्व्यत इति  
इत्यर्थतया इद्व्यत इत्यर्थः, 'समव्याप्त एवोपाधिरिति समव्याप्त एव  
उपाधिपदवाच्य इत्यर्थः, उपाधिपदस्य योगरूढतया विषमव्याप्ते  
इत्यर्थसत्त्वेऽपि योगार्थाभावादिति भावः । यद्यप्यन्यनिष्ठभ्रमविषयी-  
भूतधर्माश्रयत्वमात्रमुपाधिपदप्रवृत्तिनिवृत्तं न तु व्याप्तिरूपधर्म-  
संक्रामकत्वं जवाकुसुमादावभावात् तच्च विषमव्याप्तेऽपि सम्भवति

रिति चेत्, तत् किं विषमव्याप्तस्य दूषकतावीजा-  
भावाद्गोपाधिशब्दवाच्यत्वं तथात्वेऽप्युपाधिपदप्रवृत्ति-  
निमित्ताभावाद्वा, नाद्यः तस्यापि व्यभिचाराद्युन्नाय-  
कत्वात्, नापरः न हि लोके समव्याप्त एवान्यत्र स्वधर्म-  
प्रतिविस्वजनक एवोपाधिपदप्रयोगः, लाभाद्युपाधिना

खनिष्ठसाध्यव्याप्यत्वासंक्रामकत्वेऽपि दोषवशात् खनिष्ठधर्मान्तरसं-  
क्रामकत्वसम्भवात् तथापि उपाधिपदस्य सामान्यतोऽन्यनिष्ठभ्रमवि-  
षयीभूतधर्माश्रयत्वरूपं नैकं प्रवृत्तिनिमित्तं ताद्रूप्येणाप्रत्यायनात्,  
परन्तु विग्रिय खण्टिकनिष्ठभ्रमविषयीभूतलौहित्याश्रयत्व-साधन-  
निष्ठभ्रमविषयीभूतसाध्यव्याप्याश्रयत्वादिरूपं नानैवं प्रवृत्तिनिमित्तं,  
चद्धर्मवाचकसप्तम्यन्तपदसमभिव्याहारविशेषेणोपाधिपदं प्रयुज्यते त-  
द्धर्मसंक्रामकत्वमेव बोधयतीति समभिव्याहारविशेषश्च प्रतीतौ  
नियामकः, अत एव खण्टिकलौहित्ये जवाक्षुसुसमुपाधिरिति-  
वाक्यात् लौहित्यरूपधर्मसंक्रामकत्वमेव प्रतीयते, एवं साधनस्य  
साध्यव्याप्यत्वेऽद्युपाधिरित्यत्रापि खनिष्ठव्याप्तिरूपधर्मसंक्रामकत्वमेव  
लभ्यत इति, तथाच विषमव्याप्तस्य खनिष्ठधर्मान्तरसंक्रामकत्वेऽपि  
तादृशधर्मान्तरसंक्रामकत्वसादाय लुचाद्युपाधिपदाप्रयोगात् तादृश-  
धर्मान्तरसंक्रामकत्वस्य उपाधिपदाप्रवृत्तिनिमित्तत्वात् विषमव्याप्तौ  
गोपाधिपदवाच्य इत्याचार्यानामाश्रयः । 'प्रवृत्तिनिमित्ताभावादेति  
यौगिकप्रवृत्तिनिमित्ताभावाद्देत्यर्थः । 'समव्याप्त इति खनिष्ठसाध्य-

द्वयमित्यादौ लाभादावप्युपाधिपदप्रयोगात् । किञ्च न शास्त्रे लौकिकव्यवहारार्थमुपाधिपदव्युत्पादनं किन्त्वनुमानदूषणार्थं, तच्च साध्यव्यापकत्वे सति साधनाव्यापकत्वमात्रमिति शास्त्रे तथैव<sup>(१)</sup> उपाधिपदप्रयोगः ।

अन्ये तु यद्भावे व्यभिचारविरोधी स उपाधिः । न च विषमव्याप्तस्याभावे व्यभिचारं विरुणद्धि, तस्या-

व्याप्तिसंक्रामक इत्यर्थः, 'स्वधर्मप्रतिविम्बेति स्वनिष्ठधर्मान्तरप्रतिविम्बजनक एवेत्यर्थः, 'लाभादावपीति तत्रोपाधिपदस्य प्रयोजनार्थकत्वादित्यर्थः, तथा च तत्र यथा योगार्थनैवापेक्षेणापि उपाधिपदवाच्यत्वं तथा विषमव्यापकेऽपि केवलखरूपार्थमादायैव उपाधिपदवाच्यत्वसम्भवः, न हि योगार्थविशिष्टोखरूपः प्रवृत्तिनिमित्तः, इति हृदयं । लौकिकव्यवहारार्थमिति लोकानामुपाधिखरूपज्ञानार्थमित्यर्थः, 'उपाधिपदव्युत्पादनमिति परोक्षानुमानदूषणप्रस्तावे अत्रायमुपाधिरिति उपाधिपदप्रयोग इत्यर्थः, 'अनुमानदूषणार्थमिति उपाधित्वेन उपाधिज्ञानद्वारा वा व्याप्तिज्ञानप्रतिबन्धार्थमित्यर्थः, 'तच्चेति अनुमानदूषणौपचिकरूपच्चेत्यर्थः, 'तथैव' साध्यव्यापकत्व-साधनाव्यापकत्वमात्रेणैव ।

विषमव्याप्त्यालक्ष्यत्वे विनिगमकान्तरमाशङ्कते, 'अन्ये त्विति, 'यद्भावः' यद्दुर्मावच्छिन्नाव्याप्यत्वसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकोयद्-

(१) तत्रैवेति क०, ख० ।



भावेऽपि व्यभिचारात् । अस्ति चानित्यत्वव्यापकं प्रमे-  
यत्वं तद्ग्राह्यञ्च गुणत्वं । न चानित्यत्व-गुणत्वयोर्व्याप्ति-

भावः, 'साध्यव्यभिचारविरोधी' (१) साध्यव्यभिचाराभावसमनियतः,  
साध्यव्यभिचार्यवृत्तित्वे सति साध्यव्यभिचाराभावव्यापक इति यावत्,  
'स उपाधिः' तद्भ्रमवत्त्वेन स उपाधिरित्यर्थः (२), भवति चार्द्रैश्वन-  
प्रभववङ्गेः साध्यसमव्याप्त्याव्याप्यतासम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताका-  
भावः चार्द्रैश्वनप्रभववङ्गादिव्याप्यमात्रनिष्ठतया धूमादिव्यभिचारा-  
भावसमनियतः, चार्द्रैश्वनादेः साध्यविषयव्याप्त्याव्याप्यत्वसम्बन्धाव-  
च्छिन्नाभावस्तु न तथा तत्रार्द्रैश्वनादावपि सत्त्वेन तत्र साध्य-  
व्यभिचाराभावासत्त्वादिति भावः । अत्र यद्भावपदस्य उपाधिता-  
वच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नयद्भावपरत्वे चार्द्रैश्वनप्रभववङ्गादावव्याप्तिः,  
सामान्यतो यद्भावपरत्वे द्रव्यं पृथिवीत्वात् सत्त्वाद्वा इत्यादौ  
स्वरूपसम्बन्धेन साध्यव्यभिचारित्वादेरप्युपाधितापत्तिः स्वरूपसम्बन्धेन  
तद्भावस्यापि साध्यव्यभिचारविरोधित्वाद्दतः प्रतियोगिताकान्तम-  
भावविशेषणं । न चैवमव्याप्यत्वसम्बन्धस्य वृत्त्यनियामकत्वेनाभाव-  
प्रतियोगितानवच्छेदकत्वादसम्भव इति वाच्यं । इह हेतावुपाधि-  
नांस्तीतिप्रतीतिबलात् वृत्त्यनियामकत्वेऽपि तस्य प्रतियोगिताक-

(१) 'व्यभिचारविरोधी' इत्यत्र 'साध्यव्यभिचारविरोधी' इति कस्य  
चिन्मूलपुस्तकस्य पाठः तमनुसृत्य रचयित्वा तादृशपाठो दत्तः ।

(२) तद्भ्रमव्यापक उपाधिरित्यर्थ इति ग० ।

रस्ति, समव्याप्तिकस्य च व्यतिरेकस्तथा, न हि साध्य-  
व्यापकव्याप्तीयूतस्य व्याप्यं यत्तन् साध्यं व्यभिचरति;

च्छेदकत्वात्<sup>(१)</sup> इह हेतावुपाधिरिति प्रतीतेर्वृत्तिनियामकत्वस्यापि  
तत्र सत्त्वाच्च । साध्यव्यभिचारविरोधित्वपदेन च साध्यव्यभिचार्यवृ-  
त्तित्वमात्रोक्तौ वक्षिमान् धूमादित्यादौ महानसत्त्वादावतिव्याप्तिः  
अव्याप्यत्वसम्बन्धावच्छिन्नमहानसत्त्वाभावस्य महानसत्वव्याप्यमात्रनिष्ठस्य  
वक्षिण्यव्यभिचार्यवृत्तित्वात्, साध्यव्यभिचाराभावव्यापकत्वमात्रोक्तौ धूम-  
वान् वक्षेरित्यादौ विषमव्यापके आर्द्रैर्न्यनादावतिव्याप्तिः, साध्य-  
व्यभिचाराभाववद्वृत्तित्वोक्तावपि तथा वक्षिमान् धूमादित्यादौ  
महानसत्त्वादावतिव्याप्तिश्च अतः साध्यव्यभिचाराभावसमनियत-  
त्वपर्यन्तं । चङ्कुर्यावच्छिन्नाव्याप्यत्वं साध्यव्यभिचारित्वञ्च विग्रेष-  
णताविग्रेषसम्बन्धेन बोध्यं तच्च विग्रेषणताविग्रेषसम्बन्धेन तद्वृत्त्या-  
वच्छिन्नवदन्यवृत्तित्वं साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नसाध्याभाववति विग्रेष-  
णताविग्रेषेण वर्तमानत्वञ्च, न तु हेतुतावच्छेदकसम्बन्धेन वक्तव्यं  
धूमवान् वक्षेरित्यादौ धूमवत्त्वान्यान्यतरत्वाद्दौ विषमव्यापके  
प्रतिव्याप्तापत्तेः धूमवत्त्वान्यान्यतरान्यासंबुक्तत्वस्यापि असंबुक्त-धूम-

(१) ननु इह हेतावुपाधिर्नास्तीतिप्रतीतिरुपाधौ अव्याप्यत्वसम्बन्धावच्छि-  
न्नहेतुवृत्तित्वाभावं अवगाहते न तु हेतौ अव्याप्यत्वसम्बन्धावच्छिन्न-  
प्रतियोगिताकोपाध्यभावं, अतः कथं वृत्त्यनियामकस्याव्याप्यत्वसम्-  
बन्धस्य अभावप्रतियोगितावच्छेदकसम्बन्धत्वे तादृशप्रतीतेर्वलत्वमित्यत-  
याह इह हेतावुपाधिरितीति ।

व्यभिचारे चान्ततः साध्यमेवोपाधिः, अभेदेऽपि व्याप्य-  
व्यापकत्वान् साधनाव्यापकत्वाच्चेति स्वीचक्रुः । तत्र ।

वन्नात्रसंयुक्तोभयमात्रनिष्ठतया धूमाभाववत्संयुक्त्वाभावसमनियत-  
त्वात् । ननु तथापि वङ्गिमान् धूमादित्यादौ वङ्गिसामग्र्यादौ  
साधनव्यापकेऽतिव्याप्तिः अत्रव्याप्यत्वसम्बन्धेन तदभावस्यापि वङ्गिव्यभि-  
चाराभावसमनियतत्वात् । न च साधनावृत्तित्वेन यदभावो विशेष-  
णीय इति वाच्यं । धूमवान् वङ्गेरित्यादौ आर्द्रैन्धनप्रभववज्ज्यादा-  
वव्याप्यापत्तेः विशेषणताविशेषसम्बन्धेन आर्द्रैन्धनप्रभववङ्गिमदन्य-  
वृत्तित्वरूपस्यार्द्रैन्धनप्रभववज्ज्याप्यत्वस्य वङ्गावसन्धेन तत्सम्बन्धाव-  
च्छिन्नार्द्रैन्धनप्रभववज्ज्याभावस्य साधनीभूतवङ्गिवृत्तित्वात् । यदि  
चात्रव्याप्यत्वं व्याप्यत्वाभावः व्याप्यत्वञ्च विशेषणताविशेषसम्बन्धेन तद-  
दव्यावृत्तित्वे सति विशेषणताविशेषेण तदवृत्तित्वं तत्सम्बन्धावच्छि-  
न्नार्द्रैन्धनप्रभववज्ज्याभावस्य न वङ्गिवृत्तिरित्युच्यते, तदा वङ्गिसा-  
मग्र्यादावपतित्याप्तिर्दुर्वारा तादृशाव्याप्यत्वसम्बन्धावच्छिन्नवङ्गिसा-  
मग्र्यभावस्यापि साधनीभूतधूमावृत्तित्वादिति चेत् । न । साधना-  
धिकरणवृत्तित्वेन यदभावविशेषणात् ।

भट्टाचार्यास्तु वङ्गौ साध्ये वङ्गिसामग्र्यापि उपाधिर्भवत्येव<sup>(१)</sup>  
एतत् विशेषणप्ररोपेण । न चैवं वङ्गौ साध्ये धूमे हेतौ वङ्गिसाम-  
ग्र्यापाधिरित्यपि व्यवहारापत्तिरिति वाच्यं । अत्रव्याप्यत्वसम्बन्धेन  
तदवृत्तित्वस्यैव तत्र हेतावुपाधित्वव्यवहारविधायकत्वात् अत एव वङ्गौ

(१) वङ्गादौ साध्ये वङ्गिसामग्र्याद्युपाधिर्भवत्येवेति ग०, घ० ।

तथापि व्यवभिचारे साध्यव्याप्यव्याप्यत्वं तन्त्रसावश्य-  
कत्वात्साधवाच न साध्यव्यापकव्याप्यत्वमपि भवतैव  
व्यभिचारस्य दर्शितत्वात् । न च साध्यव्याप्यव्याप्यत्वमे-  
वानौपाधिकत्वं, साध्यव्याप्यमित्यत्रापि अनौपाधिकत्वं

साध्ये धूमः सोपाधिरित्यपि न व्यवहारः अव्याप्यत्वसम्बन्धेन यथोक्त-  
धर्मवत्त्वस्यैव तादृग्व्यवहारनियामकत्वादिति प्राञ्जरिति संक्षेपः ।

‘अभावः’ अव्याप्यतासम्बन्धावच्छिन्नाभावः, ‘तस्याभावेऽपीति  
अव्याप्यतासम्बन्धेनाभावसन्त्वेपीत्यर्थः, ‘व्यभिचारात्’ साध्यव्यभिचार-  
सत्त्वात्, एतदेव शब्दोऽनित्यगुणत्वादित्यत्र विषमव्यापके प्रमेयत्वे  
ग्राहयति, ‘अस्ति हीति भवति हीत्यर्थः, ‘अनित्यत्वव्यापकं’  
अनित्यत्वविषमव्यापकं, ‘प्रमेयत्वं’ अनित्य-गुणावितिप्रमाविशेष्यत्वं,  
‘तद्व्याप्येति’ अव्याप्यतासम्बन्धेन तदभाववच्चेत्यर्थः । ‘न चानित्यत्व-  
गुणत्वयोरिति न च गुणत्वेऽनित्यत्वव्यभिचाराभावोऽस्तीत्यर्थः, ‘प्रमे-  
यत्वमितियथाश्रुतन्तु न सङ्गच्छते तद्वदन्यदृत्तित्वरूपाव्याप्यत्वस्यैव  
साधवादानुगतत्वाच्चात्र घटकतया केवलान्वयिनः प्रमेयत्वस्य तद-  
प्रसिद्धेः । न च तथापि ‘न च गुणत्वेऽनित्यत्वव्यभिचाराभावो-  
ऽस्तीत्यसंगतं विशेषणताविशेषसम्बन्धेन साध्यव्यभिचारित्वस्यैव लक्षण-  
घटकतया गुणत्वजातौ तादृग्वानित्यत्वव्यभिचाराभावस्य सत्त्वादिति  
वाच्यं । ‘गुणत्वपदस्य गुणपदवाच्यत्वपरत्वादिति ध्येयं । ‘व्यतिरेकः’  
अव्याप्यतासम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकव्यतिरेकः, ‘तथा’ साध्य-

तदेव वाच्यं तथाचानवस्येति, अनौपाधिकत्वे च व्याप्तिलक्षणे यावदिति पदं साध्यव्यापकत्वे<sup>(१)</sup> विशेषणं दत्तमेव । किञ्च यस्मिन् सत्यनुमितिर्न भवति तदेव तत्र दूषणं न तु यद्यतिरेके भवत्येवेत्येतद्गर्भं विरुद्धत्वा-

व्यभिचाराभावसमनियतः, 'साध्यव्यापकेति साध्यव्यापकं सत् यसाध्यव्याप्यीभूतं तस्य साध्यसमव्याप्तस्येति यावत्, 'व्याप्यं' अव्याप्यतासम्बन्धेनाभाववत् । ननु यदि समव्याप्त एव उपाधिस्तदा 'व्यभिचारे चावश्यमुपाधिरिति नियमो भज्येत, न हि सर्वत्र व्यभिचारिणि साध्यसमव्याप्तेन स्यातव्यं, इत्यत आह, 'व्यभिचारे चेति, 'अन्त-इत्यनेन साध्यसामर्थ्यादीनां बहूनामेव उपाधित्वं सम्भवतीति सूचितं । ननु स्वस्मिन् स्वसमव्याप्यत्वाभावात् कथं साध्यस्य उपाधित्वमित्यत आह, 'अभेदेऽपीति । ननु तथापि कथं तद्धेतौ सोपाधित्वव्यवहारः व्यभिचारितासम्बन्धेन उपाधिमतत्त्वस्यैव तन्नियामकत्वादित्यत-आह, 'साधनाव्यापकत्वाच्चेति । साध्यव्यभिचारविरोधित्वं साध्यव्यभिचाराभावव्याप्यत्वसात्रमिति यथाश्रुताभिप्रायेण साध्यव्यापके महानसत्त्वादावतिव्याप्तिमाह, 'तवापीति, 'अव्यभिचारे' साध्यव्यभिचाराभावे, षष्ठ्यर्थे सप्तमी, 'साध्यव्याप्यव्याप्यत्वमिति साध्यव्याप्यस्य महानसत्त्वादेरव्याप्यतासम्बन्धेनाभावोऽपीत्यर्थः, 'तन्त्रं' व्याप्यं, 'आवश्यकत्वादिति साध्यव्याप्यमहानसत्त्वादेरव्याप्यतासम्बन्धेनाभाव-

(१) साध्यव्यापक इति ख० ।

द्वेष्यदोषत्वापत्तेः । नापि पञ्चधर्मावच्छिन्नसाध्यव्याप-  
कत्वे सति साधनाव्यापकत्वगुपाधित्वं साधनावच्छिन्न-  
साध्यव्यापकोपाध्यव्यापनात् । शब्दोऽभिधेयः प्रमेयत्वा-  
दित्यत्राश्रावणत्वस्योपाधित्वापत्तेश्च शब्दधर्मगुणत्वाव-

वति साध्यव्यभिचाराभावस्यावश्यकत्वादित्यर्थः, 'लाघवाच्चेति व्यर्थ-  
विशेषणत्वादिरहितत्वाच्चेत्यर्थः, इदञ्च व्यर्थविशेषणतास्यले व्याप्तिरेव  
न तिष्ठतीति प्राचीनमतानुरोधेन, 'साध्यव्यापकव्याप्यत्वमपीति अत्र्या-  
प्यतासम्बन्धेन साध्यव्यापकत्वस्याभाव एवेत्यर्थः, 'दर्शितत्वादिति  
'अस्ति हीत्यादिना दर्शितत्वादित्यर्थः, (१) 'भवन्मते विषमव्यापके-  
ऽतिव्याप्तेश्चेत्यपि बोध्यं । ननु भवतु साध्यव्यापकोऽपि महानसत्त्वा-  
दिरुपाधिः को दोषः तर्हि सद्धेतावपि सोपाधितापत्तिरिति चेत्,  
न हि यत्किञ्चिदुपाधिसत्त्वेनैव सोपाधिता, किन्तु यत्किञ्चित्सा-  
ध्यव्याप्यव्याप्यत्वेवानौपाधिकत्वमिति साध्यव्याप्यव्याप्यत्वसामान्याभाव-  
एव सोपाधित्वमित्यत-आह, 'न चेति, 'साध्यव्याप्यव्याप्यत्वं', तथाच  
यद्युक्तखरूपमनौपाधिकत्वं तदा उक्तखरूपं सोपाधित्वं स्यात् न  
चैवमिति भावः । 'साध्यव्याप्यमित्यत्रापि हीति, साध्यव्याप्यत्वग्रा-  
हकमिति शेषः । नन्वेवमनौपाधिकत्वं व्याप्तिग्रहे तन्त्रमेव न स्यात्,  
न हि साध्यव्यापकव्यापकत्वं तत् अतिप्रसङ्गादित्यत-आह, 'अनौ-  
पाधिकत्व इति, 'व्याप्तिज्ञचण्' व्याप्तिग्राहके, 'साध्यव्यापकत्वे' साध्य-

(१) दर्शितत्वादिति भाव इति ग० ।

विद्याभिधेयत्वं यत्र रूपादौ तत्राश्रावणत्वं व्यापकं  
पक्षे प्रमेयत्वस्य साधनस्याव्यापकं हि तत् । आर्द्रैर्न-  
वत्त्वादावुपाधौ पञ्चनियततादृशधर्माभावाच्च । अथ  
साधनावच्छिन्नसाध्यव्यापकत्वे सति साधनाव्यापक-

व्यापके, क्वचित्तथैव पाठः । नन्वनौपाधिकत्वज्ञानं न व्याप्तिधीहेतुः  
येनाऽनवस्था स्यात् किञ्च साध्यव्यभिचारविरोधित्वं साध्यव्यभिचारा-  
भावसन्नियतत्वमेव विवक्षितमिति नातिव्याप्तिरित्यखरसादारु,  
'किञ्चेति, 'यस्मिन् सतीति यद्गुणविशिष्टे यस्मिन् सतीत्यर्थः,  
'अनुमितिर्न भवतीति साधनेऽनुमितिप्रयोजकं रूपं व्याप्ति-पक्षध-  
र्मान्यतरं न तिष्ठतीत्यर्थः, 'तदेव तत्र दूषणमिति तद्वृत्ति तदेव  
दूषकतावीजमित्यर्थः, तथाच साध्यव्यापकत्वविशिष्टे साधनाव्या-  
पकत्वसत्त्वेऽपि हेतौ साध्यव्याप्त्यसत्त्वात् साध्यव्यापकत्वविशिष्टे साध-  
नाव्यापकत्वस्यापि दूषकतावीजतया साध्यविषयव्याप्तस्यापि दूषक-  
तावीजाक्रान्तत्वेन तद्व्यावृत्तत्वात्तदं लक्षणमिति भावः । ननु यद्गुण-  
विशिष्टे यद्गुतिरेके हेतौ व्याप्ति-पक्षधर्मान्यतरन्तिष्ठति तद्गुणवि-  
शिष्टे तद्गुणवत्त्वमेव दूषकतावीजं एवञ्च साध्यसमव्याप्तत्वविशिष्टे  
साधनाव्यापकत्वव्यतिरेके साधने साध्यव्याप्तेरावश्यकत्वात् साध्य-  
समव्याप्ते साधनाव्यापकत्वं दूषणं न तु साध्यव्यापकत्वविशिष्टे  
साधनाव्यापकत्वं, साध्यव्यापकत्वविशिष्टे कुत्रचित् साधनाव्यापक-  
त्वविरहेऽपि हेतौ व्याप्त्यसत्त्वादित्यत-आह, 'न त्विति, 'यद्गुति-  
रेके' यद्गुणविशिष्टे यद्गुतिरेके, 'भवत्येव' हेतौ व्याप्ति-पक्षधर्मान-

उपाधिः तेन ध्वंसस्य जन्यत्वेन ध्वंसप्रतियोगित्वे साध्ये  
साधनावच्छिन्नसाध्यव्यापकं भावत्वमुपाधिः श्यामत्वे  
शाकपाकजत्वमुपाधिरिति, तन्न, पक्षधर्मावच्छिन्नसा-

न्यतरत्तिष्ठत्येव, 'एतद्गर्भमिति दूषकताबीजत्वे नियामकमिति शेषः,  
'विरुद्धत्वादेरिति हेतुतावच्छेदकविशिष्टे साध्यासायानाधिकरण्यादे-  
रित्यर्थः, साध्यासायानाधिकरण्याभावस्य व्यभिचारिण्यपि सत्त्वादिति  
भावः । 'घ्रादिना यपच-विपचगामित्वरूपस्य व्यभिचारस्य परि-  
ग्रहः । 'साधनावच्छिन्नेति काकः श्यामो मित्रातनयत्वादित्यादौ  
शाकपाकजत्वादावव्याप्तेरित्यर्थः, न तु स श्यामो मित्रातनयत्वा-  
दित्यत्र शाकपाकजत्वे, ध्वंसो विनाशो जन्यत्वादित्यत्र जन्यत्वे  
चाव्याप्तिः तत्र साधनस्यापि पचधर्मतया अव्याप्यभावात् । इदमु-  
पलक्षणं पर्वतो वह्निमान् धूमादित्यादौ पर्वतीयधूमादावतिव्या-  
प्तिरित्यपि द्रष्टव्यं । ज्ञानातिव्याप्तिमाह, 'शब्द इति, 'उपाधि-  
त्वापाताच्चेति<sup>(१)</sup> उपाधित्वेन ज्ञानापाताच्चेत्यर्थः, पक्षे साध्याव्या-  
पकतया वस्तुतिव्याप्तेरभावात्तदेव ग्राहयति, 'शब्दधर्मेति, 'यत्र  
रूपादाविति, निश्चितमिति शेषः, 'व्यापकं' व्यापकत्वेन ज्ञातं,<sup>(२)</sup>  
'अव्यापकं' अव्यापकत्वेन ज्ञातं । न च पक्षे व्यभिचारज्ञानसत्त्वेन

(१) 'उपाधित्वापत्तिश्चेत्यत्र 'उपाधित्वापाताच्चेति कस्यचिन्मूलपुस्तकस्य  
पाठोऽनेन पाठधारणेनानुमीयत इति ।

(२) 'ज्ञातमित्यत्र 'निश्चितमिति ग० घ० पुस्तकपाठः, एवं परत्रापि ।



ध्यव्यापकोपाध्यव्यापनात् जलं प्रमेयं रसवत्त्वादित्यत्र  
रसवत्त्वावच्छिन्नसाध्यव्यापकपृथिवीत्वस्योपाधित्वप्रस-  
ङ्गात् सौपाधित्वाद्साधकमित्यत्र साधनावच्छिन्नसा-

कथं तत्र रूपादौ साध्यव्यापकत्वनिश्चय इति वाच्यं । सन्दिग्धसाध्यक-  
पक्षावृत्त्युपाधिमात्रस्य साध्यव्यापकत्वनिश्चयोच्छेदापत्त्या पक्षीयसाध्य-  
सन्देहाहितव्यभिचारसन्देहस्य साध्यव्यापकतानिश्चयापरिपन्थित्वा-  
दिति भावः । ननु तथा ज्ञानदग्गायां तस्यापि दोषत्वमस्येवेति  
तस्य तथा ज्ञानं न दोषाय इत्यखरसादाह, 'आर्द्रेति, यद्यपि  
तत्रापि द्रव्यत्व-पर्वतत्वादिरेव तादृशधर्मः सम्भवति, न च व्यर्थ-  
विशेषणतया द्रव्यत्वादिकं न धूमादिनिष्ठाद्रैन्वनादिव्याप्यतावच्छे-  
दकमिति वाच्यं । तस्य व्याप्यतानवच्छेदकत्वेऽपि तद्विशिष्टसाध्यसमा-  
नाधिकरणात्यन्ताभावाप्रतियोगित्वरूपव्यापकताया आर्द्रैन्वनादा-  
वनपायात्, तथापि पक्षनियततादृशधर्माभावादाद्रैन्वनादौ शुद्ध-  
साध्यव्यापकताग्रहकालेऽवश्यं यद्गुणविशिष्टसाध्यव्यापकताग्रहो भवति  
तादृशपक्षवृत्तिधर्माभावादित्यर्थः, तथाच यदाद्रैन्वनादौ पक्षवृत्ति-  
धर्मावच्छिन्नसाध्यव्यापकताग्रहो नास्ति शुद्धसाध्यव्यापकताग्रहमात्रं  
वर्तते तदापि व्याप्तिग्रहप्रतिबन्धात् ज्ञानातिव्याप्तिरिति भावः ।

केचित्तु अत्र 'पक्षधर्मपदेन पक्षवृत्तिधर्माऽभिहितः पक्षमात्र-  
वृत्तिधर्मो वा, आद्ये ज्ञानातिव्याप्तिमाह, 'ग्रब्ध इति, अन्ते  
वस्त्वव्याप्तिमाह, 'आर्द्रेति हृदो धूमवान् वक्त्रेरित्यादावाद्रैन्वन-  
त्त्वादावित्यर्थः, 'आदिना वायुः प्रत्यक्षः प्रत्यक्षविषयत्वादित्या-

ध्व्यापकव्यभिचारित्वे साधनावच्छिन्नेत्यस्य व्यर्थत्व-  
प्रसङ्गाच्च । किञ्च पक्षद्वयेऽपि विशिष्टसाध्यव्यभिचारं  
विशिष्टसाध्यव्यतिरेकं वा प्रसाध्य पश्चात् केवलसा-

दाबुद्धतरूपवत्त्वादिपरिग्रहः, अत एव 'पक्षनियतेत्युक्तमित्याहुः ।  
नचिदं पूर्व्वलक्षणेऽप्युपाधिः संभवति जन्यत्वस्यापि पक्षधर्मत्वादित्य-  
तत्राह, 'श्यामत्व इति मित्रातनयत्वेन काकादौ श्यामत्वसाधन-  
इत्यर्थः । विरुद्धस्य लीयोपाधावव्याप्तिश्चेऽपि स्फुटत्वात्तदुपेक्ष्य  
दूषणान्तरमाह, 'पक्षधर्मति वायुः प्रत्यक्षः प्रजेयत्वादित्यादाबुद्धतरू-  
पादावित्यर्थः, न तु वायुः प्रत्यक्षः प्रत्यक्षस्यार्थाश्रयत्वादित्यादाबुद्धत-  
रूपवत्त्वादावित्यर्थः, तत्र साधनीभूतप्रत्यक्षस्यार्थाश्रयत्वावच्छिन्नसाध्य-  
व्यापकत्वस्यापि सत्त्वेनाव्याप्त्यभावादिति द्रष्टव्यं । पूर्व्ववज्ज्ञानातिव्या-  
प्तिमाह, 'जलमिति, 'उपाधित्वप्रसङ्गात्' उपाधित्वज्ञानप्रसङ्गात्, पक्षे  
साध्याव्यापकतया वक्ष्यतिव्याप्तेरभावात् । नन्वत्रापि<sup>(१)</sup> तथा ज्ञान-  
दशायां तस्यापि दोषत्वमस्तेवेति तस्य तथा ज्ञानं न दोषायं  
इत्यत-आह, 'सोपाधित्वादिति वक्ष्यमत्त्वं धूमासाधकं सोपाधि-  
त्वादित्यत्रासाधकत्वानुमाने इत्यर्थः, 'साधनावच्छिन्नसाध्यव्यापकव्य-  
भिचारित्व इति वक्ष्यवच्छिन्नधूमव्यापकव्यभिचारित्वरूपेणोपाधित्वे  
हेतावित्यर्थः, 'साधनावच्छिन्नेत्यस्येति वक्ष्यवच्छिन्नधूमव्यापकव्यभि-  
चारित्वं वक्ष्यवच्छिन्नधूमव्यापकतावच्छेदकरूपावच्छिन्नप्रतियोगिता-

(१) ननु तथापीति ग० ।

ध्यव्यभिचारः केवलसाध्यव्यतिरेको वा साधनीयस्तथा  
 चार्थान्तरं केवलसाध्ये हि विवादेो न तु विशिष्टे ।  
 अथ प्रकृतसाध्यव्यभिचारसिद्ध्यर्थं विशिष्टसाध्यव्यभि-  
 चारः साध्य इति चेत् । न । अप्राप्तकालत्वात् ।

काभाववदृत्तित्वं वज्रवच्छिन्नधूमसमानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियो-  
 गितानवच्छेदकरूपावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभाववदृत्तित्वमिति या-  
 वत्, तत्र वज्रवच्छिन्नधूमसमानाधिकरणाभावप्रतियोगितावच्छे-  
 दकत्वाभाव-धूमसमानाधिकरणाभावप्रतियोगितावच्छेदकत्वाभावयो-  
 र्भेदाभावेन<sup>(१)</sup> वज्रवच्छिन्नैत्यस्य वैयर्थ्यप्रसङ्गात् । ननु तादृशाभा-  
 वयोर्भेदाभावेऽपि यथासन्निवेशे<sup>(२)</sup> न वैयर्थ्यं अन्यथा तवापि  
 साध्यव्यापकव्यभिचारित्वादित्यत्र साध्यव्यापकेति व्यर्थं साध्यव्यभि-  
 चारित्वादित्येतस्यैव सम्यक्त्वात् साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियो-  
 गिताकाभावस्यापि साध्यव्यापकतावच्छेदकावच्छिन्नप्रतियोगिता-

(१) धूममात्रस्य वज्रिशून्यदेशवृत्तित्वविरहात् वज्रवच्छिन्नधूमस्य शुद्ध-  
 धूमस्य च समदेशवृत्तित्वात् वज्रवच्छिन्नधूमसमानाधिकरणाभा-  
 वप्रतियोगितावच्छेदकत्वाभाव-धूमसमानाधिकरणाभावप्रतियोगिता-  
 वच्छेदकत्वाभावयोः समनियतत्वेनाभेद इति भावः ।

(२) तादृशाभावयोरभेदेऽपि अवच्छेदकताभेदात् वज्रवच्छिन्नत्वघटितयाव-  
 द्भ्रमनिष्ठावच्छेदकताङ्गप्रतियोगिताकाभावविषयकप्रतीतौ वज्रव-  
 च्छिन्नत्वाघटितयावद्भ्रमनिष्ठावच्छेदकताङ्गप्रतियोगिताकाभावस्यापि-  
 षयीकरणात् यथासन्निवेशे न वैयर्थ्यमिति भावः ।

प्रथमं साध्यव्यभिचार एवोद्भाव्यस्तत्रासिद्धावुपा-

काभावतया तस्यापि साध्यव्यापकव्यभिचारित्वघटकत्वात् । वस्तुतस्तु  
 अर्द्रैर्धनायायत्वादित्यादिप्रातिखिकरूपेणैवासाधकत्वं साध्यते न तु  
 सामान्यतः साधनावच्छिन्नसाध्यव्यापकव्यभिचारित्वेनेति क्व वैयर्थ्य-  
 सत्त्वावनेत्यस्वरसादाह, 'किञ्चेति, 'पचद्वयेऽपीति लक्षणद्वयेऽपीत्यर्थः,  
 'प्रसाधेति उपाधिव्यभिचारेण उपाधिव्यतिरेकेण वा प्रसाधेत्यर्थः,  
 'साधनीय इति विशेषणव्यभिचारित्वे सति विशिष्टसाध्यव्यभिचा-  
 रित्वेन विशेषणवति विशिष्टसाध्याभाववत्त्वेन वा हेतुना साधनीय-  
 इत्यर्थः, उपाधेः शुद्धसाध्यव्यापकताज्ञानाभावेन तद्व्यभिचारेण  
 तद्व्यतिरेकेण वा शुद्धसाध्यव्यभिचारस्य शुद्धसाध्यव्यतिरेकस्य वा  
 साधनाशङ्कवात् अनुसूततर्कभावादिति भावः । परम्परया  
 प्रकृतोपयोगान्तरार्थान्तरमित्याशङ्कते, 'अथेति, 'अप्राप्तकालत्वा-  
 दिति, प्रथमं विशिष्टसाध्यव्यभिचारस्थानाकाङ्क्षितसाभिधानादिति  
 भावः(१) ।

प्राभाकरोपाध्यायमतमाशङ्कते, 'प्रथमेति, 'उद्भाव्यः' विशेष-  
 णव्यभिचारित्वे सति विशिष्टसाध्यव्यभिचारेण साधनीयः, 'तत्रा-  
 सिद्धाविति तत्र विशिष्टसाध्यव्यभिचारे असिद्धावुद्भावितार्थां  
 तद्विदुषे उपाधिः उद्भाव्य इत्यर्थः, 'प्रकृतेति, प्रकृतानुमानवि-  
 रोधिशुद्धसाध्यव्यभिचारासाधकत्वादिति भावः । ननु विशिष्टसा-  
 ध्यव्यापकत्वज्ञानेनापि विशेषणवति उपाधिव्यभिचारित्वेन हेतुना

(१) इत्यर्थ इति ग०, घ० ।

धिरिति चेत्, तर्हि प्रज्ञतानुमाने नोपाधिदूषणं  
स्यात् । किञ्च साध्यव्यभिचारहेतुत्वेन पक्षधर्मावच्छि-  
न्नसाध्यव्यापकव्यभिचार एवोपन्यसनीयो नोपाधिः ।

शुद्धसाध्यव्यभिचारानुमानं सम्भवति विशेषणवति विशिष्टव्यापक-  
व्यभिचारित्वे विशेष्यव्यभिचारित्वावश्यकत्वादित्यत आह, 'किञ्चेति,  
'पक्षधर्मेति साधनस्याप्युपलक्षकं पक्षधर्मासाधनावच्छिन्नसाध्यव्याप-  
कस्योपाधेर्यव्यभिचार एव उपन्यसितुमुचित इत्यर्थः, 'नोपाधिः' न  
केवलोपाधिः, न चेष्टापत्तिः, कथकस्यदायविरोधात्, इह  
चेतावुपाधिः अयं हेतुः सोपाधिः इत्येव सकलकथकैरुद्भाव-  
नादिति भावः । इदञ्च दूषणं सर्वत्र बोध्यं न केवलमिह । यद्यपि  
व्यभिचारित्वादिष्वन्वयेन उपाधिरपि साक्षाद्हेतुः सम्भवति तथाप्यस्य  
समाधानस्य 'यदेति' क्त्वा ग्रन्थकृतैवाग्रे ख्यं वक्ष्यमाणत्वान्नासंगतिः ।  
व्यभिचारित्वादिष्वन्वयस्य वृत्त्यनियामकतया न व्याप्यतावच्छेदकत्व-  
प्रभाव इत्यभिमानेन इदमित्यपि केचित् ।

रत्नकोषकारमतमाशङ्कते<sup>(१)</sup>, 'खादेतदिति, एतन्नचणपचे सप्र-  
तिपचोच्चायकत्वं दूषकतावीजनेव साधनाव्यापकत्वविशिष्टं सप्तत्य-  
तानियामकं न तु व्यभिचारोच्चायकत्वं पक्षधर्मासाधनावच्छिन्नसाध्य-  
व्यभिचारज्ञानस्य प्रज्ञतानुमानमूलभूतसाध्यतावच्छेदकावच्छिन्नसाध्य-  
व्याप्तिज्ञानाविरोधितया अकिञ्चित्करत्वादिति ध्येयम् । 'अनित्य-  
त्वातिरिक्तेति अनित्यत्वातिरिक्तो यः शब्दधर्मात्तदतिरिक्तो यो-

(१) रत्नकोषकारलक्षणमाशङ्कते इति ग०, घ० ।

स्यादेतत्पर्यवसितसाध्यव्यापकत्वे सति साधनाव्या-  
पकउपाधिः, पर्यवसितं साध्यं पक्षधर्मतावल्लभ्यं  
यथा शब्दोऽनित्यत्वातिरिक्तशब्दधर्मातिरिक्तधर्मवान्  
नेयत्वादित्यत्र पर्यवसितं यत्साध्यम् अनित्यत्वं तस्य

धर्मसद्धानित्यर्थः, 'पर्यवसितं यत्साध्यमनित्यत्वमिति, नित्यत्वातिरिक्तो  
यः शब्दधर्मलदतिरिक्तं विधिष्टाभावत्वादुभयं शब्दधर्मातिरिक्तं घट-  
त्वादिकमनित्यत्वञ्च तथादौ बाधादनित्यत्वस्यैव पक्षधर्मतावलेन सिद्ध-  
त्वादिति भावः । 'तस्य व्यापकमिति शुद्धसाध्यस्य केवलान्वयितया  
तद्व्यापकत्वायत्वावदिति भावः । न चेदं सद्नुमानमेवेति कथमत्रो-  
पाधिरिति वाच्यं । मीमांसकमतमेवाभिधानात् तैः शब्दस्य नित्यत्वा-  
ङ्गीकारात् । यद्वा शब्दपदद्वयं शब्दत्वपरं तथाच शब्दत्वं अनित्य-  
त्वातिरिक्तशब्दत्वधर्मातिरिक्तधर्मवत् नेयत्वादित्यत्रेत्यर्थः, उदाहर-  
णान्तरमाह, 'यदि चेति, 'तथैवेति शब्दत्वं हतकत्वातिरिक्त-  
शब्दत्वधर्मातिरिक्तधर्मवत् नेयत्वादितिक्रमेणेत्यर्थः, 'तदा अनित्यत्व-  
मिति, पक्षधर्मतावल्लभस्य हतकत्वस्य व्यापकत्वादिति भावः ।  
न चैवं पर्वतो वल्गिमान् धूलादित्यादौ पर्वतीयवल्गिव्यापकत्वात्  
पर्वतत्व-पाषाणत्वत्वादावतिव्याप्तिरिति वाच्यं । पचावृत्तित्वेन विशेष-  
षणीयत्वादिति<sup>(१)</sup> इदं । पक्षधर्मतावल्लभसाध्यव्यापकस्य उपाधित्वे  
प्राचां संवादमाह, 'तदुक्तमिति, 'वाद्युक्तसाध्येति वाद्युक्तं साध्यं

(१) पचावृत्तित्वे सतीत्यनेन विशेषण्योयत्वादित्येति ग०, घ० ।

व्यापकं कृतकत्वमुपाधिः । यदि च तथैव कृतकत्वमपि  
शब्दे साध्यते तदा अनित्यत्वमुपाधिः । तदुक्तं “वायु-  
क्तसाध्यनियमच्युतोऽपि कथकैरुपाधिरुद्भाव्यः पर्यव-  
सितं नियमयन् दूषकतावीजसाम्राज्यात्” इति ।

साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नं साध्यमेव, तन्नियमच्युतोऽपि तद्वापक-  
तारहितोऽपि<sup>(१)</sup> ‘पर्यवसितं नियमयन्’ उपाधिः पचधर्मताव-  
त्तत्त्वं व्याप्यं कुर्वन्, उपाधिः कथकैरुद्भाव्य इत्यर्थः, उद्भावने  
हेतुमाह, ‘दूषकतेति सत्प्रतिपक्षोन्नायकत्वस्य दूषकतावीजस्य तत्र  
सत्त्वादित्यर्थः । ‘एवं हीत्यादि, पचधर्मतावत्त्वेन नित्यद्रव्यसमवेतव-  
सिद्धये असमवेतत्व-द्रव्यासमवेतत्वयोर्वाधस्फोरणाय ‘सावयवत्व इति  
द्रव्यसमवायिकारणकत्वे सिद्धे इत्यर्थः, ‘जन्यमहत्त्वेति अत्र ब्रह्मत्वमा-  
त्रस्य हेतुत्वे घटादौ व्यभिचार इत्यनधिकरणान्तं, तावन्मात्रस्य  
रूपादौ व्यभिचार इति द्रव्यत्वोपादानं, जन्यानधिकरणद्रव्यत्वसा-  
प्रसिद्धत्वात्<sup>(२)</sup> महत्त्वेति, परमाण्वसिद्धिदृशायां आकाशादावन्वय-  
व्याप्तिग्रहाय ‘जन्येति, अखण्डाभावत्वान्न वैयर्थ्यमिति ध्येयं, ‘उपाधिः  
स्यात्’ उपाधित्वेन ज्ञातः स्यादित्यर्थः, पचे पर्यवसितसाध्याव्याप-

(१) वायुक्तसाध्ये नियमः च्युतोऽस्येति वडव्रीहिया साध्यतावच्छेदका-  
वच्छिन्नसाध्यव्यापकतारादित्यत्र रूपपर्यवसिताथंजाभः ।

(२) जन्यस्य संयोगादेः सर्वत्र द्रव्ये सत्त्वादप्रसिद्धिरिति भावः ।

अनेन पक्षधर्तृसाधनावच्छिन्नसाध्यव्यापकोपाधिः सं-  
गृह्यते तादृशसाध्यस्य पर्यवसितत्वादिति, तन्न, एवं  
हि द्युलोकस्य सावयवत्वे सिद्धे द्युलोकमनित्यद्रव्यासम-

कलेन वस्तुत्वित्याप्तिरभावात् अत्र समवेतत्वमात्रस्य पचावृत्तित्वाभा-  
वात् 'नित्यमद्रव्येति, पर्यवसितसाध्यसमव्याप्त एव उपाधिरिति यदि  
परो ब्रूयान्तदाप्यतिव्याप्तिरिति दर्शनाय 'द्रव्येति, 'तस्य व्यापक-  
मिति पचातिरिक्ते तस्य व्यापकतया गृहीतमित्यर्थः<sup>(१)</sup> । न च प्रकृते  
नित्यद्रव्यसमवेतत्वं पक्षधर्मतावलम्ब्यमेव न भवति अभावमात्रगते-  
नानित्यद्रव्यसमवेतत्वाभावत्वन व्यापकतावच्छेदकेनानाक्रान्तत्वात् वा-  
धसङ्कारात् व्यापकतावच्छेदकप्रकारेण व्यापकतावच्छेदकाग्रयस्यै-  
वानुमितिनियमादिति वाच्यं । तादृशनियमे मानाभावात् । न  
चैवं घटेतरवद्भाववानित्याधसङ्कारेण वक्षिष्याप्यधूमवान् पर्वत-  
इति परामर्शाद्घटादेरप्यनुमित्यापत्तिरिति वाच्यं । बाधभेदेन  
कार्य-कारणभावभेदात् तादृशबाधस्याहेतुत्वात् अनुभवानुरोधि-  
त्वात्कल्पनायाः । न च तथापि घटेतरद्रव्याभाववानित्यादिबा-  
धसङ्कारेण वक्षिष्याप्यवन्तापरामर्शाद्घटादेरनुमित्यापत्तिर्दुर्वारा  
तादृशबाधदृशायां द्रव्यादिव्याप्यवन्तापरामर्शाद्घटानुमित्युत्पत्त्या  
तादृशबाधस्य घटानुमितौ हेतुत्वादिति वाच्यं । द्रव्यादिव्याप्यवन्ताप-  
रामर्शजन्यातिरिक्तायास्तादृशबाधजन्यघटानुमितेरलीकतया द्रव्या-

(१) इत्यातिरिक्ते व्यापकतया सिद्धमित्यर्थः इति क० ।



वेतं अन्यमहत्त्वानधिकरणद्रव्यत्वादित्यत्र नित्यसर्गद्रव्य-  
समवेतत्वमुपाधिः स्यात्, भवति हि नित्यद्रव्यसमवे-  
तत्वं पर्यवसितं साध्यं तस्य व्यापकं साधनाव्यापकञ्च।  
किञ्च पञ्चधर्मताबललभ्यसाध्यसिद्धौ निष्फल उपाधिः

द्विषाद्यवत्तापरामर्शविरहादेव तादृशबाधसत्त्वेऽपि वक्षिष्याद्यवत्ता-  
परामर्शात्तदनुत्पत्तेः अन्यथा उक्तनियमाभ्युपगमेऽपि उक्तापत्तेर्दुर्वार-  
त्वात्। न हि नियमव्यभिचारभिया सामग्री कार्यं नार्जयति, इति  
भावः। एतदखरयेनैवाह, 'किञ्चेति, इत्यपि केचित्। वस्तुतस्तु ननु  
भवन्तेऽपि स्वर्गवदसमवेतत्वस्य उपाधित्वेन ज्ञानापत्तिः पश्चातिरिक्ते  
शुद्धसाध्यव्यापकताज्ञानसम्भवात् पक्षे साधनाव्यापकत्वज्ञानसम्भवाच्च,  
यदि चावयवानवस्थाप्रसङ्गरूपविपक्षबाधकतर्केण कस्यचिन्निरवयवस्य  
स्वर्गवतः सिद्धौ तत्समवेतद्रव्ये साध्याव्यापकत्वज्ञानान्न तथा तदा  
मयापि तुल्यमित्यखरयादाह, 'किञ्चेति, 'पञ्चधर्मताबललभ्येति  
पञ्चधर्मताबललभ्यायाः साध्यव्यक्तेः सिद्धावित्यर्थः, 'निष्फल उपाधि-  
रिति निष्फलयुपाधित्वेन ज्ञानमित्यर्थः, 'कस्य व्यापक इति कस्य  
व्यापकत्वेन ग्रह इत्यर्थः, तज्ज्ञानं विना तद्व्यापकत्वग्रहायोगादिति  
भावः। ननु प्रकृतानुमानेन तत् गृहीत्वा उपाधौ तद्व्यापकत्वग्रहो  
यदि तदैव सिद्धिसिद्धिव्याघातः किन्तु अनुमानान्तरात् प्रमाणान्तरेण  
वा तद्गृहीत्वा उपाधौ तद्व्यापकत्वग्रहः स्यादित्यत आह, 'न हीति  
न वेत्यर्थः, 'सोपाधौ' सोपाधितया ज्ञाते, 'यस्य व्यापक इति,  
तथाच सोपाधौ साध्यस्य पञ्चधर्मताबललभ्यत्वमेवासिद्धमिति भावः।

तदसिद्धौ च कस्य व्यापकः, न हि सोपाधौ पक्षधर्म-  
तावलात् साध्यं सिध्यति यस्य व्यापक उपाधिः  
स्यादिति ।

इति श्रीमद्भगवद्गीतोपाध्यायविरचिते तत्त्वचिन्तामणौ  
प्रथमानुवाकद्वितीयोऽध्याये उपाधिवादपूर्वपक्षः ।

इदमुपलक्षणं वायुः प्रत्यक्षः प्रत्यक्षसर्गाश्रयत्वादित्यादावुद्भूतरूप-  
वत्त्वादावव्याप्तिः, न हि तत्र वहिर्द्रव्यत्वावच्छिन्नप्रत्यक्षत्वादिकं पक्ष-  
धर्मतावलम्ब्यं, न च पक्षधर्मतावलम्ब्यत्वं यदा कदाचिद्यस्य कस्य-  
चित् पक्षधर्मतावलम्ब्यत्वं अत एवोद्भूतरूपवत्त्वादावपि नाव्याप्तिः  
विशिष्टे साधवत्त्वानादिषुकारेण वहिर्द्रव्यत्वावच्छिन्नप्रत्यक्षत्वादा-  
वपि कदाचित् पक्षधर्मतावलम्ब्यत्वादिति वाच्यं । प्रसिद्धानुमाने  
महानुमानादेरुपाधितापत्तेः महानुमानादेरपि कदाचित्  
पक्षधर्मतावलम्ब्यत्वेन तद्व्यापकत्वादित्यास्तां विस्तरः ।

इति श्रीमथुरानाथतर्कवागीश-विरचिते तत्त्वचिन्तामणिरहस्य  
प्रथमानुवाकद्वितीयोऽध्याये उपाधिवादपूर्वपक्षरहस्यं ।



रित्प्रवेगः । यत्प्रामाणाधिकरणविशिष्टं साध्यव्यभिचारित्वमित्युक्तौ  
धूमवान् वक्त्रेः रूपवान् द्रव्यत्वादित्यादौ साधनव्यापके वल्लिसाम-  
ग्रीमत्त-द्रव्यत्वादावतिव्याप्तिरतो 'यद्भ्यभिचारित्वविशिष्टमिति, यद्भ्य-  
भिचारित्वं साध्यव्यभिचारित्वञ्च साधनतावच्छेदकावच्छिन्नाधिकरण-  
तावृत्तौ पर्वतो धूमवान् वक्त्रेरित्यादौ पर्वतेतरत्व-महानसे-  
तरत्वादेरिदं गुरु रूपादित्यादौ पृथिवीत्वाभाव-घटत्वाभावादेश्चो-  
पाधितापत्तिः अतो विशिष्टत्वप्रवेगः, तेषां व्यभिचारित्वविशिष्ट-  
साध्यव्यभिचारित्वञ्च न कुत्रापि हेतुव्यक्तौ तदधिकरणताव्यक्तौ  
वेति तद्भ्युदासः कृततत्तद्विहित-तत्तद्रूपत्वाद्यवच्छिन्नाधिकरणतयैव  
वल्लि-रूपत्वाद्यवच्छिन्नाधिकरणतावुद्युपपत्तौ सकलवज्रधिकरण-  
रूपाधिकरणसाधारणातिरिक्तैकतदवच्छिन्नाधिकरणत्वकल्पने गौर-  
वात्मानाभावाच्च । अत एव रूपवान् द्रव्यत्वात् द्रव्यं सत्त्वादित्यादा-  
वपि पृथिवीत्वाभाव-घटत्वाभावाद्दौ नातिव्याप्तिः हेतौ पृथिवीत्वा-  
भावादिव्यभिचारित्वविशिष्टसाध्यव्यभिचारित्वसत्त्वेऽपि कुत्रापि हेतु-  
धिकरणताव्यक्तौ तद्विशिष्टसाध्यव्यभिचारित्वविरहात् अवश्यकृतपृथि-  
वीत्व-जलत्वादिविशिष्टद्रव्यत्वत्व-सत्तात्वावच्छिन्नाधिकरणतयैव द्रव्य-  
त्वत्व-सत्तात्वाद्यवच्छिन्नाधिकरणतावुद्युपपत्तौ पृथिव्यादिनवकसाधा-  
रणातिरिक्तैकद्रव्यत्वत्वावच्छिन्नाधिकरणतायाः गुणादित्रयसाधारणा-  
तिरिक्तैकसत्तात्वाद्यवच्छिन्नाधिकरणतायाः कल्पने गौरवात् माना-  
भावाच्च । जलत्वविशिष्टद्रव्यत्वाधिकरणत्वं न पृथिवीवृत्तीतिप्रत्ययवत्  
द्रव्यत्वत्वावच्छिन्नाधिकरणत्वं न पृथिवीवृत्तीति प्रत्ययस्यापि यत्कि-  
चिदधिकरणताव्यक्तिमादाय प्रमूलात् इष्टत्वात्, अन्यथा तत्तदधि-

करणताव्यक्तीनां द्रव्यत्वानवच्छिन्नत्वेन पृथिवीवृत्तिद्रव्यत्वाधिकरणत्वं  
 न द्रव्यत्ववच्छिन्नमिति प्रतीतेरपि यत्किञ्चिदधिकरणताव्यक्ति-  
 मादाय प्रमात्वापत्तेः । अस्तु वा अवच्छेदकतासम्बन्धेन एकाधि-  
 करणवृत्तित्वरूपं वैशिष्ट्यमेव तृतीयार्थः, तथाच वङ्गित्व-रूपत्व-  
 द्रव्यत्ववच्छिन्नाधिकरणत्वस्य सकलतदवच्छिन्नाधिकरणनिष्ठस्यै-  
 कत्वेऽपि न क्षतिः पर्वतेतरत्वादिव्यभिचारित्वस्य साध्यव्यभिचारित्वे  
 तादृशवैशिष्ट्यस्याप्रसिद्धत्वादेवातिव्याप्तिविरहात् । इत्यञ्च यद्गर्मा-  
 वच्छिन्नव्यभिचारित्वविशिष्टसाध्यव्यभिचारित्वाधिकरणं साधनताव-  
 च्छेदकावच्छिन्नसाधनाधिकरणत्वं साध्यसमानाधिकरणवृत्ति तद्गर्मा-  
 वत्त्वमुपाधित्वमिति निष्कर्षः, तेन धूमवान् वज्जेरित्यादावाद्गन्धं न  
 द्रव्यत्वादिरूपेणोपाधिः । धूमवान् वज्जेरित्यादौ विरुद्धस्य जल-  
 त्वादेरुपाधितावारणाय वृत्त्यन्तं तद्गर्माविशेषणं, साध्याधिकरण-  
 निष्ठाधारतानिरूपिताधेयतावच्छेदकं तदर्थः, तेन द्रव्यं प्रमे-  
 यत्वादित्यत्र द्रव्यान्यत्वविशिष्टसत्त्वं द्रव्यं सत्त्वादित्यत्र द्रव्यभेद-  
 विशिष्टगुणभेदश्च नोपाधिः, यद्गर्मावच्छिन्नव्यभिचारित्वञ्च यद्गर्मा-  
 वच्छिन्नवदन्यवृत्तित्वं यद्गर्मावच्छिन्नाभावीयनिरवच्छिन्नाधिकरण-  
 तावद्वृत्तित्वं वा तेन गन्धवान् द्रव्यत्वादित्यादौ साधनव्यापके  
 संयोगादौ नातिव्याप्तिः द्रव्यत्वाभाववान् सत्त्वादित्यत्र स्वाभाववद्-  
 वृत्तित्वरूपस्वव्यभिचारित्वेन हेतौ साध्यव्यभिचारानुमानसमर्थोऽपि  
 संयोगाभावादिर्न संयाह्यः वक्ष्यमाणलक्षणानाक्रान्तत्वादतो न तत्रा-  
 व्याप्तिः । न च तथापि धूमवान् वज्जेरित्यादौ साध्यव्याप्यमहानस-  
 त्वादावतिव्याप्तिः तद्गुणव्यभिचारित्वविशिष्टसाध्यव्यभिचारित्वस्यापि हे-

त्वधिकरणतावृत्तिवादिति वाच्यं । तत्र तस्य लक्ष्यत्वात् महान-  
सायोगोलकान्यतरत्वावच्छिन्नधूमव्यापकत्वे सति तदवच्छिन्नवज्रव्या-  
पकत्वेन वक्ष्यमाणलक्षणाक्रान्तत्वात् “सर्व्वे साध्यसमानाधिकरणाः सद्दु-  
पाधयः हेतावेकाश्रये येषां स्व-साध्यव्यभिचारिता” इति सिद्धान्ताच्च,  
येषां स्वव्यभिचारिता साध्यव्यभिचारिता च एकाश्रये एकस्मिन्नधि-  
करणे हेताविति तदुत्तराद्धार्थः, एकस्मिन्नधिकरणे इत्युपादानात्  
पर्व्वतो धूमवान् वज्जेरित्यादौ पर्व्वतेतरत्व-महानसेतरत्वादेः इदं गुरु  
रूपादित्यादौ पृथिवीत्वाभाव-घटत्वाभावादेश्च न संग्रहः । न च तत्र  
तेषामपि संग्राह्यत्वमस्त्विति वाच्यं । व्याप्ति-पक्षधर्मतयोरेकतरभङ्ग-  
स्यावश्यकतया तत्र तद्भ्रमिचारित्वेनाविग्रेषितेन विग्रेषितेन वा साध्य-  
व्यभिचारित्वानुमानासम्भवात् रूपवान् द्रव्यत्वात् द्रव्यं सत्त्वादित्यादा-  
वपि पृथिवीत्वाभाव-घटत्वाभावादिर्न संग्राह्यः जलसमवेतनित्यत्वा-  
दिविग्रेषितेन तत्तद्भ्रमिचारित्वेन तत्र साध्यव्यभिचारानुमानसम्भवेऽपि  
तद्भ्रमिचारित्व-साध्यव्यभिचारित्वयोरेकस्मिन्नधिकरणे हेतावसम्भ-  
वात् तत्र तदनुपाधित्वस्य उपाध्यायादिसकलतास्त्रिकस्यतत्त्वादिति  
सर्व्वं चतुरस्रम् ।

केचित्तु हेतावेकाश्रये हेतुरूपे एकस्मिन्नधिकरणे एकस्यां हेतु-  
व्यक्ताविति यावत्, तेन रूपवान् द्रव्यत्वात् द्रव्यं सत्त्वादित्यादौ पृथिवी-  
त्वाभाव-घटत्वाभावादिरपि संग्राह्यः, इदं गुरु रूपादित्यादौ तु न  
संग्राह्यः एकस्या एव वद्विव्यक्तेरयोगोलक-पर्व्वताद्युभयवृत्तित्वसम्भवे  
धूमवान् वज्जेरित्यत्र पर्व्वतेतरत्व-महानसेतरत्वादेरपि संग्रहः । न च तत्र  
तत्र तेषां संग्राह्यत्वेन वक्ष्यमाणलक्षणस्य तत्राव्याप्यापत्तिरिति वाच्यं ।

तत्र चणस्यापि तत्साधारणतया अग्रे व्याख्यास्यमानत्वात् । न च तत्र  
 तेषां संग्राह्यत्वे आधेयव्यक्तेरेकत्वेऽप्युक्तयुक्त्या अधिकरणव्यक्तिभेदेन अधि-  
 करणताव्यक्तिभेदात् प्रकृतलक्ष्यतावच्छेदकस्य तत्राव्याप्यापत्तिः उक्त-  
 युक्त्यनादरे रूपत्वावच्छिन्नाधिकरणत्वस्याप्यविशेषेण सकलरूपाधि-  
 करणसाधारणत्वैकस्य सुवचत्वात् इदं गुरु रूपादित्यादौ पृथिवीत्वा-  
 भावादावतिव्याप्तिः तत्र तदलक्ष्यतायाः सर्वसम्मतत्वादिति वाच्यं ।  
 यद्वाभिचारित्वेन यन्निष्ठाव्यापकताकत्वेन विशिष्टं साध्यव्यभिचारित्वं  
 साध्यनिष्ठाव्यापकताकत्वं साधनस्य साधनतावच्छेदकावच्छिन्नसाध-  
 नवृत्तिः स उपाधिरित्यर्थात् । तथाच साधनतावच्छेदकावच्छिन्न-  
 यत्साधनव्यक्त्यापकतावच्छेदकं साध्यतावच्छेदकं साधनतावच्छेदका-  
 वच्छिन्नतत्साधनव्यक्त्यापकतावच्छेदको यो धर्मः साध्यसमानाधि-  
 करणवृत्तितद्गुणवत्त्वमुपाधित्वमिति फलितमिति न कोऽपि दोष-  
 इत्याहुः । तदसत् रूपवान् द्रव्यत्वादित्यादौ पृथिवीत्वादेरुपाधित्वस्य  
 उपाध्यायादिसकलतान्त्रिकासम्मतत्वात् ।

अन्ये तु यद्गुणवच्छिन्नवदन्यत्वेन विशिष्टसाधनाधिकरणे साध-  
 नवदन्यत्वं वर्तते तद्गुणवच्छिन्नत्वमुपाधित्वमिति लक्ष्यतावच्छेदकं ल-  
 घवात्, तथाच द्रव्यत्वत्वावच्छिन्नाधिकरणत्वस्य सकलाधिकरणसा-  
 धारणस्य एकत्वमतेऽपि रूपवान् द्रव्यत्वादित्यादौ पृथिवीत्वाभावादौ  
 नातिव्याप्तिः । न वा रूपत्वावच्छिन्नाधिकरणत्वैकत्वेऽपि इदं गुरु  
 रूपादित्यादौ तत्रातिव्याप्तिः, इत्यञ्च यद्वाभिचारित्वेन यद्गुणव-  
 च्छिन्नवदन्यत्वेन साधनस्य साधनाधिकरणस्य साध्यव्यभिचारित्वं  
 साध्यवद्विन्नत्वं स उपाधिः तद्गुणवच्छिन्नमुपाधिरित्यर्थः, इतीयार्थः

तदवच्छिन्नं पर्यवसितं साध्यं, स च धर्मः क्वचित्  
साधनमेव, क्वचिद्द्रव्यत्वादि, क्वचिन्महानसत्त्वादि,

वैशिष्ट्यस्य साधनाधिकरणेऽन्वयः, निरूक्तसाध्यसमानाधिकरणत्वेन च  
तद्धर्मो विशेषणीयः तेन साध्यविरुद्धधर्मे नातिव्याप्तिरिति लक्ष्य-  
तावच्छेदकं परिष्कुर्वन्ति । तदसत् उदचरत्वादिति समासः ।

अत्र लक्ष्यतावच्छेदकस्यैव लक्षणत्वसम्भवेऽपि येन रूपेण ज्ञा-  
तस्य उपाधेर्दोषत्वं तादृशं लक्षणमाह, 'लक्षणत्वित्यादिना, पर्यव-  
सितपदार्थमाह, 'यद्धर्मोति, 'यद्धर्मावच्छेदेन' यद्धर्मवति, 'साध्यं  
प्रसिद्धं' साध्यं वर्तमानं, 'तदवच्छिन्नं' सामानाधिकरण्यसम्बन्धेन  
तादृशयत्किञ्चिद्धर्मविशिष्टमित्यर्थः, यथाश्रुतेऽवच्छेदकत्वं नात्रान्यून-  
वृत्तित्वं न वानतिरिक्तवृत्तित्वं मित्रातनयत्वादीनां तदसम्भवात्, न  
वा स्वरूपसम्बन्धविशेषः मित्रातनयत्वादीनां तथात्वे मानाभावादि-  
त्यसङ्गतत्वापत्तेः । अत्र व्यधिकरणयत्किञ्चिद्धर्मविशिष्टस्य साध्यस्य  
पर्यवसितपदार्थत्वे अप्रसिद्ध्यापत्तिरतो धर्मविशेषपरिचयाय प्रसि-  
द्धान्तं न तु लक्षणघटकं, लक्षणन्तु सामानाधिकरण्यसम्बन्धेन  
यत्किञ्चिद्धर्मविशिष्टसाध्यव्यापकत्वे एति साधनाव्यापकत्वमेव ।

केचित्तु 'प्रसिद्धं' निश्चितं, एतच्च पर्यवसितपदार्थतया स्वरूप-  
कथनमित्याहुः ।

'क्वचित् साधनमेवेति काकः श्यामो मित्रातनयत्वादित्यादा-  
वित्यर्थः, 'क्वचित् द्रव्यत्वादीति वायुर्वहिरिन्द्रियप्रत्यक्षः प्रमेयत्वा-  
दित्यादावित्यर्थः, 'क्वचिन्महानसत्त्वादीति धूमवान् वङ्गेरित्यादा-



वित्यर्थः । न च तत्रार्द्रेन्धनादेः शुद्धसाध्यव्यापकत्वस्यैव सत्त्वात् अव-  
 च्छिन्नसाध्यव्यापकत्वं अतोऽभ्युपेयमिति वाच्यं । शुद्धसाध्यव्यापकत्वे-  
 ऽपि विशिष्टसाध्यव्यापकत्वानपायात्, परन्तु व्यर्थविशेषणतया वि-  
 शिष्टं व्याप्यतावच्छेदकं भवतु न वेत्यन्यदेतत् । ननु सामानाधि-  
 करणसंसर्गेण यत्किञ्चिद्धर्मविशिष्टस्य साध्यस्य व्यापकत्वे सति  
 साधनाव्यापकत्वस्य लक्षणत्वे वक्षिमान् धूमादित्यादिसद्धेतावपि  
 सपत्रैकदेशप्रवृत्तिधर्मस्य व्यञ्जनवत्त्वादेरूपाधिताप्रसङ्गः महानसत्त्वाद्य-  
 वच्छिन्नवज्रादिव्यापकत्वादिति चेदत्रोपाध्यायाः यद्धर्मविशिष्टसा-  
 ध्यव्यापकत्वं तद्धर्मविशिष्टसाधनाव्यापकत्वस्यैव विवक्षितत्वात् । न चैवं  
 'कचिन्महानसत्त्वादीति मूलमसङ्गतं तद्विशिष्टसाधनाव्यापकत्वस्य  
 आर्द्रेन्धनादावभावादिति वाच्यं । धूमानधिकरणवज्राधिकरणस्यापि  
 महानस्य सत्त्वात् । तद्विशिष्टत्वञ्च सामानाधिकरणसम्बन्धेन तेन  
 रूपवान् पृथिवीत्वादित्यादौ तद्घटोत्पत्तिकालीनत्वविशिष्टरूपव्या-  
 पकस्य तद्घटे तद्विशिष्टपृथिवीत्वाव्यापकस्य तद्घटान्यत्वस्य नोपा-  
 धित्वप्रसङ्गः, साध्यपदञ्च साध्यतावच्छेदकविशिष्टसाध्यपरं, तेन गुण-  
 कर्मान्यत्वादिविशिष्टसत्त्वावान् प्रमेयत्वादित्यादौ द्रव्य-कर्मान्यत्वादि-  
 विशिष्टसत्त्वाव्यापके तादृशप्रमेयत्वाव्यापके च गुणत्वादौ नातिव्याप्तिः ।  
 साधनपदमपि साधनतावच्छेदकावच्छिन्नसाधनपरं, तेन द्रव्यं गुण-  
 कर्मान्यत्वविशिष्टसत्त्वादित्यादौ द्रव्य-गुणान्यतरत्वविशिष्टद्रव्यत्वव्यापके  
 तादृशशुद्धसत्त्वाया अव्यापके च गुणान्यत्वे नातिव्याप्तिः, इदं गुण-  
 रूपादित्यादौ पृथिवीत्वाभावादिरिव रूपवान् द्रव्यत्वात् महा-  
 कालान्यो घटादित्यादावपि पृथिवीत्वाद्यभाव-खण्डकालभेदादिर्न

लक्ष्य इति न तत्राध्याप्तिरिति भावः । रूपवान् द्रव्यत्वादित्यादौ पृथिवीत्वाभावादेर्लक्ष्यतापत्ते तु 'यद्गर्मावच्छेदे' इति सप्तमौ यद्गर्म-विशिष्ट इत्यर्थः, साधनाधिकरण इति शेषः, 'नग्नद्वय निषेधार्थकः, 'प्रसिद्धं' वर्तमानं, तथाच साध्यानधिकरणसाधनाधिकरणवृत्ति-धर्मावच्छिन्नसाध्यव्यापकतावच्छेदकत्वे सति साधनाव्यापकतावच्छेदको यो धर्मस्तद्वत्तुपाधित्वमिति फलितं, विशिष्टसाध्यव्यापकोपाधा-व्याप्तिवारणायावच्छिन्नान्तं साध्यविशेषणं, रूपवान् द्रव्यत्वादित्यादौ साध्यानधिकरणं साधनाधिकरणं वाख्यादि तद्वृत्तिधर्मो वायु-जलान्यतरत्वादिसद्गर्मावच्छिन्नसाध्यव्यापक एव पृथिवीत्वाभावादि-रिति तत्रापि लक्षणसमन्वयः । चत्किञ्चिद्गर्मावच्छिन्नसाध्यव्याप-कत्वस्य साधनाधिकरणवृत्तिधर्मावच्छिन्नसाध्यव्यापकत्वस्य वाभि-धाने वक्षिमान् धूमादित्यादिसद्गृतावपि साध्यव्याप्यमहानसत्व-व्यञ्जनवत्त्वादेरप्युपाधितापत्तिरिति साध्यानधिकरणसाधनाधिक-रणवृत्तित्वं धर्मविशेषणं, साध्यानधिकरणसाधनाधिकरणञ्च सद्गृता-वप्रसिद्धमतो न तद्दोषतादवस्थम् । महानसत्वव्यञ्जनवत्त्वादेरपि महानस-जलद्रुदान्यतरत्वादिविशिष्टसाध्यव्यापकतया तद्दोषतादव-स्थवारणाय साधनाधिकरणप्रवेशः, साधनाधिकरणत्वञ्च साधन-तावच्छेदकविशिष्टाधिकरणत्वं, तेन द्रव्यं गुण-कर्मन्यत्वविशिष्ट-सत्त्वादित्यत्र साध्यानधिकरणसाधनाधिकरणवृत्तिरूप-घटान्यतर-त्वावच्छिन्नसाध्यव्यापके<sup>(१)</sup> पृथिवीत्वादौ नातिव्याप्तिः । साध्या-

(१) साध्यानधिकरणसाधनाधिकरणवृत्तिरूप-घटान्यतरत्वावच्छिन्नसाध्य-व्यापक इति ख०. ग० ।

नधिकरणसाधनतावच्छेदकविशिष्टसाधनाधिकरणाप्रसिद्धेः साधा-  
 नधिकरणत्वमपि साध्यतावच्छेदकविशिष्टानधिकरणत्वं, तेन गुण-  
 कर्मान्यत्वविशिष्टसत्तावान् जातेरित्यत्र सत्तानधिकरणजात्यधिकरणा-  
 प्रसिद्धावपि द्रव्यत्वादौ नाव्याप्तिः । न चैवमुपाधिग्रहीरभान एव  
 साध्यव्यभिचारभानादुपाधिव्यभिचारेण पुनर्यभिचारानुमानमफलं  
 स्यादिति वाच्यं । हेतुविशेष्यकसाध्यव्यभिचारप्रकारकज्ञानार्थं  
 तदनुमानस्यावश्यकत्वात् तादृशज्ञानस्यैव प्रतिबन्धकत्वात् यत्रोपा-  
 धित्वज्ञानात् पूर्वं साधनाधिकरणस्य न साध्यानधिकरणत्वज्ञानं  
 तत्र निश्चितोपाधित्वाभावस्यापीष्टत्वात् । साध्यव्यापकत्वमपि साध्यता-  
 वच्छेदकविशिष्टसाध्यव्यापकत्वं बोध्यं, अन्यथा गुण-कर्मान्यत्वविशिष्ट-  
 सत्तावान् जातेरित्यत्र द्रव्यत्वादावव्याप्यापत्तेः तत्र द्रव्य-गुणान्य-  
 तरत्व-द्रव्य-कर्मान्यतरत्वादिरूपतादृशधर्मावच्छिन्नविशिष्टसत्ताव्याप-  
 कत्वेऽपि तादृशशुद्धसत्ताव्यापकत्वविरहात् । न च निरुक्तसाधनाधि-  
 करणनिरुक्तसाधनाधिकरणवृत्तिधर्मावच्छिन्ननिरुक्तसाध्यसमानाधि-  
 करणवृत्तित्वे यतीत्येवासु किं व्यापकतावच्छेदकत्वपर्यन्तानुस-  
 रणेन तादृशसाध्यसमानाधिकरणवृत्तित्वञ्च तादृशसाध्याधिकरणनि-  
 रूपिताधेयतावच्छेदकत्वं तेन द्रव्यं सत्त्वादित्यत्र द्रव्यान्यत्वविशिष्टसत्ते  
 नातिव्याप्तिरिति वाच्यं । व्यापकत्वाप्रवेशे उपाधिग्रहीरभानस्य  
 उपाधिव्यभिचारित्वनिष्ठसाध्यव्यभिचारित्वव्याप्तिग्रहोपयोगित्वासम्भ-  
 वात् यथासन्निवेशे वैयर्थ्याभावात् । धूमवान् वद्रेरित्यादौ साध-  
 नव्यापकस्य प्रमेयत्वादेर्वारणाय साधनाव्यापकतावच्छेदकत्वप्रवेशः,  
 साधनपदञ्च साधनतावच्छेदकावच्छिन्नसाधनपरं, तेन द्रव्यं गुणान्य-

तथाहि समव्याप्तस्य विषमव्याप्तस्य वा साध्यव्यापकस्य  
व्यभिचारेण साधनस्य साध्यव्यभिचारः स्फुट एव  
व्यापकव्यभिचारिणस्तद्याप्यव्यभिचारनियमात्, साध-  
नावच्छिन्न-पक्षधर्मावच्छिन्नसाध्यव्यापकयोर्व्यभिचारि-

त्वविशिष्टसत्त्वादित्यत्र द्रव्य-कर्मान्यतरत्वादिरूपतादृग्धर्मावच्छिन्न-  
साध्यव्यापके गुणान्यत्वे नातिव्याप्तिः । न चैवं इदं गुरु रूपादित्या-  
दावपि जल-तेजोन्यतरत्वादिरूपतादृग्धर्मविशिष्टसाध्यव्यापकतया  
पृथिवीवृत्तिरूपाव्यापकतया च पृथिवीत्वाभावादेरूपाधितापत्तिः  
पृथिवीत्वाभावव्यभिचारिरूपव्यक्तेः पृथिवीसात्रनिष्ठतया साध्यव्यभि-  
चारित्वाभावात्तत्र तदनुपाधित्वस्य सर्वसत्तत्वादिति वाच्यं । पूर्व-  
दक्षप्रविष्टा या साधनव्यक्तिः साधनतावच्छेदकविशिष्टतत्साधन-  
व्यक्तव्यापकत्वस्य विवक्षितत्वात्, द्रव्यत्वाभाववान् सत्त्वादित्यत्र स्वाभाव-  
वृत्तित्वरूपस्य व्यभिचारित्वेन साध्यव्यभिचारानुमानममर्थोऽपि संयो-  
गाभावादिर्न संग्राह्यः, तेन उपाध्यायमतेऽत्र मते च न तत्रा-  
व्याप्तिरिति समासः ।

इदानीं प्रसङ्गादुपाधिव्यभिचारेण साध्यव्यभिचारानुमितेः  
प्रकारं व्युत्पादयति, 'तथा हीति, 'समव्याप्तस्य' साध्यव्याप्यस्य,  
'विषमव्याप्तस्य' साध्याव्याप्यस्य, यथाश्रुतेऽग्रे 'साध्यव्यापकस्येत्यस्य वैय-  
र्थ्यापत्तेः, 'साध्यव्यभिचारः' साध्यव्यभिचारग्रहः, 'स्फुट एव' स्फुटतरं  
सम्भवत्येव, 'व्यभिचारित्वेन' व्यभिचारित्वेनापि, 'साधनस्य साध्यव्य-  
भिचारित्वमेव' साधनस्य साध्यव्यभिचारित्वग्रहः सम्भवत्येव, ननु

त्वेन साधनस्य साध्यव्यभिचारित्वेनैव, यथा ध्वंसस्या-  
नित्यत्वे साध्ये भावत्वस्य, वायोः प्रत्यक्षत्वे साध्ये उद्भूत-  
रूपवत्त्वस्य च, विशेषणाव्यभिचारिणि साधने विशिष्ट-

विशिष्टसाध्यव्यापकव्यभिचारित्वेन विशिष्टसाध्यव्यभिचारित्वग्रह एव  
सम्भवति न तु शुद्धसाध्यव्यभिचारग्रहइत्यत आह, 'विशेषणेति,  
'विशेष्येति विशेष्यव्यभिचारित्वरूपतानियमादित्यर्थः । न च विशि-  
ष्टाभाव-विशेष्याभावयोर्भेदेन व्यभिचारभेदात् कथं विशिष्टव्य-  
भिचारो विशेष्यव्यभिचारात्मक एवेति वाच्यं । विशिष्टाभावो विशेष्य-  
विशेषणाभावाभ्यां नातिरिच्यत इत्यभिप्रायात्, (१) विशिष्टाभावस्या-  
तिरिक्तत्वेऽपि विशेष्याभावाधिकरणस्य विशिष्टाभावाधिकरणत्व-  
नियमेन विशेष्याभावाधिकरणवृत्तित्वस्य विशिष्टाभावाधिकरण-  
वृत्तित्वरूपत्वाच्च । 'अतएवेति यतएव विशेषणाव्यभिचारिणि साधने  
विशिष्टसाध्यव्यभिचारो विशेष्यीभूतशुद्धसाध्यव्यभिचारस्वरूपोऽतएव-  
त्यर्थः, 'नार्थान्तरमिति वायुः प्रत्यक्षः प्रत्यक्षसर्गाश्रयत्वादित्यादावुद्भूत-  
रूपवत्त्वव्यभिचारित्वेन विशिष्टसाध्यव्यभिचारसाधने नार्थान्तरमित्यर्थः,  
'विशेषणेति, यत इत्यादिः, 'पक्षधर्षतावत्तादिति विशेष्यव्यभिचारित्वे-  
तरविशिष्टसाध्यव्यभिचारित्वस्य बाधग्रहसहकारादित्यर्थः, विशेषण-  
व्यभिचारिसाधने विशिष्टसाध्यव्यभिचारस्य विशेष्यीभूतशुद्धसाध्यव्य-  
भिचारस्वरूपत्वेन विशेष्यीभूतशुद्धसाध्यव्यभिचारस्यापि व्यापकतावच्छे-

(१) तथाच विशेषणवति विशिष्टाभावो विशेष्याभावरूपः, विशेष्य-  
वति विशेष्याभावरूपश्चेति भावः ।

व्यभिचारस्य विशेष्यव्यभिचारित्वनियमात् । अतएव  
नार्थान्तरं विपश्चाद्व्यभिचारित्वेन ज्ञाते साधने विशि-  
ष्टव्यभिचारः सिध्यन् विशेष्यसाध्याव्यभिचारमादायैव

दकावच्छिन्नत्वादिति भावः । न च तस्य व्यापकतावच्छेदकावच्छिन्न-  
त्वेषु नुमितेर्यापकतावच्छेदकप्रकारकत्वनिश्चयाद्विशिष्टसाध्यव्यभिचा-  
रित्वप्रकारिकैव धीः स्यात् तथाचार्थान्तरमेव शुद्धसाध्यव्यभिचारित्व-  
प्रकारकबुद्धेरेव कारणीभूतव्याप्तिज्ञानप्रतिबन्धकत्वेनोद्देश्यत्वादिति  
वाच्यं । इतरकोटिवाधसहकारेण व्यापकतानवच्छेदकहूपेणापि व्याप-  
कतावच्छेदकावच्छिन्नानुमितिसौकारात् । 'अन्यथा' विशेष्यव्यभिचा-  
रित्वाविषयकत्वे, 'अपर्यवसानात्' अपर्यवसानप्रसङ्गात् अप्रमात्वप्रस-  
ङ्गादिति यावत्, विशेषणव्यभिचारित्वस्य तत्र बाधितत्वादिति भावः ।  
ननु तथापि अनुमितेर्यापकतावच्छेदकप्रकारकत्वनिश्चये पक्षधर्म-  
तावत्तादपि शुद्धसाध्यव्यभिचारित्वप्रकारिका धीर्न सश्रवतीत्यस्वरसा-  
दाह, 'यद्देति, 'द्रव्यप्रत्यक्षत्वेति द्रव्यत्वावच्छिन्नप्रत्यक्षत्वेत्यर्थः, 'महत्त्ववत्'  
पक्षुरादिनिष्ठमहत्त्ववत्, तेन घटादिवृत्तिमहत्त्वस्य साध्य-साधनविक-  
सत्वेऽपि न क्षतिः । इदञ्चानुमानं प्रत्यक्षपरिमाणवत्त्वाद्युपाध्यभिप्रायेण  
न तु उद्भूतरूपवत्तुोपाध्यभिप्रायेण तस्यात्मनि व्यभिचारेण द्रव्यत्वा-  
वच्छिन्नप्रत्यक्षत्वाव्यापकत्वात्, तद्व्यभिचारित्वस्य सुखादौ प्रत्यक्षत्व-  
व्यभिचारित्वव्यभिचाराच्च इत्यपि द्रष्टव्यं । न च 'द्रव्यप्रत्यक्षत्वव्यापकेत्यत्र  
द्रव्यपदवैयर्थ्यमिति वाच्यं । प्रत्यक्षपरिमाणवत्त्वादिव्यभिचारित्वस्यैव

स्थिति पक्षधर्मताबलात् अन्यथा प्रतीतेरपर्यवसा-  
नात् । न च पक्षधर्मताबलात् प्रकृतसिद्धावर्थान्तरम् ।  
यद्वा प्रत्यक्षस्पर्शाश्रयत्वं प्रत्यक्षत्वव्यभिचारि द्रव्यत्वाव्य-

हेतुत्वात्, द्रव्यप्रत्यक्षत्वव्यापकत्वोपन्यासस्तु तर्कप्रदर्शनायेति,<sup>(१)</sup> 'श्याम-  
मित्रातनयत्वेति मित्रातनयत्वावच्छिन्नश्यामत्वेत्यर्थः, अत्रापि ग्राकपा-  
कजत्वव्यभिचारित्वादित्येव हेतुः, व्यापकत्वोपन्यासस्तु तर्कप्रदर्शनायेति  
ध्येयं । 'अघटत्ववदिति, ननु अघटत्वं घटभेदः स च नान्वयेन दृष्टान्तः  
सत्यन्तविशेषणाभावेन साधनविकलत्वात्, नापि व्यतिरेकेण, साध्यस्य  
तत्र सत्त्वादिति चेत् अत्रासत्पिठचरणाः<sup>(२)</sup> यथाहि धूमत्वविशिष्टप्रमे-  
यत्वं वज्रव्यभिचारि तथा मित्रातनयत्वादिविशिष्टं सदघटत्वमपि  
मित्रातनयत्वाव्यभिचार्यैवेति भावः । ननु मित्रातनयत्वाव्यभिचारित्वं  
मित्रातनयत्वाभाववदवृत्तित्वं तच्च मित्रातनयत्वविशिष्टेऽघटत्वेऽपि नास्ति  
विशिष्टस्थानतिरिक्ततया गुणाद्यन्यत्वविशिष्टसत्ताया गुणादिवृत्तित्वव-  
न्मित्रातनयत्वादिविशिष्टाघटत्वस्यापि मित्रातनयभिन्ने सत्त्वादज्ञभा-  
ववदवृत्तित्वरूपवज्रव्यभिचारित्वमपि न धूमत्वविशिष्टप्रमेयत्वे तथाच

(१) अत्र "यो यद्व्यापकव्यभिचारी स्यात् स तद्व्यभिचारी स्यादिति  
व्यापकव्यभिचारिणो व्यभिचारित्वनियमादस्याप्रयोजकत्वशङ्काव्युदासकतर्क-  
ज्ञापनायेत्यर्थः, तर्कस्तु यदि साध्यव्यापकव्यभिचारः साध्यव्यभिचारव्याप्यो  
न स्यात् तदा साधनवृत्तिर्न स्यात्" इत्यधिकृतः पाठः ख-चिह्नितपुस्तके  
वर्तते ।

(२) अत्रासत्पिठचरणाः इति ख०, ग० ।

भिचारित्वे सति द्रव्यप्रत्यक्षत्वव्यापकव्यभिचारित्वान्म-  
हत्त्ववत्, तथा मित्रातनयत्वं श्यामत्वव्यभिचारि मित्रा-

साधनविक्रलो दृष्टान्तः इत्यतो व्यापकत्वरूपस्य व्यभिचारं निर्व्वक्ति, 'अव्य-  
भिचारश्चेति, 'तत्समानाधिकरणेति तत् मित्रातनयत्वं समानाधिकर-  
णात्यन्ताभावाप्रतियोगि यस्येति वज्रव्रीहिः, स्वसमानाधिकरणात्य-  
न्ताभावाप्रतियोगिमित्रातनयत्वकत्वमित्यर्थः । यथाश्रुते मित्रातनयत्व-  
व्यापकत्वस्यैव फलतो मित्रातनयत्वाव्यभिचारित्वरूपतया शाकपाकजत्व-  
व्यभिचारित्वरूपस्य विशेष्यदत्तस्य वैयर्थ्यापत्तेः । न च भिन्नधर्मिकत्वान्न  
वैयर्थ्यमिति<sup>(१)</sup> वाच्यं । तथापि शाकपाकजत्वव्यभिचारित्वस्य शाकपाक-  
जत्वाभाववति वर्त्तमानत्वरूपतया शाकपाकजत्वाभाववदंशवैयर्थ्यापत्ते-  
दुर्व्वारत्वात् मित्रातनयत्वव्यापकत्वे सति वर्त्तमानत्वस्यैव सत्यकत्वात् ।  
'अभेदेऽपीति विशिष्टस्य केवलादनतिरिक्तत्वेऽपीत्यर्थः, विशिष्टस्थान-  
तिरिक्तत्वेऽपि तद्विरूपिताधारताया मित्रातनयत्वभेदेऽभावादिति  
भावः । यद्यप्येवं श्यामत्वप्रकारकप्रमाविशेष्यत्वादावेव व्यभिचारः  
तस्यापि मित्रातनयत्वादिविशिष्टीभूय मित्रातनयत्वाव्यभिचारित्वात्  
शाकपाकजत्वाभाववद्वृत्तित्वरूपशाकपाकजत्वव्यभिचारित्वाच्च, तथापि  
शाकपाकजत्वव्यभिचारित्वमपि स्वसमानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियो-  
गिशाकपाकजत्वकत्वं तथाच स्वसमानाधिकरणात्यन्ताभावाप्रतियो-

(१) तथाच स्वसमानाधिकरणव्याप्यतावच्छेदकधर्मान्तरघटितत्वस्यैव  
व्यर्थविशेषणघटितत्वरूपतया भिन्नधर्मिकत्वे स्वसमानाधिकरणत्वविरहा-  
देव न व्यर्थविशेषणघटितत्वसम्भव इति भावः ।



तन्मयत्वाव्यभिचारित्वे सति श्याममित्रातनयत्वव्या-  
पकव्यभिचारित्वात् अघटत्ववत्, अव्यभिचारश्च तत्स-

गिमित्रातनयत्वकत्वे सति स्वसमानाधिकरणात्यन्ताभावप्रतियोगि-  
शाकपाकजत्वकत्वादिति फलितं, स्वपदद्वयञ्च एकधर्मावच्छिन्नबोध-  
कमतो न कोपि दोष इत्याहुः ।

गव्यासु अघटत्वं व्यतिरेकेणैव दृष्टान्तः, मित्रातनयत्वस्य मित्राज-  
न्यत्वविशिष्टपुंस्त्वाख्यावचवविशेषरूपस्य समवेतत्वसम्बन्धेनैव स्थापनानु-  
माने हेतुतया समवेतत्वसम्बन्धेन श्यामत्वव्यभिचारस्यैवात्र साध्यत्वेन  
साध्याभावस्यापि तत्र सत्त्वात् । यदि च मित्रातनयत्वं प्रकृतं मित्रा-  
जन्यतावच्छेदकधर्मवत्त्वमात्रमधिकस्य व्यर्थत्वात्, तथापि तादृशधर्मस्य  
जातिविशेषरूपतया समवायसम्बन्धेन श्यामत्वव्यभिचारस्यैवात्र साध-  
त्वेन साध्याभावस्य सुतरां तत्र सत्त्वादिति भावः । ननु मित्रातनय-  
त्वाव्यभित्त्वारित्वं कुतो मित्रातनयत्वेऽभिचारस्य भेदागर्भत्वादतो हेतुः  
स्वरूपासिद्ध इत्यत आह, 'अव्यभिचारश्चेति, 'तत्समानाधिकरणेति  
पूर्ववदुक्तव्रीहिः, तथाच मित्रातनयत्वाभाववदवृत्तित्वं फलितं, यथा-  
श्रुते हेतावुक्तरीत्या विशेष्यदत्तघटकशाकपाकजत्वाभाववदंगवैयर्थ्या-  
पत्तेः, 'तत्राभेदेपीति, तस्य भेदागर्भत्वादिति भाव इति प्राहुः ।

मित्रासु अघट इति गौरमित्रातनयसंज्ञाभेदः, तथाच गौर-  
मित्रातनयवृत्तिधर्मान्वयेनैव दृष्टान्त इत्याहुः, तन्मते 'अव्यभिचार-  
श्चेत्यादियन्यसु नव्यमतवद्योजनीयः ।

भट्टाचार्यासु ननु अघटत्वं घटभेदः स चान्वयेन न दृष्टान्तः साध-

मानाधिकारणात्यन्ताभावाप्रतियोगित्वं तत्राभेदेऽपि ।  
यद्वा यः साधनव्यभिचारी साध्यव्यभिचारोन्नायकः

नविकलत्वात् अधिकरणभेदेन घटभेदस्य भेदाभावात् । नापि व्यति-  
रेकेण, मित्रातनयत्वं न मित्राजन्यतावच्छेदकधर्मवत्त्वमात्रं तस्य तनय-  
त्वास्वरूपत्वात्, अत एव न मित्राजन्यत्वविशिष्टपुंस्त्वाख्यावयवविशेषः  
प्राचां नये वृत्त्यनिचामकसम्बन्धस्य श्रद्धतावच्छेदकतानवच्छेदकतया  
तस्यापि तनयत्वास्वरूपत्वात्, अपि तु मित्राजन्यत्वविशिष्टपुंस्त्वा-  
ख्यावयवविशेषसम्भवेत्वं, द्विजलिङ्गखण्डशरीरं तु नपुंसकवन्न पुत्रः,  
तथाच स्वरूपसम्बन्धेनैव तस्य स्थापनानुमाने हेतुतया स्वरूपसम्ब-  
न्धेन श्यामत्वव्यभिचारस्यैवात्र साध्यत्वेनाघटत्वे साध्याभावविरहादि-  
त्याशङ्कयामाह, 'अव्यभिचारश्चेति, 'तत्समानाधिकरणेति मित्रा-  
तनयत्वाधिकरणीभूतयत्किञ्चिद्भक्तिनिष्ठेत्यर्थः, तेन मित्रातनयत्व-  
समानाधिकरणत्वं फलितं, यथाश्रुते हेतावुक्तरीत्या व्यर्थविशेषणत्वा-  
पत्तेः, 'तच्चेति, 'अभेदेऽपि' घटभेदस्याधिकरणभेदेन भेदाभावेऽपि,  
तत्रास्तीति शेषः । न चैवं श्यामत्वादावेव व्यभिचारः तस्यापि मित्रा-  
तनयत्वसमानाधिकरणत्वात् शाकपाकजत्वव्यभिचारित्वाच्च इति  
वाच्यं । यस्मिन्नाधिकरणे मित्रातनयत्वसमानाधिकरणं तत्र शाक-  
पाकजत्वव्यभिचारित्वस्य विवक्षितत्वात् मित्रातनये शाकपाकजत्व-  
व्यभिचारित्वादिति तु फलितार्थं इत्याहुः ।

नन्वेवं साध्यव्यभिचारानुमापकत्वेनोपाधिव्यभिचारस्यैव दोषतया  
स एव उपन्यसितमुचितो नोपाधिरिति प्रागुक्तदोषो दुर्वार इत्य-

स उपाधिः तत्त्वज्ञ साक्षात् परम्परया वेति नार्थान्तरम् । किञ्च अर्थान्तरस्य पुरुषदोषत्वादाभासान्त-

स्वरसादाह, 'यद्वेति, 'यः साधनव्यभिचारौति यः साधनव्यभिचारौ स उपाधिः साध्यव्यभिचारोन्नायकः स स्वयमेव साधने साध्यव्यभिचारोन्नायकः इति योजना, स्वरूपसम्बन्धेन तद्व्यभिचारस्वेव तस्यापि व्यभिचारितासम्बन्धेन साधनवृत्तित्वात् साध्यव्यभिचारव्याप्यत्वाच्च, तथाच वल्लिर्धूमव्यभिचारौ आर्द्रैन्धनवत्त्वादित्यादिरेव व्यभिचारानुमानप्रयोगः । न च व्यभिचारितादिसम्बन्धस्य वृत्त्यनियामकतया न व्याप्यतावच्छेदकत्वसम्भव इति वाच्यं । वृत्त्यनियामकसम्बन्धाभावप्रतियोगितावच्छेदकत्वानभ्युपगमात् व्यापकतावच्छेदकत्वासम्भवेऽपि<sup>(१)</sup> व्याप्यतावच्छेदकत्वे बाधकाभावादिह हेतावुपाधिरिति प्रतीत्या व्यभिचारितासम्बन्धस्यापि वृत्तिनियामकत्वाच्चेति भावः । करका पृथिवी कठिनसंयोगवत्त्वादित्यादौ साधनव्यापकस्यानुष्णाग्नौतत्त्ववत्त्वाद्युपाधेर्विशेषदर्शिनां साधने साध्यव्यभिचारानुमापकत्वसम्भवात् व्यभिचार्यन्तमुपाधिविशेषणं, साधनं व्यभिचारि यस्येति व्युत्पत्त्या साधनाव्यापकत्वं तदर्थः, 'तत्त्वच्चेति विविष्टसाध्यव्यापकोपाधेस्तत्त्वच्चेत्यर्थः, 'साक्षात्' प्रागुक्तरीत्या विशेषणव्यभिचारित्वादिविशेषणसहकारेण साक्षात्, 'परम्परया वा' पूर्वपक्षग्रन्थोक्तक्रमेण शुद्धसाध्यव्यभिचारानुमापकविशिष्टसाध्यव्यभिचारानुभितिद्वारा वा, 'नार्थान्-

(१) व्यापकत्वान्तर्गताप्रतियोगित्वघटकप्रतियोगित्वस्य व्यापकताघटकसम्बन्धावच्छिन्नत्वेन विशेषितत्वादिति भावः ।

रस्य तत्राभावादुपाधिरेव भावत्वादिकं दोषः । न चैवं  
शब्दोऽभिधेयः प्रमेयत्वादित्यत्राभावसत्त्वं जलं प्रमेयं  
रसवत्त्वादित्यत्र पृथिवीत्वमुपाधिः स्यात्<sup>(१)</sup>, देवत्वान्वयि-

न्तरमिति ध्वंसो विनाशो जन्यत्वादित्यादौ विशिष्टसाध्यव्यापक-  
भावत्वाद्युद्भावने नार्थान्तरमित्यर्थः । न च तथापि 'परम्परया वेति  
पक्षे प्रथमं तदुद्भावनेऽप्राप्तकालत्वमस्यैव अन्यथा उपाधिसाधक-  
तत्साधकादिपरम्परया अप्युद्भावनेऽप्राप्तकालत्वं न स्यादिति वाच्यं ।  
प्रथमं शुद्धसाध्यव्यभिचार एव उद्भाव्यः, तत्र कथन्तायां तद्धेतुत्वेन  
विशेषणव्यभिचारित्वे सति विशिष्टसाध्यव्यभिचारित्वयुद्भाव्यं, तत्र  
विशेषकथन्तायां तद्धेतुत्वेन विशिष्टसाध्यव्यापकोपाधिरुद्भाव्यः, इत्य-  
प्राप्तकालत्वविरहात् । न च तथापि साक्षात् शुद्धसाध्यव्यभिचा-  
रानुमापकत्वात् विशिष्टसाध्यव्यापकोपाधेर्दोषत्वं न स्यादिति वाच्यं ।  
साक्षात्परम्परासाधारणव्यभिचारानुमापकत्वस्यैव दोषतायां तन्मत्वा-  
दिति भावः ।

केचित्तु प्राकारान्तरेण लक्ष्यतावच्छेदकं निर्वृत्ति, 'यद्वेति,  
'यः साधनव्यभिचारी' साधननिष्ठो चञ्चलव्यभिचारः, 'साध्यव्यभिचारो-  
न्नायकः' साध्यव्यभिचारानुमितिरूपयोग्यः, साध्यव्यभिचारसमा-  
नाधिकरण इति यावत्, स उपाधिरित्यर्थः, द्रव्यं पृथिवीत्वादि-  
त्यादिसद्देतौ साध्यव्यापकस्य गुणवत्त्वादेः साध्यव्याप्यस्य घटत्वादेशोपा-

(१) पृथिवीत्वमुपाधिः स्यादिति वाच्यं इति ख० ।

त्वसाधकप्रकारेण तप साध्यसिद्धेरुपाधेर्विशिष्टाव्याप-  
कत्वात् । न च पक्षेतरे स्वव्याघातकत्वेनानुपाधावति-

धितावारणाय निष्ठान्तं व्यभिचारविशेषणं, तथाच साधनतावच्छेद-  
कावच्छिन्नसाधनाधिकरणत्ववृत्तित्वविशिष्टचद्रुसावच्छिन्नव्यभिचारि-  
त्वनिरूपिताधिकरणत्वं साध्यव्यभिचारसमानाधिकरणं तद्रुसवत्त-  
नुपाधिरिति फलितं । द्रव्यं विशिष्टवत्त्वादित्यादौ विशिष्टस्थान-  
तिरिक्तत्वेऽपि गुणवत्त्वाद्दौ नातिव्याप्तिः, न वा आश्रयभेदेऽपि  
एकधर्मावच्छिन्नव्यभिचारस्यैकत्वमये द्रव्यं पृथिवीत्वादित्यादौ घट-  
त्वादावतिव्याप्तिस्तदवस्था पृथिवीत्वाधिकरणत्वनिष्ठघटत्वव्यभिचारस्य  
यत्ताद्यधिकरणत्ववृत्तित्वेऽपि पृथिवीत्वाधिकरणत्ववृत्तित्वविशिष्टघ-  
टत्वव्यभिचारित्वनिरूपिताधिकरणत्वस्य पृथिवीत्वाधिकरणत्व एव  
सत्तात्तत्र साध्यव्यभिचारित्वविरहात् । न च तद्धारणाय व्याप्यत्वमेव  
स्वरूपयोग्यत्वं विवक्ष्यतामिति वाच्यं । विशिष्टव्यापकोपाधावव्या-  
प्यापत्तेः तद्व्यभिचारस्य साधनाधिकरणत्वनिष्ठत्वेऽपि साध्यव्यभिचा-  
राव्याप्यत्वात् आश्रयभेदेन व्यभिचारभेदाभावात् पूर्ववच्छिन्नसाध-  
नानाधिकरणत्ववृत्तित्वेनापि तद्रुसो विशेषणीयः तेन धूमवान्  
कठेरित्यादौ साध्यविरुद्धे जलत्वाद्दौ नातिव्याप्तिः उक्तिवैषम्याच्च  
पूर्वज्ञात् भेदः । रूपवान् द्रव्यत्वादिदं गुरु रूपादित्यादौ पृथि-  
वीत्वाभाव-घटत्वाभावादावतिव्याप्तिवारणन्तु पूर्ववत् । 'तत्त्वमेति  
व्यभिचारानुमित्युपाधावकत्वमेत्यर्थः, 'साक्षात्परम्परया वेति शब्द-  
साध्यव्यापकस्यले साक्षात्, विशिष्टसाध्यव्यापकस्यले च पूर्वपक्षोक्त-

व्याप्तिः तत्रानुसृतकर्त्तव्याभावेन साध्यव्यापकत्वानिश्च-  
यात् सहरक्षणादर्शनादेस्तेन विना संशयकत्वादित्युक्तं ।  
बाधोक्तीते चानुसृतकर्त्तव्येति, एवं पर्वतावयववृ-  
त्तव्यादेरपि नोपाधित्वं पञ्चमाश्रयव्यवर्तकविशेष-

क्रमेण शुद्धसाध्यव्यभिचारानुभाषकविशिष्टसाध्यव्यभिचारानुमिति-  
द्वारा इत्यर्थः, 'नार्थान्तरमिति ध्वंसोपिनाशौ अन्यत्वादित्यादौ  
विशिष्टसाध्यव्यापकभावत्वाद्युद्भावेन नार्थान्तरमित्यर्थः, एतच्च प्रवृत्तात्  
व्यवकथनं, न तु सत्त्वावच्छेदकघटकतपैव तद्विधानं तत्र  
रूपप्रयोगताया एव घटकत्वादित्याहुः ।

अनुपपन्नवादेनाह, 'किञ्चेति, 'पुरुषदोषत्वादिति उद्भावकस्य  
पुरुषस्य नियच्छान्तावकाशत्वादित्यर्थः, मात्रपदादुपाधिजिज्ञासकव्यभिचा-  
रानुमितिप्रतिबन्धकत्ववच्छेदः, 'आथागान्तरस्य' व्यभिचारानुमिति-  
प्रतिबन्धकान्तरस्य, 'तत्र' व्यभिचारानुमितिपूर्वदंष्ट्रायां, 'उपाधिरेवेति  
तत्र ध्वंसो विनाशौ अन्यत्वादित्यादौ भावत्वादिकमुपाधिर्दोष एवेति  
योगना, तेनापि परम्परया व्यभिचारानुमितिनिर्वाह्येण परोक्षसाध्य-  
विद्विप्रतिबन्धस्य उद्देशस्य निर्वाहादिति भावः । 'न चैवमिति, 'एवं'  
अवच्छिन्नसाध्यव्यापकस्यापि दोषताप्रयोजकत्वे, 'अभावत्वमिति,  
तत्र पचधर्तगुणत्वावच्छिन्नसाध्यव्यापकत्वाज्ञानरत्नवादिनि भावः ।  
'वृथिवीत्वमिति, तत्र पचधर्तवत्त्वावच्छिन्नसाध्यव्यापकत्वज्ञानरत्न-  
वादिनि भावः । 'उपाधिः स्यात्' दोषः स्यात्, 'तत्र' ब्रह्म-जज्ञयोः  
'विशिष्टसाध्यव्यापकत्वादिति पचधर्तगुणत्वावच्छिन्नसाध्यव्यापकत्वानिश्च-

खवत्पात् । अतएव धूमे चाद्र्धनप्रभववह्निमत्त्वं,

यादित्यर्थः । केवलान्वयित्वसाधकमानाभावे तु<sup>(१)</sup> तस्य तथावुद्धि-  
रपि दोषो भवत्येवेति भावः । 'खव्याघातकत्वेनेति उपाधि-  
मात्रस्य दूषकत्वव्याघातकत्वेनेत्यर्थः, पक्षेतरस्योपाधित्वे सर्वत्रैव तादृ-  
ग्रोपाधिसम्भवेनानुमानमात्रोच्छेदे व्यभिचारानुमानाधीनस्योपाधे-  
र्दूषकत्वस्यासम्भवादिति भावः । 'अतिव्याप्तिः' उक्तरूपज्ञानस्यदोष-  
त्वापत्तिः, द्रव्यत्वाद्यवच्छिन्नसाध्यव्यापकत्व-तदवच्छिन्नसाधनाव्यापक-  
त्वज्ञानस्य तत्रापि सम्भवादिति भावः । 'साध्यव्यापकत्वानिश्चया-  
दिति यद्दूर्गावच्छिन्नसाधनाव्यापकत्वं तद्दूर्गावच्छिन्नसाध्यव्यापक-  
त्वानिश्चयादित्यर्थः, यदा तु तन्निश्चयो भवति तदा वाधोन्नीत-  
पक्षेतरे तन्निश्चयइव तन्निष्ठतन्निश्चयोऽपि भवत्येव दोष इति  
भावः । 'संग्राहकत्वात्' व्यभिचारसन्देहाघायकत्वात् । 'अनुकूल-  
तर्कोऽस्येवेति उपाध्यभाववति पक्षे साध्याभावनिश्चयस्यैव व्यभिचार-  
संग्रहप्रतिबन्धकत्वेनानुकूलतर्कत्वादिति भावः । 'नोपाधित्वं' नोपाधि-  
त्वनिश्चयः, 'पक्षमात्रेति, यद्यपि पर्वतावचदहोपादेरपि व्यावर्तनात्  
पक्षमात्रव्यावर्तकविशेषणवत्त्वं पाधित्वानिश्चये प्रयोजकं तथापि  
तुल्यार्थकवतिप्रत्ययोत्तरत्वप्रत्ययात्पक्षमात्रव्यावर्तकं विशेषणं यत्र  
पक्षेतरे तत्तुल्यत्वादित्यर्थः, तथाच तत्र यथानुकूलतर्कभावेन न  
तादृगसाध्यव्यापकत्वानिश्चयः तथात्रापि भावः । 'अतएवेति  
व्यापकतायाश्चानुकूलतर्कसत्त्वादेवेत्यर्थः, 'उपाधिः' उपाधित्वेन

(१) केवलान्वयित्वसाधकमानाभावतारे त्विति ख० ग० ।

द्रव्यवहिरिन्द्रियप्रत्यक्षत्वे उद्भूतरूपवत्त्वं, मित्रातनय-  
श्यामत्वे शाकपाकवत्त्वं, अन्यानित्यत्वे भावत्वमुपाधिः,  
तदुत्कर्षेण साध्योत्कर्षात्, अनन्यथासिद्धान्वयव्यतिरे-  
कतो वैद्यकात् कारणतावगमेन घटोन्मज्जनप्रसङ्गेन  
साध्यव्यापकतानिश्चयात्, तत् किं कार्य-कारणयोरेव  
व्याप्तिः तथाच बहु व्याकुली स्यादिति<sup>(१)</sup> चेत् । न ।

निश्चितः, यथासंख्यमनुकूलतर्कमाह, 'तदुत्कर्षेणेति आर्द्रेन्धनप्रभ-  
ववद्भुत्कर्षेण धूमोत्कर्षादित्यर्थः, द्वितीये तर्कमाह, 'अनन्यथेति  
द्रव्यवहिरिन्द्रियप्रत्यक्षं प्रति उद्भूतरूपस्यानन्यथासिद्धान्वयव्यतिरेका-  
दित्यर्थः<sup>(२)</sup>, तृतीये तर्कमाह, 'वैद्यकादिति, वैद्यकेन नरीयश्यामत्वं  
प्रति शाकपाकस्य जनकत्वकथनादिति भावः । 'कारणतावगमेनेति  
आर्द्रेन्धनप्रभववद्भ्यादीनां धूमादिकं प्रति कारणतानिश्चयेनेत्यर्थः,  
चतुर्थे तर्कमाह, 'घटोन्मज्जनेति ध्वंसस्यापि ध्वंसप्रतियोगित्वे ध्वंस-  
प्रतियोगिनो घटस्य पुनः परावृत्तिप्रसङ्गेनेत्यर्थः, ध्वंस-प्रागभावान-  
धिकरणकालस्य प्रतियोग्यधिकरणत्वनिश्चयादिति भावः । इदमा-  
पाततः प्रतियोगिनो ध्वंसेऽपि यथा प्रागभावध्वंसस्तथा ध्वंसस्य  
ध्वंसेऽपि प्रतियोगिनो ध्वंस इत्युक्तावेव घटोन्मज्जनप्रसङ्गवारणस-  
म्भवात् । वस्तुतस्तु अप्रामाणिकानन्तध्वंसप्रतियोगिनिष्ठतत्कारणत्व-  
कल्पनामपेक्ष्य ध्वंसानन्तत्वकल्पनैव लघीयसीति लाघवमेवानुकू-

(१) वज्रधा व्याकुली स्यादिति क०, ख० ।

(२) वायोः स्पर्शनप्रत्यक्षमपि न भवतीति मतेनेदं ।



तदुपजीव्यान्वयामध्यनुकूलतर्कस्य व्याप्तिग्रहात्, यत्र  
 च साध्योपाध्योर्हेतु-साध्ययोर्वा व्याप्तिग्राहकसाध्या-  
 न्नैकत्र व्याप्तिनिश्चयस्तत्र सन्दिग्धोपाधित्वं व्यभिचा-  
 रसंशयोपधायकत्वात् । यदा च तादृश्येकचानुकूलत-  
 र्कावतारस्तदा हेतुत्वमुपाधित्वं वा निश्चितं पक्षेतरस्य  
 स्वव्याघातकत्वेन न हेतुव्यभिचारसंशयकत्वमतो न  
 सन्दिग्धोपाधिरपि सः ।

लतर्क इति तत्त्वं । 'कार्य-कारणयोः' कार्य-कारणभावग्राहक-  
 प्रमाणविषयौभूतयोः, यथाश्रुते प्रकारणीभूतस्यापि ग्राहकपाकत्र-  
 त्वादेर्यापकत्वकथनादाशङ्कानुत्थितेः । 'वड व्याकुलौति जलत्वादिना  
 द्रव्यत्वाद्यनुमानं न स्यादित्यर्थः । 'तदुपजीव्येति 'तत्' कार्य-कारण-  
 भावज्ञानं, तदुपजीव्येत्यर्थः, द्रव्यत्व-जलत्वादिसर्वत्रापि जलत्वं यदि  
 द्रव्यत्वव्यभिचारि स्यात् तदा संयोगव्यभिचारि स्यात् संयोगत्वाव-  
 ष्टिन्नं प्रति द्रव्यत्वेन समवायिकारणत्वादिति परम्परया संयोग-  
 त्वावष्टिन्न-द्रव्यत्वावष्टिन्नकार्य-कारणभावग्रहोपजीवी तर्क एव  
 व्याप्तिग्राहक इति भावः । नन्वेवं हेतु-साध्ययोः साध्योपाध्योश्च  
 सहचारदर्शन-व्यभिचारानिश्चयमात्रं व्याप्तिग्राहकं वर्तते नाबुद्ध-  
 तर्कः तत्रोपाधौ साध्यव्यापकत्वानिश्चयादुपाधित्वज्ञानं दोषो न  
 स्यादित्यत आह, 'यत्र चेति, 'तत्र सन्दिग्धोपाधित्वमिति तत्रो-  
 पाधिसन्देहो दोष इत्यर्थः । 'तदा हेतुत्वमिति तदा 'हेतुत्वं' हेतौ

यत्तु पक्षेतरस्य यथा साध्यव्यापकत्वं तथा साध्या-  
भावव्यापकत्वमपि ग्राहकत्वाभ्यात्, तथाचोभयव्यापक-  
निरुक्त्या साध्य-तद्भावाभ्यां पक्षे निवर्तितव्यम् नचैवं,

साध्यव्यापकत्वं, 'उपाधित्वं' उपाधौ साध्यव्यापकत्वमित्यर्थः, यदा  
हेतौ तर्कावतारस्तदा हेतौ साध्यव्यापकत्वनिश्चयः, यदा साध्ये  
तर्कावतारस्तदा उपाधौ साध्यव्यापकत्वनिश्चय इति भावः ।  
नचैवं पक्षेतरस्य उपाधित्वनिश्चयाभावेऽप्युपाधित्वसन्देहोऽस्त्वित्यत-  
श्चाह, 'पक्षेतरस्येति, 'द्वयाघातकत्वेन' उपाधिमात्रस्य दूषकत्वव्या-  
घातप्रसङ्गेन, 'चन्द्रिग्योपाधिरपि सः, तस्योपाधित्वसन्देहोऽपि न  
दोषः । इदमापाततः उपाध्यन्तरस्य उपाधित्वसन्देहवत्पक्षेतरस्यो-  
पाधित्वसन्देहेनापि व्यभिचारसंग्रहजनने बाधकाभावात्, न हि  
प्रयोजनचतिभिर्वा सामग्रीं कार्यं नार्जयति, न वा प्रयोजन-  
चतिः यदा यथाकथञ्चिदनुसूयतर्कात् पक्षेतरे साध्यव्यापकत्वं  
निश्चित्य तदनुसूयतर्कात् पक्षेतरत्वव्यभिचारित्वे साध्यव्यभिचा-  
रित्वव्यापकत्वनिश्चयो जातस्तदैव व्यभिचारानुमाने पक्षेतरान्तरस्य  
उपाधित्वसंग्रहासक्तत्वेन व्यभिचारानुमानसम्भवात् । न च पक्षे-  
तरस्योपाधित्वसन्देहाहितव्यभिचारशङ्का पक्षीयव्यभिचारसंग्रहयवन्न  
प्रतिबन्धित्वेति वाच्यं । न हि व्यभिचारज्ञानत्वेन प्रतिबन्धकतामते  
पक्षेतरत्वनिष्ठोपाधित्वज्ञानान्यत्वं पक्षीयव्यभिचारसंग्रहान्यत्वं वा  
प्रतिबन्धकतावच्छेदोऽनुप्रवेशं, गौरवान्मानाभावाच्च । वस्तुतस्तु  
विशेषादर्शनदशायां उपाध्यन्तरस्योपाधित्वसन्देहवत् यदा पक्षेतर-

तथाच पक्षतरः साध्यव्यापकतासंशयेन सन्दिग्धः कथं परं दूषयेदिति<sup>(१)</sup>, तन्न, तथाहि साध्यव्यापकतापक्ष-मालम्ब्य हेतुव्यभिचारसंशयाधायकत्वेन दूषणं स्या-देव । ननु यत्रोपाधिस्तत्रानुबूलतर्कोयदि नास्ति तदा तद्भावेनैव व्याप्तेरग्रहः, अथास्ति तदा साध्यव्याप्या-

ख्योपाधित्वसन्देहस्तदापि व्याप्तिग्रहो न भवत्येव परन्तु कथक-सङ्गदाद्यानुरोधात् कथायां सन्दिग्धोपाधित्वेन पक्षेतरो नोद्भाव्यते इत्येव तत्त्वं ।

‘यत्त्विति, ‘यथाग्रब्दो यदेत्यर्थकः’ ‘साध्यव्यापकत्वं’ साध्यव्याप-कत्वनिश्चयः, ‘तथा’ तदा, ‘साध्याभावव्यापकत्वमपीति, निश्चिनुया-दिति शेषः, ‘ग्राहकसाम्यादिति पक्षातिरिक्ते सहचारज्ञानव्यभिचा-रज्ञानरूपयोर्ग्राहकयोः साम्यादित्यर्थः, ‘उभयव्यापकनिवृत्त्येति उभ-यव्यापकत्वेन निश्चितस्य तस्य निवृत्त्या हेतुनेत्यर्थः, ‘पक्षे निवर्त्तित्वं’ पक्षविशेष्यकानुमितिखरूपयोग्यनिवृत्ति-प्रतियोगिभ्यां भूयेत, तद्धे-तुकानुमितिखरूपयोग्यत्वञ्च तद्व्यापकतानिश्चयत्वं, तथाच साध्य-तद्भावयोरुभयत्रैव पक्षेतरत्वाभावव्यापकतानिश्चयः स्यादिति फलितं, ‘न चैवमिति च्छेदः, न च साध्य-तद्भावयोर्विरुद्धयोरेकधर्मव्याप-कतानिश्चयइत्यर्थः, सत्प्रतिपक्षस्थले च हेतुभेदेनैव तदभ्युपगमात् अतएवासाधारणस्य व्यापकताग्रहप्रतिबन्ध एव दूषकतावीजमिति भावः । ‘साध्यव्यापकतासंशयेनेति साध्यव्यापकतासंशयस्यैव विषय-

(१) तथापि हीति क० । तथापीति ग० ।

व्यापकत्वेनोपाधिः साध्याव्यापकत्वनिश्चयान्नोपाधि-  
रित्युभययापि नोपाधिदूषणं । न च व्याप्त्यभावव्याप्य-  
मुभयमत उपाधिरपि तदभावोन्नयनेन दोष इति

त्वेनेत्यर्थः, 'सन्धिग्धः' साध्यव्यभिचारव्याप्यत्वेन सन्धिग्धः, 'परं'  
हेतुनिष्ठव्याप्तिग्रहं, 'दूषयेत्' विघटयेत् । 'साध्यव्यापकतापचमा-  
लस्य' साध्यव्यापकताकोटिमालस्य साध्यव्यापकताकोटिसन्देहवि-  
षयीभूयेति यावत्, 'दूषणं' ख्यादेवेति, यदि मदुक्तगतिर्नानुसरणी-  
येति भावः ।

'यत्रोपाधिः' यत्रोपाधित्वज्ञानं दोषः, 'साध्यव्याप्येति साध्य-  
व्याप्याव्यापकत्वज्ञानेनेत्यर्थः, अनुकूलतर्केण हेतौ साध्यव्याप्यत्व-  
निश्चयादिति भावः । 'नोपाधिः' नोपाधित्वज्ञानं, 'नोपाधिदूषणं'  
नोपाधित्वज्ञानं दूषणं । शङ्कते, 'व्याप्यभावेति, 'उभयमिति  
उपाधिरनुकूलतर्काभावश्चेत्यर्थः, 'तदभावोन्नयनेन' व्याप्यभावोन्नय-  
नेन, 'आत्मलाभार्थमिति साध्यव्यापकताज्ञानलाभार्थमित्यर्थः, हेतौ  
साध्यव्याप्तिग्राहकानुकूलतर्कसत्त्वे तत्र साध्यव्याप्यत्वनिश्चयात् तद-  
व्यापकत्वज्ञानेन साध्यव्यापकत्वज्ञानं न ख्यादिति भावः । 'सोपा-  
धाविति साध्य-तदभावव्यवहारिते सोपाधावित्यर्थः, 'एकत्रेति,  
अवच्छेदकभेदं विना इति शेषः, 'उपाधिरवश्यं वाच्य इति<sup>(१)</sup>

(१) 'उपाधिरावश्यकः' इत्यत्र 'उपाधिरवश्यं वाच्यः' इति कस्यचिन्मू-  
लपुस्तकस्य पाठमनुसृत्य 'उपाधिरवश्यं वाच्यः' इति पाठोद्धृतोमथुरानाथे-  
नेति सम्भाव्यते ।

वाच्यं । उपाधेरात्मजाभार्थमनुब्रूयततर्काभावोपजीव-  
कत्वेन तस्यैव दोषत्वादिति चेत् । न । सोपाधावेकत्र  
साध्य-तद्भावसम्बन्धस्य विरुद्धत्वाद्वाच्छेदभेदेन तदु-

सामानाधिकरणसंसर्गेण उपाधिरवश्यं वाच्यः इत्यर्थः, एकव्यक्तिक-  
व्यभिचारिहेतुकस्थले सामानाधिकरणसंसर्गेण उपाधेरवच्छेदकत्वं  
विनान्यथावच्छेदकताया दुर्बलत्वात् धूमवान् वङ्गेरित्यादौ च नैक-  
व्यक्तिः साध्य-तद्भावसामानाधिकरणा । न च द्रव्यं सत्त्वादित्यादा-  
वपि गुणान्यत्वविशिष्टसत्तात्व-द्रव्यवृत्तित्वादिकमेवावच्छेदकं भवि-  
ष्यतीति वाच्यं । सामानाधिकरणसम्बन्धेन गुणान्यत्व-द्रव्यत्वाद्यपेक्षया  
तस्य गुरुत्वात् । न च घटत्वादिकं सामानाधिकरणसंसर्गेणव-  
च्छेदकं भविष्यतीति वाच्यं । सामानाधिकरणसंसर्गेण तद्विशिष्टस्य  
साधनस्य साध्यन्यूनवृत्तित्वादिति भावः<sup>(१)</sup> । 'आवश्यक इति, तं  
विना साध्यव्यापकत्वज्ञानासम्भवात् इति भावः । 'विनिगमका-  
भावादिति, इदमापाततः साध्यसम्बन्धितावच्छेदकत्वेन उपाधिस-  
रूपत्वावश्यकत्वेऽपि तस्य उपाधित्वज्ञानं कथं दोषः स्यात् उपजीव-  
त्वेनानुब्रूयततर्काभावस्यैव दोषत्वसम्भवात् । वस्तुतस्तु उपाधित्वज्ञाना-  
नुब्रूयततर्काभावयोरुपजीव्योपजीवकभावो न कार्य-कारणभावः अस-  
म्भवात्, न वा व्याप्य-व्यापकभावः तस्य प्रतिबन्धकतायामविनि-  
गमकत्वात् तद्भेदोरेवेत्यादिनियमस्य कारणतायामेव विनिग-

(१) अतिप्रसक्तस्यैव न्यूनवृत्तेरपि नावच्छेदकत्वमिति भावः ।

भयसम्बन्धो वाच्यः, तथाच साधने साध्यसम्बन्धिता-  
वच्छेदकं रूपं उपाधिरावश्यकः<sup>(१)</sup> तद्यानुकूलतर्का-

मकत्वात्, अतएव परम्परया यथाकथञ्चिदुपयोगित्वमपि न  
तथा । न च उपजीव्योपजीवकभावविरहेऽपि अनुकूलतर्कस्यावश्यं  
व्याप्तिग्राहकत्वात् तदभावादेव व्याप्तेरग्रहोपपत्तौ कियुपाधित्वज्ञान-  
स्य दोषत्वेनेति वाच्यं । अनुकूलतर्कस्य व्याप्तिग्रहं प्रत्यहेतुत्वेन यदानु-  
कूलतर्कस्फुर्त्तिर्नास्ति प्रकारान्तरेण च व्यभिचारग्रहोऽपि नास्ति  
अथच उपाधित्वज्ञानं वर्त्तते तदापि व्याप्तिग्रहप्रतिपत्त्येव तद्दोष-  
ताया आवश्यकत्वादित्येव तत्त्वं ।

‘यद्वावृत्त्येति, वैशिष्ट्यं ततोऽर्थः, ‘साधनत्वेत्यनन्तरं अधिकरण-  
इति पूरणीयं, तथाच यद्वावृत्तिविशिष्टस्य यद्गुणावच्छिन्नप्रतियो-  
गिताकाभावविशिष्टस्य यस्य साधनस्याधिकरणे ‘साध्यं निवर्त्तते’  
साध्याभावो वर्त्तते तद्गुणावच्छिन्नत्वं तत्र हेतावुपाधित्वमित्यर्थः,  
उद्भूतरूपवत्त्वाद्यभावविशिष्टस्य साधनस्याधिकरणे वाच्यादौ प्रत्यक्ष-  
त्वाद्यभावस्य सत्त्वान्न विशिष्टसाध्यव्यापकोऽव्याप्तिः, एवञ्च यद्गुणाव-  
च्छिन्नप्रतियोगिताकाभावाधिकरणीभूतं साधनतावच्छेदकावच्छि-  
न्नाधिकरणं साध्याभावाधिकरणं तद्गुणावच्छिन्नतनुपाधित्वमिति  
फलितं, तेन द्रव्यं विशिष्टवत्त्वादित्यादौ विशिष्टज्ञानतिरिक्तत्वे-

(१) साधने साध्यसम्बन्धितावच्छेदकरूपमनुकूलतर्काभावोपजीवनमन्तरे-  
योपाधिरावश्यक इति मुद्रितपुस्तकपाठः परन्त्वयं न समीचीनः ।

भावोऽप्यावश्यक इति उभयोरपि विनिगमकाभावा-  
दूषकत्वात् ।

ऽपि गुणवत्त्वादौ नातिव्याप्तिः, रूपवान् द्रव्यत्वादित्यादौ पृथिवी-  
त्व-घटत्वाद्यभावस्तु न लक्ष्यः, तथा महाकालान्यो घटादित्यादौ  
खण्डकालभेदादिरपि न लक्ष्यः, वङ्गिमान् धूमादित्यादौ महा-  
नसत्वाद्यभावाधिकरणस्य जलहृदादेः साध्याभावाधिकरणत्वेऽपि तद-  
धिकरणीभूतस्य<sup>(१)</sup> साधनाधिकरणस्य साध्याभावानधिकरणत्वात्  
महानसत्वादावतिव्याप्तिः । न चैवं द्रव्यत्वाभाववान्प्रमेयत्वादित्यादौ  
साधनव्यापकसंयोगाभावादावतिव्याप्तिः संयोगाभावाभावस्य संयोग-  
स्याधिकरणे साधनवति द्रव्ये द्रव्यत्वाभावाभावस्य सत्त्वादिति वाच्यं ।  
अधिकरणपदेन निरवच्छिन्नाधिकरणताश्रयस्य विवचितत्वात् ।  
अत्रापि साध्यसमानाधिकरणवृत्तित्वेन तद्गुणो विशेषणीयः तेन  
धूमवान् वङ्गेरित्यादौ हृदत्वाद्यभावाधिकरणेऽयोगोल्लकादौ धूमा-  
द्यभावसत्त्वेऽपि हृदत्वादौ नातिव्याप्तिरिति सङ्क्षेपः ।

अत्रचैवं व्यभिचारोच्चायकत्वेन दूषकतापत्ते लक्ष्यतावच्छेदकसुक्ता  
सम्प्रतिपचोच्चायकत्वेन दूषकत्वनये लक्ष्यतावच्छेदकमाह, 'स चेति  
स वेत्यर्थः, 'धर्म इत्यनन्तरं' 'उपाधिरित्यनुषज्यते, 'यस्याभावादिति

(१) 'तदधिकरणीभूतस्य' महानसत्वाद्यभावाधिकरणीभूतस्येत्यर्थः, 'तद-  
भावाधिकरणीभूतस्य' इति क्वाचित्कः पाठः, तादृशपाठे तत्पदेन  
महानसत्वादेः परामर्शः ।

अन्ये तु यद्वावृत्त्या यस्य साधनस्य साध्यं निवर्तते  
स धर्मस्तत्र हेतावुपाधिः, स च धर्मोयस्याभावात्

पक्षे यस्याभावात्पक्षतावच्छेदकावच्छेदेन वर्तमानात् यस्याभावात्,  
'साध्य-साधनसम्बन्धाभाव इति योजना, प्रयोजकत्वं पञ्चमर्थः तच्च  
व्यापकत्वमेव, तथाच पक्षतावच्छेदकावच्छेदेन वर्तमानस्य यदभावस्य  
व्यापकः साधनविशिष्टस्य साध्यस्याभाव इत्यर्थः, 'साधनपदं  
पक्षवृत्तिधर्मपरन्तेनाश्वो गौरश्वत्वादित्यादिविरुद्धस्वलीयसाक्षावत्ता-  
वुपाधौ वायुः प्रत्यक्षः प्रमेयत्वादित्यादौ पक्षधर्मावच्छिन्नसाध्य-  
व्यापके उद्भूतरूपादौ च नाव्याप्तिः तदभावस्यापि द्रव्यत्व-वह्नि-  
द्रव्यत्वादिरूपयत्किञ्चित्पक्षवृत्तिधर्मविशिष्टसाध्याभावव्याप्यत्वात् पक्ष-  
तावच्छेदकावच्छेदेन वर्तमानत्वाच्च । एवमग्रेऽपि सर्वत्र 'साधनपदं  
पक्षधर्मपरं, एवञ्च यद्गर्भावच्छिन्नाभावः पक्षवृत्तिधर्मावच्छिन्नसाध्या-  
भावव्याप्यः पक्षतावच्छेदकावच्छेदेन वर्तमानस्य तद्गर्भावच्छिन्नत्वमु-  
पाधित्वमिति फलितं, वायुः प्रत्यक्षः प्रमेयत्वात् गौरमित्रातनयः  
श्यामः मित्रातनयत्वादित्यादौ शुद्धसाध्याव्यापके उद्भूतरूपवत्त्व-शाक-  
पाकजत्वादावव्याप्तिवारणायवच्छिन्नान्तं साध्यविशेषणं, पर्वतो  
वह्निमान् धूमात्पर्वतो धूमवान् वह्नेरित्यादौ महानसत्वादावति-  
व्याप्यापत्त्या यत्किञ्चिद्गर्भेति विज्ञाय पक्षवृत्तिधर्मत्वमिष्टितं, पक्षवृ-  
त्तिधर्मत्वञ्च पक्षतावच्छेदकव्यापकधर्मत्वं तेन न पर्वतो वह्निमान्  
धूमादित्यादौ निर्वह्निपर्वत-महानसाधन्यतरत्वादिविशिष्टवह्नित्या-  
पके महानसत्वादावतिव्याप्तिः । न च तथाप्ययोगोलकं धूमवत्



पक्षे साध्य-साधनसम्बन्धाभावः यथा आर्द्रन्धनवत्त्वं,  
व्यावर्तते हि तद्यावृत्त्या धूमवत्त्वमयोगोलके। अतरव

वक्त्रेरित्यादौ महानसत्त्वादावतिव्याप्तिः तदभावस्यापि महानसायो-  
गोलकान्यतरत्वादिरूपपक्षधर्मावच्छिन्नसाध्याभावव्याप्यत्वादिति वाच्यं।  
तत्र तस्य लक्ष्यत्वात् महानसायोगोलकान्यतरत्वादिरूपपक्षवृत्तिध-  
र्मावच्छिन्नसाध्यव्यापकत्वे सति पक्षावृत्तितया वक्ष्यमाणलक्षणाक्रा-  
न्तत्वात् “सर्वे साध्यसमानाधिकरणाः सदुपाधयः। पक्षे सर्वाश्रये  
येषां स्व-साध्यव्यतिरेकिता” ॥ इति सिद्धान्ताच्च ‘पक्षे सर्वाश्रये’  
पक्षरूपसर्वाश्रये सर्वस्मिन् पक्षतावच्छेदकाश्रये इति यावत्, पक्ष-  
तावच्छेदकावच्छेदेन वर्तमानत्वोपपादनात् पर्वतो वङ्गिमान् धूमात्  
द्रव्यं वङ्गिमद्भूमादित्यादौ वङ्गिसामग्र्यादेर्बुदासः। हृदो वङ्गिमान्  
धूमादित्यादौ वङ्गिसामग्र्यादिश्च संग्राह्य एव सत्प्रतिपक्षोन्नायकत्वेन  
दूषकतामते साधनव्यापकस्यापि पक्षावृत्तेरुपाधित्वात्, अबाधितसा-  
ध्यकस्य लीय उपाधिश्च न संग्राह्य इति पर्वतो धूमवान् वक्त्रेरित्यादौ  
आर्द्रन्धनादौ नाव्याप्तिरिति भावः। न चैवं चर्द्धर्मावच्छिन्नप्रतियोगि-  
ताकाभावविशिष्टसाध्याभावः सकलपक्षवृत्तिलक्ष्णधर्मावच्छिन्नत्वमुपा-  
धित्वमित्येव लक्ष्यतावच्छेदकमस्तु साधवादिति वाच्यं। तस्यापि  
लक्ष्यतावच्छेदकान्तरत्वात् लक्ष्यतावच्छेदकान्तरसम्भवस्य लक्ष्यताव-  
च्छेदकादोषत्वात् लक्ष्यतावच्छेदकगौरवस्याकिञ्चित्करत्वात्। एतदेव  
लक्ष्यतावच्छेदकद्वयं अयोगोलकं धूमवद्वक्त्रेरित्यत्र शुद्धसाध्यव्या-  
पकार्द्रन्धने क्रमेण सङ्गमयति, ‘यथेति, ‘व्यावर्तते हीति, धूमवत्त्वं

तत्र साध्य-साधनसम्बन्धाभावः पक्षे एवं भावत्वव्या-  
वृत्त्या ध्वंसे जन्यत्वानित्यत्वयोः सम्बन्धो निवर्तमानः  
पक्षधर्मातावत्त्वादनित्यत्वाभावमादाय सिध्यति, तथा  
तद्वावृत्त्यायोगोलके इति योजना, 'तद्वावृत्त्येवैवैविशिष्टं' द्विती-  
यार्थः, तथाच 'हि' यस्मात्, 'तद्वावृत्तिविशिष्टे 'अयोगोलके' साधना-  
धिकरणे, 'धूमवत्त्वं व्यावर्त्तते' धूमस्याभावो वर्त्तत इत्यर्थः, एतेन  
प्रथमलक्ष्यतावच्छेदकमुपपादितं । ननु तथापि व्याप्यत्वगर्भं द्विती-  
यलक्ष्यतावच्छेदकं तत्रार्द्रैश्वनेऽव्याप्तमेव तदभावाधिकरणे पक्षीभूते-  
ऽयोगोलके शुद्धसाध्याभावसत्त्वेऽपि पक्षवृत्तिधर्मस्य विशेषणस्य सत्त्वेन  
तद्विशिष्टसाध्याभावासत्त्वादित्यत आह, 'अत एवेति साध्याभाव-  
सत्त्वादेवेत्यर्थः, 'तत्रेति, 'साध्य-साधनसम्बन्धाभावस्तत्र पक्ष इति  
योजना, 'साध्य-साधनसम्बन्धाभावः' साधनविशिष्टसाध्याभावः महा-  
नसायोगोलकान्यतरत्वादिरूपपक्षवृत्तिधर्मविशिष्टसाध्याभाव इति  
यावत्, 'तत्र पक्षे' अयोगोलकरूपपक्षे, तत्र शुद्धसाध्याभावसत्त्वे  
विशेषणसत्त्वेऽपि विशेष्याभावत्तस्य विशिष्टसाध्याभावस्यावश्यकत्वा-  
दिति भावः<sup>(१)</sup> । ननु तथापि ध्वंसो न नित्यो जन्यत्वादित्यत्र<sup>(२)</sup>

(१) अयोगोलकरूपपक्षे महानसायोगोलकान्यतरत्वरूपविशेषणस्य सत्त्वे-  
ऽपि विशेष्यीभूतस्य धूमस्याभावात् विशिष्टसाध्याभावः विशेषणा-  
भावस्येव विशेष्याभावस्य विशिष्टाभावप्रयोजकत्वादिति भावः ।

(२) न नित्य इत्यत्र नित्यत्वं ध्वंसाप्रतियोगित्वविशिष्टप्रागभावाप्रतियो-  
गित्वं, जन्यत्वादित्यत्र जन्यत्वं प्रागभावप्रतियोगित्वमात्रं न तु  
नित्यत्वाभावः अतो न साध्याविशेषः ।

वायावुद्भूतरूपवत्त्वं निवर्त्तमानं वहिर्द्रव्यत्वे सति  
प्रत्यक्षत्वं निवर्त्तयत् प्रत्यक्षत्वाभावमादाय सिद्ध्यति  
तथायोभयत्रापि पक्षे साध्याभावसिद्ध्या साध्य-साधन-  
सम्बन्धाभावोऽस्तीति । अतएव वाधानुत्तौतपक्षेतर-

जन्यत्वरूपसाधनावच्छिन्नसाध्यव्यापके भावत्वे प्रथमलक्ष्यतावच्छे-  
दकस्याव्याप्तिः तत्र साधनाधिकरणे ध्वंसे जन्यत्वरूपपचधर्मविशि-  
ष्टानित्यत्वाभावस्य ध्वंसो न जन्यत्वे सत्यनित्यः भावत्वाभावादित्यनु-  
मानसिद्धत्वेऽप्यनित्यत्वसामान्याभावरूपस्य शुद्धसाध्याभावस्य साधना-  
धिकरणे यत्त्वे मानाभावादेवं वाचुर्वहिरिन्द्रियप्रत्यक्षः प्रत्यक्ष-  
सर्गाश्रयत्वादित्यत्र द्रव्यत्वरूपपचधर्मावच्छिन्नसाध्यव्यापके उद्भूत-  
रूपवत्त्वे तस्याव्याप्तिः तत्रापि साधनाधिकरणे वाग्यादौ द्रव्यत्-  
वरूपपचधर्मविशिष्टवहिरिन्द्रियप्रत्यक्षत्वाभावस्य वायुर्न द्रव्यत्वे सति  
वहिरिन्द्रियप्रत्यक्ष उद्भूतरूपवत्त्वाभावादित्यनुमानसिद्धत्वेऽपि वहि-  
रिन्द्रियजन्यप्रत्यक्षत्वाभावरूपस्य शुद्धसाध्याभावस्य साधनाधिकरणे  
यत्त्वे मानाभावादित्यत आह, 'एवमिति, 'ध्वंसे' पक्षीभूते ध्वंसे,  
'जन्यत्वानित्यत्वयोः', 'सम्बन्धः' जन्यत्वरूपपचधर्मविशिष्टो नित्य-  
त्वाभावः, 'निवर्त्तमानः' निवृत्तिप्रतियोगित्वेन सिद्धिविषयो भवन्,  
'पचधर्मतावसादिति जन्यत्वरूपस्य विशेषणस्य पचवृत्तित्वनिश्चय-  
सङ्कारादित्यर्थः, 'अनित्यत्वाभावं' अनित्यत्वाभावरूपं शुद्धसाध्या-  
भावं, 'तथेति, 'निवर्त्तमानं' निवृत्तिप्रतियोगित्वेन ज्ञायमानं,  
'द्रव्यत्वे सतीति द्रव्यत्वविशिष्टवहिरिन्द्रियप्रत्यक्षत्वमित्यर्थः, 'निव-

स्यानुपाधित्वं स्वव्याघातकत्वेन तद्यतिरेकस्य साध्या-  
व्यावर्तकत्वादिति ।

यत्तूपाधिमाप्यस्य लक्षणं व्यतिरेकिधर्मत्वं पक्षेतरो-  
ऽपि क्वचिदुपाधिः, तत्तदुपाधेस्तु तत्तत्साध्यव्यापकत्वे

र्त्तयत्' निवृत्तिप्रतियोगित्वेनानुमापयत्, 'प्रत्यक्षाभावसादायेति  
वहिरिन्द्रियजन्यप्रत्यक्षत्वाभावरूपं शुद्धसाध्याभावसादायेत्यर्थः,  
'सिद्धति' द्रव्यत्वविशिष्टवहिरिन्द्रियजन्यप्रत्यक्षत्वनिवृत्तिः सिद्धति,  
'तथाचेति, 'साध्याभावसिद्ध्या' शुद्धसाध्याभावसिद्ध्या, 'साध्य-साध-  
नसम्बन्धाभावोऽस्तीति साधनाधिकरणे शुद्धसाध्याभावोऽस्तीत्यर्थः,  
प्रकृते पक्षैव साधनाधिकरणत्वादिति भावः । 'स्वव्याघातकत्वेन'  
'स्व' साध्याभावः, तद्व्याघातकत्वेन तदभावसाधकत्वेन साध्याभावा-  
भावव्याप्यत्वेनेति यावत्, 'साध्याव्यावर्तकत्वादिति साधनाधिकरणे  
साध्याभावावगताधिकरणत्वादित्यर्थः, पक्षवृत्तिधर्मविशिष्टसाध्या-  
भावाव्याप्यत्वाच्चेत्यपि बोध्यं, अयोगोक्तकं धूमवद्भेदिरित्यत्र पक्षेतरत्व-  
स्योपाधित्वमख्येवेति भावः ।

साध्यदायिकास्तु 'अत्रोच्यते इति कृत्वा व्यभिचारोन्नायकत्वेन  
दूषकतापक्षे लक्ष्यतावच्छेदकशुद्धा यत्प्रतिपक्षोन्नायकत्वेन उपाधेर्दूष-  
कत्वं ये वर्णयन्ति<sup>(१)</sup> तन्मते लक्ष्यतावच्छेदकमाह, 'अन्ये त्विति,  
'यद्वावृत्त्येति यत्र साधनस्य यद्वावृत्त्येति योजना, सर्वस्मिन् पक्ष-  
इति शेषः, 'यस्य साधनस्येत्यत्र येन केनचित् सम्बन्धेन सम्बन्धित्वं

(१) वदन्तीति ख० ग० ।

सति तत्तत्साधनाव्यापकत्वं । नच धूम-वह्निसत्वन्धो-  
पाधिः पक्षेतरत्वं स्यादिति वाच्यम् । आपाद्याप्रसिद्धे-

षड्यर्थः, अत्रयश्चाख्य 'यदित्यत्र, तृतीया च सहार्थं, तथाच येन  
केनापि सत्त्वन्धेन यत्साधनसत्त्वन्धिनो चख्य व्यावृत्त्या सह सर्वस्मिन्  
पक्षे साध्यं निवर्तते साध्याभावो वर्तते स तत्र हेतावुपाधिरित्यर्थः,  
उक्ततत्त्वसाध्याभावेन सहापि प्रत्यक्षत्वाद्यभावः सर्वस्मिन् पक्षे वर्तत-  
एवेति न विभिन्नसाध्यव्यापकेऽप्याप्तिः । येन केनापि सत्त्वन्धेन  
चथोक्तधर्मसत्त्वन्धित्वमेव सोपाधित्वव्यवहारप्रयोजकमिति बोधनाय  
'सत्त्वन्धिन इत्यन्तं 'यत्वेत्यख्य विशेषणं न तु तत्तत्त्वणघटकं, परन्तु  
यत्पूर्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाथावविभिन्नस्य साध्याभावस्याधिकरणं  
सकलपक्षतावच्छेदकाधिकरणं तदुर्मवत्तत्त्वुपाधित्वमित्येव लक्षणं,  
पर्वतो वह्निमान् धूमादित्यादौ महानसत्त्वान्ध्याभावविभिन्नस्य साध्या-  
भावस्याधिकरणं न पक्ष इति न तत्रातिय्याप्तिः, अयोगोलकं धूम-  
वह्नेरित्यत्र महानसत्त्वादिकञ्च लक्ष्यमेव, द्रव्यं वह्निमदुमादित्यादौ  
वह्निसामर्थ्याद्यभावविभिन्नस्य साध्याभावस्य पक्षवृत्तित्वेऽपि न सकल-  
पक्षवृत्तित्वं अतो न तत्रातिय्याप्तिः, यत्प्रतिपक्षोच्चाचकत्वेन दूषक-  
तापक्षे साधनव्यापकस्यापि पक्षवृत्तेरुपाधित्वात् साध्यव्यापक-साध-  
नव्यापकस्यापि पक्षवृत्तेरुपाधित्वात् जलद्रवो वह्निमान् धूमादि-  
त्यादौ वह्निसामर्थ्यादावतिय्याप्तिः, पर्वतो धूमवान् वह्नेरित्याद्य-  
साधितत्वात् प्राद्वैतनादावतिय्याप्तिर्वा, साध्यव्यजागाधिकरणवृत्तित्वेन च  
तदुर्मो विमेषणीयः तेनायोगोलकं धूमवह्नेरित्यादौ साध्यविरुद्धे

रिति । तन्न । अनुमितिप्रतिबन्धकज्ञानविषयतावच्छे

जलत्वादौ नातिव्याप्तिरिति न कोपि दोषः । लक्ष्यतावच्छेदकमुक्त्वा लक्षणमाह, 'स च धर्म इति, 'यस्याभावादिति पूर्ववद्वाख्येयं । लक्ष्यतावच्छेदकं लक्षणञ्च अयोगोल्लेकं धूमवद्वङ्गेरित्यत्र आर्द्रेन्वने योजयति, 'यथेति, 'व्यावर्त्तते हीति, 'हि' यस्मात्, तद्भावात्पञ्चा सह पञ्चीभूतेऽयोगोल्लेके साधनाधिकरणे धूमवच्चं व्यावर्त्तते धूमाभावो वर्त्तते इति योजना, तेन लक्ष्यतावच्छेदकं योजितं । ननु तथापि व्याप्यत्वगर्भतया लक्षणं तत्राव्याप्तेव तदभावाधिकरणे पञ्चीभूतेऽयोगोल्लेके पचवृत्तिधर्मस्य विभ्रेषणस्य सत्त्वेन तद्विभ्रिष्टसाध्याभावात्त्वादित्यत आह, 'अतएवेति, अर्थस्तु पूर्ववत् । ननु तथापि ध्वंसो न नित्यो जन्मत्वादित्यत्र साधनावच्छिन्नसाध्यव्यापके भावत्वे वायुर्वहिरिन्द्रियप्रत्यक्षः प्रत्यक्षसर्गाश्रयत्वादित्यत्र द्रव्यत्वरूपपचधर्मावच्छिन्नसाध्यव्यापके उद्भूतरूपवत्त्वे च लक्ष्यतावच्छेदकसाध्याभिः तदुभयत्र पचे शुद्धसाध्याभाववत्त्वे मानाभावादित्यत आह, 'एवमिति, अर्थस्तु पूर्ववत् । 'तथाचेति, 'साध्याभावयिञ्चेति सहार्थं द्वितीया, 'साध्यसाधनेति साधनविभ्रिष्टसाध्याभावग्रहो भवतीत्यर्थः, अतो लक्ष्यतावच्छेदकस्य न तत्राव्याप्तिरिति शेषः । 'साध्याव्यावर्त्तकत्वादिति पचे साध्याभावायमानाधिकरणत्वादित्यर्थः, 'द्वयाघातत्वञ्च पूर्वनिर्दिष्टमेवेत्याहुः ।

अन्ये तु 'यद्भावात्पञ्चा पूरणं विनैव सर्वं ग्रन्थं सम्यक् योजयन्ति, तथाहि यस्य हेतोर्यद्भावात्पञ्चा हेतुना 'साधनस्य साध्यं निवर्त्तते'

साधनसम्बन्धिसाध्याभावः साधयितुं शक्यते साधनविशिष्टसाध्याभावः  
 साधयितुं शक्यते इति यावत्, 'यस्य हेतोरित्यत्र येन केनचित्  
 सम्बन्धेन सम्बन्धित्वं षष्ठ्यर्थः, अन्वयश्चास्य 'यदित्यत्र तथाच येन  
 केनापि सम्बन्धेन यद्हेतुसम्बन्धिनो यस्य धर्मस्य व्यावृत्त्या हेतुना साध-  
 नविशिष्टसाध्याभावः साधयितुं शक्यते स धर्मस्तत्र हेतावुपाधि-  
 रित्यर्थः, 'सम्बन्धिन इत्यस्य प्रयोजनं पूर्ववत् न तु तल्लक्षणघटकं,  
 परन्तु यद्गुणव्यावृत्तिः साधनविशिष्टसाध्याभावसिद्धिस्वरूपयोग्या स  
 धर्म उपाधिरिति लक्षणं, वायुः प्रत्यक्षः प्रत्यक्षस्यर्गाश्रयत्वात्  
 गौरमित्रातनयः श्वासो मित्रातनयत्वादित्यादौ शुद्धसाध्याव्यापके  
 उद्धूतरूपवत्त्व-शाकपाकजत्वादावव्याप्तिवारणाच्च<sup>(१)</sup> साधनविशिष्टत्वं  
 साध्यविशेषणं, साधनपदञ्च पचवृत्तिधर्मपरं, तेन विरुद्धस्वलीयोपाधौ  
 वायुः प्रत्यक्षः प्रमेयत्वादित्यादौ उद्धूतरूपवत्त्वादौ च नाव्याप्तिः।  
 नन्वेवं पर्वतो वज्रिमान् धूमादित्यादावपि वज्रिशामय्यादेरुपाधि-  
 त्वापत्तिः तदभावस्यापि घृदादौ तादृशसाध्याभावसिद्धिस्वरूपयो-  
 ग्यत्वादित्यतः स्वरूपयोग्यत्वमेव ह्येततो निर्बन्धि, 'स चेति, 'यस्याभा-  
 वादिति पूर्ववद्वाख्येयं, तथाच साधनविशिष्टसाध्याभावव्याप्यत्वे सति  
 पचतावच्छेदकावच्छेदेन वर्तमानत्वमेव स्वरूपयोग्यत्वमिति भावः।  
 साधनपदं पचवृत्तिधर्मपरं, लक्षणनिष्कर्षस्तु<sup>(२)</sup> पूर्ववत्। अयोगोक्तं

(१) प्रत्यक्षत्वस्य गुणादौ श्यामत्वस्य काक-कोकिलादौ वर्तमानत्वेन तत्र  
 उद्धूतरूपवत्त्वस्य शाकपाकजत्वस्य चावर्तमानत्वात् शुद्धसाध्याव्याप-  
 कत्वमिति भावः।

(२) सर्वत्र लक्षणनिष्कर्षस्त्विति ख०। एवं सर्वत्र लक्षणनिष्कर्षस्त्विति  
 ग०।

धूमवदङ्गेरित्यत्रार्द्रैन्धनेलक्षणं योजयति, 'यथेति । नन्वार्द्रैन्धनाभावस्य कथं साधनविशिष्टसाध्याभावव्याप्यत्वमित्यत आह, 'व्यावर्त्तते हीति, 'हि' यस्मात्, 'व्यावर्त्तते' व्यावृत्तिप्रतियोगित्वेनानुमीयते, 'अयोगो-  
ल्लके' पक्षीभूते अयोगोल्लके । नन्वेतावता तदभावस्य शुद्धधूमाभावव्या-  
प्यत्वेऽपि पञ्चवृत्तिधर्मविशिष्टसाध्याभावव्याप्यत्वं न सशक्यवति तदभाववति  
पक्षे शुद्धसाध्याभावस्यत्वेऽपि विशेषणसत्त्वेन तादृशविशिष्टसाध्याभावा-  
सत्त्वादित्यत आह, 'अतएवेति, अर्थस्तु पूर्ववत् । ननु ध्वंसो न नित्यो  
जन्यत्वात् वायुर्वहिरिन्द्रियप्रत्यक्षः प्रमेयत्वादित्यादौ भावत्वोद्भूतरूप-  
वत्त्वाद्युपाधेरभावस्य जन्यत्व-द्रव्यत्वादिरूपपक्षधर्मविशिष्टसाध्याभाव-  
व्याप्यत्वज्ञानान्तदभावेन हेतुना तादृशविशिष्टसाध्याभावानुमिति-  
र्भवतु शुद्धसाध्याभावानुमितिश्च कथं स्यात् । न च तदनुमिति-  
विरहेऽपि न चतिरिति वाच्यं । निरुक्तोपाधित्वज्ञानस्य पक्षे शुद्ध-  
साध्याभावानुमितिद्वारैव दूषकत्वस्याभ्युपेयत्वात् विशिष्टसाध्याभा-  
वानुमितेः शुद्धसाध्यानुमितावप्रतिबन्धकत्वादित्यत आह, 'एवमिति,  
'एवं' निरुक्तस्योपाधित्वरूपत्वे इत्यर्थः, तज्ज्ञानादिति शेषः । यदा 'एव-  
मित्यस्य यथायोगोल्लकं धूमवदङ्गेरित्यत्रार्द्रैन्धनाभावस्य द्रव्यत्वादि-  
रूपपक्षधर्मविशिष्टसाध्याभावव्याप्यत्वज्ञानानन्तरं तदभावेन हेतुना  
पक्षे तादृशविशिष्टसाध्याभावः सिद्ध्यति न द्रव्यत्वादेः पञ्चवृत्तित्वनि-  
श्चयवत्त्वात् शुद्धसाध्याभावः सिद्ध्यति तथेत्यर्थः, अन्यथा तचाप्येतदा-  
शङ्कासम्भवादिति भावः । 'भावत्वव्यावृत्त्येत्यस्य जन्यत्वविशिष्टनित्यत्वा-  
भावाभावव्याप्यत्वज्ञानानन्तरमित्यादि, अग्रेऽपि 'तथेत्यस्य द्रव्यत्ववि-  
शिष्टवहिरिन्द्रियप्रत्यक्षत्वाभावव्याप्यत्वज्ञानानन्तरमिति शेषः, 'तथा-



दकमुपाधित्वमिह निरूप्यं तच्च न व्यतिरेकित्वमतिप्र-  
सङ्गात् विशेषलक्षणे वह्नि-धूमसम्बन्धे पक्षेतरस्योपाधि-  
त्वप्रसङ्गाच्च ।

चेत्यादिग्रन्थस्तु साम्प्रदायिकवद्योजनीयः । 'साध्यव्यावर्तकत्वादित्यस्य  
तु निरुक्तसाध्याभावसिद्धिखरूपयोग्यत्वाभावादित्यर्थः, इति ह्यं  
पक्षवितेन ।

'व्यतिरेकधर्मत्वमिति, केवलान्वयिनः प्रमेयत्वादेः खरूप-  
सम्बन्धेन कुत्रापि नोपाधित्वमिति व्यतिरेकित्वोपादानं, तथाच  
तत्सम्बन्धेन स्वप्रतियोग्यनधिकरणे वर्तमानस्याभावस्य प्रतियोगि-  
तावच्छेदको यो धर्मस्तद्वत्त्वं तेन रूपेण तत्सम्बन्धेनोपाधित्वमिति  
फलितं, तेन प्रमेयत्वादेः समवायसम्बन्धेनाभावप्रतियोगित्वेऽपि न  
खरूपसम्बन्धेनोपाधित्वं, न वा खरूपसम्बन्धेन संयोगाभावादेरुपाधित्वं  
तेन सम्बन्धेन तदनधिकरणप्रसिद्धेः<sup>(१)</sup> सम्बन्धविशेषलाभायैव धर्मपद-  
मिति भावः । 'तत्तदुपाधेरिति तत्तत्साध्यक-तत्तद्धेतुकोपाधेरित्यर्थः,  
लक्षणमित्यनुषज्यते, 'धूम-वह्निसम्बन्धोपाधिरिति धूमाद्यापकत्वे सति  
वह्नित्यापकत्वरूपधूम-वह्निसम्बन्धावच्छिन्नत्वेनाभिमतोपाधिपदवाच्य-  
ताश्रय इत्यर्थः, व्यतिरेकिधर्मत्वावच्छिन्नोपाधिपदवाच्यताश्रयवा-  
रणायाभिमतान्तं वाच्यताविशेषणं । यद्यपि धूमाद्यापकत्वे सति

(१) खरूपसम्बन्धेन संयोगाभावाभावस्य संयोगस्य वृत्तादौ सत्त्वेऽपि  
संयोगरूपाभावप्रतियोगिनः संयोगाभावस्यानधिकरणत्वं न वृत्तादे-  
रतो न संयोगाभावादेरुपाधित्वमिति भावः ।

केचित्तु साधनव्यापकोऽप्युपाधिः क्वचिच्च पञ्चाट-  
त्तिर्हेतुः यथा करका पृथिवी कठिनसंयोगात् इत्यत्रा-  
नुष्णाशीतस्पर्शवत्त्वं । नच तत्र स्वरूपासिद्धिरेव दोषः,  
सर्वोपाधेर्दूषणान्तरसङ्गरादित्याहुः ।

वक्षिष्यापकत्वं यदि उपाधिपदवाच्यतावच्छेदकं स्यात् तदा तदव-  
च्छिन्नोपाधिपदवाच्यतामयः पचेतरः सादित्यापादने वैयधिकरणं,  
तथापि उपाधिपदवाच्यतावच्छेदकत्वं यदि धूमाव्यापकत्वे सति  
वक्षिष्यापकतासामान्यनिष्ठं स्यात्तदा पचेतरनिष्ठधूमाव्यापकत्वविशि-  
ष्टवक्षिष्यापकतामिष्टमपि सादित्यापादने तात्पर्यं । 'घ्रापाद्येति  
धूमाव्यापकत्वविशिष्टवक्षिष्यापकत्वाप्रसिद्ध्या तद्घटितापाद्याप्रसिद्धे-  
रित्यर्थः, तद्घटितापादकाप्रसिद्धेद्येत्यपि बोध्यं । ननु सामान्यलक्ष-  
णमितरभेदकं तत्तत्साध्यक-तत्तद्धेतुकोपाधिलक्षणं दूषणौपचिकं  
तच्च यत्किञ्चिद्भ्रूमावच्छिन्नतत्तत्साध्यव्यापकत्वे सति तत्तत्साधना-  
व्यापकत्वं तेन विशिष्टसाध्यव्यापकोपाधौ नाव्याप्तिरित्यत आह,  
'विशेषलक्षण इति यत्किञ्चिद्भ्रूमावच्छिन्नतत्तत्साध्यव्यापकत्वे सति  
तत्तत्साधनाव्यापकत्वरूपे तत्तत्साध्यक-तत्तद्धेतुकोपाधिलक्षण इत्यर्थः,  
दूषणौपचिक इति शेषः । 'वक्षि-धूमसम्बन्धे' वक्षि-धूमसम्बन्धज्ञाने  
वक्षि-धूमव्याप्तिज्ञान इति यावत्, 'पचेतरस्येति पचेतरनिष्ठद्रूप-  
ज्ञानस्य प्रतिबन्धकत्वप्रसङ्ग इत्यर्थः, न चेष्टापत्तिः, पचेतरत्वादिनिष्ठ-  
साध्यव्यापकत्वे सति साधनाव्यापकत्वज्ञानस्य प्रतिबन्धकतायाः सर्व-

साध्यश्च नोपाधिः व्यभिचारसाधने साध्याविशिष्ट-  
त्वात् अनुमितिमात्रोच्छेदप्रसङ्गाच्च ।

इति श्रीमङ्गलेशोपाध्यायविरचिते तत्त्वचिन्तामणौ  
अनुमानाख्यद्वितीयखण्डे उपाधिसामान्यलक्षणं ।

विद्वलेऽपि तन्निष्ठयत्किञ्चिद्धर्मावच्छिन्नसाध्यव्यापकत्वे सति साधन-  
व्यापकताज्ञानस्य प्रतिबन्धकतायाः केवाप्यनभ्युपगमादिति भावः ।

ननु स्वव्यतिरेकेण पक्षे साध्याभावोच्चायकत्वस्य लक्ष्यतानिया-  
मकत्वमते घटो वस्त्रिमान् धूमादित्वादौ साधनव्यापकस्यापि वस्त्रि-  
शामय्यादेरुपाधित्वापत्तिरित्याशङ्क्यामिष्टापत्तिमाह, 'केचित्त्विति  
स्वव्यतिरेके पक्षे साध्यव्यतिरेकोच्चायकत्वस्य लक्ष्यतानियामकत्वादि-  
नस्तित्यर्थः, 'यत्रेति, साधनस्य पक्षवृत्तित्वे तद्भाष्यकधर्मस्यापि पक्ष-  
वृत्तित्वावश्यकतया तस्योपाधित्वावभावात् यथोक्तस्य लक्ष्यतानियाम-  
कत्वमते पक्षवृत्तिधर्मावच्छिन्नसाध्यव्यापकत्वे सति पक्षवृत्तित्वस्य उपा-  
धिलक्षणत्वादिति भावः । अत्र दृष्टान्तमाह, 'यथेति, 'तत्रेति पक्ष-  
वृत्तिहेतावित्यर्थः ।

ननु उपाधेर्यथोक्तलक्षणस्य साध्येऽपि सत्त्वात् परार्थस्यले साध्य-  
स्यापि साध्यतावच्छेदकरूपेण उपाधितयोद्भावनापत्तिरित्यत आह,  
'साध्यचेति, 'नोपाधिः' साध्यतावच्छेदकरूपेण उपाधितया नोद्भाव्यः,  
'व्यभिचारसाधने' तन्न्यभिचारादिरूपसाधने, आदिपदात् तदभाव-  
परिग्रहः, 'साध्याविशिष्टत्वादिति साध्यव्यभिचारादिरूपस्य साध्यसा-

विशेषादित्यर्थः, तथाच साधनादिरूपे पत्रे तद्व्यभिचारादेरनिश्चये  
निश्चये चोभयथैव तद्व्यभिचारादिना हेतुना साध्यव्यभिचारानुमि-  
त्यसम्भवात् न तस्योपाधित्वेन उद्भावनमिति भावः । ननु तथापि  
सन्दिग्धोपाधित्वेन तस्योद्भावनापत्तिरित्यत आह, 'अनुमितिमात्रेति  
परार्थानुमितिमात्रेत्यर्थः, एतच्चापाततः यत्र न तदुद्भावनं तत्रैव  
परार्थानुमितिसम्भवात्, परन्तु कथकसम्प्रदायनिषिद्धत्वान्न तदुद्भावन-  
मित्येव तत्त्वं ।

इति श्रीमथुरानाथतर्कवागीश-विरचिते तत्त्वचिन्तामणिरहस्ये  
अनुमानाख्यद्वितीयखण्डरहस्ये उपाधिसामान्यलक्षणरहस्यं ।

## अधोपाधिविभागः ।

स चायं द्विविधः निश्चितः सन्दिग्धश्च, साध्यव्यापकत्वेन साधनाव्यापकत्वेन च निश्चितोव्यभिचारनिश्चयाधायकत्वेन निश्चितोपाधिः यथा वह्निमत्त्वेन धूमवत्त्वे साध्ये आर्द्रैन्धनप्रभववह्निमत्त्वं, यच्च साधनाव्यापकत्वसन्देहः साध्यव्यापकत्वसंशयो वा तदुभयसन्देहो वा तच्च हेतुव्यभिचारसंशयकत्वेन सन्दिग्धो-

## उपाधिविभागरहस्यं ।

उपाधिलक्षणं लक्षयित्वा विशेषलक्षणार्थं विभजते, 'स चेति, 'हेतुव्यभिचारसंशयकत्वेनेति<sup>(१)</sup> साधनाव्यापकत्वसन्देहे साधने साध्यव्यापकव्यभिचारस्य साध्यव्यभिचारव्याप्यस्य सन्देहात् साध्यव्यभिचारसन्देहः, साध्यव्यापकत्वसन्देहे तु साधनाव्यापकव्याप्यस्य साधनाव्यापकत्वव्याप्यस्य सन्देहात् साध्ये साधनाव्यापकत्वसन्देहः व्याप्यसंग्रयस्य व्यापकसंग्रयहेतुत्वादिति भावः । 'सन्दिग्धोपाधिः' सन्दिग्धोपाधित्वेन 'तत्रेत्यत्र सप्तम्यर्थस्य नानन्वयः । प्रथमस्योदाहरणमाह, 'यथेति, 'शाकाद्याहारपरिणतिजत्वमिति शाकादिसंयोगघटितशाकपाकज-

(१) हेतुव्यभिचारसंशयाधायकत्वेनेतीति क० ।

पाधिः यथा मित्रातनयत्वेन श्यामत्वे साथ्ये शाका-  
पाहारपरिहृतिजत्वं । न च तेनैव हेतुना शाकपाक-  
जत्वमपि साथ्यं, तत्र श्यामत्वस्योपाधित्वादुभयस्यापि  
साधने अर्थान्तरं श्यामत्वमात्रे हि विवादे न तूभ-  
यस्य । न चैवं धूमाद्वज्रनुमानेऽपि वह्निसामग्र्युपाधिः  
स्यात्, तत्र वह्निनेव तत्सामग्र्यापि समं धूमस्यागौ-

श्यामतामग्रीमत्त्वमित्यर्थः, तेन नाग्निमग्रन्यासङ्गतिः । परार्थस्थलाभि-  
प्रायेण प्रकृते, 'न चेति, 'तेनैव' मित्रातनयत्वेनैव, 'तदपि'<sup>(१)</sup> तादृश-  
तामग्रीमत्त्वमपि, 'साध्यमिति पक्षसत्त्वप्रकाशानुसंधानाव्यापकत्वसन्दे-  
हनिरासाय वादिना साधनीयमित्यर्थः, 'उपाधित्वात्' सन्दिग्धो-  
पाधित्वेन उद्गावत्वादित्यर्थः । ननु मित्रातनयत्वेन हेतुना युगप-  
देवोभयं साधनीयं तत्र च श्यामत्वादेर्नोपाधित्वेनोद्गावनसम्भवः साथ्य-  
स्योपाधित्वेनानुद्गावत्वनिश्चयमादित्यत आह, 'उभयस्यापीति, 'श्याम-  
त्वमात्रे हीति, इदमुपलक्षणं युगपदुभयस्य साधनेऽप्येकांशेऽपरस्यो-  
पाधित्वेनोद्गावने बाधकाभावात् व्यभिचाराद्यनुमाने साध्याविशि-  
ष्टतया खल्विन् साध्य एव साधोपाधित्वेनानुद्गावत्वनिश्चयमादिति ध्येयं ।  
'न चैवमिति, 'एवं' साथ्यसामग्र्या अप्युपाधित्वग्रहविषयत्वे, 'वज्रनु-  
मानेऽपि' वज्रनुमित्युपधानसत्त्वेऽपि, 'उपाधिः स्यात्' उपाधिग्रह-

(१) 'शाकपाकजत्वमपि' इत्यत्र 'तदपि' इति कस्यचिन्मूलपुस्तकस्य पाठः  
तममुपलक्षणं तादृशपाठोद्धृतो रंभस्यस्यतेति सम्भाव्यते ।

पाधिकत्वनिश्चयात्, अत्र तु मित्रातनयत्वव्याप्यस्या-  
मसामग्र्या स्यातव्यमित्यत्र कार्य-कारणभावादीनां  
व्याप्तिग्राहकाणामभावात् । अत एव साध्यसामग्र्या  
सह हेतोरपि यत्र व्याप्तिग्राहकमस्ति तत्र सामग्री  
नोपाधिः, यत्र तु तन्नास्ति तत्र साप्युपाधिरित्यभि-  
सन्धाय सामग्री च क्वचिन्नोपाधिर्न तु सर्वत्र इत्युक्तं,

विषयः स्यात्, दृष्टापत्तौ चानुमित्यसम्भवादिति भावः । 'अनौपा-  
धिकत्वनिश्चयादिति व्याप्यत्वनिश्चयादित्यर्थः, साध्यसामग्र्या अप्युपा-  
धिग्रहविषयत्वे आचार्य्यसंवाद्साह, 'अत एवेति साध्यसामग्र्या अप्यु-  
पाधित्वग्रहविषयत्वादेवेत्यर्थः, 'नोपाधिः' नोपाधित्वग्रहविषयः,  
'उपाधिः' उपाधित्वग्रहविषयः, 'क्वचिन्नोपाधिः' नोपाधित्वग्रह-  
विषयः, 'न तु सर्वत्रेति, नोपाधित्वग्रहविषय इति शेषः । द्वितीयमु-  
दाहरति, 'यथेति, 'तुल्येति साधनीभूतकार्य्यत्वनिष्ठसाधनीभूतसकृत्-  
कत्वव्याप्यताग्राहकसहचारग्रह-साधनीभूतकार्य्यताव्यापकशरीरजन्य-  
त्वादिनिष्ठसाधनीभूतसकृत्कत्वव्यापकताग्राहकसहचारग्रहरूपयोर्योग-  
क्षेपयोरनुब्रूयतर्कासम्बन्धितत्वेन तुल्ययोः सतीरित्यर्थः, 'उपाधेरिति  
कार्य्यत्वरूपसाधनाव्यापकीभूतशरीरजन्यत्वादेः साध्यव्यापकतासन्देह-  
इत्यर्थः, तथाच चितिः सकर्तृका कार्य्यत्वादित्यत्र यदा साधने  
साध्यव्याप्यतानिश्चयकः साधनाव्यापकशरीरजन्यत्वादौ साध्यव्यापक-  
तानिश्चयकश्च तर्को नावतीर्णः तदा शरीरजन्यत्वादिकं साध्य-

यथा तुल्ययोगक्षेमयोरुपाधेर्व्यापकतासन्देहे ईश्वरानु-  
माने शरीरजन्यत्वाणुत्वादिः, यथा च शाकपाकजत्वस्य  
साध्यव्यापकतासन्देहे मित्रातनयत्वे।

यत्तु उपाधिसन्देहो नोपाधिर्न वा हेत्वाभासान्त-  
रमिति तदुद्भावेन निरनुयोज्यानुयोग इति । तन्न ।

व्यापकतासन्देहात् सन्दिग्धोपाधिरित्यर्थः । न च तस्य सद्धेतुतया  
कथं तत्रोपाधिरिति वाच्यं । सद्धेतोरपि दशाविशेषे सन्दिग्धोपाधि-  
कत्वे बाधकाभावादिति भावः । तृतीयसुदाहरति, 'यथा चेति,  
'शाकपाकजत्वस्येति साधनाव्यापकतया सन्दिग्धस्य शाकपाकजत्वस्ये-  
त्यर्थः, 'मित्रातनयत्वे' मित्रातनयत्वे हेतौ, शाकपाकजत्वमिति शेषः ।

'न वा हेत्वाभासान्तरं' न वा हेत्वाभासः, 'निरनुयोज्येति, तथाच  
परार्थानुमान एव उपाधिसन्देहो दूषणं न तु स्वार्थानुमानेऽपीति  
भावः । 'सन्दिग्धानैकान्तिकवदिति अनैकान्तिकत्वसन्देहवदित्यर्थः,  
एतच्च दूषकत्वमात्रे दृष्टान्तः, तेन व्यभिचारसंग्रयाधायकत्वाभावे-  
ऽप्यस्य न चितिः । 'दूषकत्वात्' उपाधिसन्देहस्य दूषकत्वात्, 'उपाधे-  
रिव' उपाधित्वनिश्चयस्येव, 'निश्चयाधायकतया' व्यभिचारनिश्चया-  
धायकतया<sup>(१)</sup> । न च तथापि उपाधित्वसन्देहः स्वरूपसन्नेव

(१) 'व्यभिचारनिश्चयाधायकतया' इत्यत्र 'निश्चयाधायकतया' इति कस्य-  
चिन्मूलपुस्तकस्य पाठो वर्तते तमनुद्धृत्यैव व्यभिचारनिश्चयाधायक-  
तया इति व्याख्यातं मधुरानाथेनेत्यनुमीयते ।



सन्दिग्धानैकान्तिकवद्भूमिभारसंग्रयाधायकत्वेन दूषक-  
त्वादुपाधेरिव व्यभिचारनिश्चयाधायकतया ।

इति श्रीमद्भक्तेशोपाध्यायविरचिते तत्त्वचिन्तामणौ  
अनुमानाख्यद्वितीयखण्डे उपाधिविभागः ।

व्यभिचारसंग्रयद्वारा दूषको न तु तज्ज्ञानमिति तज्ज्ञानार्थं तदु-  
द्भावनमफलं ग्रथान्तरापादकञ्चेति वाच्यं । तथासत्यनैकान्ति-  
कत्वसन्देहोपाधित्वनिश्चययोरप्युद्भावनस्य तथात्वापत्तेः । यदि सानै-  
कान्तिकत्वसन्देहादिना मम व्याप्तिग्रहो मा भूत् इतिज्ञापनाय  
तदुद्भावनं कथकसम्यदायसिद्धं, तदा उपाधित्वसन्देहान्मम व्याप्तिग्रहो  
मा भूदितिज्ञापनाय उपाधित्वसन्देहोद्भावनमपि कथकसम्यदाय-  
सिद्धमिति तुल्यत्वादिति भावः ।

इति श्रीमथुरानाथतर्कवागीश-विरचिते तत्त्वचिन्तामणिरहस्ये  
अनुमानाख्यद्वितीयखण्डरहस्ये उपाधिविभागरहस्यं ।

## अधोपाधेरदूषकतावीजपूर्वपक्षः ।



इदानीमुपाधेरदूषकतावीजं चिन्त्यते (१) ।

नाथस्य स्वयतिरेकद्वारा सत्प्रतिपक्षत्वेन दूषकत्वं,

## अधोपाधेरदूषकतावीजपूर्वपक्षरहस्यं ।

प्रयुक्तादुपाधेरदूषकतावीजं निरूपयितुं शिष्यावधानाय प्रतिजानीते, 'इदानीमिति उपाधिविभागानन्तरमित्यर्थः, 'दूषकतावीजं' दोषप्रयोजकतास्वरूपं, अनुमिति-तत्रयोजकान्यतरप्रतिबन्धकज्ञानं दोषः, 'चिन्त्यते' ज्ञायते ।

केचित्तु 'दूषकतावीजं' दूषकव्यवहारविषयतावच्छेदकं, दूषकशब्दोपाधिशब्दयोः पर्यायतापत्त्या दूषकशब्दस्य पारिभाषिकतापत्त्या च यथोक्तलक्षणस्य तद्विषयतावच्छेदकत्वासम्भवादिति भावः इत्याहुः । तदसत् । 'सत्प्रतिपक्षे उपाध्युद्भावनं न स्यादित्याद्यधिमयन्यासङ्गतेः ।

'स्वयतिरेकेति सिद्धतावच्छेदकविधया स्वयतिरेकलिङ्गकपक्षविशेषकत्वाभावाऽनुमितिप्रयोजकतयेत्यर्थः, तृतीयार्थोऽभेदः, तथाच तादृशानुमितिप्रयोजकत्वं नास्य दूषकमिति फलितं । 'सत्प्र-

(१) निरूप्यते इति क० ।

तदा हि सत्प्रतिपक्षे सत्प्रतिपक्षान्तरवदुपाधेरुद्भावनं  
न स्यात् । न च प्रतिपक्षबाहुल्येनाधिकवत्त्वार्थमुद्भावनं,

तिपक्षे' स्वयं साध्यसाधकहेतोरुपन्यासानन्तरं वादिना साध्याभाव-  
साधकहेतावुपन्यस्ते, 'सत्प्रतिपक्षान्तरवदिति साध्यसाधकहेतुन्तरस्य  
यथा नोद्भावनं तथा उपाधेरप्युद्भावनं न स्यादित्यर्थः, साध्याभावसा-  
धकहेतुमत्ताज्ञानात्मकप्रतिबन्धकसद्भावादुपाधेस्तत्र यथोक्तदूषकत्वा-  
सम्भवेन व्यर्थत्वादिति भावः । 'सत्प्रतिपक्षबाहुल्येनेति साध्यसा-  
धकानेकहेतुज्ञानसत्त्वेनेत्यर्थः, साध्याभावसाधकहेतुमत्ताज्ञानसत्त्वेऽपि  
साध्यानुमितेरुत्पादादिति शेषः, 'अधिकवत्त्वार्थमिति साध्याभावसा-  
धकानुमितिप्रतिबन्धकसाध्यानुमित्यर्थमेवेत्यर्थः । न चैवं सत्प्रति-  
पक्षान्तरस्थाप्युद्भावनापत्तिः, द्रष्टृत्वादिति भावः । 'अतमपीति,  
'न्यायात्' तात्त्विकप्रवादात्, तथाच साध्याभावसाधकहेतुज्ञानसत्त्वे  
साध्यसाधकानेकहेतुज्ञानात् साध्यानुमित्युत्पादे प्रवादव्याघातः,  
'अन्धानां' साध्याभावसाधकहेतुमत्ताज्ञाननिष्ठाप्रामाण्यज्ञानाद्यभाव-  
विशिष्टज्ञानविषयाणां साध्यसाधकहेतूनां, 'अतमपि', 'न पश्यति'  
न साध्याभावसाधकैकहेतुमत्ताज्ञानसत्त्वे साध्यानुमितिं जनयतीति  
तदर्थमिति भावः । ननु तत्रायोऽप्रमाणं इत्यत आह, 'एकेनापीति  
तदभावसाधकैकहेतुमत्ताज्ञानेनापि, 'बहूनां' तत्साधकानेकहेतुम-  
त्ताज्ञानानां, 'फलप्रतिबन्धात्<sup>(१)</sup>' फलप्रतिबन्धस्यानुभवसिद्धत्वाच्चे-

(१) एतन्न 'प्रतिबन्धादित्यत्र 'फलप्रतिबन्धादिति कस्यचिन्मूलपुत्रकस्य  
पाठोऽनुमीयते ।

शतमप्यन्यानां न पश्यतीति न्यायात् एकेनापि बहुनां प्रतिबन्धात्, व्याप्ति-पक्षधर्मेते हि बलं तच्च तुल्यमेव, न

त्यर्थः । नन्विदमसम्भवि तद्वत्ताज्ञानं प्रति तदभावव्याप्यभूयोधर्मव-  
त्ताज्ञानत्वेनैव प्रतिबन्धकत्वादित्यत आह, 'व्याप्तीति, 'बलं' ज्ञान-  
विषयतया प्रतिबन्धकतावच्छेदकं, 'तच्च' तादृशप्रतिबन्धकतावच्छेद-  
कञ्च, 'तुल्यमेवेति तदभावव्याप्यभूयोधर्मवत्ताज्ञान इव तदभाव-  
व्याप्यैकधर्मवत्ताज्ञानेऽप्यविशिष्टमेवेत्यर्थः, 'न तु भूयस्त्वपि' न तु  
व्याप्यनिष्ठभूयस्त्वप्यपीत्यर्थः, 'बलमित्यनुषज्यते, प्रतिबन्धकतावच्छे-  
दकमिति तदर्थः, अत्र हेतुमाह, 'एकस्यादपीति यत्र तत्तदभाव-  
योऽभयोरेकधर्मिण्येकस्यैव व्याप्यधर्मस्य ज्ञानं<sup>(१)</sup> तत्रैकव्याप्यधर्मवत्ता-  
ज्ञानादपीत्यर्थः, 'अन्वमितेरिति सवकारः पाठः<sup>(२)</sup> 'अनु' पश्चात्,  
'अमितेः' विशिष्टमिति विरहात् इत्यर्थः, 'अनुमितेरित्युकारसम्ब-  
न्धितपाठेऽपि 'अनु' पश्चात्, 'मितेः' विशिष्टभावस्य अमितेरि-  
त्यर्थः । ननु सत्प्रतिपक्षे नानुमानदूषणं नानुमानमपि तु बह्वेषु  
व्याप्तिपक्षधर्मतान्त्रभङ्गकल्पनमपेक्ष्य पक्षेऽपि तात्कल्पनैव लघीय-  
सीति लाघवतर्कसहस्रतप्रमाणात् प्रतिपक्षहेतुमत्तापरामर्शेऽप्रामा-  
ण्यग्रहार्थमेव तदुद्भावनं, अत एवास्माकं न्यायाः सम्यञ्चो बहवश्चेति  
प्रमाणटीकापि, किञ्च यत्र वादि-प्रतिवादिभ्यां साध्यसाधक-तद-

(१) यत्र तत्तदभावयोऽभयोरेव धर्मिण्येकस्यैव व्याप्यधर्मस्यैव ज्ञान-  
मिति ग० ।

(२) 'सवत्त्वः पाठः' इति आदर्शपुस्तकेषु वर्तते परन्वयं न समीचीनः ।

तु भूयस्त्वमपि, एकस्मादप्यन्वमितेः<sup>(१)</sup> सन्धिगोपाधे-  
रदूषकतापाताच्च तद्भ्यतिरेकस्य सन्धिगधत्वात्<sup>(२)</sup> । अपि

भावसाधकन्यायमात्रं प्रयुक्तं मध्यस्थस्य चैकत्रापि हेतावनुकूलतर्का-  
स्फूर्त्या व्याप्तिनिश्चयो न जातस्तत्रैवोपाधुद्भावमफलमन्यत्र च तदु-  
द्भावनं निष्फलमेव अन्यथा व्यभिचाराद्युत्पापकतया दूषकतावादि-  
नामप्येतदोषस्य दुरुद्धरत्वात् व्याप्तिनिश्चयसत्त्वेन व्यभिचारादिज्ञान-  
स्याप्यसम्भवादित्यखरसादाह, 'सन्धिगोपाधेरिति उपाधित्वसन्देह-  
दशायासुपाधेरदूषकतापत्तेश्चेत्यर्थः, 'तद्भ्यतिरेकस्य सन्धिगधत्वादिति  
पाठः तद्भ्यतिरेकस्य तदानीं साध्याभावव्याप्यतया सन्धिगधत्वादि-  
त्यर्थः, क्वचित्तु 'तद्भ्यतिरेकस्य पक्षे सन्धिगधत्वादिति पाठः, तत्र  
'सन्धिगोपाधेरित्यस्य पक्षवृत्तितामन्देहदशायासुपाधेरित्यर्थः, अथ  
'पक्षवृत्तिरित्यस्य पक्षवृत्तितया निश्चितश्चेत्यर्थः । ननु सत्प्रतिपक्ष-  
तया उपाधेरदूषकत्ववादिनये उपाधित्वादिसन्देहदशायां उपाधेर-  
दूषकत्वे द्रष्टापत्तिरेवेत्यत आह, 'अपि चेति, 'उपाधित्वं न  
स्यात्' उपाधेरदूषकत्वं न स्यात्, 'व्यतिरेक इति तद्भ्यतिरेकस्यासा-  
धारणत्वादित्यर्थः, पक्षमात्रवृत्तित्वस्यासाधारणरूपत्वादिति भावः ।

(१) 'अनुमितिदर्शनात्' इति पाठः बज्जम् आदर्शपुस्तकेषु वर्तते पर-  
न्वयं न समीचीनः, 'अनुमितिदर्शनात्' इत्यत्र 'अन्वमितेः' अथवा  
'अनुमितेः' इति पाठद्वयमेव पूर्वापरग्रन्थपर्यायोचने समीचीनत्वेन  
प्रतिभातं रहस्यकृता व्याख्यातञ्च ।

(२) तद्भ्यतिरेकस्य पक्षे सन्धिगधत्वादिति पा० ।

सैवं बाधोऽतीतपक्षेतरस्योपाधित्वं न स्यात् व्यतिरे-  
 दोऽसाधारण्यात् पक्षवृत्तिश्च<sup>(१)</sup> उपाधिर्न स्यात् यथा  
 घटोऽनित्यो द्रव्यत्वादित्यत्र कार्य्यत्वं अन्यकारो द्रव्यं

ननु पक्षमात्रवृत्तित्वरूपासाधारण्यज्ञानं नानुसितिर्विरोधि किन्तु  
 यावत्सपक्षव्यावृत्तित्वरूपतज्ज्ञानमेव तथा तच्च तत्र नास्ति पक्ष-  
 सैव सपक्षत्वादित्यत्र आह, 'पक्षवृत्तिश्चेति पक्षवृत्तित्ताज्ञानदग्नायां  
 उपाधिर्दूषको न स्यादित्यर्थः, 'स्वातन्त्र्येणेति स्वाश्रयविषयकलौकिक-  
 साक्षात्कारविषयान्यत्वे सति लौकिकसाक्षात्कारविषयत्वादित्यर्थः,  
 त्रसरेणुरात्मा चात्र वृष्टान्तः व्यभिचारश्च गन्धादौ<sup>(२)</sup>, 'अश्रावणत्व-

(१) पक्षधर्मश्चेति क० ग० ।

(२) त्रसरेणोराश्रयस्य ह्यणुकस्य महत्त्वाभावात् स्वात्मनस्वाश्रयाप्रसिद्ध्या  
 त्रसरेणोरात्मनि च स्वाश्रयविषयकलौकिकसाक्षात्कारविषयान्यत्वं  
 उपपद्यते । न च स्वाश्रयविषयकलौकिकसाक्षात्कार एवाप्रसिद्धः  
 कथं तद्विषयान्यत्वं सम्भवति इति वाच्यम् । स्वाश्रयविषयकलौकिक-  
 साक्षात्कारविषयान्यत्वपदेन स्वाश्रयविषयकलौकिकसाक्षात्कार-  
 विषयो यो यस्तदन्वयस्य विवक्षितत्वात् । अन्यकारप्रत्यक्षे अलोक-  
 संयोगनिरपेक्षचक्षुषः कारणत्वेऽपि तदाश्रयप्रत्यक्षे अलोकसंयोग-  
 सापेक्षस्यैव चक्षुषः कारणत्वात् अन्यकारस्य स्वाश्रयविषयकलौकिक-  
 साक्षात्कारविषयान्यत्वं । गन्धाश्रयस्य घ्राणेनाग्रहणात् गन्धे स्वाश्रय-  
 विषयकलौकिकसाक्षात्कारविषयान्यत्वविशिष्टलौकिकसाक्षात्कारवि-  
 षयत्वं वर्तते किन्तु द्रव्यत्वं न वर्तते इति व्यभिचारः स्फुट एवेति  
 समुदिततावृत्त्यर्थम् ।

स्वातन्त्र्येण प्रतीयमानत्वादित्यत्रावश्यत्वं तद्यतिरेकस्य  
पश्चाद्वृत्तित्वात्, न च नायमुपाधिः, तत्रक्षणासत्त्वात्  
अन्यथा दूषकत्वसम्भवाच्च ।

किञ्च साध्यव्याप्याव्यापकत्वेनोपाधेः<sup>(१)</sup> साध्याव्या-  
पकत्वे तद्यतिरेकेण कथं सत्यतिपक्षः, न ह्यव्यापक-

मिति, शब्दे चास्य साधनाव्यापकत्वं, 'पश्चाद्वृत्तित्वादिति पश्चाद्वृत्ति-  
त्वाग्रहादित्यर्थः । 'तत्रक्षणेति साध्यव्यापकत्वे सति साधनाव्यापकत्व-  
रूपस्य उपाधिलक्षणस्य सत्त्वादित्यर्थः, 'अन्यथापीति पश्चाद्वृत्तित्वं  
विनापीत्यर्थः, पश्चाद्वृत्तित्वाभ्रमेणेति शेषः, 'दूषकत्वसम्भवादिति  
कदाचिद्दूषकत्वसम्भवात्, दूषकतातिप्रसङ्गस्यादोषत्वादिति भावः ।

केचित्तु ननु तन्नोपाधिलक्षणं अपि तु पश्चाद्वृत्तिधर्मावच्छि-  
न्नसाध्यव्यापकत्वे सति पश्चाद्वृत्तित्वमेव लक्षणं तच्च तत्र नास्ति  
यथोक्तस्य दूषकतारूपत्वान्वयानुपपत्त्या तथैव कल्पनादित्यत आह,  
'अन्यथापीति यथोक्तरूपभिनन्त्यापि दूषकत्वसम्भवाच्चेत्यर्थः, तथाच  
किं सकलप्रामाणिकोपाधिव्यहारविषयस्य तत्रानुपाधित्वाभ्युपगमे-  
नेति भावः इत्याहुः ।

ननु सत्यतिपक्षोपाधकत्वेन दूषकतावादिनो मम पश्चाद्वृत्तित्व-  
ग्रहदशायां उपाधेरदूषकत्वे द्रष्टापत्तिरेवेत्यत आह, 'किञ्चेति,  
'साध्यव्याप्येति साध्यव्याप्यतया निश्चितस्य साधनस्याव्यापकताज्ञाने-

(१) साध्यव्यापकव्याप्यत्वेनोपाधेरिति क-चिद्विहितपुस्तकपाठः परन्त्वयं न  
समीचीनः ।

व्यतिरेकाद्व्याप्यव्यतिरेकः । नापि व्याप्तिपिररूपतया,  
असिद्धत्वेनानौपाधिकत्वस्य व्याप्तित्वनिरासात् । नाप्य-  
नौपाधिकत्वज्ञानस्य व्याप्तिधीहेतुत्वस्य तत्त्वेन व्याप्ति-  
ज्ञानकारणविघटकतया व्याप्यत्वासिद्धेरन्तर्भावः, न  
घनस्य साध्यव्यापकत्व-साधनाव्यापकत्वज्ञानं अन्यस्य  
व्याप्तिज्ञाने स्वतः प्रतिबन्धकमित्युक्तम् । न च साध्य-

नोपाधेः साध्याव्यापकत्वज्ञाने इत्यर्थः, 'सद्यतिपक्षः' साध्याभावग्रहः,  
'अव्यापकव्यतिरेकादिति अव्यापकतया गृहीतस्य व्यतिरेकाद्व्याप्य-  
तया गृहीतस्य व्यतिरेकग्रह इत्यर्थः । 'असिद्धत्वेनेति हेतुविश्ले-  
षकव्याप्त्यभावप्रकारकज्ञानस्यानुमितिकारणीभूतव्याप्तिज्ञानप्रतिब-  
न्धकस्य विशेषणविधया प्रयोजकत्वेनेत्यर्थः, 'दूषकत्वमित्यनुषज्यते.  
ततोऽयार्थश्च पूर्ववत्, उपाध्यभावस्य व्याप्तित्वे हि उपाधिर्व्याप्यभाव-  
रूपतया दूषकः स्यात्तदेव च सिद्धसिद्धिव्याघातान्निराकृतमि-  
त्याह, 'अनौपाधिकत्वेति । उपाधिर्न दूषकः किन्तु व्याप्यत्वासि-  
द्धिरूपहेत्वाभावात्तर्गतएव स इति कथञ्चित्तं दूषयति, 'नापीति,  
'अनौपाधिकत्वज्ञानस्य' उपाधिकत्वप्रकारकोपाधिज्ञानाभावस्य, 'व्याप्ति-  
ज्ञानकारणविघटकतयेति<sup>(१)</sup> व्याप्तिज्ञानकारणीभूताभावप्रतियोगि-  
ज्ञानविषयतयेत्यर्थः, 'व्याप्यत्वासिद्धेः' व्याप्यत्वासिद्धौ, साधारणा-  
दिभिन्नव्याप्तिज्ञानप्रतिबन्धकज्ञानविषयस्यैव व्याप्यत्वासिद्धित्वादिति



व्यापकाव्याप्यत्वज्ञाने विद्यमाने साधनस्य साध्यव्या-  
प्यत्वज्ञानं नैत्यत्तुमर्हतीति वाच्यं । न हि साध्यव्या-  
पकव्याप्यत्वज्ञानं व्याप्तिज्ञानकारणं येन तत्प्रतिबन्धकं  
स्यात्, किन्तु साध्यव्यापकव्यभिचारित्वेन साध्यव्यभि-

भावः । दूषयति, 'न हीति, 'अन्यस्य' साधनभिन्नस्य, 'अन्यस्य  
व्याप्तिज्ञाने' साधनभिन्नान्यस्य व्याप्तिज्ञाने, साधनस्य व्याप्तिज्ञान-  
इति यावत्, 'खतः प्रतिबन्धकमिति साक्षात्प्रतिबन्धकमित्यर्थः,  
भिन्नधर्मिकत्वादिति भावः । तथाचानुमिति-तत्कारणान्यतरं प्रति  
साक्षात्प्रतिबन्धकज्ञानविषयस्यैव हेत्वाभासतया कथमस्य हेत्वाभासे-  
ऽन्तर्भाव इति हृदयं । भिन्नधर्मिकत्वं परिहरन्नाह, 'न चेति,  
'साध्यव्यापकेति अव्याप्यतासम्बन्धेन साध्यव्यापकवत्ताज्ञान इत्यर्थः,  
तथाच तद्विषयतयैव उपाधिव्याप्यत्वादिज्ञानगते इति भावः ।  
'साध्यव्यापकेति अव्याप्यतासम्बन्धेन साध्यव्यापकाभाववत्ताज्ञानमि-  
त्यर्थः, 'येनेति, जनकौभूतं ज्ञानं विघटयत एव ग्राह्याभावाद्यन-  
वगाहिनो ज्ञानस्य प्रतिबन्धकत्वनियमादिति भावः । तत्किमव्या-  
प्यतासम्बन्धेन उपाधिमत्ताज्ञानं व्याप्तिज्ञानविघटकमेव न भवती-  
त्यत आह, 'किन्विति, 'साध्यव्यापकेति अव्याप्यतासम्बन्धेन साध्य-  
व्यापकोपाधिमत्ताज्ञानेनेत्यर्थः, 'साध्यव्यभिचारित्वेति, व्याप्तिज्ञानं  
विघटयत इति शेषः, एतच्च समाधिसौकर्यादुक्तं, वस्तुतोऽव्याप्यता-  
सम्बन्धेन हेतावुपाधिमत्तानिश्चयस्य प्रतिबन्धकत्वेऽप्युपाधेर्न व्याप्यत्वा-

चारित्वज्ञानद्वारा । नापि व्यभिचारोन्नायकत्वेन, यथा हि साध्यव्यापकव्यभिचारितया साधनस्य साध्यव्यभिचारित्वमनुमेयं तथा साध्यव्याप्यव्यभिचारित्वेन साध्यव्यभिचारित्वमुपाधेरप्यनुमेयं व्याप्तिग्राहकसाध्यात्<sup>(१)</sup> ।

सिद्धित्वसम्भवः उपाधिविग्रिष्टहेतुनिरूपितविषयित्वस्यैव व्याप्तिग्रह-प्रतिबन्धकतानिबन्धतया<sup>(२)</sup> तद्विग्रिष्टहेतोरेव तथात्वसम्भवादन्यथा व्याप्यत्वादिज्ञानगतसाध्यादेरपि प्रत्येकं व्याप्यत्वासिद्धित्वापत्तेरिति हेत्वाभासे सुबन्तं । ननुपाधिदूषक एव दूषकत्वन्तु, तस्य स्वव्यभिचारलिङ्गक-साधनपचक-साध्यव्यभिचारानुमितिप्रयोजकत्वेनेति मतं दूषयति, 'नापीति, दूषकत्वमित्यनुपच्यते, तृतीयार्थस्तु पूर्ववत्, 'साध्यव्यापकव्यभिचारित्वेनेति साध्यव्यापकोपाधिव्यभिचारित्वेन इत्यर्थः, 'तथेति, तत्पूर्वमिति शेषः । 'साध्यव्याप्येति साध्यव्याप्यसाधनाव्यापकत्वेनेत्यर्थः, 'साध्यव्यभिचारित्वं' साध्यव्यापकत्वं, 'व्याप्तिग्राहकेति उपाधिनिष्ठसाध्यव्यापकताग्राहकसहचारादिग्रह-हेतुनिष्ठसाध्यव्याप्तिग्राहकसहचारादिग्रहयोस्तुल्यत्वादित्यर्थः । 'साध्यव्यापकाव्याप्यत्वेनेति साध्यव्यापकाव्याप्यत्वलिङ्गेनेत्यर्थः, 'व्याप्तिविरहेति साधनपचकसाध्यव्याप्तिविरहानुमितिप्रयोजकतयेत्यर्थः, 'दूषकत्वमित्यनुपच्यते, 'साध्यव्याप्येति साध्यव्याप्यसाधनेत्यर्थः, 'उपाधिहेत्वाभावान्तरमिति आभा-

(१) व्याप्तिग्राहकतौल्यादिति ग० ।

(२) व्याप्तिग्रहप्रतिबन्धकतानतिरिक्तवृत्तितयेत्यर्थः ।

अथ वा कश्चिन्मन्त्रं वाच्यते अथवा अथवा  
 अथवा अथवा अथवा अथवा अथवा अथवा अथवा  
 अथवा अथवा अथवा अथवा अथवा अथवा अथवा

अथ वा अथवा अथवा अथवा अथवा अथवा अथवा  
 अथवा अथवा अथवा अथवा अथवा अथवा अथवा  
 अथवा

अथ वा अथवा अथवा अथवा अथवा अथवा अथवा  
 अथवा अथवा अथवा अथवा अथवा अथवा अथवा  
 अथवा

अथ वा अथवा अथवा अथवा अथवा अथवा अथवा  
 अथवा अथवा अथवा अथवा अथवा अथवा अथवा  
 अथवा

अथ वा अथवा अथवा अथवा अथवा अथवा अथवा  
 अथवा अथवा अथवा अथवा अथवा अथवा अथवा  
 अथवा

## अयोपाधिदूषकतावीजसिद्धान्तः ।

उच्यते आर्द्रैन्धनवत्त्वादेस्तर्कादिना साध्यव्यापकत्व-  
साधनाव्यापकत्वे निश्चिते दूषकतावीजचिन्तनं । यदि  
च साध्य-साधनसहचारदर्शनेनोपाधौ साध्यव्यापक-  
तामिश्चय एव नास्ति तद्दोषाधित्वनिश्चयाभावात् दूष-

## अयोपाधिदूषकतावीजसिद्धान्तरहस्यं ।

‘तर्कादिनेति साध्यव्यापकत्वादिनिश्चयसामग्र्यादिनेत्यर्थः, ‘आदि-  
पदात् तत्संग्रहसामग्रीपरिग्रहः, ‘निश्चिते’ ज्ञाते, ‘दूषकतावीजचि-  
न्तनं’ दूषकत्वस्य धर्मिणः सत्त्वं, ‘यदि चेति यदा चेत्यर्थः, ‘साध्य-साध-  
नसहचारदर्शनेन’ साध्य-साधनयोर्नियतसहचारदर्शनेन, साध्य-साध-  
नयोर्व्याप्यत्वनिश्चयेनेति यावत्, साध्यव्याप्यसाधनाव्यापकतया साध्या-  
व्यापकत्वनिश्चयादिति<sup>(१)</sup> शेषः । ‘निश्चय एव’ ज्ञानमेव, ‘उपाधित्व-  
निश्चयाभावात्’ उपाधित्वज्ञानाभावात्, ‘दूषकतैव’ दूषकताधर्म एव,  
‘क्व वहिर्भावेति कुतस्तत्कालीनदूषकतायां अनुमितिकारणप्रतिब-

(१) साध्यव्यापकत्वानिश्चयादिवीति क० ।

नापि साध्यव्यापकाव्याप्यत्वेन व्याप्तिविरहोच्चायक-  
तया, साध्यव्याप्याव्यापकत्वेनोपाधेरेव साध्याव्यापकत्व-  
साधनात्, तस्मादुपाधिर्हेत्वाभासान्तरमिति ।

इति श्रीमद्भङ्गेशोपाध्यायविरचिते तत्त्वचिन्तामणौ  
अनुमानाख्यद्वितीयखण्डे उपाधिदूषकतावीजपूर्व-  
पक्षः ।

सस्य दोषस्य यो हेतुः प्रयोजकः तस्मादन्तरमिति व्युत्पत्त्या उपाधि-  
रदूषक इत्यर्थः, राजदन्तादित्वात् षष्ठीतत्पुरुषसमासेऽपि हेतुशब्दस्य  
पूर्वनिपातः ।

केचित्तु 'हेत्वाभासान्तरमिति बाध-सम्प्रतिपक्षाद्यतिरिक्तानु-  
मितिसाक्षात्प्रतिबन्धकज्ञानविषयो हेत्वाभास इत्याहुः । तदसत् ।  
जनकज्ञानविघटकतया साक्षाभावाद्यनवगाहितया चानुमितिं प्रत्यपि  
साक्षात्प्रतिबन्धकत्वासम्भवादिति ध्येयं ।

इति श्रीमथुरानाथतर्कयोगीश-विरचिते तत्त्वचिन्तामणिरहस्ये  
अनुमानाख्यद्वितीयखण्डरहस्ये उपाधिदूषकतावीजपूर्वपक्षरहस्यं ।

अयोपाधिदूषकतावीजसिद्धान्तः ।

उच्यते आर्द्रेन्धनवत्त्वाद्देतर्कादिना साध्यव्यापकत्व-  
साधनाव्यापकत्वे निश्चिते दूषकतावीजचिन्तनं । यदि  
च साध्य-साधनसहचारदर्शनेनोपाधौ साध्यव्यापक-  
तानिश्चय एव नास्ति तद्दोषाधित्वनिश्चयाभावात् दूष-

अयोपाधिदूषकतावीजसिद्धान्तरहस्यं ।

‘तर्कादिनेति साध्यव्यापकत्वादिनिश्चयसामर्थ्यादिनेत्यर्थः, ‘आदि-  
पदात् तत्संशयसामग्रीपरिग्रहः, ‘निश्चिते’ ज्ञाते, ‘दूषकतावीजचि-  
न्तनं’ दूषकत्वस्य धर्मिणः सत्त्वं, ‘यदि चेति यदा चेत्यर्थः, ‘साध्य-साध-  
नसहचारदर्शनेन’ साध्य-साधनयोर्नियतसहचारदर्शनेन, साध्य-साध-  
नयोर्वाप्यत्वनिश्चयेनेति यावत्, साध्यव्याप्यसाधनाव्यापकतया साध्या-  
व्यापकत्वनिश्चयादिति<sup>(१)</sup> शेषः । ‘निश्चय एव’ ज्ञानमेव, ‘उपाधित्व-  
निश्चयाभावात्’ उपाधित्वज्ञानाभावात्, ‘दूषकतैव’ दूषकताधर्म एव,  
‘क वहिर्भावेति कुतस्तत्कालीनदूषकतायां अनुमितिकारणप्रतिब-

(१) साध्यव्यापकत्वानिश्चयादिति क० ।

कतैव नास्तीति ह्य वहिर्भावान्तर्भावचिन्ता । किञ्च  
सत्प्रतिपक्षतया व्याप्यत्वासिद्धतया स्वातन्त्र्येण वा यदि  
दोषत्वं सर्व्वेया साध्यव्यापकतानिश्चयोवक्तव्यः तेन  
विना तेषामभावात् । तस्मादुपाधिनिश्चयाद्बुभिक्षा-

व्यक्तज्ञानप्रयोजकतारूपत्व-साक्षाद्बुभिक्षाप्रतिवन्धकज्ञानप्रयोजकता-  
रूपत्वचिन्तनमित्यर्थः । 'किञ्चेति यत इत्यर्थे, 'सत्प्रतिपक्षतयेति  
सत्प्रतिरेकसिद्धकषाध्याभावानुमितिप्रयोजकतयेत्यर्थः, 'व्याप्यत्वा-  
सिद्धतयेति व्याप्तिविरहरूपत्वेन विशेषणविधया हेतुविशेष्यकव्याप्त-  
भावप्रकारकज्ञानप्रयोजकतयेत्यर्थः, 'स्वातन्त्र्येण वेति तदितररूपेण  
वेत्यर्थः, तच्च रूपं साव्याप्यत्वसिद्धक-हेतुपक्ष-साध्यव्याप्तिविरहा-  
नुमितिप्रयोजकत्वं वक्ष्यमाणव्यभिचारज्ञानप्रयोजकत्वञ्चेति भावः ।  
'साध्यव्यापकतानिश्चयः' तद्ग्रहः, 'वक्तव्यः' अपेक्षणीयः, 'व्यभिचा-  
रज्ञानद्वारेति मानसव्यभिचारप्रत्यक्षप्रयोजकतयेत्यर्थः, अतो नापि-  
क्षेण पौनरुक्त्यं, मानसव्यभिचारनिश्चये उपाधिज्ञानस्य विशेषद-  
र्शनतया उपयोगित्वेन तद्विषयतया उपाधेरपि तत्र प्रयोजकत्वादिति  
भावः । 'साध्यव्यापकव्याप्यत्वेनेति खनिष्ठसाध्यव्यापकतावच्छेदकरूपा-  
वच्छिन्नाव्याप्यत्वेन हेतुना हेतौ साध्यव्याप्तिविरहानुमितिप्रयोजक-  
तया वेत्यर्थः, एतच्च उपाधित्वनिश्चयमधिगत्य, उपाधित्वसंग्रहस्य तु  
साध्यव्यभिचारवत्साध्यव्याप्तिविरहस्यापि संग्रह्यं प्रत्येव क्वचित् प्रयोज-  
कत्वं । अत्र साध्यव्याप्तिविरहपदं साध्यवदन्यावृत्तित्वविशिष्टसाध्य-

रनिययः तत्साध्यात्तत्साधय इति व्यभिचारज्ञान-  
द्वारा साध्यव्यापकाव्यापत्वेन व्याप्तिविरहेन्नायकतया  
वोपाधेरदूषकत्वम् ।

यद्वा साध्यव्यापकाभाववदृत्तितया साध्यव्यभिचा-

वदृत्तित्वरूपव्याप्तिविरहपरं, न तु साध्यापकाध्ययामानाधिकरण्य-  
रूपव्याप्तिपरं, सात्वत्यानुगतत्वाभावेन पचीभूतसाध्यव्यक्तिपर्यवसक्ततया  
साध्याप्रसिद्धेः । एतेन साध्यामानाधिकरणात्यक्ताभावप्रतियोगिसाध्य-  
कत्वं साध्यव्याप्तिविरह इत्यपि निरस्तं, सात्वत्यानुगतत्वाभावेन  
पचीभूतसाध्यव्यक्तिपर्यवसाने साध्यप्रसिद्धिमात्रेणैव प्रतार्थतया हेतौ  
तदनुमानवैफल्यपत्तेरिति ध्येयं ।

कात्तभेदेन व्यवहितविकल्पमाह, 'यदेति, 'साध्यव्यापकेति  
साध्यव्यापकोपाध्यभाववदृत्तित्वेनेत्यर्थः, 'उच्येयं' हेतावनुत्थेयं, तथाच  
क्षचित्साध्यव्यभिचारावुचितिप्रयोजकतयाप्युपाधेरदूषकत्वमिति भावः ।  
एतदपि निश्चयद्वयमधिकृत्य, इदञ्च पर्यवहितसाध्यव्यापकत्वे सति  
साध्याव्यापकत्वरूपोपाधित्वज्ञानस्य दूषकतावीजयुक्तं, पचदृत्तिध-  
र्मावच्छिन्नसाध्यव्यापकत्वे सति पचादृत्तित्वरूपोपाधित्वज्ञानस्य तु  
सम्प्रतिपक्षोपायकत्वं क्षयित्वाधोपायकत्वञ्च दूषकतावीजं बोध्यं,  
सम्प्रतिपक्षोपायकत्वञ्च पचे साध्याभावव्याप्योपाध्यभाववत्तानिश्चय-  
प्रयोजकत्वं, वाधोपायकत्वञ्च पचे साध्याभावानुचितिप्रयोजकत्वं, तच्च  
पचे तुल्यवत्साध्यव्याप्यहेतुमत्तानिश्चयविरहदशायां पचे साध्याभा-



रित्वमुन्नेयं । न च साधनाभाववद्वृत्तित्वमुपाधिरिति  
वाच्यम् । उपाधिमात्रेच्छेदप्रसङ्गात् सत्प्रतिपक्षे पूर्व-  
साधनव्यतिरेकवत् अद्वृत्तिगगनादौ साध्याव्यापकत्वात्  
संयोगादौ हेतौ साधनव्यापकत्वाच्च ।

व्याप्त्योपाध्यभाववत्तानिश्चयद्वारावसेयं । व्याप्तिविरहानुमाने व्यभि-  
चारानुमाने च उपाधिमात्राङ्गते, 'न चेति पक्षीभूतसाधनाभाववद्-  
वृत्तित्वमित्यर्थः, व्यभिचारास्तुतादग्नायानेव उपाधिना व्याप्तिवि-  
रहाचनुमानात् यत्राधिकरणे हेतोः साध्यव्यभिचारित्वं तदौषध-  
र्मिणास्य साध्याव्यापकत्वग्रह इति भावः । 'उपाधिमात्रेति व्यतिरे-  
किसाधनकोपाधिव्यभिचारमात्रस्य तादृशोपाध्यव्याप्यत्वमात्रस्य च  
निरुपाधित्वोच्छेदप्रसङ्गादित्यर्थः । देवताव्यभिचि साधने पक्षीभूते  
पक्षीभूतसाधनाभावस्याप्रसिद्ध्या तद्वद्वृत्तित्वस्य उपाधित्वासम्भवेऽपि  
तदतिरिक्ते पक्षीभूते सर्वत्रैव तदुपाधितायाः सुवचत्वादिति भावः ।  
'सत्प्रतिपक्ष इति यथा सत्प्रतिपक्षे पूर्वसाधनव्यतिरेकस्य उपाधित्व-  
निवले सत्प्रतिपक्षमात्रस्य निरुपाधित्वोच्छेदप्रसङ्ग इत्यर्थः, 'अद्व-  
त्तीति, व्याप्तिविरहसाधनाभिप्रायेणोदं, साधनाव्याप्यत्वस्य तत्रोपा-  
धित्वाभिधाने तु नैतद्दोष इति श्रेयं । 'संयोगादाविति, एतच्च  
साधनाभाववद्वृत्तित्वं यथाश्रुतमभिप्रेत्य, साधनाभावीयनिर-  
वद्विपाधिकरणतावद्वृत्तित्वोपाधित्वाभिधाने तु नायं दोष-  
इति श्रेयं ।

इति श्रीमद्भेषोपाध्यायविरचिते तत्त्वचिन्ता-  
मणौ अनुमानाख्यद्वितीयखण्डे उपाधिदूषकतावीज-  
सिद्धान्तः ।

---

इति श्रीमथुरानाथतर्कवागीश-विरचिते तत्त्वचिन्तामणिरहस्ये  
अनुमानाख्यद्वितीयखण्डरहस्ये उपाधिदूषकतावीजसिद्धान्तरहस्यं ।

---









B  
132  
N8G3  
1888a  
pt.2  
v.1

Gangeśa  
The Tattva-chintamani

~~\_\_\_\_\_~~  
~~\_\_\_\_\_~~  
~~\_\_\_\_\_~~

PLEASE DO NOT REMOVE  
CARDS OR SLIPS FROM THIS POCKET

---

UNIVERSITY OF TORONTO LIBRARY

---

